इकाई -1 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति:परिभाषा, क्षेत्र व प्रकृति, स्वायत्त विषय

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अर्थ
1.4 परिभाषायें
1.5 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्षेत्र
1.6 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रकृति
1.7 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक स्वतंत्र विषय के रूप में
1.8 नामकरण की समस्या
1.9 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा राष्ट्रीय राजनीति
1.10 सारांश
1.11 शब्दावली
1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ
1.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.15 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में प्रत्येक राष्ट्र (कर्ता) अपने स्व-प्रस्तावित राष्ट्रीय हितों और अपने उपलब्ध शक्ति संसाधनों के परिप्रेक्ष्य में अपनी नीति और भूमिका का निर्धारण करता है। राष्ट्रीय हित की प्राप्ति की संभावना से ही राष्ट्र अन्य राष्ट्रों के सम्पर्क में आते हैं। इन्हीं सम्बन्धों की समष्टि को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध कहते हैं। लौकिक जगत से जुड़ी अन्य वस्तुओं की भाँति ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी परिवर्तनशील है क्योंकि पर्यावरण के प्रभाव से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इसी परिवर्तनशील अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और तथ्यों के अध्ययन के लिये अनेक तरीके या उपागम अपनाये जा सकते हैं। ये सभी एक दूसरे के पूरक हैं।

1.2 उद्देश्य

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से अब तक के पांच दशकों में राष्ट्रों को इस बात का भली भाँति एहसास हो गया है कि युद्ध से विध्वंश ही हो सकता है, किसी समस्या का स्थायी समाधान नहीं। अब राष्ट्र परस्पर जुड़ कर विकास की यात्रा तय करना चाहते हैं। इस सोच में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति या राष्ट्रों के मध्य राजनीति कुछ ज्यादा सक्रिय और ज्यादा जीवंत हो गयी है।

इस इकाई का उद्देश्य अध्येता को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का सामान्य परिचय देना है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अर्थ, उसके स्वरूप तथा क्षेत्र से परिचित हो सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में विभेद कर सकेंगे।

1.3 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अर्थ

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अर्थ पहले यूरोप की राजनीति से ही लिया जाता था। उस समय समूचे विश्व में यूरोपीय राष्ट्रों की राजनीत छाई हुई थी । एशिया तथा अफ्रीका में आर्थिक एवं औपनिवेशिक विस्तार के लिये यूरोपीय राज्य युद्ध तथा कूटनीतिक दाव-पेचों में व्यस्त थे। यूरोपीय देश शक्ति सम्पन्न थे उनकी औद्योगिक प्रगति हो चुकी थी तथा उनकी विस्तारवादी महत्वाकांक्षायें थी। इसके विपरीत गैर यूरोपीय देशों की राजनीति बहुत कुछ शांत तथा स्थानीय थी।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद से वातावरण बदलने लगा। 1919-1945 के बीच विश्व के एक बड़े भाग में आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और तकनीकी क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अणुशक्ति ने राष्ट्रों की राजनीति और सामरिक नीति को एक नया मोड़ दिया। साम्राज्यवाद के विरूद्ध जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई। विश्व तथा अफ्रीका का प्रभाव एवं प्रभुत्व तेजी से बढ़ा और उनकी उपेक्षा करना साम्राज्यवादी देशों के लिये संभव नहीं रहा। इन सब क्रिया प्रतिक्रियाओं ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप को बदल दिया तथा उसके आकार तथा अयामों को सही माने में अन्तर्राष्ट्रीय बना दिया। इसके फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति केवल यूरोप मात्र की राजनीति नहीं रह गयी और एक स्वतंत्र विषय के रूप में इसका विकास प्रारभ्म हुआ।

1.4 परिभाषायें

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रकृति को विद्वानों ने अपने अपने दृष्टिकोण के अनुसार विभिन्न रूपों में व्यक्त किया है। पहले हम लोग कुछ परिभाषायें ले रहे हैं उसके बाद उसके विषय क्षेत्र की व्याख्या करेंगेः-

हैन्स मार्गेंथाऊ: राष्ट्रों के मध्य शक्ति के लिये संघर्ष, तथा उसका प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कहलाता है।

फेलिक्स ग्रास: अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति वास्तव में राष्ट्रों की विदेश नीति का अध्ययन ही है।

स्प्राउट: स्वतंत्र राजनीति समुदायों, अर्थात राज्यों, के अपने अपने उद्देश्यों, अथवा हितों के आपसी विरोध प्रतिरोध या संघर्ष से उत्पन्न उनकी क्रिया, प्रतिक्रियाओं और संबंधों का अध्ययन ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति है।

के. डबलू. थामसन: राष्ट्रों के बीच छिड़ी प्रतिस्पर्द्धा के साथ साथ उनके पारस्परिक संबंधों को सुधारने या बिगाड़ने वाली परिस्थितियों और संस्थाओं के अध्ययन को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कहते हैं ।

हार्टमैन: अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों से अभिप्राय उन प्रक्रियाओं के अध्ययन से है जिनके द्वारा राज्य अपने राष्ट्रीय हितों का सामंजस्य अन्य राज्यों के राष्ट्रीय हितों के साथ बैठाते हैं ।

बर्टन: अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में सामान्य बातों के अतिरिक्त सभी घटनायें और परिस्थितियां भी सम्मिलित हैं जिनका प्रभाव एक से अधिक राज्यों पर पड़ता है।

हैन्स मार्गेंथाऊ का विचार है कि शक्ति अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का प्रमुख तत्व है। प्रत्येक राष्ट्र शक्ति के लिये प्रयत्न करता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति शक्ति की राजनीति है। शक्ति राष्ट्रीय हित को बढ़ाने, प्राप्त करने तथा कार्यान्वित करने तथा अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर अपनी भूमिका निभाने के लिये अनिवार्य है। मार्गेंथाऊ का कहना है कि राष्ट्रों के बीच सभी सम्बन्ध राजनीतिक नहीं होते क्योंकि राष्ट्र साधारणतया ऐसे कार्य भी करते हैं जिनका सम्बन्ध शक्ति से नहीं होता । उदाहरण के लिए राष्ट्रों के अनेक कानूनी, आर्थिक, मानवीय और सांस्कृतिक कार्य कलापों को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर्गत नहीं गिना जा सकता। मार्गेंथाऊ का निष्कर्ष है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतियों के समान शक्ति के लिए संघर्ष का ही नाम है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के चहे कुछ भी उद्देश्य हों पर उसका तात्कालिक उद्देश्य हमेशा शक्ति ही रहता है। मार्गेंथाऊ के तर्क में बल अवश्य ही है। यद्यपि यह बात भी ध्यान में रखना चाहिए

कि शक्ति एक साधन मात्र है साध्य नहीं। राष्ट्र केवल शक्ति के लिये ही कोई राजनीति संचालित नहीं करते। साथ ही शक्ति की अपनी सीमायें होती हैं।

1.5 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्षेत्र

फेलिक्स ग्रास, रसेल एच. फिफील्ड आदि विद्वानों ने राष्ट्रों की विदेश नीतियों के अध्ययन को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति माना है। यह तर्क दिया गया है कि जब तक हम राष्ट्रों की विदेश नीतियों को नहीं समझ लेंगे तब तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को नहीं समझ सकते। इस प्रकार से यह बात स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा राष्ट्रों की विदेश नीतियों में अटूट सम्बन्ध है पर एक बात जो नहीं मानी जा सकती वह यह है कि दोनों एक हैं अथवा विदेश नीतियों का अध्ययन मात्र ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति है।

फ्रेड्रिक ए. साउन्डरमैन ("The Linkage between Foreign Policy and International Politics" in the Theory and Practice of International Nations – New Jersey 1966, pp. 16-23) ने लिखा है कि विदेश नीति के अध्ययन को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का पर्याय नहीं माना जा सकता। क्योंकि विदेश नीति की अपेक्षा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्षेत्र अधिक विस्तृत हैं जिसमें विदेश नीति के अध्ययन के अतिरिक्त और भी अनेक विषयों का अध्ययन शामिल है। यह बात सच है कि राष्ट्रीय हितों की रक्षा महत्पूर्ण ढंग से विदेश नीति द्वारा की जाती है और इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन की यह महत्वपूर्ण सामग्री है पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन न केवल यह जानने का प्रयत्न करता है कि अमुक देश की विदेश नीति क्या है पर यह भी देखता है कि कौन कौन से तत्व उस देश की विदेश नीति को प्रभावित करते हैं। अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन हमें विदेश नीति से निश्चित करने वाली प्रक्रिया से परिचित कराता है। विदेश नीति के अध्ययन को ही सब कुछ मानने के पीछे धारणा यह है कि विदेश नीति के निर्धारक व्यक्ति ही अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को बनाने बिगाड़ने व मोड़ने वाले होते हैं। वे लोग इस तथ्य की उपेक्षा करते हैं कि कई बार अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण भी नीति निर्माताओं को कोई विशिष्ट नीति अपनाने के लिए बाध्य कर देता है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन में अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण तथा विदेश नीति पर पड़ने वाले उसके प्रभाव की जानकारी भी शामिल है।

क्विंसी राइट ने अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण के अन्तर्गत जिन बातों के अध्ययन को शामिल किया है वे इस प्रकार से हैं- विश्व में तनाव एवं हलचल की सामान्य दशा, आर्थिक, सांस्कृतिक राजनीतिक क्षेत्रों में राज्यों की पारस्परिक निर्भरता की मात्रा, कानून एवं मूल्यों का सामान्य स्तर, जनसंख्या तथा साधन, उपज और खपत जीवन के आदर्श, तथा विश्व राजनीति की स्थिति। इन सभी बातों के कारण हैराल्ड तथा माग्रेट स्प्राउट ने विदेश नीति को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक उप-विभाग बताया है।

कुछ अन्य विद्वानों ने अपनी अपनी परिभाषाओं में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र को अपेक्षाकृत विस्तृत या सीमित किया है। चार्ल्स स्लेशर ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर्गत सभी अन्तर्राज्य सम्बन्धों को शामिल किया है, यद्यपि वह यह मानता है कि इस प्रकार के सारे सम्बन्ध केवल राजनीतिक ही नहीं होते । पाल्मर पर्किन्स ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन का सीधा सम्बन्ध राज्य प्रणाली से जोड़ा है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन क्षेत्र में विचारधारा और राष्ट्रीयता का भी प्रमुख स्थान है। विचारधारा आज की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रमुख सूत्रधारों में से हैं। साम्यवाद, लोकतंत्र, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता आदि विचारधाराऐं अपने आप में प्रबल शक्तियां हैं। अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों पर इनका प्रमुख प्रभाव रहता है। एशिया तथा अफ्रीका की राजीनति बहुत कुछ राष्ट्रीयता की राजनीति है जिसका सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर निश्चित प्रभाव पड़ रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें, और उनसे सम्बन्धित उप संस्थायें भी काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ, तथा उससे संबंधित अन्य विशिष्ट संस्थाओं, का विश्व राजनीति के क्षेत्र और साधन दोनों रूपों में अपना स्थान है।

शान्ति और युद्ध जैसे विषय अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन क्षेत्र में अपने आप ही शामिल हो जाते हैं। अन्त में यह कहा जा सकता है कि जिस देश से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के लिए प्रयास किये जा रहे हैं तथा उसे एक वैज्ञानिक विषय बनाने के लिए सिद्धान्तों की खोज हो रही है, उसके आधार पर अब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अपने क्षेत्र में विभिन्न विषयों को समेटने और अपना क्षेत्र समुचित रूप में व्यापक करने को प्रयत्नशील है।

1.6 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रकृति

विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों की राजनीति ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति है। यह कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में विभिन्न राष्ट्र अपने हित साधन के लिये आपसी संबंधों में संघर्ष की जिस स्थिति में रहते हैं उसी का अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में तीन आवश्यक तत्व होते हैं: 1. राष्ट्रीय हित 2.संघर्ष और 3. शक्ति। राष्ट्रीय हित उद्देश्य हैं, संघर्ष स्थिति विशेष है, और शक्ति उद्देश्य प्राप्ति का साधन हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में संघर्ष का विशेष महत्व है। अन्तर्राष्ट्रीय समाज में संघर्ष की स्थिति बनी ही रहती हैं, अतः शक्ति के माध्यम से सामन्जस्य की प्रक्रिया हमेशा चलती रहती है। संघर्ष की निरंतर उपस्थिति का मतलब यह नहीं है कि संसार के देश हमेशा एक दूसरे से टकराव रखते हैं। जिन देशों के हित समान होते हैं उनमें सहयोग भी होता है । दूसरे शब्दों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में संघर्ष और सहयोग दोनों ही शामिल हैं। सहयोग भी देखा जाय तो अंतिम रूप से संघर्ष का ही परिणाम है क्योंकि:

1- जिन देशों के हित परस्पर समान होते हैं वे आपस में सहयोग इसलिये करते हैं कि दूसरे राष्ट्रों के संघर्ष पर विजय पा सके, और

2- सहयोग की आशंका इसलिये की जाती है क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्वभावतः संघर्षपूर्ण होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अन्य किसी भी राजनीति की तरह एक निरंतर क्रिया है - ऐसी क्रिया जिसमें संघर्ष के केन्द्रीय स्थान प्राप्त हैं

1.7 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक स्वतंत्र विषय के रूप में

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को एक स्वतंत्र शास्त्र माना जा सकता है अथवा नहीं इस सम्बन्ध में काफी मतभेद रहे हैं। कुछ विद्वान इसे इतिहास का एक विशिष्ट विषय मानते हैं क्योंकि इस विषय का जन्म इतिहास के भिक्षु के रूप में हुआ है। वेल्स युनिवर्सिटी के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के पहले प्रोफेसर अल्फ्रेड जिमेर्न एक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ थे। इसी प्रकार अनेक विद्वान इसे राजनीति शास्त्र के व्यापक विज्ञान का एक स्वायत्त क्षेत्र मानते हैं।

जो विद्वान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को एक स्वतंत्र विषय मानते हैं उनमें से प्रमुख हैं- ए. डबलू. मैनिंग, क्विन्सी राइट, हाफसन। ए. डबलू. मैनिंग का प्रमुख तर्क यह है कि ‘‘ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक वृहत विषय तथा विशाल सामाजिक विश्व का अंग है।’’ इस सम्बन्ध में वो तीन बातें कहते हैं:-

1. सामाजिक विश्व के अन्तर्गत सम्पूर्ण संसार में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का एक जाल है, अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का स्वतंत्र अध्ययन जरूरी है।

2. इसके लिये एक सर्वव्यापी दृष्टिकोण जरूरी है और यह दृष्टिकोण तब तक सफल नहीं होगा जब तक कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को हम एक स्वतंत्र विषय न मान लें। अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर बहुत सारी घटनायें घटित होती हैं उन्हें समझने तथा सही संदर्भ में परखने तथा उनकी दिशाओं को जानने का यही सबसे अच्छा तरीका है।

3. यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की घटनाओं के सही स्वरूप को न समझ सकें, तथा समस्याओं के समाधान की दिशा में समुचित रूप से विचार न कर सकें, तो इसके अध्ययन का कोई लाभ नहीं होगा।

क्विन्सी राइट के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का विषय आज दूसरे विभिन्न विषयों से लाभ उठाकर समन्वय का ढंग अपनाते हुए लगातार विकास की ओर बढ़ रहा है।

हाफसन यह प्रतिस्थापित करना चाहते हैं कि हम राज्यों के आन्तरिक मामलों का विवेकपूर्ण अध्ययन तभी कर सकते हैं जब उनकी बाह्य क्रियाओं का विशद, गहन और समुचित अध्ययन करें। स्पष्ट है कि इस अर्थ में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक स्वतंत्र विषय के रूप में उतना ही मान्य है जितना कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति शास्त्र में।

कैपर जानसन ने लिखा है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को हम इतिहास अथवा राजनीति शास्त्र का अंग नहीं मान सकते क्योंकि इसका क्षेत्र उनसे कहीं अधिक व्यापक है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति शास्त्र जो सामग्री इकट्ठी करता है वह दूसरे शास्त्रों की सामग्री से भिन्न है। अतः सामाजिक विज्ञान में उसे एक स्वतंत्र शास्त्र मानना न्याय संगत है।

पी. डी. मर्चेन्ट, राबर्ट लारिंग, कैप्लान, जार्ज केनन आदि विद्वान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता देने को तैयार नहीं हैं। विरोध में निम्नलिखित तर्क दिया गया है:-

1. पहला तर्क यह दिया जाता है कि किसी भी शास्त्र के लिये तीन बातों का होना आवश्यक है- निश्चित अध्ययन सामग्री, स्पष्ट गवेषणा पद्धति, और सर्वमान्य सिद्धान्त का विकास। परंतु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का विषय इस कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

2.दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मुख्य कार्य राज्यों के पारस्परिक व्यवहारों और उनके प्रेरक तथ्यों का पूरा अध्ययन करना है, और यह अध्ययन वह स्वतंत्र रूप से नहीं कर सकता, अपितु उसे राजनीति शास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, भूगोल आदि पर निर्भर रहना पड़ता है। इस स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को एक स्वतंत्र दर्जा देना ठीक नहीं है। कैप्लान इसे राजनीति शास्त्र अथवा राजनीति शास्त्र के विकास के रूप में मानना चाहता है।

दोनो पक्षों के तर्कों की व्याख्या के उपरान्त निष्कर्ष में हम यह कह सकते हैं-

1. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की अध्ययन सामग्री लगातार बढ़ रही है और इसका स्वरूप इतना जटिल तथा विशिष्ट बनता जा रहा है कि यह विषय किसी अन्य शास्त्र जैसे राजनीति शास्त्र, इतिहास, अन्तर्राष्ट्रीय कानून या अर्थशास़्त्र के अन्तर्गत नहीं रह सकता।

2. आज भले ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वतंत्र रूप पर संदेह किया जाये, लेकिन कल ऐसो नहीं रहेगा। अब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के लिये सिद्धान्तों का विवेचन होने लगा है। 1947 में प्रकाशित Politics Among Nations में मार्गेंथाऊ ने पहली बार एक व्यवस्थित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो यथार्थवादी कहलाता है। विभिन्न राज्यों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के लिए पृथक विभागों की स्थापना की गई है। विकासशील देश तक इस दिशा में आगे बढ़ चुके हैं। उदाहरण के लिये भारत Indian School of International Studies इसको एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता दिलाने की ओर एक साहसिक कदम है।

1.8 नामकरण की समस्या

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विषय को व्यक्त करने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध , अन्तर्राष्ट्रीय मामले तथा विश्व राजनीति आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। बहुधा इन शब्दों का प्रयोग यर्थाथवादीरूप में किया जाता है जो कि गलत है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में काफी व्यापकता पाई जाती है। उसके अन्तर्गत राष्ट्रों के आर्थिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, कानूनी राजनीतिक खोज एवं अन्वेषण सम्बन्धी, और इसी प्रकार के सभी सम्बन्ध आ जाते हैं। इन

शब्दों से वास्तव में विविध राष्ट्रों के सम्पर्क सहयोग, क्रिया-प्रतिक्रिया का बोध होता है। यह शब्द अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी और निजी दोनों ही अन्तर्राष्ट्रीय क्रियाओं की विस्तृत विविधताओं की ओर संकेत करते हैं। इसके विपरीत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति शब्दावली मुख्यतः राज्यों के राजनीतिक संबंधों तक सीमित है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध से इस प्रकार से हम देखते हैं व्यापक सम्बन्धों को बोध होता है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से एक विशेष प्रकार का।

जान बर्टन का कहना है कि विश्व राजनीति के संबंध में हम जिन-जिन बातों का अध्ययन करते हैं उनके लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध सही शब्दावली नहीं है। बर्टन के अनुसार यह शब्दावली केवल राज्यों के राजनीतिक सम्बन्धों को बताती है। इस लेखक का यह विश्वास है कि ऐसे अनेक गैर सरकारी सम्बन्ध और ऐसी बहुत सी गैर सरकारी संस्थायें होती हैं जिनके विश्वव्यापी महत्व को नकारा नहीं जा सकता। बर्टन का यह कहना ठीक ही है कि संसार के लोगों की विभिन्न समस्याओं की गहन जानकारी के लिये विभिन्न देशों के लोगों के सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों प्रकार के संबंधों का अध्ययन आवश्यक है। पर बर्टन के इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और विश्व समाज के सूचक हैं।

इस सम्बन्ध में दो प्रमुख कठिनाइयां हैं-

1- विश्व समाज को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के पर्याय के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि विश्व समाज शब्दावली से किसी विषय के अध्ययन के क्षेत्र का पता लग सकता है पर उसे स्वयं कोई अध्ययन का विषय नहीं माना जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की शब्दावली स्वयं में एक अध्ययन विषय की द्योतक है।

2- आज की बदलती हुई परिस्थितियों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन क्षेत्र अत्यधिक व्यापक बनाने की जरूरत है। तथा आवश्यकता इस बात की है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उन तमाम बातों को शामिल करने का है जो हमारे परम्परागत अध्ययन में अब तक छूटी रही है।

1.9 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा राष्ट्रीय राजनीति

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में निषिद्ध विधियों की संख्या, राष्ट्रीय राजनीति में निषिद्ध विधियों के मुकाबले बहुत कम है। उदाहरण के लिए हिंसा धोखाधड़ी और भ्रष्टाचार पर राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में कानूनी रोक रहती है। पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कम से कम सिद्धान्त रूप में युद्ध की अनुमति उपलब्ध है। कुछ समय पहले तक युद्ध में किया जाने वाला ऐसा कोई काम निषिद्ध नहीं माना जाता था जिससे कि विजय प्राप्त होने की आशा हो। इसे युद्ध विधि में सैनिक आवश्यकता का सिद्धान्त कहते हैं। राष्ट्रीय कानून राष्ट्रीय राजनीति का आधार है और अन्तर्राष्ट्रीय कानून अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का। साधारण तथा राष्ट्रीय कानून अन्तर्राष्ट्रीय कानून से अधिक व्यापक है। इस प्रकार से राष्ट्रीय राजनीति में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की अपेक्षा अधिक व्यवस्था तथा नियमितता पाई जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय राजीनीति में प्रमुख उद्देश्य यह रहता है कि इसमें भाग लेने वाले समूहों का अस्तित्व बना रहे। प्रभुता सम्पन्न राज्य का अस्तित्व बनाये रखना अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का प्रमुख ध्येय है। किन्तु राष्ट्रीय राजनीति में किसी संप्रभुता सम्पन्न राज्य के अस्तित्व को कोई प्रत्यक्ष खतरा नहीं होता। अधिक से अधिक किसी ऐसे समूह के अस्तित्व को खतरा हो सकता है जिसके हाथों में किसी विशेष समय पर सत्ता की बागडोर हो।

इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की संचालन व्यवस्था राष्ट्रीय राजनीति की संचालन व्यवस्था से भिन्न है। राष्ट्रीय राजनीति को एक ऐसी शासन व्यवस्था के रूपमें देखा जाता है जिसमें शान्तिपूर्ण कानून निर्माण और प्रशासन होता हो, समय समय पर चुनाव होते हों और राज्य की सरकार में किसी न किसी प्रकार का स्थायित्व हो। इसके विपरीत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को विशेष रूप से युद्ध और युद्ध के खतरे की दृष्टि से देखा जाता है। परन्तु इन अन्तरों के बावजूद भी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कुछ समानता भी है। दोनों ही क्षेत्रों में शक्ति प्राप्त करने

के लिये प्रयत्न किये जाते हैं। देशों का आन्तरिक शक्ति संघर्ष कभी कभी गृह युद्ध को जन्म देता है। गृह युद्ध का संबंध राष्ट्रीय राजनीति से होता है औरे अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध का संबंध अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से होता है।

क्विंसी राइट का मत है कि प्रभुता संपन्न राज्यों के बीच की राजनीति को एक संकीर्ण अर्थ में ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कहा जा सकता है। राइट का यह भी मत है कि राष्ट्रीय प्रभुसत्ता समाप्त हो जाने पर ही हम सच्चे अर्थ में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की बात सोच सकते हैं परन्तु 1945 से आज तक की अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से स्पष्ट है कि संसार से राष्ट्रीय प्रभुसत्ता को लोप हुये बिना भी ऐसे समूह बन सकते हैं। उदाहरण के लिये सोवियत गुट, तथा एशियाई अफ्रीकी गुट।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को कुछ लोगों ने विश्व राजनीति की भी संज्ञा प्रदान की है। परन्तु विश्व राजनीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को एक नहीं समझाना चाहिए। सामान्य तथा विशेष दोनों ही अर्थों में क्षेत्रों में अंतर है। विश्व राज्य के अभ्युयदय के बाद ही विश्व राजनीति की कल्पना की जा सकती है। विश्व राज्य की स्थापना के बाद ही उसमें उस तरह की संस्थायें भी होंगी जैसी राष्ट्रीय राजनीति में होती है। 1945 तक केवल दो एक विश्व संस्थाओं का ही अस्तित्व था, उसके बाद बहुत सारी विश्व संस्थाओं का जन्म हो गया है और भविष्य में ऐसी बहुत सी संस्थाओं का बन जाने की सम्भावनायें है। संयुक्त राष्ट्र संघ का तथा दूसरे विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठन एक प्रकार की विश्व संस्थायें हैं। आजकल घरेलू राजनीति का दायरा पहले से बहुत विस्तृत हो गया है। आज बहुत सी अधि-राष्ट्रीय संस्थाओं का जन्म हो चुका है जैसे नाटो, अमेरिकी राज्यों का संगठन, अरब लीग, सोवियत गुट, ब्रिटिश राष्ट्र मंडल और पश्चिमी योरप के राज्यों की अनेक संस्थायें, इस प्रकार की अनेक अधिराष्ट्रीय संस्थाओं ने महत्वपूर्ण राष्ट्र समूहों का रूपले लिया है और वे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रक्रिया में सक्रिय भाग ले रही हैं। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति द्वारा घरेलू राजनीति के क्षेत्र का विस्तार किया जा रहा है। इसलिये अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और विश्व राजनीति में जो अन्तर है वह समझ लेना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति वर्तमान काल की घटना है और विश्व राजनीति भविष्य की।

1.Politics Among Nations का प्रकाशन किस सन में किया गया ?
2.Politics Among Nations के लेखक कौन है ?
3.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के यथार्थवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया ?
4.हैन्स मार्गेथाऊराष्ट्रों के मध्य शक्ति के लिये संघर्ष :, तथा उसका प्रयोग अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कहलाता है। सत्यअसत्य/
5.फेलिक्स ग्रासअन्तर्राष्ट्रीय राजनीति वास्तव में राष्ट्रों की विदेश नीति का अध्ययन ही है। : सत्यअसत्य/
6.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अर्थ पहले यूरोप की राजनीति से ही लिया जाता था असत्य/सत्य|

1.10 सारांश

मूल रूप से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति राष्ट्रों के मध्य सम्बन्धों का अध्ययन है। वैश्वीकरण के वर्तमान युग में यह हर राष्ट्र की मजबूरी है कि वह अन्य राष्ट्रों के सम्पर्क में आये। इसलिये प्रत्येक राष्ट्रीय कर्ता अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में अपनी भूमिका का निर्वाह करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में भूमिका निर्वाह के दौरान राष्ट्र का एक ही लक्ष्य होता है। पहले से पूरे हो रहे राष्ट्रीय हित में वृद्धि करना अथवा कम से कम उन्हें यथावत बरकरार रखना। अपने राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के निमित राष्ट्र बलकारी उपाय करने के लिए स्वतंत्र है। लेकिन राष्ट्र हित की सुरक्षा या उसमें अभिवृद्धि करने के लिए क्षमता चाहिए। यही क्षमता अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की शब्दावली में शक्ति कहलाती है। यह दूसरे को, उसकी इच्छा के विरूद्ध अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने हेतु बाध्य कर देने की क्षमता है। दूसरे शब्दों में शक्ति वह माध्यम है

जिसके द्वारा राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हित में अभिवृद्धि का प्रयास करते हैं। इस रूप में राष्ट्रीय हित और शक्ति में अटूट सम्बन्ध है। एक लक्ष्य है तो दूसरा माध्यम। विदेश नीति की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि अभीष्ट राष्ट्रीय हित और उपलब्ध शक्ति के मध्य समानुपातिक सम्बन्ध हो। मार्गेन्थाऊ ने लिखा भी है कि 'शक्ति के संदर्भ में राष्ट्रीय हित ही विदेश नीति है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राष्ट्रों द्वारा शक्ति अर्जित करने की प्रक्रिया का अध्ययन है। यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की अपेक्षा एक संकुचित अवधारणा है क्योंकि इसके अन्तर्गत राष्ट्रों के मात्र राजनीतिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। जबकि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अन्तर्गत राष्ट्रों के सभी प्रकार के सम्बन्धों - आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक का अध्ययन अभीष्ट होता है। चाहे तो हम ऐसे भी कह सकते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एक बड़ा वृत्त है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति उसके भीतर विद्यमान एक छोटा केन्द्रीय वृत्त है।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्रमशः लोकतंत्रीकरण होता गया है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में स्वतंत्र कर्ताओं (राज्यों) की संख्या निरंतर बढ़ती गई है। इससे अब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मात्र यूरोपीय राजनीति न रह कर सही अर्थों में अन्तर्राष्ट्रीय हो गयी।

परमाणु अस्त्रों के प्रसार ने भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को क्रमशः प्रभावित किया है। इन्होंने युद्ध के स्वरूप को ज्यादा तकनीकी और भयावह बना दिया है। लेकिन इससे शान्ति की संभावनाएं भी प्रबल हुई हैं। क्योंकि राष्ट्र अपने अस्तित्व के खतरे में डाल कर युद्ध के लिये नहीं तैयार होते।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्षेत्र उन सभी विषयों तक प्रसारित है जो राष्ट्रों के मध्य सम्बन्ध से किसी भी रूप और किसी भी मात्रा में सम्बन्धित हैं इसमें उस पूरे परिवेश का अध्ययन आ जाता है। जिससे राष्ट्र अपनी अन्तः क्रिया करते हैं इसके अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था, राष्ट्रों की शक्ति संरचना, राष्ट्रों की विदेश नीतियों आदि का अध्ययन अभीष्ट होता है।

1.11 शब्दावली

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति - राष्ट्रों के मध्य राजनीति

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध- इसमें काफी व्यापकता पाई जाती है। उसके अन्तर्गत राष्ट्रों के आर्थिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, कानूनी राजनीतिक खोज एवं अन्वेषण सम्बन्धी, और इसी प्रकार के सभी सम्बन्ध आ जाते हैं।

1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1947, 2. हैन्स मार्गेंथाऊ 3. हैन्स मार्गेंथाऊ ,4. सत्य ,5. सत्य, 6. सत्य

1.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Palmer and Perkins : International Relations
2. Coloumbis & Wolfe : International Relations – Power and Justice.
3. Prakash Chandra : International Policies
4. Mahendra Kumar : Theoretical Aspects of International Relations.

1.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.माँरगेन्थाऊ, हैन्स (1960), पॉलिटिक्स एमंग नेशन, मैकमिलन-हिल ह्यमेनिटीज।

2.कुमार, महेन्द्र (2013), अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक परिपेक्ष्य, शिवलाल अग्रवाल पब्लिकेशनस एण्ड कॉरपोरेशन।

3.फाड़िया, बी.एल. (2008) अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

4.खन्ना, बी.एन. (2003) अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि.

1.15 निबंधात्मक प्रश्न

1.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अर्थ समझाइये और इसके स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

2.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में क्या अंतर है? अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र की विवेचना कीजिये।

3.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप और क्षेत्र की चर्चा कीजिये।

इकाई-2 : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के उपागम-शास्त्रीय एवमं आधुनिक(यथार्थवादी व नवयथार्थवादी, आदर्शवादी)

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के उपागम
2.3.1 यथार्थवाद
2.3.1.1 मार्गेन्थाऊ का यथार्थवाद
2.3.1.2 मार्गेन्थाऊ के यथार्थवाद की प्रमुख सिद्धांत
2.3.1.3 मार्गेन्थाऊ के यथार्थवाद की समालोचना
2.3.1.4 मार्गेन्थाऊ के यथार्थवादी सिद्धान्त का महत्व
2.4 नव यथार्थवाद
2.5 आदर्शवाद
2.6 यथार्थवाद बनाम आदर्शवाद
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

जार्ज सिम्पसन के अनुसार ''उपागम का आशय उस मापदण्ड से है जिसका प्रयोग अनुसंधान के दौरान समस्या और आंकड़े के चयन के लिये किया जाता है। इसका सिद्धान्त से नजदीकी सम्बन्ध है। प्रत्येक विषय के अनेक उपागम होते हैं। या हो सकते हैं। शोधकर्ता सिद्धान्त निर्माण के लिए इन्हीं उपागमों का प्रयोग करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ में भी यही सही है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से अब तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के अनेक उपागम विकसित हो चुके हैं। बर्टन सैपिन के अनुसार अब तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के कुल 27 उपागम विकसित किये जा चुके हैं जबकि क्विन्सी राइट के अनुसार कुल उपागम 23 और पामर परकिन्स के अनुसार 7 हैं। इसके पूर्व के समयकाल में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक और संस्थात्मक उपागमों का प्रयोग किया जाता था।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के आदर्शवादी और यथार्थवादी उपागम पूर्ण उपागम माने जाते हैं क्योंकि वे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की व्याख्या उसकी समग्रता में करते हैं। जबकि दूसरे उपागम यथा निर्णय उपागम, खेल उपागम, सौदेबाजी उपागम आदि आंशिक उपागम माने जाते हैं।

आदर्शवादी उपागम 1920 और 1930 के दशक में विशेष चर्चित रहा। यह उपागम मनुष्य को एक विवेकशील और स्वाभाविक रूप से एक सामाजिक प्राणी मानता है। यह उपागम बल, संघर्ष और युद्ध का निषेध करता है। इसकी यह मान्यता है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को मजबूत करके एक शान्तिपूर्ण विश्व की स्थापना की जा सकती है।

इसके विपरीत यथार्थवाद ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को 'शक्ति के लिये संघर्ष' के रूप में परिभाषित किया। इस दृष्टिकोण में मनुष्य को स्वाभाव से स्वार्थी माना जाता है। राष्ट्रहित में अभिवृद्धि राष्ट्र का धर्म है, इसकी प्राप्ति के लिये शक्ति का अधिकतम संचयन राष्ट्र की आवश्यकता है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के समयकाल में वैज्ञानिकता के प्रभाव के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के लिये अनेक आधुनिक उपागम विकसित हुए। इन्हें सम्मिलित रूप से वैज्ञानिक या आधुनिक या व्यावहारवादी उपागम कहा जाता है। व्यवस्था उपागम निर्णय निर्माण उपागम, खेल उपागम तथा सौदेबाजी उपागम मुख्य रूप से इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

2.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य विद्यार्थियों को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के विभिन्न उपागमों और उनके संभावित लाभों और हानियों से अवगत कराना है ।

- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के विभिन्न उपागमों का विवेचन कर सकेंगे।
- विभिन्न उपागमों की दुर्बलताओं से अवगत हो सकेंगे।
- एक समन्वित उपागम से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन कर सकेंगे।

2.3 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के उपागम

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन में यथार्थवादी तथा आदर्शवादी दृष्टिकोण परस्पर विरोधी हैं । जार्ज कैनन तथा मार्गेन्थाऊ यथार्थवादी दृष्टिकोण के प्रवर्तक हैं। वालकिन्स, लासवेल तथा डेविड ईस्टन ने भी यथार्थवादी दृष्टिकोण का ही समर्थन किया है। वुडरो विल्सन तथा बर्ट्रेंड रसेल ने आदर्शवादी दृष्टिकोण का प्रतिपालन किया है।

2.3.1 यथार्थवाद

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में यथार्थवाद अनुमान और तर्क पर आधारित है। यह दृष्टिकोण सुरक्षा तथा शक्ति तत्वों पर विशेष बल देता है। इस प्रकार के विचार का आधार यह है कि व्यक्ति में ऐसा विश्वास होता है कि दूसरे लोग उसको नष्ट करने के चक्कर में रहते हैं। अतः अपनी सुरक्षा के लिये उसे दूसरों को मार डालने के लिये सजग तथा तत्पर रहना चाहिए। यथार्थवादी दृष्टिकोण यह मानकर चलता है कि विश्व के राष्ट्रों के बीच किसी न किसी रूप में संघर्ष तथा वैमनस्य बना रहता है, इस प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय समाज में शक्ति तथा प्रभाव की होड़ हमेशा बनी रहती है। कूटनीति तथा राजनय का प्रमुख कार्य यह है कि शक्ति प्रतिस्पर्धा पर किसी न किसी रूप में अंकुश लगाया जाय । शक्ति स्पर्धा पर लगाये जाने वाले अंकुश एक प्रकार का नया शक्ति संतुलन स्थापित करते हैं। यथार्थवाद शक्ति संघर्ष के स्थायित्व को स्वीकार करता है। इसका विश्वास है कि यह संसार परस्पर विरोधी हितों, और स्वार्थों का रंगमंच है जो आपस में टकराते रहते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न विरोधी स्वार्थों के बीच संतुलन स्थापित किया जाय, तथा संघर्ष को टालने का प्रयत्न किया जाय।

जार्ज केनन तथा हैन्स मार्गेन्थाऊ दोनों का ही यह दृढ़ विश्वास है कि किसी भी बुद्धिमत्तापूर्ण नीति का आधार राष्ट्रीय हित ही होना चाहिए। परन्तु जहाँ तक राष्ट्रीय हित, तथा नैतिक सिद्धान्तों के बीच सम्बन्ध की प्रवृत्ति का प्रश्न है, दोनो ही विचारकों के मत भिन्न हैं। जार्ज एफ. केनन के अनुसार हम केवल अपने ही हितों को जान और समझ सकते हैं। तथा कोई भी समाज दूसरों की घरेलू समस्याओं और आवश्यकताओं का निर्णायक नहीं हो सकता। अतः यह ठीक ही है कि एक ओर तो हम अपनी राष्ट्रीय हितों की आवश्यकताओं के अनुरूप अपनी विदेश नीति तथा वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन करें, तथा दूसरी ओर उन नैतिक तथा आदर्श सिद्धान्तों के अनुसरण की भी कोशिश करें जो हमारी सभ्यता में अन्तर्निहित हैं। पर इस प्रकार के नैतिक सिद्धान्त केवल हमारे अपने लिये ही वैध तथा मान्य हो सकते हैं, दूसरों के लिये नहीं। अतः हमको इन सिद्धान्तों को दूसरों पर थोपने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

जार्ज केनन के इन विचारों के विपरीत हैन्स मार्गेन्थाऊ ने राष्ट्रीय हित ही को सर्वोच्चता प्रदान की है तथा यह विचार व्यक्त किया है कि राष्ट्रीय हित नैतिकता के सिद्धान्तों से ऊपर है। मार्गेन्थाऊ के यथार्थवादी सिद्धान्त का विवेचन हम अलग से करेगे, यहाँ पर केवल इतना कहना ही काफी है कि यथार्थवादियों में इस बात पर मत की एकता नहीं है कि राष्ट्रीय हित को किस सीमा तक प्रमुखता दी जाय। इस बात पर कोई मतभेद नहीं है कि विदेश नीति और वैदेशिक सम्बन्धों का आधार राष्ट्रीय हित ही होना चाहिए न कि नैतिक सिद्धान्त।

2.3.1.1 मार्गेन्थाऊ का यथार्थवाद

मार्गेन्थाऊ का यथार्थवादी सिद्धान्त के प्रमुख प्रवक्ता हैं और उन्होंने यथार्थवाद को चिन्तर का एक पृथक तथा स्पष्ट स्वरूप प्रदान किया । वैसे तो यथार्थवाद पर अनेक लेखकों ने लिखा है जैसे कि जार्ज एफ. केनान परन्तु मार्गेन्थाऊ पहला विद्वान है जिसने एक यथार्थवादी प्रतिमान विकसित कियाहै इस क्षेत्र में मार्गेन्थाऊ के योगदान के कारण यथार्थवाद तथा मार्गेन्थाऊवाद के विद्वान पर्यायवाची मानने लगे हैं।

2.3.1.2 मार्गेन्थाऊ के यथार्थवाद की प्रमुख सिद्धांत

प्रथम सिद्धांत

मार्गेन्थाऊ के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मूल आधार राष्ट्र हित है जिसे केवल शक्ति के संघर्ष में देखा जा सकता है। यह दृष्टिकोण उन इकाइयों (अर्थात राज्यों) पर विशेष ध्यान देता है जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रमुख कार्यकर्ता हैं । इस दृष्टिकोण को यथार्थवादी इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें राष्ट्रहित की महत्ता पर विशेष बल दिया जाता है। यह दृष्टिकोण यह मानकर चलता है कि शक्ति के द्वारा ही राष्ट्रीय हितों को बढ़ायाजा सकता है। जिस सीमा तक इसमें शक्ति पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है उस सीमा तक इसे शक्तिवादी दृष्टिकोण भी कहा जा

सकता है। मार्गेन्थाऊ ने स्पष्ट किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अन्य सभी राजनीतियो की तरह शक्ति के लिए संघर्ष है और यदि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अंतिम उद्देश्य कुछ भी हो इसका तात्कालिक लक्ष्य शक्ति प्राप्त करना ही होता है शक्ति के महत्व पर जोर डालते हुए मागेन्थो कहता है कि शक्ति का अर्थ है ‘‘मनुष्यों का अन्य मनुष्यों के मष्तिस्क, और क्रिया कलापों पर नियंत्रण’ ’ । मागेन्थों से पहले भी तथा बाद में भी कई लेखकों ने शक्ति के इस दृष्टिकोण पर बल दिया है। 19वीं शताब्दी में ट्रीट्स्के तथा नीटशे ने शक्ति के विचार तथा शक्ति प्राप्त करने की आकांक्षा का अनुमोदन किया। प्रथम विश्व युद्ध से पहले एरिख काफमैन ने लिखा कि शक्ति के विकास संवर्द्धन और प्रदर्शन में ही राज्य का सार है । फ्रेडरिक वाटकिन्स, हेराल्ड लासवेल, डेविड ईस्टन आदि विद्वानों ने राजनीति के अध्ययन में यथार्थवादी विचारधारा के विभिन्न पहलुओं पर जोर दिया है । इन सभी ने शक्ति राजनीति पर बल दिया है । डेविड ईस्टन का कहना है कि राजनीति विज्ञान शक्ति के प्रयोग, और वितरण से प्रभावित होता है। मार्गेन्थाऊ की तरह ही ई. एच. कर, क्विंसी राइट, जार्ज सेवारजेनबर्गर, मार्टिन राइट, आदि आधुनिक विचारक भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में राजनीति विज्ञान की शक्ति सम्बन्धी अवधारणा के विस्तार के समर्थक हैं। पर इन सब से कहीं अधिक कार्य मार्गेन्थाऊ ने किया है। उसने शक्ति के दृष्टिकोण से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों अथवा राजनीति पर सबसे अधिक व्यवस्थित कार्य किया है। अन्य विद्वानों ने मार्गेन्थाऊ द्वारा स्थापित परम्परा को ही आगे बढ़ाया है । पालिटिक्स अमंग नेशन्स में मार्गेन्थाऊ कहता है कि उनका सिद्धान्त यथार्थवादी इसलिये है क्योंकि यह मानव स्वभाव को उसके वास्तविक अथवा यथार्थ रूपमें देखता है।

मार्गेन्थाऊ ने अपने राजनीतिक दर्शन में छः मेल तत्व बताये हैं इन्हीं छः तत्वों में उनके यथार्थवादी सिद्धान्त का सार अर्न्तनिहित है। पहला तत्व यह है कि राजनीति पर प्रभाव डालने वाले सभी नियमों की जड़ मानव प्रवृत्ति में होती है। मनुष्य जिन नियमों के अनुसार संसार में क्रिया कलाप करता है वे सार्वभौम हैं और यह नियम हमारी नैतिक मान्यताओं से हमेशा अछूते रहते हैं समाज को सुधारने के लिये यह जरूरी है कि पहले उन निमों को समझ लिया जाए जो समाज के जीवन धारा हैं । मार्गेन्थाऊ का कहना है कि विदेश नीति का मूल्यांकन राजनीतिक गतिविधियों, और उनके सम्भावित परिणामों की परीक्षा करने के बाद ही हो सकता है। किसी देश की विदेश नीति को समझने के लिए यह जरूरी है कि पहले हम उस देश के राजनीतिक नतेताओं के विभिन्न कार्यों पर दृष्टि डालें, और फिर तर्क के आधार पर देखें कि उन राजनेताओं के उद्देश्य क्या रहे होंगे ।

दूसरा सिद्धांत

मार्गेन्थाऊ के राजनीतिक दर्शन का **दूसरा प्रधान** तथ्य राष्ट्रहित की प्रमुखता है। मार्गेन्थाऊ ने राष्ट्रहित को शक्ति की संज्ञा दी है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का यथर्थवादी सिद्धान्त इस बात की परवाह नहीं करता कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में क्या होना चाहिए, और क्या हो रहा है। अथवा उसमें क्या नैतिक है और क्या अनैतिक । इसका संबंध तो केवल उन सम्भावनाओं से है जो किसी विशेष सतह के काल की किन्हीं क्षेत्र परिस्थितियों के अन्तर्गत आती हैं। अतः विदेश नीति का सम्बन्ध उसकी सफलता की राजनीतिक आवश्यकताओं से होना चाहिए। इस प्रकार से हम देखते हैं कि राजनीतिक यथार्थवाद की दूसरी प्रमुख मान्यता है शक्ति के रूप में परिमापित हित की अवधारणा सरल शब्दों में इसका अर्थ है राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने के लिये शक्ति का प्रयोग । राष्ट्रीय हित का केन्द्र बिन्दु सुरक्षा है। और सुरक्षा के लिये शक्ति अर्जित की जाती है। दूसरे शब्दों में हित की कल्पना शक्ति विहीन सन्दर्भ में नहीं की जा सकती । राजनीति का मुख्य आधार हित और उनकी सुरक्षा है - यही कारण है कि राजनीति को हम शक्ति से अलग रखकर नहीं समझ सकते । तात्पर्य यह है कि शक्ति राजनीति का केन्द्र बिन्दु है । मार्गेथाऊ की मान्यता है कि विदेश नीति के निर्माता शक्ति को आधार मानकर ही नीतियों की रचना करते हैं, और इतिहास की इस बात की पुष्टि करता है।

मार्गेन्थाऊ का कहना है कि प्रत्येक राजनीतिज्ञ ''शक्ति के रूप में परिमार्जित हित की दिशा में ही सोचता है। और कार्य करता है। राजनीतिज्ञ का उद्देश्य अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त करना होता है। शक्ति के रूप में परिमाणित हित के आधार पर ही हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को सैद्धान्तिक रूप प्रदान कर सकते हैं। यही एक ऐसा विचार है जिसके आधार पर राष्ट्रों की विदेश नीतियों में निरंतरता का आभास मिलता है यदि इनका निर्माण करने वाले समय समय पर बदलते रहे हों, और उनके बौद्धिक स्तर, उद्देश्य, नैतिक गुण आदि भिन्न भिन्न रहे हों। इस दृष्टि से यथार्थवादी सिद्धान्त अपने आप को दो भ्रान्तियों से बचाना चाहता है 1- मनतवयों से संबंधित भ्रान्ति से 2- वैचारिक वरीयताओं से संबंधित भ्रान्तियों से । यदि हम राजनीतिज्ञों के मनतवयों को देखकर ही किसी देश की विदेश नीति को समझने का प्रयास करेंगे तो असफल होंगे तथा धोखा खा जाएंगे। मार्गेंथाऊ का कहना है कि राजनीतिज्ञों के वास्तविक प्रयोजनों के आधार पर हम यह फैसला नहीं कर सकते कि उनकी विदेश नीतियां नैतिक दृष्टि से सराहनीय, तथा राजनीतिक दृष्टि से सफल रहेंगी । विश्व शान्ति और भ्रातृत्व की भावना का उल्लेख लेकर चलने वाली नेहरूवादी विदेश नीति की आलोचना इस आधार पर की गई । वह गैर यथार्थवादी थी। चेम्बरलेन की तुष्टीकरण की विदेश नीति का उद्देश्य संसार में शान्ति स्थापित करना था, किन्तु वही नीति द्वितीय विश्व युद्ध काएक प्रमुख कारण बनी । दूसरी ओर विन्सटन चर्चिल की विदेश नीति का प्रयोजन संकीर्ण स्वार्थ था लेकिन उसके परिणाम राजनीतिक दृष्टि से अधिक उच्चतर माने गए। कहने का तात्पर्य यह है कि यथार्थवादी दृष्टिकोण किसी कार्य का नैतिक तथा राजनीतिक स्तर उसके प्रयाजनों से नहीं बल्कि उसके परिणामों से देखता है । आज के अन्तर्राष्ट्रीय जगत में यह एक सामान्य सी परम्परा बन गई है कि प्रत्येक देश अपनी विदेश नीति को सैद्धान्तिक आवरण पहनाकर आकर्षक बना देता हैं ताकि युवा जनमत उसकी ओर खिंचता चला जाए।

तीसरा सिद्धान्त -

मार्गेन्थाऊ के अनुसार राष्ट्रहित का कोई निश्चित या निर्धारित अर्थ नहीं है। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के मूल तत्व शाश्वत है। परन्तु परिस्थितियों में कुछ मामूली परिवर्तन होते रहते हैं । अतः एक राजनेता के लिये यह आवश्यक है कि वह मूल तत्वों को बदलती हुई परिस्थिति के अनुसार ढालने का लगातार प्रयत्न करता रहे । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शक्ति सिद्धान्त को लागू करते समय उसमें कुछ परिवर्तन करना कभी कभी जरूरी हो जाता है। शक्ति सिद्धान्त लागू करते समय हम शक्ति की सीमाओं को भी ध्यान में रखें ।

मार्गेथाऊ के अनुसार हित दो प्रकार के होते हैं। 1- अन्तर्राष्ट्रीय तथा परिवर्तनशील । राजनीति का गूढ़ तत्व सुरक्षा में निहित है जिसके बगैर किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र का अस्तित्व नहीं रहा सकता । सुरक्षा किसी भी राष्ट्र का न्यूनतम कार्य है। यह सुरक्षा ही कभी न बदलने वाला हित है। यथार्थवाद जैसा कि हमने देखा इस तथ्य से इंकार नहीं करता कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन आते हैं । वास्तव में यथार्थवादी सिद्धान्त तथा परिवर्तन में कोई विरोधाभास नहीं है। राजनीतिक यथार्थवाद केवल इस बात पर बल देता है कि परिवर्तन लाने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि हम राजनीति के गूढत्र तत्व को ही तिलांजलि दे दें।

चौथा सिद्धान्त -

राजनीतिक यथार्थवाद यह स्वीकार करता है कि राजनीतिक कार्यों का नैतिक महत्व भी है। साथ ही साथ यह बात भी मानकर चलता है कि नैतिक मापदंड, तथा राजनीतिक कार्यो के बीच तनाव की स्थिति रहती है, परन्तु हमको यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि सम्पूर्ण नैतिक सिद्धान्त राज्य के कार्यों पर लागू नहीं किए जा सकते। उनका आकलन समय की ठोस कसौटी पर किया जाना चाहिए, और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर नैतिक सिद्धान्तों का चयन किया जाना चाहिये। राजनीतिक यथार्थवाद की यह मान्यता है कि राष्ट्रों को नैतिक सिद्धान्तों का पालन विवेक और सम्भावित परिणामों के आधार पर ही करना चाहिए। विवेक के बगैर राजनीतिक नैतिकता के कोई

माने नहीं होते। एक व्यक्ति तो नैतिक सिद्धान्तों के लिए सब कुछ छोड़ सकता है, पर यह बात राज्य पर लागू नहीं होती । कोई भी देश नैतिकता की दुहाई देकर अपनी सुरक्षा खतरे में नहीं डाल सकता । इस प्रकार से हम देखते हैं कि राजनीतिक यथार्थवाद नैतिकता के प्रति उदासीन नहीं है, पर वह यह मानता है कि काल की परिस्थितियों के अनुसार नैतिक सिद्धान्तों में आवश्यक संशोधन कर लेने चाहिए। साथ ही साथ यथार्थवाद विवेक को राजनीति में उच्चतम मूल्य मानता है।

पॉचवां सिद्धान्त -

राजनीतिकि यथार्थवाद का पांचवां सिद्धान्त यह है कि राष्ट्र के नैतिक मूल्यों तथा सार्वभौम नैतिक मूल्यों कोएक नहीं समझना चाहिए। यह दोनो एक दूसरे से पृथक हैं। किसी सार्वभौम नैतिक कानून का पालन किसी देश विदेश के लिये निश्चित रूप से लाभदायक नहीं है। यह भी संभव है कि उनके पालन से भयंकर परिणाम उत्पन्न हो जाएं। नैतिक सिद्धान्तों की रक्षा के लिऐ अपने देश के हितों को बलिदान करने वाला व्यक्ति राजनीतिक दृष्टि से बुद्धिमान नहीं समझा जाता । पर दूसरी ओर राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नैतिकता का सर्वथा परित्याग भी इतिहासकारों की आलोचना का विषय बनता है । यह दोनों भ्रान्तियां है। और इनसे बचने का उपाय यह है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने शक्ति के रूपमें परिभाषित राष्ट्रीय हित की दिशा में कदम उठाए।

मार्गेंथाऊ अपने पांचवें सिद्धान्त के अन्तर्गत राजनीतिज्ञों को चेतावनी देता है कि वे राष्ट्रों के द्वारा दी जाने वाली नैतिकता की दुहाई से अनावश्यक रूप से प्रभावित न हों। प्रत्येक राष्ट्र अपने कार्यों के समर्थन में नैतिकता की दुहाई अवश्य देता है। परन्तु वास्तव में वह अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये कार्य करता है और उसके उद्देश्य अपने हितों की सुरक्षा होती है। इतिहास साक्षी है कि नैतिकता की दुहाई देते हुये कई राज्यों ने दूसरे राज्यों को नष्ट कर दिया । व्हाइटमैन बर्डेन के सिद्धान्त के आधार पर एशिया तथा अफ्रीका के निवासियों को सिविलाइज बनाने की आड़ में साम्राज्यवाद का विस्तार किया गया।

राष्ट्र की सहायता करने तथा उसके विकास में मदद देने में भी एक राष्ट्र अपने ही हितों की रक्षा करता है। उदाहरण के लिए यू.एस.ए. यदि दूसरे राष्ट्रों को आर्थिक या नैतिक सहायता देता है तो ऐसा करने से वह अपने ही हितों की रक्षा करता है - Containment of communism साम्यवाद के बढ़ावा को रोकना। यू.एस.ए. 1953 के बाद से लगभग बराबर पाकिस्तान को सैनिक मदद दे रहा है और बदले में वहॉं पर उसके सैनिक सुविधायें प्राप्त की तथा साथ ही साथ उसके हथियारों की जो कि आये दिन बेकार होते रहते हैं उनकी भी खपत होती रहती है। भारत के द्वारा नेपाल व भूटान को भारी आर्थिक सहायतादेने के पीछे भी यही उद्देश्य है - इन देशों को चीन के पूर्ण प्रभाव में जाने से रोकना ।

मार्गेंथाऊ का कहना है कि यदि प्रत्येक राष्ट्र एक ही लक्ष्य की सिद्धि के लिये प्रयत्नशील हैं तो यह संभव है कि सभी राष्ट्र इस आधार पर संतुलित संबंध स्थापित कर लें । और यदि ऐसा हो जाता है तो यह विश्व शांति का प्रबल आधार बन जाएगा। मार्गेंथाऊ कहता है कि राष्ट्रों के द्वारा पारस्परिक सूझ बूझ के आधार पर संतुलन स्थापित कर लेना आज के युग की सबसे बड़ी नैतिकता है और यह नैतिकता वांछनीय भी है।

छठा सिद्धान्त -

यथार्थवाद के अपने इस छठे सिद्धान्त में मार्गेन्थाऊ ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को एक स्वतंत्र विषय मानने की बात कही है।वह राजनीति के क्षेत्र की स्वायत्तता में विश्वास करता है। यथार्थवाद गैर राजनीतिक विषयों से अनभिज्ञ नहीं है। पर वह उन्हें राजनीतिक नियमों के अधीन मानता है । यथार्थवाद उन सभी विचारधाराओं का विरोध करता है जो राजनीतिक विषयों पर गैर राजनीतिक नियमों को जबरदस्ती थोपने का प्रयत्न करती हैं। मार्गेन्थाऊ का कहना है कि बौद्धिक रूप से राजनीतिक क्षेत्र उसी प्रकार से एक स्वतंत्र क्षेत्र हैं जिस प्रकार अर्थशास्त्र अथवा समाजशास्त्र हैं।

यथार्थवाद मानव प्रवृत्ति के बहुल स्वरूपपर आधारित हैं । एक यथार्थवादी व्यक्ति, आर्थिक मानव, राजनीतिक मानव, नैतिक मानव, धार्मिक मानव, आदि का मिला जुला स्वरूप हैं। किन्तु यदि हम इनमें से किसी एक स्वरूप का गहन अध्ययन करना चाहते हैं तो उसको अन्य स्वरूपों से अलग रखकर ही ऐसा कर सकते हैं तभी यह अध्ययन सुव्यवस्थित होगा। राजनीतिक अध्ययन में मानव प्रवृत्ति के अन्य स्वरूपों का स्थान गौड़ है और यही कारण है कि राजनीतिक यथार्थवाद में राजनीति की स्वतंत्रता में बहुत अधिक बल दिया जाता है। राजनीति के विभिन्न स्वरूपों में अ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति भी एक है। अतः यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का सुव्यवस्थित, तथा गहन अध्ययन करना चाहते हैं तो उसे अन्य राजनीतिक प्रभावों जैसे आन्तरिक राजनीति आदि से यथासंभव स्वतंत्र रखना होगा । स्पष्ट है कि अन्तर्राज्य का भी अपना स्वतंत्र स्वरूप है। यथार्थवादी दृष्टिकोण की तीन मूलभूत मान्यतायें हैं । पहली यह कि प्रत्येक देश के राजनेता हमेशा अपने राष्ट्र के हित की सिद्धि के लिये प्रयत्न करते रहते हैं । दूसरी मान्यता यह है प्रत्येक राष्ट्र का हित उसके भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विस्तार में ही निहित है। तीसरी धारणा यह है कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी शक्ति और प्रभाव का उपयोग अपने हितों की रक्षा के लिये करता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि यथार्थवादी दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक राज्य की विदेश नीति पूरी तरह से शक्ति पर निर्भर है। और यदि हम यह मानते हैं कि शक्ति भी एक प्रकार का प्रभाव है तो यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक राज्य की विदेश नीति प्रभाव पर आधारित है। इस प्रकार से शक्ति के दृष्टिकोण को प्रभाव का दृष्टिकोण भी कहा गया है। इस प्रकार से शक्ति,प्रभाव व यथार्थवादी दृष्टिकोण एक हैं ।

मार्गेन्थाऊ का कहना है कि राजनीति का स्वरूपमानव प्रवृत्ति पर आधारित होता है इस प्रकार से विश्व मानव प्रवृत्ति का ही प्रतिबिम्ब है । मार्गेन्थाऊ के अनुसार विश्व एक ऐसा स्थल है जहॉं अच्छाई और बुराई, तर्क और भावना, जीवन और मृत्यु, स्वास्थ्य और रोग, तथा शान्ति और युद्ध के बीच में लगातार संघर्ष चला करता है । इस संघर्ष में हमारे विरोधियों की विजय होने की सम्भावना हमेशा बनी रहती है। यह संसार विरोधी हितों, और उनके बीच होने वाले निरंतर संघर्ष का रणक्षेत्र है। मार्गेन्थाऊ का कहना है कि जब कभी हम अपने भाई बन्धुओं को ध्यान में रखकर काम करते हैं तो हम निश्चित रूपसे कोई न कोई पाप करते है। अतः मार्गेन्थाऊ का विचार है कि संघर्ष और पाप का मूल श्रोत मानव प्रकृति के दो लक्षणों में पाया जाता है। यह दो लक्षण हैं स्वार्थपरता तथा प्रभुत्व की लालसा। जब हम कोई वस्तु प्राप्त करना चाहते हैं तो उसको प्राप्त करने के मार्ग में बहुत सी बाधायें आती हैं क्योंकि दूसरे लोग भी वही वस्तु प्राप्त करना चाहते हैं परिणाम यह होता है कि एक ही वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों में संघर्ष आरम्भ हो जाता है। और हमारी स्वार्थपरता हमें आपसी प्रतियोगिता की ओर ले जाती है ।

परन्तु स्वार्थपरता की भी सीमायें होती है। मार्गेन्थाऊ कहता है कि स्वार्थपरता की मांगों को काफी हद तक पूरा भी किया जा सकता है। इसलिये मार्गेन्थाऊ कहता है कि मनुष्य का मनुष्य के प्रति जो युद्ध भाव है उसका कारण केवल स्वार्थपरक ही नहीं है पर प्रभुत्व की लालसा भी है जो कि मानव प्रकृति का दूसरा प्रमुख लक्षण है । मानव समाज के इन दो लक्षणों (स्वार्थपरता तथा प्रभुत्व की लालसा) में अन्तर है। स्वार्थपरता सीमित है जबकि प्रभुत्व की लालसा असीमित है । इस लालसा को स्वार्थपरता की तरह न तो संतुष्ट किया जा सकता है और न ही इसे सीमा बद्ध किया जा सकता है। प्रभुत्व की लालसा के संबंध में मार्गेन्थाऊ के विचार हाब्स से मिलते जुलते हैं। मार्गेन्थाऊ का कहना है कि मनुष्य की प्रभुत्व की लालसा तभी पूरी तरह से संतुष्ट होगी जब संसार का प्रत्येक अन्य मनुष्य उसके आधिपत्य में आ जायेगा। जबकि हाब्स ने कहा था कि अगर मनुष्य के पक्ष में हो तो वह यह चाहेगा कि सारी दुनिया उससे डरे और उसकी आज्ञा का पालन करती रहे । मार्गेन्थाऊ का कहना है कि प्रभुत्व की लालसा ही हर प्रकार की राजनीति का सार है।

मार्गेन्थाऊ का यह भी कहना है कि शक्ति ही वह वस्तु है जिसके द्वारा मनुष्य दूसरे मनुष्यों पर प्रभुत्व स्थापित करता है। साथ ही साथ वह यह भी कहता है कि जो लोग शक्ति का प्रयोग करते हैं, तथा जिन पर शक्ति का प्रयोग किया जाता है उनके बीच शक्ति से एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक संबंधत स्थापित हो जाता है शक्ति का तात्पर्य है राजनीतिक शक्ति अर्थात अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति । शक्ति की इस परिभाषा के आधार पर मार्गेन्थाऊ ने शक्ति और हिंसा या बल प्रयोग में भी किया है। कम से कम सैद्धान्तिक स्तर पर शक्ति अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के साधन भीहैं और साध्य भी है। साधन इसलिये है क्योंकि शक्ति से राष्ट्र हित की पूर्ति होती है और साध्य इसलिये कि शक्ति का आधिपत्य बना रहना राष्ट्रहित के सुगम सिद्धि के लिए आवश्यक है। मार्गेन्थाऊ कहता है कि किसी राज्य के हित न तो निश्चित होते हैं और न ही सीमित । वे हमेशा फेलते ही जाते हैं अतः राष्ट्रहित के फेलाव के साथ मार्गेन्थाऊ कहता है कि श्ज्ञक्ति का फेलाव भी अपेक्षित है।

मार्गेन्थाऊ के अनुसार शक्ति का सिद्धान्त राजनीति के राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से लागू होता है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र एक दूसरे से भिन्न नहीं थे। कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति सामान्यराजनीति का एक विशिष्ट पहलू है। मार्गेन्थाऊ यह मानता है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की परिस्थितियां घरेलू राजनीति की परिस्थितियों से भिन्न हैं । मार्गेन्थाऊ यह भी कहता है कि परिवर्तन तो अन्तर्राष्ट्रीय तथा घरेलू दोनों ही प्रकार की राजनीति में होते हैं, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों में हिंसा का प्रयोग बहुत अधिक होता है। कारण यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ऐसी कोई केन्द्रीय सत्ता नहीं है जो कि विभिन्न राष्ट्रों के शक्ति संघर्ष को नियंत्रित करने का प्रयास करने लगता है । अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का वही सिद्धान्त ठोस माना जा सकता है जिसमें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर को ध्यान में रखा गया है।

मार्गेन्थाऊ कहता है कि विभिन्न राज्यों की सहज प्रवृत्ति अधिक से अधिक क्षति अर्जित करने की होती है। शक्ति केवल दूसरों पर आधिपत्य या प्रमाण ही स्थापित नहीं करती बल्कि विभिन्न राज्यों की विदेशनीति की प्रवृत्ति भी निर्धारित करती है। राजनेताओं के प्रत्येक कार्य का प्रयोजन शक्ति बनाये रखना, उसे बढ़ाना या उसका प्रदर्शन करना है। मार्गेन्थाऊ का मत है कि जिन राज्यों की शक्ति सीमित है और किन्हीं मजबूरियों के कारण अपनी शक्ति का विस्तार नहीं कर सकते तो वे अपनी शक्ति को वर्तमान स्तर पर बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं । उनका मुख्य उद्देश्य केवल वर्तमान के हितों की रक्षा करना होता है। ऐसे राज्य यथास्थिति वाली नीति का अनुसरण करते है। इसके विपरीत ऐसे राज्य जिनके पास शक्ति की अधिकता है वह प्रत्येक क्षेत्र में अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास करते हैं ऐसे राज्यों की नीति परिवर्तनवादी होती है । इस प्रकार से मार्गेन्थाऊ कहता है कि विभिन्न राज्य दो श्रेणियों में बॉटे जा सकते हैं | जब कभी रिवीजनिस्ट राज्य की श्क्ति विस्तार की लालसा अपनी चरम सीमा पर पहुच जाती है तो वह दूसरों का शोषण करने लगता है और उस राज्य की नीति साम्राज्यवादी हो जाती है। यथास्थितिवादी राज्य प्रयत्न करते हैं कि मौजूदा शक्ति संतुलन में कोई परिवर्तन नहो और इस संतुलन में जो उनकी स्थिति हैं वह बराबर बनी रहे। परन्तु परिवर्तनवादी राज्य मौजूदा शक्ति को उलटकर और अधिक शक्ति प्राप्त करने के लिए तत्पर रहते हैं।

जैसा कि हम देख चुके हैं कि मार्गेन्थाऊशक्ति को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र मानता है। वह शक्ति को राष्ट्रहित का प्रतिबिम्ब समझता है, और यही कारण है कि प्रत्येक राज्य को अपने राष्ट्रहित का परिपोषण तथा संरक्षण करना चाहिए। किसी देश की विदेश नीति तभी सफल हो सकती है जबकि वह शक्ति अर्थात राष्ट्रहित पर आधारित हो। परन्तु राष्ट्रहित है क्या? इस प्रश्न पर हम लोग अलग से विचार करेंगे । यहॉं पर हम केवल मार्गेन्थाऊ के विचारों को जान लें । मार्गेन्थाऊने राष्ट्रहित की कोई स्पष्ट परिभाषा न देते हुए केवल इतना कहा है कि राष्ट्रहित का अर्थ काफी व्यापक है, और उसका स्वरूप उन बहुत से सांस्कृतिक तत्वों पर निर्भर है जिनके अन्तर्गत किसी

राज्य की विदेश नीति निर्धारित की जाती है। मार्गेन्थाऊके अनुसार राष्ट्रहित के दो प्रमुख पक्ष हैं 1- स्थिर, स्थायी अथवा आवश्यक 2- अस्थिर अथवा अस्थायी। स्थिर पक्ष वह है जो प्रत्येक देश के लिए समान रूपसे महत्वपूर्ण हैं अस्थिर पक्ष का स्वरूप देश की बदलती हुयी परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है। राष्ट्रहित की न्यूनतम आवश्यकता राष्ट्र की अस्तित्व की रक्षा होती है। अस्तित्व रक्षा राष्ट्र हित का स्थिर प्क्ष होता है परन्तु अस्थायी प्क्ष का स्वरूप स्पष्ट रूप से पहचानना कठिन है। राष्ट्रहित के आवश्यक तत्व की निरन्तरता दो बातों से उत्पन्न होती है। 1- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में प्रत्येक राष्ट्र के अस्तित्व को हमेशा खतरा रहता है 2- अस्तित्वरक्षा के लिये शक्ति ही एकमात्र साधन है।

मार्गेन्थाऊका कहना है कि राष्ट्रहित के अस्थिर पक्ष का सही रूपपहचानना काफी कठिन है क्योंकि यह अक्सर कई प्रकार के बाहरी आवरणों के भीतर दब जाता है। इस सम्बन्ध में मार्गेन्थाऊकुछ विशेष आवरणों का उल्लेख करता है। पहला आवरण किसी देश के उन अन्दरूनी गुटों के कारण होता है जो अपने निजी संकीर्ण हितों को राष्ट्रहित की संज्ञा देते हैं। राजकीय सत्ता प्राप्त करने पर यह गुट अपने निजी हतहों को ही राष्ट्र हित कहकर जनता के सामने पेश करते हैं। कभी कभी सत्ता से बाहर रह कर भी यह गुट देश की विदेश नीति को प्रभावित करते हैं। दूसरा आवरण विदेशी हस्तक्षेप के कारण पैदा होता है। यह हस्तक्षेप प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का हो सकता है। इस हस्तक्षेप का प्रभाव यह पड़ता है कि नीति निर्माता किसी अन्य देश के दबाव में आकर अपने देश का राष्ट्रीय हित निर्धारित करते हैं। कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीयता की बढ़ती हुई भावना के कारण भी राष्ट्रहित का सही स्वरूप छिप जाता है। इस भावना का ही परिणाम है कि आज कल विभिन्न देशों के अलग अलग राष्ट्रहित को सम्पूर्ण विश्व के हितों में मिला देने की आवाज उठने लगी है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि राष्ट्रहित का सही रूप तीन प्रकार के अवस्थाओं में छिप जाता है। पहला आवरण उपराष्ट्रीय है दूसरा अन्य राष्ट्रीय और तीसरा अन्तर्राष्ट्रीय। मार्गेन्थाऊका कहना है कि राजनेताओं का यह पहला कर्तव्य है कि राष्ट्रहित को इन तीनों आवरणों के अवांछनीय प्रभाव से बचायें। इसके बाद उन्हें यह तय कर लेना चाहिए कि देश के विभिन्न लक्ष्यों में कौन से प्राथमिक हैं तथा कौन से गौड़। साथ ही यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी भी देश के पास अपने सभी लक्ष्यों की पूर्ति के लिये पर्याप्त साधन नहीं होते अतः उन्हें अपने उपलब्ध साधनों का प्रयोग विवेकपूर्वक इस प्रकार से करना चाहिए कि प्राथमिक हितों की अधिक पूर्ति हो सके। परन्तु यह तभीहो सकता है जबकि राजनेताओं को राष्ट्रहित के स्थिर एवं अस्थिर तत्वों के भेद का पूरा ज्ञान हो। इसलिए मार्गेन्थाऊराष्ट्रहित के दोनों तत्वों के बीच संतुलन बनाये रखने की आवश्यकता पर जोर देता है।

राष्ट्रहित संबंधी अपने विचारों को मार्गेन्थाऊ अनैतिक नहीं मानता। उसका यह विश्वास है कि संसार में रहकर पाप और बुराई से बिलकुल बचे रहना संभव नहीं है अधिक से अधिक हम इस बात की कोशिश कर सकते हैं कि अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिये ऐसा रास्ता अपनाएं जिमें पाप और बुराई कातत्व कम से कम हो। मार्गेन्थाऊकी यह धारणा है कि राजनीति में यह निश्चित कर पाना काफी कठिन है। कि कौन से कार्य पूरी तरह से नैतिक हैं और कौन से पूरी तरह से अनैतिक। इसके अर्थ यह नहीं हैं कि राजनीतिक कार्य का कोई नैतिक उद्देश्य नहीं होता। वास्तव में शक्ति के माध्यम से अपने मूल्यों को साकार करना हमारे राजनीतिक कार्यो का उद्देश्य है। अतः राष्ट्रहित कापालन करना नीति निर्धारकों का नैतिक धर्म है। मार्गेन्थाऊका कहना है कि जब तक संसार में के सिद्धान्त को बोलबाला है और जब तक विभिन्न देशो के पारस्परिक सम्बन्धों को नियमित करने के लिये किसी केन्द्रीय सत्ता की नहीं होती तब तक प्रत्येक राज्य को अपने अस्तित्व सत्ता के लिये अपने निजी प्रयासों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। अतः मार्गेन्थाऊ कहता है कि शक्ति के द्वारा राष्ट्रहित की पूर्ति के लिये प्रयत्न करना नैतिकता की सबसे बड़ी मांग है।

इस प्रकार से मार्गेन्थाऊनैतिकता की अपनी अलग से परिभाषा दी है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रहित को सबसे ऊँचा स्थान प्राप्त है । मार्गेन्थाऊका कहना है कि राजनेताओं को अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं तथा सार्वभौमिक नैतिक सिद्धान्तों की अपेक्षा राष्ट्रहित की सुरक्षा पर अधिक ध्यान देना चाहिए । मार्गेन्थाऊनैतिकता तथा अनैतिकता के बीच विवाद को बेकार मानता है। मार्गेन्थाऊ का नैतिकता संबंधी दृष्टिकोण यह है कि राष्ट्रहित की सुरक्षा करना राजनेताओं का सबसे बड़ा नैतिक धर्म है। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि प्रत्येक देश इस धर्म को निर्वाहने काप्रयत्न करेगा तो विभिन्न देशों के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होना अवश्यम्भावी हैं और यदि इस संघर्ष पर किसी तरह का कोई नियंत्रण नहीं किया जाता है तो युद्ध का संकट बना रहेगा । ऐसी स्थिति में मार्गेन्थाऊ विश्व शान्ति की लिये अब तक किये गये विभिन्न उपायों को जांच पड़ताल करता है । मार्गेन्थाऊ इन उपायों को तीन भागों में बॉटता है । 1- प्रतिबन्ध द्वारा शान्ति इसके अन्तर्गत निरस्त्रीकरण समूहिक सुरक्षा , शान्तिपूर्ण परिवर्तन, न्यायिक समझौते और अन्तर्राष्ट्रीय सरकार आते हैं । 2- दूसरा वर्ग परिवर्तन द्वारा शान्ति का हैं इसके अन्तर्गत विश्व समाज की स्थापना की जाती हैं । 3- तीसरा वर्ग परस्पर युद्ध द्वारा उपायों का है इस वर्ग के अन्तर्गत डिप्लोमेसी को रखता है।

मार्गेन्थाऊने इन सभी उपायों की व्यवहारिकता की आलोचनात्मक विवेचना की है। निस्त्रीकरण तभी उपयोगी हो सकता है जबकि दुनिया के सभी देशों के बीच इस सम्बन्ध में कोई कारगर समझौता हो जाय। इसी प्रकार से सामूहिक सुरक्षा को भी मार्गेन्थाऊव्यवहारिक नहीं मानता। उसके अनुसार सामूहिक सुरक्षा की सफलता की तीन शर्तें हैं

1- सम्भावित आक्रमणकारी का मुकाबला करने के लिये पर्याप्त शक्ति हो

2- सामूहिक सुरक्षा में भाग लेने वाले देशों के बीच सुरक्षा की समस्या के बारे में मतैक्य हो । 3- सभी देश अपने निजी हितों को सामूहिक हित के लिए बलिदान करने को तैयार हों । मार्गेन्थाऊकहता हैं इतिहास गवाह है कि यह तीनों शर्तें कभी भी पूरी नहीं हो सकती । और विश्व शान्ति की समस्या सामूहिक सुरक्षा के द्वारा हल नहीं की जा सकती । मार्गेन्थाऊकहता है कि न्यायिक समझौतों के द्वारा भी युद्ध की समस्या हल नहीं की जा सकती । न्यायिक समझौतों से केवल कानूनी झगड़ों को निपटाया जा सकता है। परन्तु युद्ध के प्रायः राजनीतिक कारण अधिक हुआ करते हैं इसी प्रकार से शांतिपूर्ण परिवर्तन को भी मार्गेन्थाऊप्रभावकारी नहीं मानता है। उसका कहना है कि यह योजना केवल आंन्तरिक मामलों में ही कारगर हो सकती है। मार्गेन्थाऊको अन्तर्राष्ट्रीय सरकार की योजना भी मान्य नहीं है।

मार्गेन्थाऊइस बात से भी सहमत नहीं हैं कि विश्व राजसत्ता की स्थापना के द्वारा स्थायी विश्व शांति स्थापित की जा सकती है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि विश्व राजसत्ता के स्थायित्व में मार्गेन्थाऊ का विश्वास नहीं हैं वह यह मानता है कि विश्व राज्यसत्ता के बगैर स्थायी विश्व शान्ति संभव नहीं है। पर आज संसार में जो परिस्थितियां व्याप्त है। उन्हें देखते हुए कहा जा सकता है कि विश्व राजसत्ता की स्थापना संभव नहीं है।

इस प्रकार से प्रतिबंध अथवा परिवर्तन द्वारा शांति स्थापना के किसी भी प्रयास को मार्गेन्थाऊउपयोगी नहीं मानता। वह उन लोगों से भी सहमत नहीं है जो अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता, विश्व जनमत या अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा शांति स्थापना सम्भव मानते हैं। मार्गेन्थाऊकहता है कि इतिहास में आज तक अन्तर्राष्ट्रीयवाद पर राष्ट्रवाद की ही विजय होती आयी है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून भी इसलिये प्रभावहीन है। क्योंकि विश्व में अभी तक कोई ऐसी केन्द्रीय सत्ता नहीं है जो अन्तर्राष्ट्रीय कानून का निर्माण कर सके और उसकी सही व्याख्या करके सभी देशों को उसका पालन कर लेने के लिये बाध्य कर सके। अतः मार्गेन्थाऊस्पष्ट रूप से कहता है कि अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता, विश्व जनमत, या अन्तर्राष्ट्रीय विधि के द्वारा शान्ति संघर्ष पर रोक नहीं लगा सकती ।

इन सभी प्रयासों को अनुपयोगी बताकर मार्गेन्थाऊअन्त में परस्पर सहयोग, अर्थात नीति कुशलता के द्वारा शांति स्थापित करने की बात करता है। मार्गेन्थाऊके अनुसार कुशलता के दो महत्वपूर्ण कार्य हैं । एक प्रत्यक्ष और दूसरा अप्रत्यक्ष । प्रत्यक्ष रूप से नीति कुशलता अन्तर्राष्ट्रीय विवाद को नियंत्रित करती है। और, अप्रत्यक्ष रूप से विश्व समुदाय के विकास में सहायता करती है। पर मार्गेन्थाऊकहता है कि नीति कुशलता अपने इन दोनों कार्यो को ठीक से तभी सम्पन्न कर सकती है जबकि वह निम्नलिखित नौ नियमों से बंधी हो । 1- नीति कुशलता, धर्म युद्ध की मध्यता से सदैव मुक्त रहनी चाहिये। 2- विदेश नीति के लक्ष्य राष्ट्रहित की मांग के आधार पर निर्धारित किये जाने चाहिए। इन लक्ष्यों की प्र्याप्त शक्ति द्वारा रक्षा करनी चाहिए। 3- राजनीतिक स्थिति का विश्लेषण करते समय दूसरे देशों के हित तथा दृष्टिकोण को भी ध्यान में रखना चाहिए। 4- जरूरत पड़ने पर समझौता करने के लिए राष्ट्रों को सहज ही तैयार हो जाना चाहिए 5- राष्ट्रों को अनुमानित लाभों की अपेक्षा वास्तविक लाभों की अधिक चिन्ता करनी चाहिए । 6- राष्ट्रों को इस प्रकार की स्थिति नहीं पैदा करना चाहिए, जहॉं से हटना बाद में असम्भव हो जाय। और वहॉं से आगे बढ़ने में खतरनाक स्थिति उत्पन्नहोने की आशंका हो । 7- अपने से कमजोर किसी मित्र राष्ट्र को अपने लिये स्वयं निर्णय करने की छूट नहीं देनी चाहिए। 8- राज्य की सैनिक शक्ति हमेशा ही राजनीतिक शक्ति के अधीन रहनी चाहिए। 9- सरकार को जनता का सेवम नहीं बल्कि उसके नेता के रूप में कार्य करना चाहिए। मार्गेन्थाऊका विश्वास है कि यदि इन नौ नियमों का पालन करते हुए नीति कुशलता का प्रयोग किया जाय तो शान्ति की समस्या काफी हद तक हल हो सकती हैं ।

मार्गेन्थाऊका यह भी कहना है कि कूटनीति के अतिरिक्त दो अन्य साधनों के द्वारा भी शान्ति की रक्षा की जा सकती है। इसमें से एक तो हैं शक्ति संतुलन, और दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय कानून । अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता और जनमत के बन्धन। परन्तु सबसे बड़ी समस्या यह है कि इन बन्धनों को प्रभावशाली कैसे कनाया जाय।

2.3.1.3 मार्गेन्थाऊ के यथार्थवाद की समालोचना

मार्गेन्थाऊ के राजनीतिक यथार्थवाद के सिद्धान्त की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अनेक विद्वानों ने आलोचना की है। स्टेनली एच. हाफमैन का कहना है कि यह सिद्धान्त असंगतियों से भरा हुआ है। हाफमैन ने व्यवस्थित ढंग से मार्गेन्थाऊके सिद्धान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण किया है।

1. हाफमैन मार्गेन्थाऊके शक्ति सम्बन्धी विचारों से असहमत हैं यदि हम मार्गेन्थाऊके शक्ति के यथार्थवादी विश्लेषण को सही मान लें तो ऐसा लगेगा कि चिर काल से विश्व में केवल शक्ति की पुनरावृत्ति के अतिरिक्त कुछ और नहीं हो रहा है। शक्ति की इसी भूमिका के आधार पर मार्गेन्थाऊने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिको एक स्वतंत्र विषय माना है। हाफमैन का कहना है कि मार्गेन्थाऊका यथार्थवादी राजनीति का सिद्धान्त एकपक्षीय हो गया है। मार्गेन्थाऊयह भी स्पष्ट नहीं कर सके हैं कि वे स्वायत्तता की बात किस आधार पर कर रहे हैं जबकि स्वायत्तता मार्गेन्थाऊके यथार्थवाद का एक प्रमुख तत्व है।

2. हाफमैन का कहना है कि राजनीति को शक्ति का पर्यायवाची बना देना , और शक्ति संघर्ष को ही राजनीति का सब कुछ मान लेना उचित नहीं है । राजनीतिक मानव से आर्थिक मानव धार्मिक मानव, आदि भी शामिल हैं। अतः उसके केवल एक पक्षीय स्वरूप पर ही बल देने और उसे सम्पूर्ण राजनीति मान लेने का दृष्टिकोण युक्त है। हाफमैन का कहना है कि मार्गेन्थाऊद्वारा शक्ति की व्याख्या एक दोषपूर्ण तथा घातक विचार है यदि इसे स्वीकार कर लिया जाए तो इसका अर्थ यह होगा कि राजनीति केवल बुराई है परयह राजनीति का एक विकृत स्वरूप होगा। यथार्थ नहीं । राजनीति को केवल बुराई ही नहीं कहा जा सकता क्योंकि मानव प्रवृत्ति में निहित तत्व अच्छे और बुरे दोनो ही होते हैं और इन्हीं तत्वों की अभिव्यक्ति राजनीति में भी होती है।

3. हाफमैन यह मानने को तैयार नहीं हैं कि सभ मानव कार्यो के मूल में उसकी प्रवृत्ति सन्निहित हैं परिस्थितियों के प्रभाव की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कई बार मनुष्य स्वभाव के कारण नहीं बल्कि परिस्थितिक बुराई कर बैठता है इस प्रकार से मार्गेन्थाऊका यथार्थवाद मानव प्रवृत्ति के सम्बन्ध में भी एक दोषपूर्ण तथा बहुत कुछ एकांगी विचार पर आधारित है।

4. हाफमैन ने एक आलोचना यह की है कि मार्गेन्थाऊने शक्ति पर कुछ अधिक ही बल दिया है। मार्गेन्थाऊशक्ति या राजनीतिक कार्यो का साध्य मानता है जबकि वास्तविकता यह है कि शक्ति के द्वारा राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है। इस प्रकार से शक्ति एक साधन है न कि साध्य। शक्ति के स्वरूपऔर उसकी मात्रा का निर्धारण इस बात पर निर्भर करता है कि उद्देश्य क्या है? यदि मार्गेन्थाऊ के उद्देश्यों के अध्ययन पर सही बल दिया होता तो वह शक्ति को साध्य बना देने की भूल न करता। हाफमैन इस बात पर खेद व्यक्त करता हैं कि मार्गेन्थाऊनेउन सभी मान्यताओं को नकारा है जिनके आधार पर उद्देश्यों को निर्धारित किया जाता है।

5. इसके अतिरिक्त अध्ययन प्द्धतियों के दृष्टिकोण से भीकेवल शक्ति के विचार पर ही बल देना ठीक नहीं हैं शक्ति स्वयं विभिन्न तत्वों का सम्मिलित स्वरूप हैं। शक्ति की इन विभिन्नताओं की उपेक्षा करके अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्र को अच्छी प्रकार से नहीं एमझा जा सकता। मार्गेन्थाऊने 18 वीं तथा 19वीं शताब्दी के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है और इस तथ्य की उपेक्षा की है कि आधुनिक 20वीं शताब्दी के संसार में विभिन्नता और टकराव की जो स्थितियां मौजूद हैं वैसी पहले नहीं थीं। राष्ट्रों की आन्तरिक राजनीतिक घटनाओं की विदेश नीतियों को प्रभावित करती है। विभिन्न और परस्पर विरोधी राजनीतिक गुट तथा दबाव समूह, निरंतर सक्रिय रहकर विदेश नीति के निर्णायक कर्ताओं को प्रभावित करते हैं। नीतियों को प्रभावित करने वाली शक्तियां आज तिजनी प्रबल हैं उतनी 19वीं व 18वीं शताब्दियों में नहीं थी। उस समय की राजनीतिक सरकारें आज जैसे राजीनतिक प्रभावों और दबावों से बहुत कुछ मुक्त थी।

6. हाफमैन ने मार्गेन्थाऊके राष्ट्रहित सम्बन्धी विचारों की भी आलोचना की हैं तथा उन्हें दोषपूर्ण बताया है। हाफमैन का कहना है कि मार्गेन्थाऊकी राष्ट्रहित की कल्पना उस युग के लिये ठीक हो सकती थी जिसमें समाज एकरूपता लिये हुए हो लेकिन आधुनिक समाज ऐसे नहीं हैं। आधुनिक समाज में अन्तरर्विरोधियों की भरमार है। आज के अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राष्ट्रहित पर कहीं भी मत की एकता नहीं पाई जाती। आज का युग महान प्राविधिक और वैज्ञानिक विकास का है। जिसमें कि आए दिन राजनीतिक उथल पुथल हुआ करती है। भौगोलिक स्थितियों,प्रावृत्तिक साधनों तथा औद्योगिक क्षमताओं के बारे में हमारी पूर्व मान्यतायें बदल रही हैं। इन परिवर्तित स्थितियों, तथा मान्यताओं को ध्यान में रखते हुये यह कहा जा सकता है कि मार्गेन्थाऊ के राष्ट्रहित सम्बन्धी विचारों में केवल एक ही दृष्टिकोण अपनाया गया हैं जो कि दोषपूर्ण है।

7. यदि मार्गेन्थाऊके सिद्धान्त को मान लिया जाए तो यह मानना पड़ेगा कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केवल एक पहलू हैं और वह यह है - विभिन्न राष्ट्रों के हितों में टक्कर अतः हमें अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के विचार को हमेशा के लिए तिलांजलि देना होगा।

8. मार्गेन्थाऊकी यथार्थवादी राजनीति का एक तत्व विवेक है और मार्गेन्थाऊने विदेश नीति के विवेक पक्ष पर बहुत अधिक बल दिया है जबकि हाफमैन का कहना है कि आज का क्रान्तिकारी युग जटिलताओं से पटा पड़ा है, तथा कुछ राष्ट्र ऐसी विदेशनीतियों का अनुसरण करते हैं जो सर्वथा अविवेकपूर्ण लगती है। फिर भी वह उनके अपने हित में होती है।

9. मार्गेन्थाऊके यथार्थवादी सिद्धान्त का आधार मानव प्रवृत्ति हैं परन्तु मानव प्रवृत्ति संबंधी धारणायें वैज्ञानिक न होकर बहुत कुछ अनुमान पर आधारित हैं।

10. राजनीतिक यथार्थवाद में नैतिकता के तत्व की भी आलोचना की गई है। मार्गेन्थाऊका कहना है कि राष्ट्रहितों की पारस्परिक मान्यता के आधार पर विश्व के राष्ट्र संतुलित सम्बन्धों को स्थापित कर सकते हैं और यही सर्वोच्च नैतिकता हैं किन्तु इस प्रकार की मान्यता, उसी संदर्भ में उचित हो सकती हैं जिसमें राष्ट्रहित विवादग्रस्त विषय न हो।

11. विद्वानों ने तो मार्गेन्थाऊके सिद्धान्त को यथार्थवादी मानने से ही इन्कार कर दिया है। उनका आरोप है कि मार्गेन्थाऊ ने जगह जगह पर वस्तु स्थिति का उल्लेख करने के साथ साथ ''चाहिए' ' जैसे आदर्श सूचक शब्द का भी प्रयोग किया है इस प्रकार से आलोचना यह की गई है कि मार्गेन्थाऊके विचारों को मानव प्रवृत्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का प्रामाणिक तथा यथार्थवादी आधार नहीं माना जा सकता । मार्गेन्थाऊके विचारों में असंगतियां हैं एक ओर तो उसने यथार्थवादी तथा आदर्शवादी तत्वों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है दूसरी ओर नियतिवाद, तथा पुरूषार्थवाद जैसे विरोधी विचारों में तालमेल बैठाने की कोशिश की है। विश्लेषण से पता चलता है कि मार्गेन्थाऊका सिद्धान्त यथार्थवादी होने के साथ साथ मूल्य परक भी है। इसी प्रकार से हम देखते हैं कि कूटनीति के द्वारा शान्ति स्थापना के प्रयोग में मार्गेन्थाऊ ने योग्य राजनीतिज्ञों की आवश्यकता पर बल दिया है किन्तु वह यह स्पष्ट नहीं करता कि जब तक अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति संघर्ष पर आधारित है और संघर्षों का समाधान कूटनीति के द्वारा ही संपन्न है तो इस प्रकार की स्थिति में बेचारे शांतिवादी राजनीतिक किस प्रकार से प्रवेश पा सकेंगे। और शान्ति स्थापना का आदर्श किस प्रकार से प्राप्त करेंगे । आलोचकों का कहना है कि मार्गेन्थाऊ ने परस्पर विरोधी तत्वों और विचारों का सहारा लेकर अपने सिद्धान्त में विभिन्न सैद्धान्तिक जटिलताओं को पैदा कर दिया है।

3.4 मार्गेन्थाऊ के यथार्थवादी सिद्धान्त का महत्व

मार्गेन्थाऊ का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्वानोंके लिए भारी वाद विवाद का विषय बना हुआ है। हाफमैन तथा बेनो वासरमैन जैसेविद्वानों ने इसकी कटु आलोचना की हैं तो केनेथ डब्ल्यू. थामसन तथा डेविड सिंगर जैसे विद्वानों ने इस सिद्धान्त की काफी प्रशंसा की है। हेराल्ड स्प्राउट, क्विन्सी राइट जैसे विद्वानों ने मार्गेन्थाऊ की देन को स्वीकार करते हुए उसे अपूर्ण कहा है।

मार्गेन्थाऊके यथार्थवादी सिद्धान्त की आलोचनाएं सबल हैं किन्तु पूर्ण सत्य नहीं हैं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ में यथार्थवादी सिद्धान्त की उपेक्षा नहीं की जा सकती । इस सिद्धान्त ने राष्ट्रीय हितों और उनकी प्राप्ति के लिये शक्ति के प्रयोग सम्बन्धी गम्भीर विचारों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का पहली बार व्यापक विश्लेषण किया है और इस प्रकार से इस विषय को सैद्धान्तिक आधार दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रीय हितों के महत्व और उनके फलस्वरूपउत्पन्न होने वाले संघर्षों आदि तथ्यों को नकारा नहीं जा सकता । यह एक कटु सत्य है कि आज का युग एक बड़ी सीमा तक शक्ति संघर्ष का युग है जिसमें राजनीति के सभी दांव पेचों का प्रयोग किया जाता है । प्रत्येक राष्ट्र अपने हित को ध्यान में रखकर हीअपनी विदेश नीति का संचालन करता हैं

प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वार्थ पूर्ति में संलग्न हैं और उसका स्वार्थ यह है कि वह अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त करें । इस बात पर जोर देकर यथार्थवादी विचारधारा दो प्रमुख संदेश देती हैं पहला संदेश यह है कि विदेश नीति ऐसी बनायी जाये जो शक्ति बढ़ाने तथा उसको बनाए रखने में अधिक से अधिक सहायता कर सके। दूसरा संदेश यह है कि हम अपनी विदेश नीति का निर्माण करते समय यह भी ध्यान में रखें कि दूसरे देश का राष्ट्रीय हित क्या है, तथा वह यथासंभव हमारे हित से टकराए नहीं।

इसके अतिरिक्त चूंकि यथार्थवादी सिद्धान्त का आधार बुद्धि है अतः इससे प्रभावित होकर विदेश नीति की वृद्धि तथा तर्क पर आधारित होगी । इस प्रकार की विदेश नीति राजनीतिक रूप से सफल होती है तथा नैतिक रूप से भी उसकी प्रशंसा की जाती है। यह विदेश नीति का एक बड़ा गुण माना जाता है कि वह यथार्थवादी हो।

पिछले कई वर्षो से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को वैज्ञानिक आधार पर अधिक से अधिक व्यवस्थित रूप देने की कोशिश की गई है और अनेक दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये हैं जैसे रिचर्ड स्नाइडर का नीति निर्धारण सम्बन्धी दृष्टिकोण, कैपलान का व्यवस्था विश्लेषण , चार्ल्स मैकमिलन कासामान्य व्यवस्था सम्बन्धी दृष्टिकोण, जार्ज लिस्का का साम्यावस्था सम्बन्धी दृष्टिकोण, यह सब प्रयास इस ओर संकेत करते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का क्षेत्र मार्गेन्थाऊके सिद्धान्त से काफी आगे बढ़ चुका है। व्यवस्था दृष्टिकोण को आज यथार्थवादी दृष्टिकोण की अपेक्षा अधिक विकसित माना जाता है। लेकिन यह सारी बातें मार्गेन्थाऊ की देन इस रूप में भी कम नहीं हैं कि उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विषय को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर दूसरे विचारकों को भी इस दिशा में कार्य करने के लिए प्ररित किया। केनेथ डबलु. थम्पसन का लिया है। कि मार्गेन्थाऊका सिद्धान्त अभी विकास की अवस्था में है।

2.4 नव यथार्थवाद

केन्नेथ वाल्टज़ का ढाँचागत यथार्थवाद

केन्नेथ वाल्टज के ढाँचागत यथार्थवाद ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विद्वानों पर गहरा प्रभाव डाला है। उसके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में राज्यों के व्यवहार को तय करने का प्रमुख कारक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का ढाँचा है। उसके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में कोई केन्द्रीय सत्ता व्यवस्था बनाये रखने के लिये नहीं है।

दूसरी प्रमुख बात वाल्टज के नव यथार्थवाद की है वह है उसकी शक्ति की अवधारणा। जहाँ परम्परगत यथार्थवाद शक्ति के विभिन्न तत्वों में सैन्य शक्ति को सबसे अधिक महत्व देता है। वहीं वाल्टज इससे सहमत नहीं है। उसका कहना है कि शक्ति का सबसे महत्वपूर्ण तत्व सिर्फ सैन्य शक्ति ही नहीं है क्योंकि किसी भी देश की शक्ति उसकी संयुक्त क्षमताओं से आती है। वैसे वह परम्परागत यथार्थवाद से इस बात पर सहमत है कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में व्यवस्था ;वतकमतद्ध कायम रखने के लिए शक्ति के संतुलन की आवश्यकता होती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें मात्र अस्तित्व में रहने से प्रभावी नहीं होती हैं जैसा कि नव उदारवाद का मानना है, बल्कि उनके प्रभावी होने के लिये उनको विश्व की प्रमुख शक्तियों का समर्थन आवश्यक है।

तीसरा अंतर वाल्टज के यथार्थवाद और पारम्परिक यथार्थवाद में यह है कि जहॉं पारम्परिक यथार्थवाद अराजकता को अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की एक परिस्थिति मानता है वहीं नवयथार्थवाद का मानना है कि अराजकता स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को परिभाषित करती है। जहाँ परम्परागत यथार्थवाद के अनुसार अराजकता की स्थिति में राज्य अपने क्षेत्रफल , जहॉं पर वे स्थित है, घरेलू राजनीति तथा नेतृत्व के गुणों के आधार पर क्रिया- प्रक्रिया करते हैं वहीं वाल्टज के अनुसार राज्य अपनी शक्ति और क्षमताओं के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय जगत की अराजकता से निपटते हैं क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय जगत को आराजकता ही परिभाषित करती है इसलिये वह हर राज्य के लिये एक समान है।

जोसेफ ग्रीको का नवयथार्थवाद

उसके अनुसार राज्य अपनी शक्ति और प्रभाव को बढ़ाने में रूचि रखते हैं इसलिये वे अपनी क्षमताओं को बढ़ाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अन्य कारकों एवं राज्यों से सहयोग करते हैं। परन्तु वे किसी भी सहयोगात्मक प्रयास में अन्य राज्यों द्वारा अर्जित शक्ति और प्रभाव पर भी नजर रखते हैं तथा उससे किसको अधिक लाभ हो रहा है आज के प्रतिस्पर्धात्मक माहौल में।

नव यथार्थवाद के प्रमुख तत्वः

1.राज्य एवं अन्य कारक एक अराजक माहौल में कार्य करते हैं जिसमें कि कोई केन्द्रीय सत्ता नहीं रहती है।

2.व्यवस्था का ढाँचा कारकों के व्यवहार को निर्धारित करता हैं।

3.राज्य स्वार्थपरक होते हैं तथा अराजक एवं प्रतिस्पर्धात्मक व्यवस्था राज्यों को अपने स्वार्थ को सहयोगात्मक व्यवहार के आगे प्राथमिकता देने के लिये मजबूर करती है।

4.राज्य बुद्धिपरक कारक है जो अपने लाभ को बढ़ाना और नुकसान को कम करना चाहेंगे।

5. अराजकता द्वारा प्रस्तुत सबसे गम्भीर समस्या है अपने अस्तित्व को बचाये रखना।

6. राज्य दूसरे राज्यों को भावी शत्रु तथा अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये खतरा मानते हैं।

आक्रामक एवं सुरक्षात्मक नव यथार्थवाद

आक्रामक यथार्थवाद के प्रमुख प्रवक्ता जॉन मीयरशाईमर हैं। यह परम्परागत यथार्थवाद की तरह मानता है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में संघर्ष तो रहना ही है तथा राजनेताओं को शक्ति का विस्तार करने वाले राष्ट्रों से सावधान रहना चाहिए। वहीं सुरक्षात्मक यथार्थवाद युद्ध की कीमतों को समझता है तथा युद्ध को समाज की अतार्किक (पससवहपबंस) शक्तियों का परिणाम मानता है। विस्तारवादी शक्तियाँ ;मगचंदेपवदंतल चवूमतेद्ध जो सैन्य शक्ति का प्रयोग करना चाहते हैं वे संसार में बिना शस्त्र के रहना कठिन कर देते हैं। सहयोग तो मित्र देशों के साथ ही सम्भव है। आक्रामक यथार्थवाद का मानना है कि राज्यों के आपसी हितों एवं लक्ष्यों के बीच सामन्जस्य न हो पाने से अन्तर्राष्ट्रीय जगत में संघर्ष अवश्यम्भावी है तथा इसलिये राष्ट्रों को अपने रक्षा बजट में कटौती नहीं करना चाहिये क्योंकि वे अपने को फिर उन राष्ट्रों के हमले का ठिकाना बना लेंगे जो अपनी शक्तियों का विस्तार करना चाहते हैं।

2.5 आदर्शवाद

यथार्थवादियों के विपरीत, आदर्शवादी शक्ति राजनीति को इतिहास तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक अस्थाई पक्ष मानते हैं। उनका कहना है कि यथार्थवाद एक ऐसी अवधारणा है जो इतिहास के वास्तविक अर्थ को तोड़ती, मरोड़ती तथा भ्रष्ट करती है। आदर्शवाद समाज के क्रमिक विकास में विश्वास रखता है। इस दृष्टिकोण का प्रारम्भ 18वीं शताब्दी में हुआ था और यह फ्रेन्च तथा अमरीकी क्रान्तियों के पीछे प्रेरणा का एक प्रमुख श्रोत था। कान्डरसेट इस दृष्टिकोण का प्रथम प्रमुख विचारक था। 1795 में उसने अपनी पुस्तक, **स्केच फार अ हिस्टारिक्ल पिक्चर आफ दि प्रोग्रेस आफ दि हयूमन स्पिरिट**, में एक ऐसी आदर्श विश्व व्यवस्था की कल्पना की है जिसमें युद्ध, विषमता तथा अत्याचार का सर्वथा अभाव हो, तथा विवेक शिक्षा, विज्ञान आदि के माध्यम से मानव कल्याण की धारा बहे।

संक्षेप में, आदर्शवाद भावी अन्तर्राष्ट्रीय समाज की वह तस्वीर खींचता है जिसमें शक्ति राजनीति, हिंसा, तथा अनैतिकता आदि के लिये कोई स्थान नहीं है। आदर्शवादियों का विचार है कि समुचित शिक्षा तथा प्रभावशाली अंतर्राष्ट्रीय संगठन की सहायता से हम आज की अपेक्षा एक अधिक अच्छे संसार का निर्माण कर सकते है। उनका तर्क है कि अतीत में जो राजनीतिक संघर्ष हुए, वह शक्ति या प्रभाव के लिये नहीं हुए, बल्कि परस्पर विरोधी आदर्शों के बीच होने वाले संघर्ष थे। कल्पनावादी आदर्शवादियों का सुझाव है -

1- अन्तर्राष्ट्रीय जगत में परम्परागत शक्ति नीति का परित्याग, तथा नैतिक सिद्धान्तों का पालन किया जाए।

2- लोकतंत्र विरोधी सर्वाधिकारवादी शक्तियों के प्रभाव को समाप्त करने का हर संभव प्रयास किया जाए।

3- एक विश्व सरकार की स्थापना द्वारा शक्ति राजनीति को समाप्त किया जाए।

2.6 यथार्थवाद बनाम आदर्शवाद

राजनीतिक यथार्थवाद और राजनीतिक आदर्शवाद में परस्पर विरोध का सबसे बड़ा केन्द्र बिन्दु शक्ति की समस्या है। प्रथम विश्व युद्ध के बाद वुडरो विल्सन तथा द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बी.रसेल आदर्शवाद के प्रवर्तक रहे हैं। दो महायुद्धों के बीच, यथार्थवाद और आदर्शवाद के बीच विरोध काफी खुलकर सामने आया। यथार्थवाद को राष्ट्रीयता और आदर्शवाद को अन्तर्राष्ट्रीयता से सम्बद्ध समझा गया। साथ ही इस धारणा को भी बल मिला कि यथार्थवाद की नीतियाँ शांति विरोधी हैं, तथा उनका उद्देश्य राष्ट्रीय शक्ति का प्रसार है। इसके विपरीत साधारणतया यह समझा गया कि आदर्शवाद की नीतियाँ शांति को प्रोत्साहन देने वाली हैं। वास्तव में यदि देखा जाए तो हम कह सकते हैं कि यथार्थवाद और आदर्शवाद के बीच संघर्ष का प्रमुख कारण यह है कि यथार्थवादी यह तय नहीं कर पाए हैं कि शक्ति का अनुसरण एक लक्ष्य है अथवा साधन। एक ओर तो उन्होंने शक्ति को सर्वोच्च मूल्य माना है, जिसकी प्राप्ति के लिये राज्य को प्रभावशील रहना चाहिए, तथा दूसरी ओर शक्ति को साधन के रूप में भी स्वीकार किया है।

यथार्थवाद तथा आदर्शवाद इन दोनों दृष्टिकोणों ने वास्तव में अतिवादी दृष्टिकोण अपना रखा है । एक उत्तर की ओर जाता है तो दूसरा दक्षिण की ओर। आवश्यकता इस बात की है कि समय और जरूरत के अनुसार दोनों दृष्टिकोणों की अच्छाइयों को अपनाया जाए। राजनीतिक रूप में यह उपयुक्त है कि राष्ट्रीय हितों के अनुसार सफलतापूर्वक कार्य किया जाए, पर साथ ही नैतिक और राजनीतिक विवेक की मांग है कि यथा सम्भव अधिक से अधिक नैतिक मार्ग का भी इस तरह से अनुसरण किया जाए कि आदर्शवादी और यथार्थवादी दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

आभ्यास प्रश्न

१.आदर्शवाद समाज के क्रमिक विकास में विश्वास रखता है ? सत्य/असत्य

२.स्केच फार अ हिस्टारिक्ल पिक्चर आफ दि प्रोग्रेस आफ दि हयूमन स्पिरिट, पुस्तक किस सन में प्रकाशित हुई थी ?

३.मार्गेन्थाऊ के यथार्थवाद के कितने सिद्धांत है ?

४. यथार्थवादी सिद्धान्त के प्रमुख प्रवक्ता कौन हैं ?

2.7 सारांश

इस इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के निमित विकसित प्रमुख उपागमों का वर्णन किया गया है।

उपागम का आशय उस मापदण्ड से है जिसका प्रयोग अनुसंधान के दौरान समस्या और आंकड़े के चयन के लिये किया जाता है। प्रत्येक विषय के अपने निश्चित उपागम होते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के कुछ प्रमुख उपागम है: परम्परागत ऐतिहासिक संस्थात्मक उपागम,आदर्शवादी उपागम, यथार्थवादी उपागम तथा वैज्ञानिक/ व्यवहारवादी उपागम।

ऐतिहासिक संस्थापक उपागम 18वीं और 19वीं शताब्दी और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में विशेष लोकप्रिय रहा। ऐतिहासिक उपागम वर्तमान की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का विश्लेषण भूतकाल के घटनाक्रम के आधार पर करना चाहता है। संस्थात्मक उपागम दोनों विश्व युद्धों के बीच के समयकाल में विशेष लोकप्रिय हुआ। इस उपागम में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के माध्यम से विश्व शान्ति करने पर विशेष बल दिया गया।

आदर्शवादी उपागम 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चार दशकों में विशेष चर्चित रहा। यह उपागम मनुष्य को एक विवेकशील प्राणी मानता है और तदानुसार इसकी यह मान्यता है कि राष्ट्रों के मध्य सामन्जस्य पूर्ण सम्बन्धों की स्थापना की जा सकती है।

यथार्थवादी उपागम 18वीं और 19वीं सदी में लोकप्रिय रहा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यह पुनः चर्चा में आया। हैन्स जे. मर्गेन्थाऊ को इस उपागम का प्रतिनिधिकारी विचारक माना जाता है। इस उपागम की यह मान्यता है कि मनुुष्य स्वभाव से स्वार्थी होता है। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अन्य सभी राजननीति की भॉति, शक्ति के लिये संघर्ष है। यह दृष्टिकोण राष्ट्रीय हित, शक्ति और संघर्ष को सर्वाधिक महत्व देता है और यह मानता है कि 'शक्ति के संदर्भ में परिभाषित राष्ट्रीय हित ही विदेश नीति है।

1945 के बाद समयकाल में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अनेक व्यवहारवादी उपागम विकसित हुए। ये सभी उपागम वैज्ञानिक भी कहे जाते हैं। ये अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राज्यों के व्यवहार के बारे में सामान्यीकरण करने के लिये परिमाणन और संख्यकीय विश्लेषण का प्रयोग करते है। व्यवस्था उपागम राष्ट्रों के मध्य अन्तः क्रिया पर बल देता है। निर्णय निर्माण उपागम निर्णय निर्माण कर्ताओं द्वारा लिये गये निर्णयों का अध्ययन करके अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के व्याख्यायित करना चाहता है। इस उपागम से जुड़े कुछ विद्वानों का मत है कि निर्णय निर्माण में सबसे प्रमुख भूमिका पर्यावरण या वातावरण की होती है। कुछ दूसरे विद्वानों का मत है कि निर्णय निर्माण में सबसे प्रमुख भूमिका निर्णय लेने वाले के व्यक्तित्व की होती है। खेल उपागम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को 'रणनीति का खेल' मानता है। सौदेबाजी का सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय वार्ताओं के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की व्याख्या का प्रयास करता है।

2.8 शब्दावली

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति - राष्ट्रों के मध्य राजनीति

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धइस -में काफी व्यापकता पाई जाती है। उसके अन्तर्गत राष्ट्रों के आर्थिक, व्यापारिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, कानूनी राजनीतिक खोज एवं अन्वेषण सम्बन्धी, और इसी प्रकार के सभी सम्बन्ध आ जाते हैं।

कूटनीति- अन्तरष्ट्रिीय राजनीति में कूटनीति को विदेश नीति को यर्थाथ रूप में क्रियान्वित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। मार्गेन्थाऊ जैसे विचारक इसे अन्तराष्ट्रीय राजनीत का आँख और कान भी कहते हैं।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१.सत्य ,२. 1975 , ३. 6 , ४. मार्गेन्थाऊ,

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.Stanley Hoffman : Conflicting Approaches to the Study of International Relations

2.Trevor Taylor : Theories of International Relations.

3.Mahendra Kumar : Theoretical Aspects of International Relations.(Hindi Edition also)

4.Prakash Chandra : International Policies

5.बाबू लाल फाड़िया: अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.मॉरगेन्थू, हैन्स (1960), *पॉलिटिक्स अमोंग नेशन*, मैकमिलन-हिल ह्युमेनिटिज़।

2.ऑरगेन्सकी (1958), *वर्ल्ड पॉलिटिक्स*, द यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया।

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के परम्परागत उपागम की चर्चा कीजिए।

2.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के यथार्थवादी उपागम की विवेचना कीजिए।

3.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के व्यवहारवादी उपागमों की विवेचना कीजिए।

ईकाई-3 : राष्ट्रीय शक्ति, राष्ट्रीय शक्ति के तत्व

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 राष्ट्रीय शक्ति के तत्व
3.3.1 भूगोल
3.3.2 संसाधन
3.3.3 आबादी
3.3.4 तकनीक
3.3.5 राष्ट्रीय मनोबल
3.3.6 कूटनीति
3.3.7 शासन का गुण
3.3.8 नेतृत्व
3.3.9 विचारधारा
3.3.10 इंटेलिजेंस
3.3.11 आर्थिक विकास व औद्योगिक क्षमता
3.4 राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले तत्व
3.4.1 शक्ति संतुलन
3.4.2 अंतर्राष्ट्रीय कानून
3.4.3 अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता
3.4.4 विश्व जनमत
3.4.5 अंतर्राष्ट्रीय संगठन
3.4.6 सामूहिक सुरक्षा
3.4.7 नि:शस्त्रीकरण व शस्त्र नियंत्रण
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रंथ
3.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्यक्रम
3.10 निंबधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

अंतराष्ट्रीय राजनीति को यदि गहनतापूर्वक विश्लेषण करें तो स्पष्ट है कि यर्थाथ रुप में नि:संदेह यह राज्यों के बीच शक्ति-संघर्ष के इर्द-गिर्द परिक्रमा करती है। शक्ति उन मूल्यों व हितों की प्राप्ति के लिये आवश्यक है जिन्हें राष्ट्र बनाए रखना तथा बढ़ाना चाहते हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को सीमित करने वाला भी तत्व के रुप में देखा जाता है क्योंकि प्रत्येक राज्य अपने संसाधनों व सामर्थ्य व साथ-साथ दूसरे राष्ट्रों की शक्ति द्वारा सीमित होता है जो कि इच्छित लक्ष्यों की प्राप्त में रुकावट उत्पन्न करता है। एक बड़े स्थूल अर्थ में 'राष्ट्रीय शक्ति या शक्ति एक ऐसी सामर्थ्य या योग्यता है जिसके अंतर्गत दूसरों को नियंत्रित करने, उससे अपना मनचाहा व्यवहार कराने व उससे अपने मनचाहा व्यवहार करने से रोकना है'। स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शक्ति की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये होलस्टी ने कहा है 'राष्ट्रीय शक्ति दरअसल राज्य की सामान्य क्षमता है जिसके अंतर्गत वह राज्य दूसरे राज्यों के व्यवहारों को नियंत्रित करता है' (on the general capacity of states to control the behavior of others.) इसी को और व्यवस्थित तरीके से स्पष्ट करते हुये वी.वी डाईक ने राष्ट्रीय शक्ति को बलपूर्वक क्रिया में देखा है। डाईक के अनुसार, 'शक्ति इच्छा से माने गये प्रभाव से अलग बलपूर्वक मनवाया गया प्रभाव है' (Coercive, influence, distinguished from persuasive influence.) गौरतलब है कि राष्ट्रीय शक्ति को संघर्ष के रुप में रेखांकित करते हुये मॉरगेन्थाऊ ने कहा है कि शक्ति दो राजनीतिक इकाईयों के मध्य संबंधों की प्रतीक है। उसका अभिप्राय यह है कि एक राज्य यानि A के पास इतनी क्षमता होती है कि वह B के कार्यकलापों को नियंत्रित कर सके। इसी को और व्यवस्थित रुप से परिभाषित करते हुये वह लिखते हैं कि शक्ति एक व्यक्ति की वह सामर्थ्य है जिसके द्वारा वह अन्य व्यक्तियों के मस्तिष्क व कार्यों को नियंत्रित करता है (man's control over the minds and action of other men.)

3.2 उद्देश्य

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति को प्राप्त करने की चाह व इच्छा किसी राष्ट्र का परम उद्देश्य के रुप में देखा जाता है। प्रत्येक राष्ट्र अधिकाधिक शक्ति विस्तार, उसका प्रर्दशन व उसकी अभिवृद्धि का प्रयास करता है। अपनी शक्ति को अधिकाधिक विस्तार देने के लिये कई बार कई राष्ट्र दूसरे पर अपनी इच्छा का आरोपीकरण भी करते हैं। इसी बात को स्पष्ट करते हुये जार्ज श्वाजनबर्जर ने शक्ति को अपनी इच्छा का दूसरों पर आरोपीकरण तथा अपालन की स्थिति में प्रभावकारी क्षमता के रुप में देखा है। यही कारण है कि कई बार अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को शक्ति के लिये संघर्ष के रुप में भी परिभाषित किया जाता है। शीतयुग काल तक ऐसा ही प्रतीत होता था कि कोई राष्ट्र केवल अपने शक्ति बढ़ाने के लिये राजनीतिक शक्ति का ही प्रयोग कर सकता है। परंतु 1990 के बाद सोवियत संघ के विघटन के उपरांत ऐसा लगा मानों दुनिया एक ध्रुवीय विश्व की ओर उन्मुख हो रही है। भूमंडलीय व सूचना तकनीकी क्रांति के बाद राष्ट्रीय शक्ति के स्वरुप में भी परिवर्तन आ रहा है। 21वीं सदी में वही देश शक्तिशाली बनने की चाह रखता है जो व्यापार-वाणिज्य के साथ-साथ सूचना तकनीकी क्रांति की नज़रिये से भी सर्वोच्च हो।

3.3 राष्ट्रीय **शक्ति के तत्व**

शक्ति के अनेक अवयव या तत्व हैं, मोटे तौर पर इन अवयवों को शक्ति के निर्धारक तत्व भी कहा जाता है, परंतु ऐसा कहना पूर्णतया सत्य नहीं होगा। कारण यह है कि ये अवयव शक्ति का निर्धारण नहीं करते शक्ति का निर्धारण तो शक्ति के अवयवों के कुशलतापूर्वक उपयोग से संभव होता है। जो भी राष्ट्र इन अवयवों का कुशलतापूर्वक, दक्षतापूर्वक व कूटनीतिपूर्वक प्रयोग करता है वह विश्व राजनीति में अपना परचम लहराता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शक्ति के प्रमुख अवयव या तत्व निम्नलिखित है-

3.3.1 **भूगोल** –

भूगोल से संबद्ध विशेषज्ञों का मानना है कि राष्ट्रीय शक्ति का मूल तत्व भूगोल है। किसी भी राष्ट्र की शक्ति की जड़ उसके भूगोल में निहीत होती है। भूगोल ऐसा तत्व है जिसे चाहकर भी कोई राष्ट्र परिवर्तित नहीं कर सकता है यह आपको पहले से प्राप्त होता है। गौरतलब है कि भूगोल से तात्पर्य किसी देश का क्षेत्रफल, जलवायु, स्थलाकृति व उसकी अवस्थिति में निहित है।

क्षेत्रफल की वृद्धि होने से किसी देश की शक्ति में वृद्धि होती है क्योंकि बड़ा क्षेत्र वाला राष्ट्र अधिक आबादी संभाल सकता है। वेटिकन सिटी, इंडोनेशिया जैसे देश कभी महाशक्ति नहीं बन सकते हैं क्योंकि यह बहुत छोटे देश हैं। क्षेत्रफल बड़ा होने से सैनिक सुविधाएँ प्राप्त हो सकती है जिससे राष्ट्र की शक्ति बढ़ती है। क्षेत्रफल बड़ा होने के कारण ही रुस में नेपोलियन और जापान की सेना को भी चीन में मात खानी पड़ी थी। युद्ध के समय बड़ा देश पीछे हट आने के बाद भी बाकी बचे क्षेत्र में शक्ति संग्रह करके जवाबी हमले की तैयारी कर सकता है। क्षेत्रफल के बड़ा होने का एक फायदा यह भी है कि राष्ट्र अपने उद्योगों को सीमांतों से दूर रख सकता है जिससे विदेशी हमलों का प्रतिरोध किया जा सकता है।

जलवायु राष्ट्रीय शक्ति की उत्पत्ति का एक और महत्वपूर्ण भौगोलिक तत्व है। ज़ाहिर है कि किसी राष्ट्र की महाशक्ति बनने ना बनने के पीछे उसका जलवायु महत्वपूर्ण रुप से जिम्मेदार होता है। स्पष्ट रुप से दक्षिणी ध्रुव व सहारा का रेगिस्तान शक्ति की अभिवृद्धि के लिये उपयुक्त प्रदेश नहीं है। सामान्य रुप से यह धारणा है कि ऊष्ण कटिबंध के सब प्रदेश और रेगिस्तानी इलाके शक्ति बनने की संभावनाओं से वंचित रहते हैं, परंतु विशेष अर्थो में रेगिस्तानी इलाके शक्ति के नज़रिये से महत्वपूर्ण बन गये हैं क्योंकि रेगिस्तानों में यूरेनियमयुक्त खनिज़ मिलते हैं और यूरेनियम परमाणु अस्त्र बनाने के लिये आवश्यक है। प्रमुख शक्ति बनने के लिये शीतोष्ण जलवायु का होना जरुरी है क्योंकि जलवायु से ही लोग उस प्रकार के कामों में लगते हैं जो किसी आधुनिक औद्योगिक राष्ट्र के लिये आवश्यक है।

स्थलाकृति, भौगोलिक तत्व जो किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय शक्ति के वृद्धि में महत्वपूर्ण स्थान रखता है अपने गर्भ में स्थलाकृति को भी समेटे हुये हैं। स्थलाकृति की भूमिका जलवायु से भी महत्वपूर्ण मानी जाती है जिससे राष्ट्रों के बीच की प्राकृतिक सीमाओं का निर्धारण होता है और इस प्रकार उनके प्राकृतिक फैलाव की अधिकतम सीमा निश्चित हो जाती है नदियों, पर्वतों या समूहों से घिरे हुये राष्ट्र उन देश देशों से अधिक सुरक्षित होते हैं जिनकी सीमाएँ प्राकृतिक नहीं है, जिन राष्ट्रों के मध्य पर्वत या नदी या समुद्र के ज़रिये प्राकृतिक सीमा रेखा होती है उनमें प्राय: सीमा संबंधी विवाद नहीं होते हैं। स्थलाकृति की विशेषता को राष्ट्रों के संदर्भ में आंक सकते हैं। पेरेनीज़ पर्वत श्रृंखला के कारण किस प्रकार स्पेन यूरोप के राजनीतिक व फौज़ी विवादों की लपेट से परे रहा उसी प्रकार इंग्लिश चैनल ने ब्रिटिश को काफी लंबी समय तक सुरक्षा प्रदान की इसी क्रम में अटलांटिक व प्रशांत महासागर ने अमेरिका व आल्पस पर्वत श्रृंखलाओं ने इटली को सुरक्षा प्रदान की।

अवस्थिति, भौगोलिक तत्व के अंतर्गत अवस्थिति का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। अवस्थिति का नीति पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि इससे शक्ति पर ही नहीं, बल्कि राष्ट्रीय हित के स्वरुप पर भी असर पड़ता है। अवस्थिति और विदेश नीति का आपसी संबंध इतना बुनियादी है कि इससे भू-राजनीति का जन्म हुआ है जो यह मानती है कि किसी राज्य की अभिवृद्धि का प्रतिरुप या ढ़र्रा उसके भूगोल पर निर्भर करता है। अमेरिका की अवस्थिति स्थल विस्तार और समुद्रों की दृष्टि से ऐसी है कि इन दोनों से वह स्थल व समुद्री शक्ति बना है। कभी-कभी अवस्थिति के कारण ही किसी देशा का सामरिक महत्व बढ़ जाता है। उदाहरण के लिये ग्रीनलैण्ड व ओकिनावा का सामरिक महत्व अधिक है क्योंकि अमेरिका वहाँ ऐसा सैनिक अड्डा स्थापित करना चाहता है जहाँ से वह अपने संभावी

शत्रुओं पर आसानी से बंबारी कर सके। इसी प्रकार सोवियत संघ व चीन का पड़ोसी होने के कारण ही भारत को गुटनिरपेक्षता की नीति अपनानी पड़ी। परंतु कभी-कभी भौगोलिक स्थिति कुछ राज्यों के लिये हानिकारक भी होती है जैसे स्वेज नहर के महत्वपूर्ण जलमार्ग के निकट अवस्थित होने के कारण मिस्र पर ग्रेट ब्रिटेन ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

3.3.2 **संसाधन-**

प्राकृतिक संसाधन भी राष्ट्रीय शक्ति का एक महत्वपूर्ण अवयव या तत्व है। चाहे वह शक्ति प्राकृतिक हो या कृत्रिम। आधुनिक सैनिक बल के लिये अनेक प्रकार के कच्चे सामान की जरुरत होती है। अरब के देशों के उदाहरण से यह पता चल सकता है कि शक्ति के प्रसंग में प्राकृतिक संपदा का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। महाशक्तियाँ उसका लिहाज़ तेल संपदा के कारण करती है इसी प्रकार अर्जेंटीना के गोमांस व श्रीलंका की रबड़ का ध्यान रखकर ही अन्य राष्ट्रों को उनके साथ अपने संबंध बनाने पड़ते हैं। राष्ट्रीय शक्ति के निर्माण पर सबसे सीधा प्रभाव डालने वाली तीन प्राकृतिक वस्तुएँ है लोहा, कोयला व तेल (पेट्रोल)। यहाँ यह भी बताना महत्वपूर्ण है कि प्राकृतिक संपदा के होने मात्र से शक्ति प्राप्त नहीं हो सकता है इस संपदा का विकास केन्द्रित होना चाहिये व इसके स्वामी का इसकी ब्रिकी आदि पर कठोर नियंत्रण होना चाहिये। कुल जमा जबतक इन प्राकृतिक संसाधनों का उचित दोहन व इस्तेमाल नहीं किया जायेगा तब तक यह किसी भी राष्ट्र की क्षमता व शक्ति को बढ़ाने में बहुत अधिक कारगर नहीं होगा।

3.3.3, **आबादी-**

आबादी शक्ति का एक और महत्वपूर्ण प्राकृतिक अवयव है यदि यूरोपीय आधुनिक इतिहास पर नज़र डाले तो स्पष्ट है कि यूरोप की राजनीति में जिन देशों का सबसे अधिक महत्व रहा है जिन्हें शक्तिशाली स्थिति प्राप्त हुई है वे सब आबादी के लिहाज़ से काफी घनी थे। मुसोलिनी ने इटलीवासियों से आबादी बढ़ाने का आग्रह करते हुये कहा था 'बात साफ-साफ सोचना ही ठीक होगा। नौ करोड़ जर्मनों व बीस करोड़ स्लावों के सामने चार करोड़ इटालियनों की क्या हस्ती है'। परंतु यहाँ आबादी का आशय सक्रिय व जबावदेह आबादी से है। निष्क्रिय व गैर जिम्मेदार आबादी किसी राष्ट्र के लिये कई बार मुसिबत ही बन जाती है।

बड़ी आबादी का एक महत्वपूर्ण उपयोग सैनिक कार्यवाही में और आर्थिक उत्पादन में जनशक्ति के रुप में किया जा सकता है। कोरिया व हिंदचीन के युद्धों से यह अच्छी तरह सिद्ध हो गया है कि अब भी पैदल सेना के स्थान की पूर्ति और किसी चीज से नहीं की जा सकती है। यहाँ यह बात ध्यान देना आवश्यक है कि यदि किसी राष्ट्र के पास अपार जन शक्ति हो पर सैनिक संगठन में बंधी न हो तो इससे उसकी राष्ट्रीय शक्ति की वृद्धि नहीं हो सकती है। यदि किसी राष्ट्र के आर्थिक उत्पादन का परिणाम अनेक कारकों में से इस कारक पर भी निर्भर करता है कि देश के पास श्रमिक बल या मजदूर दल कितना है जो ठीक अर्थव्यवस्था के लिये सर्वथा आवश्यक है। मॉरगेन्थाऊ लिखते हैं कि घनी आबादी के बिना यह असंभव है कि आधुनिक युद्धों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिये आवश्यक औद्योगिक कारखाने निर्मित व संचालित किये जा सकें और न यह संभव है कि बड़ी संख्या में लड़ने वाले सिपाहियों की टुकरियाँ स्थल, जल व वायु में लड़ने के लिये प्रस्तुत की जाये।

3.3.4 **तकनीक**

राष्ट्रीय शक्ति को वृद्धि करने वाले प्रमुख तत्व के रुप में तकनीक का महत्वपूर्ण स्थान है। तकनीक या प्रोद्योगिकी के अंतर्गत आविष्कार से जुड़े सभी साधन आते हैं जिनसे राष्ट्र की भौतिक समृद्धि में सहायता मिलती है। क्विन्सी राइट के अनुसार, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के प्रशिक्षण के रुप में तकनीकी ज्ञान वह विज्ञान है जो अविष्कार और भौतिक संस्कृति की प्रगति को विश्व राजनीति से संयुक्त करता है। यह यांत्रिक पद्धतियों के विकास तथा युद्ध-कूटनीति,

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, यात्रा व संसार में उनके प्रयोग की कला है। स्पष्ट है कि चिरकाल से ही तकनीक ने राष्ट्रीय शक्ति की स्थिति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है और यह माना जाता है कि तकनीकी ज्ञान की दृष्टि से एक राष्ट्र जितना आगे बढ़ जाता है वह उतना ही शक्ति की नज़रिये से भी आगे आ जाता है। यहाँ यह देखना दिलचस्प होगा कि किस तरह से तकनीकी प्रगति के कारण ही संयुक्त राज्य अमेरिका और रुस की गणना संसार के महाशक्तियों में होती रही है। गौरतलब है कि तकनीकी प्रगति के अंतर्गत प्रमुख रुप से सैनिक तकनीक, औद्योगिक तकनीक व संचार तकनीक आता है।

3.3.5 **राष्ट्रीय मनोबल**

राष्ट्रीय मनोबल प्रमुख रुप से राष्ट्रीय शक्ति का एक महत्वपूर्ण तत्व है। किसी राष्ट्र के लोगों में राष्ट्र हित को व्यक्तिगत हितों से ऊपर रखने की तत्परता के रुप में जो गुण होते हैं उन सबको मिलाकर राष्ट्रीय मनोबल कहा जा सकता है। इस गुण का प्रमुख अंश है बलिदान की तत्परता। इस तत्परता का किसी राष्ट्र की सेना पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। अफसरों का मनोबल और आम जनता का मनोबल दो सर्वथा भिन्न वस्तुएँ हैं पर किसी राष्ट्रीय संकट के समय संकट का मुकाबला करने के लिये बलिदान करने व मुकाबला करने की तत्परता आम जनता में होनी भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी सशस्त्र सेनाओं पर बलिदान की तत्परता युद्धकाल में ही नहीं बल्कि शांतिकाल में भी राष्ट्रीय शक्ति का निर्माण करने में सहायक होती है। स्पष्ट है कि मनोबल को राष्ट्रीय चरित्र, संस्कृति, लोकप्रिय नेतृत्व, सुयोग्य सरकार व परिस्थिति काफी प्रभावित करती है।

3.3.6 **कूटनीति**

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में कूटनीति का महत्वपूर्ण स्थान है। मॉरगेन्थाऊ के अनुसार, किसी राष्ट्र की कूटनीति की उत्तमता इस बात पर निर्भर करती है कि यह तत्व कितना ही अस्थायी क्यों ना हो। गौरतलब है कि यदि मनोबल राष्ट्रीय शक्ति की आत्मा है तो कूटनीति उसका मस्तिष्क है। यदि कूटनीति का दृष्टिकोण दूषित है, उसके निर्णय गलत हैं उनके निश्चिय कमजोर हैं तो भौगोलिक स्थिति के तमाम लाभ, खाध्य पदार्थ, कच्चे माल, औद्योधिक उत्पादन की आत्म-निर्भरता, सैनिक तैयारी तथा आदमी के गुण व संख्या के लाभ में एक राष्ट्र के लिये कम योगदान दे पायेंगे। एक राष्ट्र जो कि इन लाभों पर गर्व कर सकता है, यदि उसकी कूटनीति चातुर्यपूर्ण नहीं है तो वह अपनी प्राकृतिक पूंजी के बल पर केवल क्षणिक सफलताएँ प्राप्त कर सकता है। ऐसे राष्ट्र को उस राष्ट्र के सम्मुख झुकना पड़ेगा जिसकी कूटनीति शक्ति दक्ष व पूर्ण है। अपने राष्ट्र की शक्ति संभावनाओं का पूर्ण लाभप्रद करके एक योग्य कूटनीति अपने राष्ट्र की शक्ति उस सीमा से अधिक बढ़ा सकती है जितना अन्य तत्वों के समन्वय के पश्चात कोई आशा कर सकता है। उत्तम श्रेणी की कूटनीति वैदेशिक नीति के लक्ष्य तथा साधन कर राष्ट्रीय शक्ति की उस सीमा से कहीं अधिक बढ़ा सकती है, जितना की कोई अन्य तत्वों से शक्ति वृद्धि के बारे में कतई नहीं सोच सकता है।

3.3.7 **शासन के गुण**

राष्ट्रीय शक्ति की अभिवृद्धि में राज्य में शासन का गुण यानि चरित्र कैसा है इस बात का भी काफी फर्क पड़ता है। हालांकि यह हमेशा से विवादास्पद रहा है कि अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लिये कौन सी प्रणाली अधिक उत्तम है। लोकतंत्रीय और एकाधिकारवादी दोनों ही प्रणाली को अन्य राज्यों के व्यवहार पर कारगर प्रभाव डालने में सफलता मिली है और इसलिये अपनी-अपनी सफलता की दृष्टि से दोनों प्रकार के राष्ट्र शक्तिशाली रहे हैं। अलबत्ता शासन का स्वरुप चाहे कुछ भी हो, परंतु राष्ट्रीय शक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि राष्ट्र में सुशासन है अथवा नहीं।

3.3.8 **नेतृत्व**

राष्ट्रीय शक्ति का एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व नेतृत्व है। राष्ट्र को दृढ़ करने के लिये प्राकृतिक साधनों, कच्चे माल, तकनीक, औद्योगिक क्षमता, सैनिक शक्ति तथा विचारधारा का उपयोग उस नेतृत्व पर निर्भर करता है जो राज्य की सरकार चलाता है। सैनिक व असैनिक योजनाएँ बनाना राजनीतिक नेताओं का काम है। विदेश नीति का निर्माण व उसे कार्यान्वित करने का उत्तदायित्व विशेष रुप से निर्णय निर्माताओं का काम है। नेतृत्व के मुख्य रुप से दो कार्य हैं जिनसे वह राष्ट्रीय शक्ति की अभिवृद्धि में सहायक होता है। प्रथम, नेतृत्व राष्ट्रीय शक्ति के अन्य तत्वों के बीच समन्वय की स्थापना करता है, दूसरा, राष्ट्र अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त कर सके इसके लिये भी उच्च गुणों वाले नेतृत्व का अस्तित्व आवश्यक होता है। स्पष्ट है कि नेतृत्व का स्पष्ट रुप से युद्ध काल में देखा जा सकता है। युद्ध काल में कुशल नेतृत्व निर्देशन व युद्ध नीति निर्माण का विशेष ध्यान रखता है। खाद्य सामग्री के भंडारों का संरक्षण, औद्योगिक कच्चे माल की रक्षा, राष्ट्रीय मनोबल को बढ़ाने आदि कार्य करने होते हैं। स्पष्ट रुप से ऐसे कार्यो का निष्पादन कुशल नेतृत्व द्वारा ही होता है। स्पष्ट रुप से शांतिकाल में भी देश में राजनीतिक नेतृत्व का अच्छा खासा महत्व होता है। शांतिकाल में सभी प्रकार की व्यवस्था सुचारु रुप से गतिवान बनी रहे यह कुशल नेतृत्व पर ही टिका होता है।

3.3.9 **विचारधारा**

राष्ट्रीय नेतृत्व के महत्वपूर्ण तत्व के रुप में विचारधारा का प्रमुख स्थान होता है। विचार व विचारधारा एक राज्य की शक्ति के तत्व रहे हैं। सरकार की जो विचारधारा होती है वह एकता व लोगों के समर्थन का साधन होती हैं। साम्यवाद की विचारधारा साम्यवादी राष्ट्रों के 1947 से 1989 के बीच शक्ति का साधन बनी रही। विचारधारा के द्वारा ही वे विश्व स्तर पर अपने प्रभुत्व का विकास व विस्तार कर सकता है। विचारधारा देश में रहने वाले लोगों व देश के बाहर रहने वालों के लिये एकता का साधन होती है। इसी तरह लोकतांत्रिक समाजवाद को अपनाकर भारत पश्चिमी लोकतंत्र व समाजवाद समर्थकों के साथ सहयोग व मैत्री का संबंध कायम कर सकता है।

3.3.10 **इंटेलिजेन्स**

राष्ट्रीय शक्ति का एक प्रमुख तत्व इंटेलिजेन्स भी है। आसूचना यानि इंटेलिजेन्स उस कार्य का नाम है जिससे विदेशी मामलों के बारे में सरकारी निर्णय समझदारी व दूरदर्शिता से किया जा सके। सच पूछा जाये तो सब शक्ति का प्रकार है। विशेष रुप से युद्ध के समय इसका काफी महत्व होता है। जब दुश्मन के हमले के समय हमले के स्थान तथा उसकी प्रबलता के बारे में पूर्व जानकारी हो तो विजय की संभावना बढ़ जाती है। इसी प्रकार शत्रु की किसी खास कमजोरी का ज्ञान भी सहायक हो सकता है।

3.3.11 **आर्थिक विकास व औद्योगिक क्षमता**

राष्ट्रीय शक्ति के अवयवों में यह महत्वपूर्ण स्थान रखता है जहाँ तक आर्थिक विकास का संबंध हैं किसी राष्ट्र की शक्ति का आधार उसका आर्थिक संगठन यानि उसके उद्योग विस्तार की मात्रा होती है। किसी देश की प्राकृतिक साधन संपदा से उसकी शक्ति में वृद्धि उसी हालत में हो सकती है। जब उन साधनों का पूरी तरह विकास किया जाये। विकास का यह प्रश्न प्रोधोगिकी और आर्थिक संगठन के विषय से सीधा जुड़ा हुआ है। इस संगठन का बड़ा आवश्यक तत्व यह है कि किसी उद्योग बहुल देश के पास अपने उपभोग की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर सकने की क्षमता हो। दूसरे शब्दों में, उनके पास फालतू संसाधन होना चाहिये। संतोषजनक आर्थिक संगठन वाला राज्य शक्ति की अनेक विधि का उपयोग कर सकता है जैसे पुरस्कार देना, अपने ऊँचे स्तर से अनुनय की शक्ति बढ़ने के कारण दूसरों पर अनुनय द्वारा प्रभाव डालना।

3.4 **राष्ट्रीय शक्ति की सीमाएँ**

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में राष्ट्रों के मध्य शक्ति संधर्ष एक विवाद रहित सच्चाई के रुप में सामने दिखाई पड़ती है। राष्ट्र-राज्य अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का मुख्य कर्ता है और वे अपने राष्ट्रीय हितों के उद्देश्यों की प्राप्ति शक्ति द्वारा करना चाहते हैं। इस सत्य के समर्थकों का विचार है कि राष्ट्रीय हितों व स्वार्थों का जन्म राष्ट्रीय शक्ति द्वारा होता है। इसलिये अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में प्रत्येक देश शक्ति प्राप्त करना चाहता है। शक्ति साधन भी है और साध्य भी। प्राय: प्रत्येक राष्ट्र शक्ति प्राप्त करना चाहता है, शक्ति प्रर्दशन करता है, शक्ति प्रयोग करता है तथा शक्ति में बढ़ोतरी चाहता है जिससे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में शक्ति संघर्ष एक प्रमुख विशेषता बन जाती है। परंतु राज्य द्वारा अपार व असीमित शक्ति के प्रयोग से युद्ध छिड़ सकता है और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में अराजकता व अव्यवस्था फैल सकती है। समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अनेक ऐसे तत्वों की सहायता ली गई है जिनसे राष्ट्रीय शक्ति का परिसीमन होता है। राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले बाहरी तत्व है –

3.4.1**शक्ति संतुलन (Balance of Power)** –

शक्ति संतुलन एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शक्ति प्रबंधन व शक्ति परिसीमन होता है। शक्ति संतुलन के बिगड़ने के खतरे से किसी भी देश को अनुचित रुप में शक्तिशाली बनने की आज्ञा नहीं होती है। यदि कोई राज्य अनुचित रुप से शक्तिशाली बनता है अथवा बनने का यत्न करता है तो दूसरे राज्य अकेले या सामूहिक रुप से अपनी शक्तियों को इकट्ठा करके उस राज्य के विरुद्ध शक्ति की प्रबलता खड़ी कर देते हैं। इस प्रकार ये राज्य युद्ध अथवा दूसरे साधनों के द्वारा चुनौती देने वाले राज्य की शक्ति को कम करके शक्ति-संतुलन को बनाये रखते हैं। इस सिद्धांत को 19वीं सदी में यूरोपीय देशों द्वारा अपने आपसी संबंधों की रक्षा हेतु प्रयोग में लाया गया था। 1815-1914 के वर्षों के दौरान बड़े युद्धों को रोकने के लिये यह व्यवस्था सफल रही। परंतु अब शक्ति संतुलन व्यवस्था में कई प्रकार के संरचनात्मक परिवर्तन से अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शक्ति नियंत्रण व शक्ति प्रबंधन में अपने महत्व को खो दिया है।

3.4.2 **अंतर्राष्ट्रीय कानून**

को भी अंतर्राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले बाहरी तत्व है। अंतर्राष्ट्रीय कानून एक ऐसी व्यवस्था है जिसके नियमों को राष्ट्र-राज्यों ने स्वीकार किया है और वे इसे मानने के लिये बाध्य ही हैं। इसी से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में उनका व्यवहार नियंत्रित होता है किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय शक्ति पर अंतर्राष्ट्रीय कानून का महत्वपूर्ण अंकुश हैं। अंतर्राष्ट्रीय परस्पर व्यवहार में जो देश लगे हुये हैं यह कानून उनके व्यवहार को नियंत्रित करता है और उन्हें निर्देशित देता है। युद्ध व शांति में सुचारु रुप से अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को चलाने के लिये अंतर्राष्ट्रीय कानून एक कानूनी ढांचा है।

3.4.3 **अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता**

अंतर्राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले तीसरा बाहरी तत्व है। जिस प्रकार समाज में मानवीय व्यवहार को नियंत्रित करने के लिये कुछ नैतिक नियम होते हैं। उसी प्रकार अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में राज्यों के व्यवहार को परिसीमन करने के लिये अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता होती है। शांति, व्यवस्था, समानता, अच्छाई, आपसी सहयोग, सभी लोगों के जीवन और उनकी स्वतंत्रता की समानता ऐसे मूल्य हैं जिन्हें प्रत्येक राज्य को एक अधिकार अथवा अच्छे मूल्य के रुप में स्वीकार कर लेना चाहिये और उनको व्यवहारिक रुप देना चाहिये। अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता व्यवहार की ऐसी नैतिक संहिता है जिसका पालन प्राय: सभी देश अपने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में करते हैं। यह नैतिक भावना प्रत्येक देश की राष्ट्रीय शक्ति का परिसीमन करने वाला एक तत्व बनती है।

3.4.4 **विश्व जनमत-** अंतर्राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाला चौथा तत्व है। विदेश नीति के लोकतंत्रीकरण व संचार क्रांति ने समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में एक संगठित व शक्तिशाली विश्व जनमत को जन्म दिया है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में यह एक महत्वपूर्ण तत्व बनकर उभरा है। संसार में शांति आंदोलन, परमाणु शस्त्रों का नियंत्रण

के लिये आंदोलन, पृथ्वी के वातावरण संतुलन की सुरक्षा के लिये शक्तिशाली व स्वस्थ्य वातावरण आंदोलन तथा ऐसे ही अनेक दूसरे आंदोलन हैं जिनसे विश्व जनमत के अस्तित्व का पता चलता है। राष्ट्रीय शक्ति का परिसीमन करने के लिये यह एक बड़ी तेज़ी से उभरती हुई शक्ति है। विपरित जनमत के डर से कई बार किसी देश को किसी विशेष नीति का अनुसरण करना छोड़ना पड़ता है। वैसे विश्व जनमत की अपनी कुछ सीमाएँ हैं, यह अक्सर शक्तिशाली व आक्रमक राष्ट्रवाद की भावना से लोहा लेने में असमर्थ हो जाता है।

3.4.5 **अंतर्राष्ट्रीय संगठन**

किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने में अंतर्राष्ट्रीय संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। 1919 से लेकर आजतक एक विश्व संस्था विद्यमान रही है। 1945 से संयुक्त राष्ट्र संघ कार्यरत है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लगभग सभी देश संगठन के सदस्य हैं। इसके चार्टर में कुछ उद्देश्यों की चर्चा की गई है जिन्हें प्राप्त करने के लिये एक सदस्य देश वचनबद्ध हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को शांतिमय व व्यवस्थित तरीके से चलाने के लिये एक भूमंडलीय मंच है। खाड़ी देश के बाद सोवियत संघ के विघटन के बाद तथा शीतयुद्ध की समाप्ति के काल में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका में एक सकारात्मक परिवर्तन हुआ है तथा यह संस्था और अधिक सक्रिय हो गई है।

3.4.6 **सामूहिक सुरक्षा**

किसी देश की राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने में सामूहिक सुरक्षा एक महत्वपूर्ण तत्व के रुप में स्थित है। सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था शक्ति प्रबंधन का एक अंतर्राष्ट्रीय साधन है और यह भी राष्ट्र शक्ति पर अंकुश रखती है। सामूहिक सुरक्षा अंतर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा के उद्देश्य के सिद्धांत पर आधारित है। सामूहिक सुरक्षा सिद्धांत के अंतर्गत किसी एक राष्ट्र की सुरक्षा का सवाल सभी से जुड़ा होता है।

3.4.7 **नि:शस्त्रीकरण व शस्त्र नियंत्रण**

किसी देश की राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने में नि:शस्त्रीकरण व शस्त्र नियंत्रण को रखा जाता है। सैनिक शक्ति राष्ट्रीय शक्ति का एक बड़ा आयाम है इसलिये शस्त्रीकरण इसका अपरिहार्य भाग है। नि:शस्त्रीकरण तथा शस्त्र नियंत्रण को राष्ट्रीय शक्ति के परिसीमन के लिये एक विधि माना जाता है। शस्त्र नियंत्रण का अर्थ है शस्त्र दौर पर अंकुश लगाना विशेषतया परमाणु शस्त्रों की दौर को अंतर्राष्ट्रीय निर्णयों, नीतियों व योजनाओं द्वारा रोकने का यत्न करना। शस्त्र नियंत्रण तथा नियंत्रण की दिशा में जितनी सफलता मिलेगी उतना ही राष्ट्रीय शक्ति का परिसीमन हो सकेगा।

3.5 **सारांश-**समग्र रुप से देखा जा सकता है कि राष्ट्रीय शक्ति किसी भी अंतर्राष्ट्रीय देश में संलग्न राष्ट्रों के बीच आपसी प्रर्तिस्पर्धा को बढ़ाने का महत्वपूर्ण कारक होता है। परंतु यह बात महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय शक्ति को प्राप्ति करने संबंधी बहुत सारे तत्व हैं मसलन भूगोल, प्राकृतिक संसाधन, जनसंख्या, तकनीक विचारघारा, राष्ट्रीय चरित्र, राष्ट्रीय मनोबल, नेतृत्व। स्पष्ट है कि इन सभी शक्तियों के तत्व के साथ-साथ बहुत सारे अन्य तत्व भी होते हैं जो राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने के लिये कारगर होते हैं। शक्ति संतुलन, अंतर्राष्ट्रीय कानून, अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता, वैश्विक जनमत संग्रह आदि महत्वपूर्ण हैं। समग्र रुप से आज के बदलते वैश्विक युग में शक्ति के संबंध में बहुत सारे कारक उपलब्ध होते हैं। इनमें से कुछ कारक बहुत महत्वपूर्ण व अपरिहार्य होते हैं वहीं कुछ कारक थोड़ा कम महत्वपूर्ण। परंतु सभी कारक कहीं ना कहीं काफी महत्वपूर्ण व प्रासंगिक माने जाते हैं। आज के वैश्विक ग्राम की दुनिया में राष्ट्रीय शक्ति की अवधारणा के बदलते स्वरुप की मीमांसा बहुत जटिल परंतु रोचक है। आज के समय राजनीतिक युद्ध के स्थान पर विज्ञान व तकनीकी प्राधान्यता देखने को मिलती है। आज राष्ट्रीय शक्ति के विस्तार के लिये मिडिल किंग्डम जैसी विस्तारवादी मान्यता के स्थान पर विकासवादी मान्यता पर बल दिया जा रहा है। अतएव कोई भी राष्ट्र आज शक्ति को यदि प्राप्त करना चाहता है उसे विज्ञान व तकनीकी रुप से शक्तिशाली व

समृद्ध होना चाहिये। समकालीन समय में शक्ति के विकासवादी परिप्रेक्ष्यों को शामिल करते हुये कोई भी राष्ट्र आज विकास के चरम पर पहुँच सकता है। इसलिये यदि विश्व व्यवस्था में समतामूलक विकास को अंदाज देना हो, प्रगति व उन्नति के क्षेत्र में नया इतिहास लिखना हो तो ऐसे मुल्क के लिये शक्ति का वरण करना अपरिवार्य ही नहीं अनिवार्य होगा।

3.6 **शब्दावली**

शक्ति संघर्ष – अंतराष्ट्रीय राजनीति में शक्ति संघर्ष एक अनिवार्य सच्चाई के रुप में प्रतीत होती है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी प्रतिष्ठा, पैठ व अंतराष्ट्रीय बिरादरी में अपना दबदबा बनाने के लिये इसका प्रयोग करता है।

शक्ति संतुलन – शक्ति संतुलन एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें शक्ति प्रबंधन व शक्ति परिसीमन होता है। इसके अंतर्गत अनुचित रुप से शक्तिशाली साधनों के प्रयोग की अनुमति नहीं होती है।

अंतर्राष्ट्रीय कानून – अंतराष्ट्रीय कानून एक ऐसी व्यवस्था को बहाल करता है जिसके नियमों को राष्ट्र- राज्यों ने स्वीकार किया है और वे इसको मानने के लिये बाध्य होते हैं। किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीय शक्ति पर अंतराष्ट्रीय कानून का महत्वपूर्ण अंकुश होता है।

अंतराष्ट्रीय नैतिकता- कानून के अलावा नैतिकता भी मानवीय व्यवहारों को नियंत्रित व निर्देशित करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह राज्यों के व्यवहारों को नियंत्रित करने का काम करता है। नैतिक भावना जब अंतराष्ट्रीय स्तर पर प्रवेश करती है तब यह विश्व बंधुत्व को बहाल करने का काम करती है।

विश्व जनमत- विदेश नीति के लोकतंत्रीकरण व संचार क्रांति ने समकालीन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में एक संगठित व शक्तिशाली विश्व जनमत को जन्म दिया है।

- क- राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले प्रमुख कारकों को लिखें
- ख- कूटनीति

क- राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने वाले बहुत सारे कारक शामिल हैं। इसमें प्रमुख रुप से शक्ति संतुलन, अंतर्राष्ट्रीय कानून, अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता, विश्व लोक जनमत, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, सामूहिक सुरक्षा, नि:शस्त्रीकरण व अस्त्र नियंत्रण। शक्ति संतुलन अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में तनाव की स्थिति से उबाड़ने व शक्ति के प्रबंधन तथा परिसीमन पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय कानून, किसी भी राष्ट्र की शांतिकाल व युद्धकाल दोनों ही स्थितियों में एक व्यवस्था बनी रहे इसके लिये जरुरी होता है। इस प्रकार यह कानून एक कानूनी ढांचा के रुप में होता है। इस कानून को नहीं मानने पर किसी भी राष्ट्र पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता समाज में नैतिकता पूर्ण व्यवहार को बनाये रखने के लिये अपरिहार्य है। अंतर्राष्ट्रीय नैतिकता एक नैतिक पूर्ण व्यवहार को बहाल करने संबंधी नैतिक संहिता है। विश्व जनमत, विदेश नीति के लोकतंत्रीकरण व संचार संबंधी नज़रियों को बढ़ाता है। राष्ट्रीय शक्ति को परिसीमन करने के लिये यह एक बड़ी तेजी से उभरती हुई शक्ति है। अंतर्राष्ट्रीय संगठन, राष्ट्रीय शक्ति को परिसीमित करने के लिये काफी कारगार उपाय माना जाता है। इससे संबंधित महत्वपूर्ण संस्था है संयुक्त राष्ट्र संघ। इसके चार्टर में कुछ उद्देश्यों की चर्चा की गई है जिसको प्राप्त करने के लिये सभी देश वचनबद्ध रहते हैं। सामूहिक सुरक्षा भी राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करने संबंधी महत्वपूर्ण तत्व है। सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था शक्ति प्रबंधन का एक अंतर्राष्ट्रीय साधन है और यह भी भी राष्ट्रीय शक्ति पर अंकुश रखती है। नि:शस्त्रीकरण व शस्त्र नियंत्रण किसी राष्ट्र की शक्ति को नियंत्रित करने से जुड़ी एक महत्वपूर्ण तत्व है।

ख- कूटनीति अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण रणनीति के रुप में प्रयोग किया जाता है। यदि मनोबल राष्ट्रीय शक्ति की आत्मा है तो कूटनीति उसका मस्तिष्क है। स्पष्ट है कि मॉरगेन्थाऊ के अनुसार, एक कुशल राजनय या कूटनीति

जो शांति संरक्षण के लिये तत्पर है, अंतिम कार्य है कि वह अपने ध्येयों की प्राप्ति के लिये उपयुक्त साधनों को चुने। राजनय को तीन प्रकार के साधन प्राप्त होते हैं, अनुनय, समझौता व शक्ति की धमकी।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 **संदर्भ ग्रन्थ**

1.मॉरगेन्थू, हैन्स (1960), *पॉलिटिक्स अमोंग नेशन*, मैकमिलन-हिल ह्युमेनिटिज़।

2.ऑरगेन्सकी (1958), *वर्ल्ड पॉलिटिक्स*, द यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया।

3.फाड़िया, बी.एल (2008), *अंतर्राष्ट्रीय राजनीति*, साहित्य भवन पब्लिकेशन : आगरा

3.9 **सहायक उपयोगी/ पाठ्य सामग्री**

1.एंड्रयु, हैवुड (2011), *ग्लोबल पॉलिटिक्स*, पेलग्रेव मैकमिलन।

2.हंटिगटन (1919), *वर्ल्ड पावर एण्ड इवोल्यूशन*, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू हेवेन।

3.10 , **निबंधात्मक प्रश्न**

1.राष्ट्रीय शक्ति के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुये इसके प्रमुख तत्वों को स्पष्ट करें व साथ-साथ इसको सीमित करने संबंधी तत्व को रेखांकित करें?

इकाई- 4 : शक्ति सन्तुलन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 शक्ति सन्तुलन: अर्थ

4.4 शक्ति सन्तुलन सिद्धान्त का ऐतिहासिक विकास

4.5 नयी शक्तियों का उदय और बदला शक्ति सन्तुलन

4.6 शीत युद्ध के दौर में शक्ति सन्तुलन

4.7 शीत युद्ध का अंत तथा शक्ति सन्तुलन का अवमूल्यन

4.8 विचारधारा के रूप में शक्ति सन्तुलन

4.9 शक्ति सन्तुलन स्थापित करने के साधन

- 4.9.1 क्षतिपूर्ति
- 4.9.2 हस्तक्षेप
- 4.9.3 मध्यवर्ती राज्य
- 4.9.4 शस्त्रीकरण
- 4.9.5 विभाजन तथा शासन
- 4.9.6 मैत्री सन्धियाँ

4.10 शक्ति सन्तुलन का मूल्यांकन

समूहिक सुरक्षा

मुलभूत सिद्धांत

मूलभूत समस्याएं

असफलता के कारण

4.11 सारांश

4.12 शब्दावली

4.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.14 संदर्भ ग्रन्थ

4.15 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.16 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

शक्ति सन्तुलन का सिद्धान्त शक्ति और शक्ति-संघर्ष की अवधारणा के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। इसके मूल में यह निहित है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय किसी भी एक शक्ति को दूसरे से इतना अधिक शक्तिशाली नहीं बनने दिया जा सकता कि वह उन पर अपना आधिपत्य स्थापित कर सके या तमाम अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम को अपनी इच्छानुसार एकाधिकारी ढंग से प्रभावित करने की क्षमता उसे हासिल हो जाए। जिस शक्ति-संतुलन की बात अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ में की जाती है वह वास्तव में यूरोपीय इतिहास की पृष्ठभूमि में ही अच्छी तरह समझी जा सकती है। शक्ति सन्तुलन पिछली चार शताब्दियों से यूरोप तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बड़ी भूमिका अदा करता रहा है। अतः इस सिद्धान्त को अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का एक मौलिक सिद्धान्त तथा राजनीति का एक आधारभूत नियम माना जाता है। शक्ति सन्तुलन स्थापित करने के लिए राज्यों को सदैव प्रयत्नशील रहना पड़ता है। शक्ति सन्तुलन किसी विशिष्ट राजनीतिक व्यवस्था का आवश्यक लक्षण नहीं है लोकतांत्रिक और सर्वाधिकारवादी दोनों प्रकार के राज्य इसका प्रयोग कर सकते है। शक्ति सन्तुलन के खेल में केवल बड़े राष्ट्र ही खिलाड़ी होते है छोटे राष्ट्र इसका शिकार बनते है अथवा दर्शक के रूप में रहते है। शक्ति सन्तुलन को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की एक स्थिति, एक प्रक्रिया, एक नीति और व्यवस्था के रूप में चित्रित किया जा सकता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि वर्त्तमान समय में शक्ति सन्तुलन के लिए आवश्यक दशाएँ नहीं है अतः शक्ति सन्तुलन का सिद्धान्त वर्त्तमान समय में लागू नहीं हो सकता। दूसरी ओर कुछ विचारक शक्ति सन्तुलन सिद्धान्त को आज भी सार्थक मानते है। उनका कहना है कि शक्ति पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय समाज के लिए शक्ति सन्तुलन का सिद्धान्त अनिवार्य है। माँरगेन्थाऊ का कथन है कि ''शक्ति सन्तुलन और उसे बनाए रखने का उद्देश्य लेकर चलने वाली नीतियाँ केवल अपरिहार्य ही नहीं है, बल्कि प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रों के समाज के अपेक्षित्व स्थायित्व लाने वाले तत्व है।''

इस प्रकार शक्ति सन्तुलन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। यह सच है कि विश्व की राजनीतिक स्थिति में बदलाव के कारण इस सिद्धान्त को कमतर करके आका जाता है। परन्तु फिर भी यह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का सारभूत सिद्धान्त है जिसका अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अपना महत्व है।

4.2 उद्देश्य

शक्ति सन्तुलन व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य शान्ति तथा सुरक्षा कायम रखना है। इस व्यवस्था के द्वारा शान्ति को स्थायित्व प्रदान किया जाता है। शक्ति सन्तुलन में छोटे राज्यों का उद्देश्य होता है कि उनकी स्वाधीनता की सुरक्षा बनी रही। शक्ति संतुलन द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अस्तित्व को कायम रखा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून का क्रियान्वयन शक्ति संतुलन पर ही आधारित है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति सन्तुलन का उद्देश्य है शक्तियों का समान वितरण। यह इस मान्यता पर आधारित है कि शक्ति सन्तुलन की उपेक्षा से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति के तत्व की उपेक्षा प्रगट होती है। शक्ति सन्तुलन का उद्देश्य होता है कि राज्यों के व्यवहार को इस प्रकार नियमित करने का प्रयास किया जाए कि आक्रमण तथा विस्तावाद को असंभव बना दिया जाए।

4.3 शक्ति सन्तुलन: अर्थ

शक्ति सन्तुलन की अवधारणा का अर्थ स्पष्ट करना बड़ा कठिन है। ''रिचार्ड कॉब्डेन'' के शब्दों में ''शक्ति सन्तुलन एक विचित्र उलझन भरा शब्द है, जो केवल भ्रमात्मक मिथ्या सत्य ही नहीं वरन् ऐसी अव्यक्त व्यवस्था का परिचायक है जिसकी कभी स्थापना नहीं की जा सकती।''

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के परिपेक्ष्य में शक्ति सन्तुलन से अभिप्राय है कि विभिन्न राष्ट्रों के बीच कम से कम स्थूल सन्तुलन कायम होना। ''श्लीचर'' के शब्दों में ''शक्ति सन्तुलन व्यक्तियों तथा समुदायों की सापेक्ष शक्ति की ओर संकेत करता है।'' ''क्लॉड'' के अनुसार ''शक्ति सन्तुलन एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें विभिन्न स्वतन्त्र राष्ट्र अपने आपसी शक्ति सम्बन्धों को बिना किसी बड़ी शक्ति के हस्तक्षेप के स्वतन्त्रतापूर्वक संचालित करते है। इस प्रकार यह एक विकेन्द्रित व्यवस्था है जिसमें शक्ति व नीति निर्णायक इकाइयों के हाथों में ही रहती है। ''कॉल्डेन'' के अनुसार ''एक राष्ट्र को स्वयं अपनी तथा अपने पड़ोसी राष्ट्रों की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए शक्ति सन्तुलन की स्थापना करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। स्वतन्त्रता, शन्ति, स्थिरता तथा सार्वजनिक सुरक्षा के लिए शक्ति सन्तुलन आवश्यक है, क्योंकि एक निश्चित सीमा के बाद एक राज्य की बढ़ती हुई शक्ति अन्य सभी राज्यों को प्रभावित करने लगती है। इतना ही नहीं, एक राज्य का अत्यधिक शक्तिशाली होने का अर्थ है अन्य राज्यों का विनाश और पराजय। पड़ोसी राष्ट्रों में स्थिरता और शान्ति स्थापित करने का केवल एक ही उपाय है कि सब राष्ट्रों की शक्ति करीब-करीब समान और तुल्य ही रहे।'' ''डिकिंसन'' के मतानुसार सन्तुलन शब्द का प्रयोग समानता और असमानता दोनों ही अर्थों में किया जाता है। लेखा सन्तुलन का अर्थ होते है समानता, लेकिन जब सन्तुलन किसी एक के हित में हो तो इसका अर्थ होता है असमानता। शक्ति सन्तुलन का सिद्धान्त प्रथम अर्थ का दावा करता है किन्तु दूसरे के लिए प्रयत्नशील रहता है।

एक अन्य विद्वान ''जॉन स्पिकमैन'' ने इसका सुन्दर विश्लेषण करते हुए कहा है कि ''राज्यों को केवल इस बात में दिलचस्पी होती है कि तुला का पलड़ा अपने पक्ष में झुका हुआ हो, क्योंकि अपने सम्भावित शत्रु के मुकाबले उस जैसा शक्तिशाली होने में कोई वास्तविक सुरक्षा नहीं है। सुरक्षा केवल इस बात में निहित है कि आप अपने शत्रु से अधिक शक्तिशाली हो।'' यह तथ्य इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि 1914 के प्रथम विश्वयुद्ध से पहले यूरोप के राज्य दो गुटों में बंटे हुए थे एक गुट फ्रांस, ब्रिटेन ओर रूस का था और दूसरा गुट जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी तथा टर्की के राज्य का। इन दोनों की शक्ति लगभग सन्तुलित थी और दोनों पक्ष इस प्रयत्न में थे कि वे इस सन्तुलन को किस प्रकार अपने पक्ष में करें। इटली युद्ध छिड़ने पर काफी समय तक किसी पक्ष के साथ खुल्लमखुल्ला सम्मिलित होने में हिचकिचाता रहा, यद्यपि उसने जर्मनी के साथ गुप्त संधि की हुई थी। युद्ध में मित्र राष्ट्रों का पलड़ा भारी होने पर वह उनकी ओर से लड़ाई में सम्मिलित हुआ।

उपरोक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने पर हम पाते है कि शक्ति सन्तुलन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की एक स्थिति, एक प्रक्रिया, एक नीति और व्यवस्था के रूप में चित्रित किया जा सकता है शक्ति सन्तुलन विशिष्ट स्थिति का द्योतक है जिसमें शक्ति संबंध लगभग बराबरी के आधार पर होता है। कैनेथ टॉमसन, मॉरगेन्थाऊ, चर्चिल आदि ने शक्ति सन्तुलन के सिद्धान्त को विदेश नीति के परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया है। वे यह मानते है कि सन्तुलन शक्ति खरतनाक होती है। विदेश नीति की दृष्टि से राष्ट्र उसी समय शक्ति सन्तुलन की अवधारणा स्वीकार करते है जबकि वे अन्य राज्यों की तुलना में प्रबल हों। चर्चिल ने शक्ति सन्तुलन को ब्रिटिश विदेश नीति की अद्भुत परम्परा बताया था। मार्टिन वाइट, ए.जे.पी. टेलर, चार्ल्स लर्च आदि शक्ति सन्तुलन को एक पद्धति मानते है। आधुनिक विश्व में जहाँ बहुत सारे राज्य है, शक्ति सन्तुलन द्वारा एक व्यवस्था स्थापित की जा सकती है।

हॉन्स जे. मॉरगेन्थाऊ ने शक्ति के चार अर्थ बताए हैं -

1. राज्यों में शक्ति के वितरण पर जोर देने वाली नीति।
2. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के यथार्थवादी स्वरूप का चित्रण करने वाला सिद्धान्त।
3. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति का समान वितरण।
4. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में राजनीतिक शक्ति वितरण को प्रकट करने वाली शब्दावली।

इसे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का यथार्थवादी सिद्धान्त कहा जाता है। यह इस मान्यता पर आधारित होता है कि शक्ति सन्तुलन की उपेक्षा से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति के तत्व की उपेक्षा प्रकट होती है।

4.4 शक्ति सन्तुलन के सिद्धान्त का ऐतिहासिक विकास

जहाँ कही राज्य व्यवस्था की बहुल प्रणाली विद्यमान रहती है, शक्ति सन्तुलन की अवधारणा का अस्तित्व रहता है। प्राचीन समय में भी इस सिद्धान्त का प्रयोग होता था, विशेष रूप से यूनान के नगर राज्यों की व्यवस्था में तथा मिस्र, बेबीलोन, भारत तथा चीन की राज्य प्रणाली में। ''डेविड ह्यूम ने अपने एक निबंध ''ऑफ द बायलेन्स ऑफ पावर'' में इसे ए प्रेवेंलिग नेशन ऑफ एनसियन्ट टॉइम'' कहा है। भारत के भी शासक शक्ति सन्तुलन, सिद्धान्त का व्यवहार करते रहते थे। ''कौटिल्य' के ''मण्डल सिद्धान्त'' में शक्ति सन्तुलन की धारणा के बीज निहित है।

शक्ति सन्तुलन सिद्धान्त की वास्तविक शुरूआत 15वीं शताब्दी से होती है। इटली के राज्यों की राजनीति के परिचालन में इस सिद्धान्त का प्रयोग होता रहा है। 'मैकियावेली'' के ''प्रिंस'' में इस ओर संकेत किया गया है। वेनिस नाम के नगर राज्य तो सन्तुलनकर्ता की भूमिका का निर्वाह भी करने लगा था। सोलहवीं शताब्दी में फ्रांस और हैप्सबर्ग के बीच अधिभावी शक्ति सन्तुलन चलता था। इंग्लैण्ड ने शक्ति सन्तुलन की कूटनीति का आश्रय लिया और उसने फ्रांस एवं रोमन राज्य के मध्य सन्तुलन बनाए रखने का प्रयत्न किया। सन् 1648 की वेस्टफेलिया की सन्धि ने राष्ट्रीय-राज्य की स्थापना की और शक्ति सन्तुलन सिद्धान्त की भूमिका और अधिक सार्थक दिखाई देने लगी। 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उत्तरी यूरोप में एक पृथक शक्ति सन्तुलन का विकास स्वीडन की शक्ति के द्वारा बाल्टिक सागर के निकटवर्ती राष्ट्रों को दी गयी एक चुनौती से हुआ। 18वीं शताब्दी का काल खासतौर से 1713 की यूट्रैक्ट की सन्धि से पोलैण्ड के प्रथम विभाजन (1772) तक का समय शक्ति सन्तुलन अवधारणा के विकास का स्वर्ण युग माना जाता है।

18वीं शताब्दी के अंतिम चरण में और 19वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर पाँच राज्य ऐसे थे जो बड़ी शक्ति के रूप में पहचाने जाते थे। इनमें से पहला ग्रेट ब्रिटेन था जो अकार और जनसंख्या की दृष्टि से अन्य बड़ी ताकतों से बहुत छोटा था पर औद्योगीकरण के युग का सूत्रपात करने के कारण और अपने एशियाई साम्राज्य के संसाधनों के स्वामित्व के कारण, उनसे कही अधिक ताकतवर और प्रभावशाली बन गया था। जब से सर फ्रांसिस ड्रेक ने स्पेन की नौसेना को जबर्दस्त शिकस्त दी थी, तब से ब्रिटेन की नौसेना को चुनौती देने वाला कोई नहीं बचा था। दूसरी बड़ी ताकत फ्रांस था, नेपोलियन के शासनकाल में कई बार ऐसा लगता कि वह ब्रिटेन को पीछे धकेल अव्वल बन बैठेगा परन्तु नेपोलियन की हार के बाद फ्रांस राजनैतिक उथल-पुथल के दौर से गुजरता रहा और ब्रिटेन को चुनौती देना उसके लिए सहज-संभव नहीं रहा। तीसरी बड़ी शक्ति प्रशा था। प्रशा के सम्राट सैनिक दृष्टि से ताकतवर थे, पर अनेक सूबों के स्थानीय शासक अपनी अलग सांस्कृतिक-आर्थिक पहचान बनाये हुए थे। यूरोप में उन्हें पहले दर्जे की ताकत मानने वाले कम थे। उनका प्रभुत्व ज्यादा से ज्यादा आस्ट्रिया-हंगरी वाले प्रतिद्वंद्वी सम्राज्य तक ही सीमित रहता था। चौथी बड़ी शक्ति आस्ट्रिया-हंगरी था। यह एक बहुराष्ट्रीय राज्य था जिसकी एकता का एकमात्र सूत्र हैप्सवर्ग राजवंश था। पाँचवी बड़ी शक्ति रूस था। रूस का फैलाव किसी भी दूसरी शक्ति से कही ज्यादा था, परन्तु उसका आकार ही उसे यूरोप में सक्रिय हस्तक्षेप से रोकता था। उसकी पहचान एक यूरेशियाई ताकत के रूप में थी जो दूसरे यूरोपीय देशों से कहीं अधिक पिछड़ा और दकियानूस था। उसे अन्य बड़ी शक्तियाँ अपने संयुक्त सैनिक मोर्चे को ताकतवर, अजेय बनाने के लिए ही गाढ़े वक्त में बुलाती थी, अन्यथा उसे उसी के हाल पर छोड़ दिया जाता था। रूस को भी इसमें ज्यादा एतराज नहीं था। जब नेपोलियन ने रूस पर

आक्रमण किया इसके बाद से यूरोप के अन्य बड़ी ताकतों ने इसी में अपना भला समझा कि यूरोपीय शक्ति सन्तुलन में जोड़-तोड़ करते वक्त, रूस को औरों के बराबर नहीं समझा जाए।

4.5 नयी शक्तियों का उदय और बदला शक्ति सन्तुलन

यह समझना गलत होगा कि शक्ति सन्तुलन बुनियादी तौर से बदलता नहीं था। जिन दो बातों ने स्थिति को आमूल-चूल बदल डाला था, उनमें रूस में बोल्शेविक क्रान्ति और इसके पहले जापान का एक ताकतवर सैनिक शक्ति के रूप में उदय था। प्रथम विश्वयुद्ध में बहुत बड़े पैमाने पर नरसंहार हुआ था और सैनिकों के साथ-साथ निर्दोष नागरिकों को भी हताहत होना पड़ा था। सबसे ज्यादा तबाही फ्रांस और जर्मनी को झेलनी पड़ी थी इसी कारण इन दो देशों के बीच कड़वाहट बहुत ज्यादा बढ़ गई। पारम्परिक रूप से यूरोप के नेतृत्व के लिए प्रतिस्पर्धी इन दो देशों का बैर काफी खतरनाक बन गया था। जर्मनी पर वर्षाय की संधि थोपा गया यह तमाम परिस्थिति नाजी पार्टी के उत्थान में सहायक सिद्ध हुई। जर्मनी 1919 से 1936-37 तक इस स्थिति में नहीं था कि उसे दूसरी बड़ी ताकते बराबरी का दर्जा दे, शक्ति सन्तुलन को नियंत्रित करने के लिए अपने साथ रख सकें। फ्रांस भले ही जीतने वाले पक्ष के साथ था, परन्तु उसकी अर्थव्यवस्था ध्वस्त हो चुकी थी और वह भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बड़ी शक्ति समझे जाने लायक नहीं रही थी। रूस, सोवियत संघ में बदल चुका था, और वह अपनी सीमाओं के भीतर ही नई साम्यवादी व्यवस्था को सुरक्षित रखने को आतुर था। इसी क्रान्ति के कारण प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान नई सोवियत सरकार ने जर्मनी के साथ अलग सन्धि कर ली थी और शक्ति सन्तुलन की अवधारणा को खास जबर्दस्त धक्का लगा दिया था। रूस में इस क्रान्ति के पहले तभी से बदलाव दिखाई देने लगा था जब वह जापान से पराजित हुआ था। किसी एशियाई शक्ति के हाथों पराजित होने वाला वह पहला यूरोपीय देश है।

इस पराक्रम के बाद जापान की गिनती बड़ी शक्तियों में होने लगी थी और उसे भी यूरोपीय शक्ति सन्तुलन के संदर्भ में महत्वपूर्ण समझा जाने लगा था। वाशिंगटन के नौ-सैनिक सम्मेलनो में उसकी भूमिका खासी महत्वपूर्ण रही थी। दो विश्वयुद्धों के अंतराल में जो नया शक्ति संगठन उभर कर सामने आया वह 19वीं सदी के परस्पर विरोधी, प्रतिस्पर्धी सैनिक संगठनों से बहुत फर्क नहीं था। इसके साथ 20वीं सदी में एशिया और अफ्रीका के उपनिवेशों में मुक्ति संग्राम गतिशील हुए। यूरोप के प्रतिस्पर्धी देशों ने अपने प्रतिद्वंद्वी को कमजोर करने के लिए उसके प्रभुत्व वाले उपनिवेशों में स्वाधीनता संग्राम को प्रोत्साहन देन लगा। इस सब का नतीजा यह हुआ कि 1945 में युद्ध विराम तक पारम्परिक शक्ति सन्तुलन को फिर से स्थापित करना असंभव हो चुका था, विश्व पर द्वितीय विश्वयुद्ध का खतरा मंडराने लगा। द्वितीय विश्वयुद्ध के विनाश के कारण अब कोई भी यूरोपीय राष्ट्र वास्तव में ताकतवर नहीं रह गया था। एटमी हथियारों के प्रयोग ने शक्ति की परिभाषा ही बदल डाली थी। एटमी हथियारों के बिना अब कोई भी देश अपने को बड़ी शक्ति नहीं कह सकता था। अमरीका विश्व में नई शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया। दूसरी ओर सोवियत संघ को भले ही युद्ध में भारी क्षति पहुँचा हो फिर भी वह दूसरी शक्ति के रूप में उभर कर आयी।

4.6 शीत युद्ध के दौर में शक्ति सन्तुलन

शीत युद्ध के वर्षो में दो महाशक्तियों के बीच भले ही आतंक का सन्तुलन राजनयन के लिए निर्णायक महत्व का रहा हो, क्षेत्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सन्दर्भ में पारम्परिक शक्ति सन्तुलन और कुछ दशक तक प्रभावशाली रहा। प्रारम्भिक वर्षो में पूंजीवादी पश्चिम देश, अमेरिका और यूरोप साम्यवादी खेमे के सोवियत संघ और चीन को सन्तुलित करते रहे पर शीघ्र ही दोनों खेमों में सहयोगियों के बीच असंतोष की सुगबुगाहट देखने को मिलने लगी। जनरल द गाँल ने फ्रांस के ऐतिहासिक राष्ट्रीय गौरव का झंडा लहराते हुए अमेरिकी प्रभुत्व को चुनौती दी और सोवियत संघ तथा चीन के साथ अपने राष्ट्रीयहित को अलग से समायोजित करने की चेष्टा की। इन्हीं वर्षो में यूरोपियन साम्यवाद का उफान देखने में आया जिसमें स्तालिनवादी-लेनिनवादी रूसी अथवा माओवादी चीनी

साम्यवाद की अन्तर्राष्ट्रीय स्थापनाओं को नकारते हुए, यूरोपीय साम्यवादी विकल्प तलाशने की सार्थक कोशिश की गई थी। 1950 के मध्य से ही यह बात जगजाहिर हो चुकी थी कि पूर्वी यूरोप के अनेक साम्यवादी देश सोवियत संघ के उपग्रह या उपनिवेश बने रहने को तैयार नहीं। चीन में माओवादी साम्यवाद, सोवियत साम्यवाद से अलग सैद्धान्तिक स्थापनाएँ करता था। सोवियत चीन कलह ने भी अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति सन्तुलन को काफी प्रभावित किया। इस तमाम घटनाक्रम के कारण गुटनिरपेक्ष देशों को यह मौका मिला कि वे अपेक्षाकृत स्वायत्त स्वाधीन विदेश नीति का अनुसरण कर सके। इस पूरे दौर में शक्ति सन्तुलन खासा लचीला और निरन्तर परिवर्तनशील रहा।

4.7 शीत युद्ध का अंत तथा शक्ति सन्तुलन का अवमूल्यन

1970 के दशक के आरम्भ में अमेरिकी विदेश सचिव, हेनरी किसिंजर ने नए सिरे से 19वीं सदी के नमूने वाले शक्ति सन्तुलन को एक बार फिर स्थापित करने का प्रयत्न किया। किसिंजर ने एक साथ संयुक्त राज्य अमेरिका के संबंध तात्कालीन सोवियत संघ और माओवादी चीन के साथ सुधारने की सफल कोशिश की। इसी के साथ-साथ उन्होंने दक्षिण पूर्व एशिया से अमेरिकी सेनाओं की वापसी का मार्ग प्रशस्त किया। मध्य पूर्व में किसिंजर के प्रयासों से ही कैंप डेविड समझौता सम्पन्न हुआ। इन सभी घटनाओं ने महाशक्तियों के बीच तनाव घटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और शक्ति सन्तुलन के बारे में फिर से सोचा जाने लगा। 1971 के तेल संकट और 1973 का अरब-इजराइली संघर्ष ने पश्चिमी देशों के गठबंधन में असुरक्षा का भाव बढ़ा दिया था। 19वीं सदी की तरह इस वक्त भी शक्ति सन्तुलन का आकर्षण सामूहिक सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण बन चुका था। परन्तु इस नए शक्ति सन्तुलन के स्थापित होने के पहले ही अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य एक बार फिर नाटकीय ढंग से बदल गया। वाटर गेट कांड में फंसने के बाद निक्सन को पद त्याग करना पड़ा। चीन में माओ युग का अवसान होने लगा। सोवियत संघ के विघटन और विलय की प्रक्रिया ब्रेजनेव के देहांत के साथ ही शुरू हो गई थी। इस सब के कारण किसिंजर ने जिस शक्ति सन्तुलन की कल्पना की थी वह 1990 के दशक तक बिल्कुल ही निरर्थक लगने लगा था।

4.8 विचारधारा के रूप में शक्ति सन्तुलन

माँरगेन्थाऊ ने शक्ति सन्तुलन की अवधारणा को एक विचारधारा के रूप में प्रस्तुत किया है। माँरगेन्थाऊ के अनुसार शक्ति सन्तुलन उन राष्ट्रों की आत्मरक्षा की युक्ति है जिनकी स्वतन्त्रता एवं अस्तित्व को दूसरे राष्ट्रों की शक्ति में असंगत वृद्धि से भय है। शक्ति सन्तुलन का प्रयोग विशुद्ध रूप में आत्मरक्षण के स्पष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त होता है। राष्ट्रों में व्याप्त शक्ति की प्रतिस्पर्द्धा सिद्धान्तों पर हावी हो जाता है। वे उन सिद्धान्तों को छिपाने, उनको युक्तियुक्त सिद्ध करने एवं स्वयं को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए उनको विचारधाराओं में रूपान्तरित कर देते है। साम्राज्य स्थापित करने के लिए उत्सुक राष्ट्र ने बहुधा यही दावा किया है कि वह केवल साम्यावस्था चाहता है। राष्ट्रों की सापेक्ष शक्ति स्थितियों के सही मूल्यांकन की कठिनाइयों ने शक्ति सन्तुलन को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की विचारधाराओं में से एक बना दिया है। पश्चिम देशों में शक्ति सन्तुलन की बात वह करता है जोकि गैर-अमेरिकी राष्ट्रों की नीतियों द्वारा विक्षुब्ध हो सकता है। इसी प्रकार भूमध्य सागर में सन्तुलन की बात वह करता है जिसकी रूसी घुसपैठ से रक्षा होनी चाहिए। एक विचारधारा के रूप में शक्ति सन्तुलन का प्रयोग शक्ति सन्तुलन की यांत्रिकी में अन्तर्निहित कठिनाई पर जोर देता है। इस प्रकार शक्ति सन्तुलन ऐसी वास्तविकता और क्रिया का प्रदर्शन करता है जो वास्तव में उसमें नहीं है। इसीलिए इसमें वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को बनावटी रूप देने युक्तिसंगत सिद्ध करने तथा न्यायसंगत ठहराने की प्रवृत्ति रहती है।

4.9 शक्ति सन्तुलन स्थापित करने के साधन

शक्ति सन्तुलन के लिए राज्य कौन-कौन से साधन अपनाते है? अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के समीक्षकों ने मोटे तौर से छः साधन बताए है जिनसे राष्ट्र शक्ति संतुलन अपने पक्ष में करने की कोशिश करते हैः

4.9.1 क्षतिपूर्ति

क्षतिपूर्ति या मुआवजे की नीति से अभिप्राय है कि एक राज्य को उतना दो जितना उससे ले लिया गया है ताकि अन्तर्राष्ट्रीय तुल्यभारिता बनी रहे। युद्धों के पश्चात् शान्ति सन्धियों में इसी आधार पर राज्यों के क्षेत्रों में प्रदेशों का आदान-प्रदान होता है और सीमाओं में परिवर्तन किया जाता है कि राज्यों की तुलनात्मक शक्ति यथापूर्व बनी रहे। सन् 1713 में यूट्रैक्टर सन्धि द्वारा प्रथम बार स्पेन द्वारा अधिकृत भूमि को बांटकर शक्ति सन्तुलन स्थापित करने की कोशिश की गयी थी। इस प्रकार पोलैण्ड का तीन बार विभाजन 1772, 1793 तथा 1795 में किया गया और तीनों बार उसका बँटवारा इस प्रकार किया गया कि सन्तुलन कायम रहे। भू-भागों के वितरण में केवल क्षेत्रफल को ही ध्यान में नहीं रखा जाता वरन् उसकी उर्वरता, औद्योगिक क्षमता तथा साधनों की प्रचुरता का भी ध्यान रखा जाता है। माँरगेन्थाऊ के अनुसार ''राजनीतिक समझौते को जन्म देने वाली राजनयिक वार्ताओं की सौदेबाजी भी अपने सामान्यतम रूप का सिद्धान्त ही है और इस प्रकार वह शक्ति सन्तुलन का एक अंग है।''

4.9.2 हस्तक्षेप

कभी-कभी शक्तिशाली राज्य सन्तुलन स्थापित करने की दृष्टि से अन्य राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करते है। एक देश शस्त्रीकरण, औद्योगीकरण एवं उत्पादन बढ़ाकर शान्तिप्रिय राज्य के स्थान पर आक्रामक राज्य बन सकता है जिसका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर पड़ता है। अतः ऐसी स्थिति में अन्य राज्य या तो मूक-दर्शक बना रह सकता है अथवा प्रत्यक्ष हस्तक्षेप कर सकता है। 1648 में वेस्टफेलिया की सन्धि के बाद से यूरोप की राजनीति का यह मुख्य सिद्धान्त रहा है कि कोई भी राज्य अन्य राज्यों की अपेक्षा बहुत अधिक शक्ति सम्पन्न न हो, सब राज्यों में शक्ति सन्तुलन बना रहे। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत ब्रिटेन ने जोर्डन में, अमरीका ने ग्वांटेमाला, क्यूबा, लेबनान, लाओस, कम्बोडिया और वियतनाम तथा सोवियत संघ ने उत्तरी कोरिया, पूर्वी जर्मनी, चकोस्लोवाकिया एवं अफगानिस्तान में हस्तक्षेप किया है। ये समस्त हस्तक्षेप यथापूर्व स्थिति को बनाए रखने अथवा शक्ति सन्तुलन को अपने पक्ष में मोड़ने के लिए किए गए। हस्तक्षेप की अन्तिम उग्र स्थिति युद्ध होता है। जबकि युद्ध के उपरान्त शक्ति सन्तुलन की स्थिति बदल जाती है।

4.9.3 मध्यवर्ती राज्य

शक्ति सन्तुलन स्थापित करने का तीसरा तरीका है मध्यवर्ती राज्य एक ऐसा तटस्थ बफर राज्य स्थापित किया जाए जो दुर्बल हो और दो बड़े गैर-मित्र देशों के बीच में स्थित हो। ऐसे मध्यवर्ती राज्यों का काम है दोनों बड़े अमित्र राष्ट्रों को अलग रखकर उनमें युद्ध छिड़ने की गुंजाइश कम करना। प्रथम विश्वयुद्ध से पहले रूस और जर्मनी के बीच पोलैण्ड, फ्रांस तथा जर्मनी के बीच बेल्जियम और हॉलैण्ड तथा भारत और चीन के बीच तिब्बत मध्वर्ती राज्य का काम करता था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व दो शक्तिशाली गुटों में विभक्त हो गया और उनके बीच सन्तुलन स्थापित करने के लिए मध्यवर्ती राज्य के अस्तित्व का महत्व बढ़ गया था जो अवरोधक का काम करें।

4.9.4 शस्त्रीकरण

माँरगेन्थाऊ के अनुसार जिन प्रधान साधनों द्वारा एक राष्ट्र अपनी शक्ति से शक्ति सन्तुलन बनाए रखने अथवा उसको पुनः स्थापित करने का प्रयत्न करता है, अस्त्र-शस्त्र हैं। जब कभी कोई राष्ट्र अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाता है तब इसके प्रतियोगी राज्य भी इसकी बराबरी में आने के लिए शस्त्रों की प्रतिस्पर्धा में पड़ जाते है। शस्त्रीकरण की यह होड़ यद्यपि सन्तुलन के लिए होती है तथापि इसके कारण गतिशील शक्ति सन्तुलन की स्थिति का निर्माण होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीका और सोवियत संघ में शस्त्रीकरण की प्रतिस्पर्धा कुछ ऐसी ही थी।

4.9.5 विभाजन तथा शासन

शक्ति सन्तुलन स्थापित करने के लिए राज्य शत्रुपक्ष के साथी राष्ट्रों में फूट डालने का भी प्रयत्न करते है जिससे उसके शत्रु आपस में न मिल सके, उनमें फूट रहे और वे कमजोर बने रहें। फ्रांस की नीति जर्मनी तथा शेष यूरोप के साथ सोवियत संघ की नीति। 17वीं शताब्दी से द्वितीय विश्वयुद्ध के अंत तक फ्रांसीसी विदेश नीति का अपरिवर्तनीय सिद्धान्त रहा है कि या तो वह जर्मनी साम्राजय के बहुत से छोटे स्वतंत्र राज्यों में विभाजन का पक्ष ले या एक एकीकृत राष्ट्र के रूप में ऐसे राज्यों का सम्मेलन न होने दे। इसी प्रकार सोवियत संघ ने निरन्तर यूरोप के एकीकरण की सभी योजना का विरोध इस मान्यता पर किया कि यूरोपीय राष्ट्रों का एक पाश्चात्य गुट में एकत्रीकरण सोवियत संघ के शत्रुओं को इतनी शक्ति दे देगा, जिससे उनकी सुरक्षा को खतरा हो जाएगा।

4.9.6 मैत्री सन्धियाँ

मैत्री सन्धियाँ शक्ति सन्तुलन स्थापित करने का मुख्य आधर रही है। परमार तथा पर्किन्स के अनुसार यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि राज्यों की प्रत्येक सन्धि का संबंध शक्ति सन्तुलन से रहता है, चाहे उसका विस्तार क्षेत्रीय हो, गोलार्द्धीय हो या विश्वव्यापी। जब भी कोई एक राज्य अन्य राज्यों की तुलना में शक्तिशाली होने लगता है, अन्य राज्य आशंकित हो उठते है। ये सभी भयभीत राज्य आपस में मैत्री संधियाँ करके इस शक्तिशाली राज्य के विरुद्ध संगठित हो जाते है। इनके संगठित होने से शक्तिशाली राज्य अपने को अकेला अनुभव करता है और प्रत्युत्तर में प्रतिसंधियाँ करने लगता है। इस प्रकार का क्रम तब तक चलते रहता है जब तक कि विश्व के सभी राष्ट्र स्पष्ट रूप से विरोधी गुटों में संगठित हो कर बँट नहीं जाते। मैत्री संधि और प्रतिमैत्री संधियाँ यूरोपीय राजनीति का मुख्य अंग रही है।

इस प्रकार अपने अनुकूल शक्ति सन्तुलन बनाए रखने के लिए राज्य इन छः में से कोई भी तरीका अपनाते रहते है।

4.10 शक्ति सन्तुलन का मूल्यांकन

आइनिस क्लाइड ने लिखा है कि शक्ति सन्तुलन सिद्धान्त के सफल क्रियान्वयन के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक है - प्रथम, शक्ति थोड़े से स्थानों पर केन्द्रित होकर व्यापक रूप से बहुत से राज्यों के बीच विभाजित होनी चाहिए। द्वितीय, नीति का नियंत्रण उन लोगों के द्वारा होना चाहिए जो कूटनीतिक खेल के चातुर्यपूर्ण खिलाड़ी है और जो किसी विचारधारा के साथ बंधे हुए नहीं है। तृतीय, शक्ति के तत्व सीधे-सादे स्थायी होने चाहिए। चतुर्थ, युद्ध पर होने वाला खर्च इतना अधिक होना चाहिए कि राज्य आसानी से आश्रय न ले सके। पंचम, यथापूर्व स्थिति की व्यवस्था को दी जाने वाली चुनौतियाँ क्रान्तिकारी नहीं होनी चाहिए, षष्ठ, यथासम्भव एक सन्तुलनकर्ता होना चाहिए। परन्तु आज शक्ति पहले जैसे बोधगम्य नहीं है, वे दिन-प्रतिदिन दुरूह होते जा रहे है। कार्ल जे फ्रैडरिक के मत में ''अब यह सिद्धान्त बिल्कुल अर्थहीन हो गया है क्योंकि यह किसी समस्या का समाधान नहीं करता। न न्याय की स्थापना करता है न अन्तर्राष्ट्रीय घटना का विश्लेषण करने में सहायक होता है और न ही सद्भावना बढ़ाने में।'' शक्ति सन्तुलन सिद्धान्त राज्य को शक्ति संचय के लिए प्रेरित करता है। इसमें राज्य भयग्रस्त रहते है। क्योंकि अधिकतम शक्ति को प्राप्त करने की इच्छा सार्वभौमिक है ताकि कभी ऐसा न हो कि विरोधी उनको शक्ति स्थिति से वंचित कर दें। शक्ति सन्तुलन शक्ति का आदर्श वितरण नहीं है। मॉरगेन्थाऊ के अनुसार ''शक्ति सन्तुलन के पलड़े कभी भी यथावत सन्तुलित नहीं होंगे। न समता का सही बिन्दु पहचानने योग्य ही होते है, न उसके पहचानने की आवश्यकता ही है।'' शक्ति सन्तुलन युद्धों का कारण बने है। चार्ल्स पंचम से हिटलर तक के बहुत से उदाहरण विद्यमान है। माँरगेन्थाऊ ने शक्ति सन्तुलन सिद्धान्त की आलोचना करते हुए इसे एक अनिश्चित, अवास्तविक और अपर्याप्त सिद्धान्त बताया है।

इन कमियों के बावजूद भी शक्ति सन्तुलन सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीत का सारभूत सिद्धान्त है। यह सच है कि अमरीका तथा सोवियत संघ के बीच शक्ति के एक नए द्विधुरवीकरण के जन्म से तथा साथ ही किसी सन्तुलनकर्ता

के अभाव के कारण वर्त्तमान में यह सिद्धान्त पुराना पड़ गया है। तथापि फ्रांस और चीन ने द्विधुरवीय व्यवस्था को चुनौती देना प्रारम्भ कर दिया था। जर्मनी और जापान विश्व राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने की आकांक्षा रखते है अतः निकट भविष्य में शक्ति सन्तुलन सिद्धान्त का महत्व और भी अधिक बढ़ने वाला है। जब तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति राष्ट्र-राज्य प्रणाली पर आधारित रहेगी शक्ति सन्तुलन उसका अनिवार्य तत्व रहेगा। भले ही सैद्धान्तिक रूप से उसमें कितनी ही कमियाँ क्यों न रह जाए। फ्रेडरिक के मत में ''आज की अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता की तुलना में शक्ति संतुलन कहीं अधिक वांछनीय है, यद्यपि शक्ति संतुलन भी मानव स्वभाव और विश्व राजनीति की अपूर्णता का ही द्योतक है।

समूहिक सुरक्षा

- सुरक्षा हेतु किया जाने वाला सामूहिक प्रयास दुनिया में यदि शांति स्थिरता लानी है तो इसके लिए सभी को प्रयास करने होंगे। इसके लिए सामूहिक प्रयास जरूरी होगा। यह तभी संभव हो पाएगा जब सभी राष्ट्र किसी भी आक्रमण को रोकने का सामूहिक प्रयास करेंगे। यह कैसे होगा यह-संगठन द्वारा होगा। जब इस सामूहिक प्रयास को एक संगठन का रूप देंगे तभी यह संभव हो पाएगा। फलस्वरूप दो संगठन बने --

1 -प्रथम विश्व युद्ध के बाद.League of Nation(राष्ट्र संघ)

2 - द्वितीय विश्व युद्ध के बाद .United Nation Organization(संयुक्त राष्ट्र संगठन)

सामूहिक सुरक्षा एक ऐसी कानूनी रूप से स्थापित यांत्रिकी की ओर संकेत करता है जिसे किसी राज्य द्वारा किसी अन्य राज्य पर आक्रमण रोकने या दबाने के लिए आकार दिया जाता है। अर्थात, सामुहिक सुरक्षा एक तंत्र की स्थापना की बात करता है क्योंकि यदि कोई राज्य किसी अन्य राज्य पर आक्रमण करता है तो उसे अन्तर्राष्ट्रीय शांति स्थिरता के लिए दबाया रोका जा सके। /

मुलभूत सिद्धांत :

ONE FOR ALL AND ALL FOR ONEअर्थात एक सभी के लिए और सभी एक के लिए एक राज्य पर आक्रमण सभी राज्यों पर आक्रमण माना जाएगा और सभी राज्य द्वारा उस आक्रमणकर्ता का मुकाबला किया जाएगा। यहां आक्रमण का आधर व्यक्तिगत न होकर सामूहिक होता है जो सामूहिक सुरक्षा के लिए जरूरी भी है यह तभी संभव है जब सभी राष्ट्र एक तंत्र से जुड़े हो।

इसके तहत दो तरह की बातें -

1. जिस पर आक्रमण हुआ हैवास्तविक पीड़ित -

2.जिसने आक्रमण किया है वास्तविक आक्रमणकारी -

वास्तविक क्यों ?

क्योंकि यहां यह संकेत मिलता है कि पहले यह पहचान करना होगा कि आक्रमण किसने और किसपर किया गया। वही ऐसा न हो जाए अपने उपर हमला करने हल्ला करे कि हमारे उपर आक्रमण हुआ है। और इस आधर अपने व्यक्तिगत दुश्मनों पर निशाना साध पाए।

कदम ऐसे हो जिससे वास्तविक पीड़ित की सम्प्रभुता सुरक्षित हो सके सैन्य, आर्थिक मदद, शांति सेना की मदद वास्तविक आक्रमणकारी के लिए सामूहिक धमकी या दण्ड दिया जाएगाकूटनीतिक दबाब -, प्रतिबंध द्वारा या सैन्य कार्यवाई द्वारा।

मूलभूत समस्याएं

1.आक्रमणकारी की पहचान करना अर्थात किसी सशस्त्र संघर्ष में सभी राष्ट्र इस बात पर एकमत हो कि कौन आक्रमणकर्ता है। सभी की रजामंदी हो तभी कार्यवाही संभव होगी।

2.सुरक्षा के प्रति समान दृष्टिकोण अर्थात सभी राष्ट्र इस बात पर समान रूचि रखते हो कि आक्रमण को रोका जाए चाहे वह किसी भी स्रोत से संबंधित हो, जुड़ा हो। भले ही वह किसी का मित्र हो या किसी से उसका हित जुड रहा हो। अपनी संकीर्ण राष्ट्रहित को परे रखकर कदम उठाना होगा।

अरब इजराइल युद्धइसमें हमेशा संयुक्त राज्य अमेरिका का हित इजराइल के साथ रहा -, USSR का अरब से साथ, ऐसा नही होना चाहिए।

3.सभी राष्ट्र आक्रमणकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही में भाग लेने के लिए स्वतंत्र व सक्षम हो। अर्थात सभी राष्ट्र को इस सामूहिक कार्यवाही में शामिल किया जाय जिसमें उसकी सहमति भी होनी चाहिए।

4.सामूहिकता की कुल शक्ति इतनी पर्याप्त हो कि वो आक्रमण को परास्त कर सके। ऐसा न हो कि नेपाल), भूटान, बंग्लादेश, श्रीलंका जैसे देश चल पड़े संयुक्त राज्य अमेरिका से लडने(

5.इस उद्वेश्य को आकार देने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता होती है। जिसके कानूनी आधार, कुछ सिद्वांत हो और जिसके बातों को सभी सदस्य मानने को तत्पर रहते हों।

NATO इसलिए नहीं हो सकता है, क्योंकि यह क्षेत्रीय सैन्य संगठन तथा संकीर्ण हित से संबंधित है जबकि संयुक्त राष्ट्र संगठन विश्व शांति की बात करता है, इसका दायरा बहुत ही विस्तृत है।

प्रश्न उठता है कि आखिर क्यों सामूहिक सुरक्षा से राज्य जुड़ना चाहते है? क्योंकि

1.यह सभी राज्यों की सुरक्षा की वायदा करना है न केवल शक्तिशाली राज्यों की चूँकि सभी राष्ट्र युद्ध की धमकी से डरते है इसलिए वे इसमें शामिल होने की पहल करते है। (संयुक्त राष्ट्र संगठन के रूप मे (

2.सैद्धांतिक रूप से सामूहिक सुरक्षा का सिद्वांत अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को और अधिक निश्चितता प्रदान करता है कम से कम युद्ध के खिलाफ एकजुट प्रत्युत्तर देकर। संबंधों में निश्चितता इसलिए आती है क्योंकि सभी राष्ट्र युद्ध को रोकना चाहते है युद्ध तथाप्रथम विश्व|द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उत्पन्न हुए नए प्रकार का संबंध।

3.सामूहिक सुरक्षा स्पष्ट समस्या पर ध्यान देता है जो कि आक्रमण की होती है जिसे किसी सदस्य राज्य की भौगोलिक एकता व राजनैतिक स्वतंत्रता के सैनिक उल्लंघन के रूप में देखा जाता है सामूहिक सुरक्षा अपने उद्देश्यों के लिए अस्पष्ट नहीं है उद्वेश्य बिल्कूल ही स्पष्ट है।

भौगोलिक एकता तथा राजनीति स्वतंत्रता ये किसी राष्ट्र का राष्ट्रहित है जो सामुहिक सुरक्षा की संकल्पना से जुड़ जाता है क्योंकि कोई भी राष्ट्र अपनी माँगों एकता तथा राजनीतिक स्वतंत्रता खोना नहीं चाहेगा। अतः सामूहिक सुरक्षा तथा राष्ट्रीय हित में कोई मतभेद नही है। राष्ट्रीय हित व सामूहिक सुरक्षाएक दूसरे के पूरक है उसमें किसी भी तरह का विरोध नही है। इसी पूरकता की आड़ में कोई राष्ट्र सामूहिक सुरक्षा से जुड़ना चाहता है।इस संकल्पना के आकार पहली बार दिया गया

प्रथम विश्व युद्ध के बाद पहली बार सामूहिक सुरक्षा को आकार देने का प्रयास किया गया। क्योंकि इतनी भयावह परिस्थितियाँ पहले कभी नही हुआ था। शांति सुरक्षा की बात मानव जीवन की उत्पति से की जाती रही है, परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध एक भयावह परिघटना थी जिसमे एक साथ करोड़ो लोग मारे गए थे। इस प्रकार के युद्ध को भविष्य में टालने के लिए ब्रिटेन, फ्रांस तथा अमेरिका के राष्ट्रपति ने पेरिस में सम्मेलन बुलाकर वर्साय की संधि के माध्यम से लीग ऑफ नेशन्स की स्थापना की परन्तु 1931- जापान ने मुचूरिया पर आक्रमण किया|1935-36 इटली ने एबीसीनिया | पर आक्रमण किया (इथोपिया)1937- जर्मनी ने चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया तीनों | आक्रमणLeague of nations के बनने के बाद हुए परन्तु उक्त संगठन कुछ नहीं कर पाया। स्पष्ट है कि सामूहिक सुरक्षा ठीक ढंग से काम नहीं कर रहा था। league of nations की असफलता भी सबसे बड़ा प्रमाण

द्वितीय विश्वयुद्ध का होना था जो पहले विश्वयुद्ध से भी ज्यादा भयावह थी जिसने परमाणु हथियार तक प्रयोग किए - गए।league of nations की असफलताओं क्यों हुई यह एक बड़ा प्रश्न है।

असफलता के कारण

1. संयुक्त राज्य अमेरिका जो कि संस्थापक देश था और USSR दूसरी बड़ी शक्ति के रूप में उभर रहा था इस व्यवस्था से अलग रहे। साथ ही जर्मनी, जापान जैसे देश भी अलग रहे वर्साय की संधि जर्मनी) (शामिल नहीं थे) (केखिलाफ बनाई गई।

2. प्रथम विश्व युद्ध के बाद जो स्थितियाँ बनी उसम (वर्साय की संधि के बाद)े ं दो तरह की विचारधारा आइ,- यथास्थिति बनी रहे स्थितियों के समर्थक अर्थातवर्साय की संधि के बाद की परि), जर्मनी का अमानवीय शोषण - फ्रांस, समर्थक ब्रिटेन। कुछ देश जो इस यथास्थिति को बदलने की बात कर रहे थे -

जर्मनी, इटली,(इटली को बँटवारे में उसके अनुसार हिस्सा नही मिल पाया था था इसलिए इटली परिवर्तन की बात कर रहा था।जर्मनी को शोषित राष्ट्र था |

ये स्थितियाँ दर्शाती है कि यूरोप में कोई सामूहिक हित नही था, जाहिर है इस स्थिति में सामुहिक सुरक्षा सफल नही हो सकता और न ही हुआ। सामूहिक सुरक्षा के प्रयास तभी सफल हो सकते है जो सभी राष्ट्रों के हित एक से हो सामूहिक सुरक्षा की अवधारणा व्यवहार में इसलिए भी असफल हो गई क्योंकि सभी राष्ट्रों के हित भिन्नभिन्न थे - इसकारण से सामूहिक सुरक्षा के तंत्र के रूप में राष्ट्र संघ असफल हो गया।

3. तुष्टिकरण की नीतिअपने संकीर्ण हित के ल -िए दूसरे को प्रोत्साहित करना ताकि अपने दुश्मन को अप्रत्यक्ष रूप से पराजित किया जा सके। इंग्लैंड की दुश्मनी जर्मनी से जर्मनी की USSR सोवियत संघ, वही इंग्लैण्ड की USSR से।यदि यहाँ जर्मनी USSR पर हमला करता है और इंग्लैड़ कुछ न कहे या जर्मनी को अप्रत्यक्ष रूप से शह दे तो यह नीति तुष्टिकरण की होगी। 1935 में इटली ने अबीसीनिया पर जब हमला किया तब इंग्लैंड़ तथा फ्रांस ने कुछ नही किया यही तुष्टिकरण की नीति ने|League of nation असफल कर दिया। 1937 में हिटलर ने चेकोस्लाविया पर कब्जा कर लिया यदि इसे रोक लिया गया होता तो शायद द्वितीय विश्व युद्ध होता ही नहीं।

सामूहिक सुरक्षा के तथा इसके एक तंत्र के रूप में राष्ट्र संघ के असफल होने के बाद इसपर सामूहिक सुरक्षा तथा शक्ति संतुलन शक्ति संतुलन के मानने या न मानने पर विवाद छिड़ा जिसमें रूजवेल्ट ने शक्ति संतुलन पर जोर दिया। अंततः निष्कर्ष तथा एकमत संयुक्त राष्ट्र की स्थापना पर हुआ। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना पूरी तरह से सिर्फ सामुहिक सुरक्षा की स्थापना के लिए नही था।सामूहिक सुरक्षा के साथसाथ शक्ति संतुलन के सिद्वांत से भी - गया। शामिल किया

संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद शक्ति संतुलन को दर्शाती है। संयुक्त राष्ट्र भी महासभा सामूहिक सुरक्षा को दर्शाती है।

सुरक्षा परिषद के पास Veto Power(निषेधाधिकार) है जिसके तहत किसी भी सदस्य राष्ट्र की असहमति पर किसी भी प्रस्ताव को समाप्त किया जा सकता है। Veto Power का दिया जाना देशों के महज संतुलन बैठाने के प्रयास के रूप में देखा जाता है। सुरक्षा परिषद की गठन पूर्व के परिस्थितियों को देखते हुए दिया गया जिसमें उसके सदस्य देशों को एक विशेष दर्जा दिया गया है।

संयुक्त राष्ट्र संगठन_ की भूमिकात रहीमिश्रि - है। सफलता व असफलता दोनों ही हाथ लगी है। निरपेक्ष रूप से सफल या असफल नही कहा जा सकता है। महण् कोरिया संकट 1950। उत्तर कोरिया ने दक्षिण कोरिया पर 1950 में हमला किया। इस हमले से रोकने की बात की गई इंग्लैंड़ संयुक्त राज्य अमेरिका -, कनाडा जो दक्षिण कोरिया

के लिए आगे आए परन्तु USSR तथा चीन उत्तर कोरिया के समर्थन में आगे आए अंततः 1953 में किसी प्रकार युद्ध रूका। संयुक्त राष्ट्र संगठन_ इस मसले पर विफल हो गया क्योंकि यहां आपस में गुटबंदी हो गया।

ii .स्वेज संकट 1956

मिश्र ने स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण कर दिया जिसका विरोध इजराइल फ्रांस, ब्रिटेन ने किया फलतः प्रतिक्रिया हुई - संयुक्त राज्य अमेरिका तथाUSSR दोनों इजराइल, फ्रांस ब्रिटेन के खिलाफ दवाब बनाया जिसके कारण युद्ध रूक गया। यहां दोनो संयुक्त राज्य अमेरिका तथा USSR के हित मिले और युद्ध रूका। फलतः कहा बूढ़ा जा सकता है कि सामूहिक सुरक्षा के प्रयास सफल हुआ। इसे संयुक्त राष्ट्र द्वारा उठाया गया कदम माना। जबकि समाहित करने का योग संयुक्त राज्य अमेरिका तथा USSR का है।

iii .1991 का खाड़ी युद्धज्य अमेरिका इराक ने कुबैत पर कब्जा किया जिसके परिणामस्वरूप इराक पर संयुक्त रा - तथा 28 सहयोगी देशों ने हमला किया । जिसपर संयुक्त राष्ट्र की सहमति थी। इस समय USSR विघटन की प्रक्रिया से गुजर रहा था जिससे उसने इसमें भाग ही नही लिया। यहां भी संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से सामूहिक सुरक्षा के प्रयास सफल साबित हुआ।

iv. **पुनः खाड़ी, संकट**

ने बगैर किसी ठोस कारण के इराक पर हमला किया, क्योंकि संयुक्त राज्य अमेरिका की नजर में इराक ऐसा हथियार बना राह था जिससे मानव जाति के बड़े पैमाने पर नरसंहार का संकेत मिलते है। परन्तु अभी तक ऐसा प्रमाण नही मिल पाया है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि रूस,फ्रांस व फलस्वरूप चीन ने इस हमले व विरोध् किया जिसके फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र से प्रस्ताव पारित नहीं हो पाया बावजूद इसके संयुक्त राज्य अमेरिका ने इराक पर हमला किया। से खुद महासचिव कोफी अनान इसे अनुचित बताया। अतः यहां सामूहिक सुरक्षा व्यवहारिक रूप से तथा उसके एक महत्पूर्ण यंत्र के रूप मे संयुक्त राष्ट्र असफल साबित हुआ अतः कहा जा सकता है कि सामूहिक सुरक्षा का| Machenism अपने आप में उतना सक्षम नहीं है बल्कि सैद्धांतिक रूप से यह व्यवस्था अन्तर्राष्टीय राजनीति के शक्ति समीकरणों से निर्धारित हो रही है।सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्था उन परिस्थितियों से निर्धारित हो रही है जो उस समय शक्ति समीकरण अस्तित्व में था। जैसे राष्ट संघ के समय शक्ति समीकरण यूरोपीय देशों द्वारा निर्धारित हो रही थी तो द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा की स्थापना में शक्ति समीकरणों को सुरक्षा परिसद के रूप में स्वीकार किया गया था, शक्ति की संकल्पना चूंकि बदलती रही है। फलतः शक्ति संतुलन तथा Power equation भी बदलतें रहे है और ये सभी जब बदलेंगे, तब शक्ति समीकरण अपनी बदलती हुई परिस्थितियों मे संयुक्त राष्ट्र को प्रभावित करेंगा क्योंकि संयुक्त राष्ट्र की स्थापना में भी सुरक्षा परिषद के रूप में Power equation को मान्यता 5 राष्ट्रों को विशेष शक्ति देकर किया गया। इस कारण से ही अलगअलग युद्-ध या उदाहरण में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार बदलती रही है। कुल मिलकर यदि संयुक्त राष्ट्र को यदि शक्ति संतुलन संगठन के रूप में देखते है जिसकी स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के बाद एक नए विश्व को दिशा देने हेतू हुआ था।यूरोप के पास स्थित शक्तिधीरे समाप्त होकर संयुक्त राज्य -समीकरण धीरे- अमेरिका तथाUSSR के पास हस्तांतरित होती चली गई। क्योंकि तब वहां Power Vaccuum की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। फलतः इस Vaccuum को भरने के लिए आए दोनो देश संयुक्त राज्य अमेरिका or USSR दोनो ही आमने सामने हो गए। कोरिया-, वियतनाम, केबोड़िया, भारतपाक।-

यहां दोनो देश अपनेहिसाब से कार्य तथा स्वतंत्र हो रहे नवोदित राष्ट्रों को अपने पक्ष में करने की पुरजोर अपने- सामने हो गए।-कार्य तथा कब्जा करने कोशिश करने लगे। स्वाभाविक दोनों ही आमने

निश्चित तौर पर Power Vaccuum भरने के लिए राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हित कों तथा शक्ति संतुलन की जगह सामूहिक सुरक्षा अधिक वरीयता देंगें। जाहिर तौर पर दोनों के राष्ट्रीय हित अलगअपने -अलग होते गए। अपने- संयुक्त राज्य अमेरिका कहेगा।,उत्तरी कोरिया आक्रमणकारी है ,हित के लिए जबकि ऐसी स्थिति में सामूहिक सुरक्षा के Machanismके रूप में में संयुक्त राष्ट्र विशेष सफल नही रहा है। वास्तविक आक्रमणकारी की पहचान आज ज्यादा कठिन हो गया है। ऐसी स्थिति में जबकि Power equation इसी के ईदगिर्द घूम रही थी - गुटबाजी शुरू हो गई है फलतः शक्ति संतुलन की संकल्पना घूमिल पड़ गई।

यदि जैसा कि कहा जाता है कि Unipolarity की इस युग में तथा जो इसे स्मंक कर रहा है और यदि वे ही आक्रमण हो जाए तो उसे कोन रोकेगा। क्योंकि हम जानते है कि सामूहिक सुरक्षा के तहत कदम तभी उठाए जाते है जब सामूहिक प्रयास में पर्याप्त शक्ति होती है। ऐसी स्थिति में Unipolarity को leader जैसाकि संयुक्त राज्य अमेरिका को माना जाता है यदि वही आक्रमक हो जाए तो पर्याप्त शक्ति कहां से लाया जाय, क्योंकि मान्यता यह है कि विश्व एक ध्रुवीय है। जैसा कि माना जाता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका सर्वशक्तिशाली है। संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा इराक पर हमले के मामले में रूस, चीन, फ्रांस ने केवल विरोध किया, सेना नही उतारी, क्योंकि इन देशों के पास संयुक्त राज्य अमेरिका की तुलना में पर्याप्त शक्ति नहीं है। स्वाभाविक रूप से संयुक्त राष्ट्र संगठन को असफल होना ही है।

गैरज्य तक सीमित नही रह गया है। गैर राज्य वर्तमान विश्व में शक्ति का मामला अब केवल रा -राज्यीय कर्त्ताः- कर्त्ता जैसे आतंकवादी संगठन यदि किसी राज्य कोअपना निशाना बनाता है । तो उसे कैसे रोका जाय? क्योंकि वर्तमान विश्व में राज्य प्रायोजित आतंकवादी क्रियाकलाप भी काफी बढें है। ऐसी स्थिति में सुरक्षा के प्रति चुनौतियों पहले की तुलना में काफी बढ़ गए है। आतंकवादी क्रियाकलाप चुंकि वैश्विक हो गई है। इसलिए अब तक चुनौतियों और भी बढ़ गया है। इसके आढ में संयुक्त राज्य अमेरिका ने अफगानिस्तान तथा इराक पर हमला किया। तो प्रश्न उठता है कि ऐसे हमले से क्या आतंकवाद समाप्त हो गया है नही। ऐसी स्थिति में विश्व के सामने मौजूद परिस्थितियां इस वैश्विक आतंकवादी क्रियाकलापों के खिलाफ पहले की तुलना में और भी सामूहिक प्रयास की मांग करता है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि प्रयास की सामूहिकता पर पहले की तुलना में और अधिक बल दिया जाए।कुल मिलाकर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ------

1. सैद्वांतिक रूप से सामूहिक समस्या युद्ध को रोके और शांति स्थापित करने का साधन है। यह व्यवस्था सुरक्षा की समस्या को व्यक्तिगत समस्या नहीं बल्कि उसे सामूहिक समस्या मानते हुए सामूहिक प्रयास की बात करती है।

2.यह वगैर अराजक राजव्यवस्था को बदले विश्व सरकार के लाभ दिलाने का प्रयत्न करती है। अर्थात बिना किसी - नियंत्रण वाली व्यवस्था के तहत मौजूद राज्य की व्यवस्था को बदलने की बात नही करता बल्कि संयुक्त राष्ट्र के लाभ को उन्हें दिलाने की बात करती है। (संयुक्त राष्ट्र विश्व सरकार नहीं हैं।)

3.लेकिन राज्य इस अराजक व्यवस्था में शक्ति संतुलन व अपने राष्ट्रीय हितों को अधिक वरीयता देते है। और इसलिए सामूहिक सुरक्षा की दृष्टि से सभी राज्यों का एकमत होना कठिन हो जाता है। क्योंकि सभी राज्यों के राष्ट्रीय हित अलगअलग हो जाते है। इस कारण वहां की स्थिति में गुटबाजी उत्पन्न हो जाती हैं। व्यवहार में ऐसा - ही होता है।

4.लेकिन फिर भी सामूहिक सुरक्षा के सिद्वांत की व्यवहारिक सफलताएं भी अनेक बार देखी गई हैं। मकांगो, कंबोड़ियों, स्वेज संकट|के समय ....

5. जिस प्रकार से आज सुरक्षा की समस्या वैश्यिक आतंकवाद के कारण और अधिक जटिल हो रही है उसका समाधान किसी एक राज्य के स्तर पर नहीं निकाला जा सकता। इस दृष्टि से जो शक्ति संतुलन की संकल्पना है वह और अधिक प्रासंगिक हो जाती है। इस कारण इसे और अधिक प्रभावी बनाने की आवश्यकता है।

प्रश्नःसामूहिक सुरक्षा की मूलभूत समस्यांओ की चर्चा करे। -

उत्तरः -

आक्रमणकारी की पहचान करना अर्थात किसी सशस्त्र संघर्ष में सभी राष्ट्र इस बात पर एकमत हो कि कौन आक्रमणकर्ता है। सभी की रजामंदी हो तभी कार्यवाही संभव होगी। सुरक्षा के प्रति समान दृष्टिकोण अर्थात सभी राष्ट्र इस बात पर समान रूचि रखते हो कि आक्रमण को रोका जाए चाहे वह किसी भी स्रोत से संबंधित हो, जुड़ा हो। भले ही वह किसी का मित्र हो या किसी से उसका हित जुड रहा हो। अपनी संकीर्ण राष्ट्रहित को परे रखकर कदम उठाना होगा। जैसे अरब इजराइल युद्धसंयुक्त राज्य अमेरिका का हित इजराइल के साथ रहा इसमें हमेशा -, USSR का अरब से साथ, ऐसा नही होना चाहिए।

सभी राष्ट्र आक्रमणकर्ता के विरूद्ध कार्यवाही में भाग लेने के लिए स्वतंत्र व सक्षम हो। अर्थात सभी राष्ट्र को इस सामूहिक कार्यवाही में शामिल किया जाय जिसमें उसकी सहमति भी होनी चाहिए। सामूहिकता की कुल शक्ति इतनी पर्याप्त हो कि वो आक्रमण को परास्त कर सके। ऐसा न हो कि नेपाल, भूटान, बंग्लादेश, श्रीलंका जैसे देश चल पड़े संयुक्त राज्य अमेरिका से लडने इस उद्वेश्य को आकार देने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की आवश्यकता होती है। जिसके कानूनी आधार, कुछ सिद्वांत हो और जिसके बातों को सभी सदस्य मानने को तत्पर रहते हों। जैसे -NATO इसलिए नहीं हो सकता है, क्योंकि यह क्षेत्रीय सैन्य संगठन तथा संकीर्ण हित से संबंधित है जबकि संयुक्त राष्ट्र व् विश्व शांति की बात करता है, इसका दायरा बहुत ही विस्तृत है।

4.11 सारांश

इस अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति सन्तुलन की अवधारणा का विस्तार से वर्णन किया गया है। शक्ति सन्तुलन को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मौलिक सिद्धान्त कहा जाता है। इस अध्याय में सबसे पहले शक्ति सन्तुलन का अर्थ, इसके बाद ऐतिहासिक विकास का वर्णन किया गया है। इसी तरह इस अध्याय में नयी शक्तियों का उदय ओर बदला शक्ति सन्तुलन, शीत युद्ध के दौर में शक्ति सन्तुलन, शीत युद्ध का अंत और शक्ति सन्तुलन का अवमूल्यन, विचारधारा के रूप में शक्ति सन्तुलन, शक्ति सन्तुलन स्थापित करने के साधन एवं शक्ति सन्तुलन का मूल्यांकन का वर्णन किया गया है। शक्ति सन्तुलन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में पिछले चार शताब्दियों से महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। यह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का सारभूत सिद्धान्त है।

4.12 शब्दावली

शीत युद्ध-द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व दो गुटों में बटाँ था। दोनों के बीच वर्चस्व के लिए जो मानसिक युद्ध चल रहे थे उन्हें शीत युद्ध कहा गया।

विचारधारा-विचारों एवं विश्वासों का ऐसा समुच्चय जो अपने को अपने आप में पूर्ण मानती हो।

क्षतिपूर्ति -युद्ध के बाद शन्ति संधियों में इसी आधार पर राज्यों के क्षेत्रों का आदान-प्रदान होता है।

हस्तक्षेप -जब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के आन्तरिक मामले में दखल देते है और प्रभावित करते है तो उसे हस्तक्षेप कहते है।

मध्यवर्ती राज्य-यह दो बड़े राज्यों के बीच में दुर्बल राज्य होता है जो बड़े राज्यों में युद्ध होने से रोकता है।

शस्त्रीकरण-राष्ट्र अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए शस्त्रों के भंडार को बढ़ाता है। इससे अन्य राष्ट्र भी शस्त्रों को बढ़ाने लगता है इसे शस्त्रीकरण कहते है।

मैत्रि संधि -दो या दो से अधिक राष्ट्र आपस में समझौता करते है कि वे एक-दूसरे का सभी परिस्थितियों में साथ देंगे।

संयुक्त राज्य संघः यह एक अन्तर्राष्टीय संगठन है जो दुनिया भर के देशों के लिए अन्तर्राष्टीय कानून, सुरक्षा, मानवाधिकार आर्थिक, सामाजिक प्रगति के लिए कार्य करना जैसे कठिन कार्यो के (मिलेनियम डवलेपमेंट गोल) आसान प्रवर्त्तन करानें के लिए बनाया गया।

शीत युद्धः दो राज्यों के बीच गम्भीर तनाव की स्थिति जब युद्ध के सारे लक्षण मौजूद हो लेकिन वास्तव में युद्ध न हो रहा हो।

शक्ति संतुलनशक्ति संतुलन का : सिद्धांत अन्तर्राष्टीय राजनीति का वह सिद्धांत है जिसके अनुसार यूरोपीय महाद्वीप में यह माना जाता था कि वहाँ के राष्ट्रों के एक दूसरे गुट के बराबर रहनी चाहिए ताकि किसी एक गुट की शक्ति बहुत अधिक न बढ जाए।

अभ्यास प्रश्न

प्रश्न शक्ति संतुलन स्थापित करने के साधन का संक्षिप्त वर्णन करें?

उत्तर शक्ति सन्तुलन अन्तर्राष्ट्रीय संबंध का मौलिक सिद्धान्त है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति सन्तुलन स्थापित करने के मुख्यतः छः साधनों का वर्णन किया गया है। ये साधन है पहला क्षतिपूर्ति, युद्ध के पश्चात् शान्ति संधियों में प्रदेशों का आदान-प्रदान और सीमाओं में परिवर्त्तन इसी आधार पर किया जाता है। दूसरा है हस्तक्षेप कभी-कभी शक्तिशाली राज्य सन्तुलन स्थापित करने की दृष्टि से अन्य राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करते है। ये हस्तक्षेप सन्तुलन को अपने तरफ करने के लिए किया जाता है। तीसरा मध्यवर्ती राज्य यह दो देशों के बीच सन्तुलन बनाए रखने में सहायक होता है। चौथा शस्त्रीकरण इसके द्वारा राष्ट्र अपने शक्ति को बढ़ाता है। पाँचवा विभाजन तथा शासन है। शक्ति सन्तुलन स्थापित करने के लिए राष्ट्र विरोधी राष्ट्रों में फूट डालने का प्रयत्न करते है। छठाँ और अन्तिम साधन है मैत्री संधियाँ इसके द्वारा राष्ट्र अपना मित्र बढ़ा कर सन्तुलन स्थापित करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार शक्ति सन्तुलन बनाए रखा जाता है ताकि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति बनी रहे।

प्रश्न शक्ति सन्तुलन सिद्धान्त का अर्थ स्पष्ट करें?

उत्तर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति सन्तुलन से अभिप्राय है कि विभिन्न राष्ट्रों के बीच कम से कम स्थूल सन्तुलन कायम रहे। स्वतन्त्रता शान्ति स्थिरता तथा सार्वजनिक सुरक्षा के लिए शक्ति सन्तुलन आवश्यक है क्योंकि एक निश्चित सीमा के बाद एक राज्य की बढ़ती हुई शक्ति अन्य सभी राज्यों को प्रभावित करने लगती है। विदेश नीति की दृष्टि से राष्ट्र उसी समय शक्ति सन्तुलन की अवधारणा स्वीकार करते है जबकि वे अन्य राज्यों की तुलना मे प्रबल हो। शक्ति सन्तुलन एक व्यवस्था के रूप में नीति-निर्माताओं के लिए मार्गदर्शक होता है। इसे शक्ति सन्तुलन राजनीति का यथार्थवादी सिद्धान्त कहा जाता है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि शक्ति सन्तुलन की उपेक्षा से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति के तत्व की उपेक्षा प्रकट होती है। शक्ति सन्तुलन विशिष्ट स्थिति का द्योतक है जिसमें शक्ति संबंध लगभग बराबरी के आधार पर होता है। राज्यों में केवल इस बात की दिलचस्पी होती है कि शक्ति का पलड़ा अपने पक्ष में झुका हुआ हो तभी वह अपनी सुरक्षा के लिए निश्चित रहेगा। इस प्रकार शक्ति सन्तुलन को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की एक स्थिति एक प्रक्रिया एक नीति और व्यवस्था के रूप में चित्रित किया जा सकता है।

4.14 संदर्भ ग्रन्थ

1.माँरगेन्थाऊ, हैन्स (1960), पॉलिटिक्स एमंग नेशन, मैकमिलन-हिल ह्ममेनिटीज।

2.कुमार, महेन्द्र (2013), अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक परिपेक्ष्य, शिवलाल अग्रवाल पब्लिकेशनस एण्ड कॉरपोरेशन।

3.पंत, पुष्पेश (2008), ''21वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय संबंध'', टाटा मेकग्राहिल पब्लिकेशन कम्पनी लिमिटेड।

4.वाल्टज, केन्नेथ एन, 'थ्योरी आफ इंटरनेशनल पोलिटिकस, पबलिशर वेवल एंड पी आर आइ एन सी एडीशन)2010

5.रॉचेस्टर, जेमारटीन ., फन्डामेंटल प्रिंसीपलस आफ इन्टरनेशल रिलेशन पब्लिशर रीड हॉउ यु वान्ट -).कॉम2010)

6.ए अप्पारदोराय व एमराजन.एस., इंडियाज फॉरेन पॉलिसी एण्ड रिलेशंज, नई दिल्ली, 1985, पृ.374।

4.15 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.फाड़िया, बी.एल. (2008) अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

2.खन्ना, बी.एन. (2003) अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि.

4.16 निबंधात्मक प्रश्न

1.अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति सन्तुलन के महत्व को स्पष्ट करते हुए इसके प्राप्ति के साधनों का उल्लेख करे?

इकाई-5 : राष्ट्रीय हित

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 राष्ट्रीय हित अभिप्राय

5.4 राष्ट्रीय हित की अवधारणा का विकास

5.5 राष्ट्रीय हित के प्रकार

- 5.5.1 प्रथम कोटि के हित
- 5.5.2 गौण हित
- 5.5.3 स्थायी हित
- 5.5.4 परिवर्तनशील हित
- 5.5.5 सामान्य हित
- 5.5.6 विशिष्ट हित

5.6 दीर्घ कालिक व तात्कालीक राष्ट्रीय हित

5.7 राष्ट्रीय हित के अभिवृद्धि के साधन

5.8 राष्ट्रीय हित के केन्द्रिय तत्व

5.9 विदेश नीति और राष्ट्रीय हित

5.10 राष्ट्रीय हित की अवधरणाः आलोचनात्मक मूल्यांकन

5.11 सारांश

5.12 शब्दावली

5.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.14 संदर्भ ग्रंथ

5.15 सहायक ध्उपयोगी पाठय सामग्री

5.16 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार की व्याख्या और समीक्षा करने में यथार्थवादी विचारक राष्ट्रीय हित की अवधारणा को सबसे महत्वपूर्ण मानते है। इस अवधारणा में कुछ अस्पष्टता अवश्य है फिर भी यह अन्तरष्ट्रिीय राजनीति का मूल मंत्र है। विदेश नीति के उदे्श्य के रूप में राष्ट्रीय हित राज्य के सभी निर्णयों का आधार होता है। इस सिलसिले में 19 वी सदी में ब्रिटेन के प्रसिद्ध विदेशमंत्री ''लार्ड पामर्स्टन'' की एक उकित का बारम्बार उल्लेख होता है ''किसी भी देश के शाश्वत शत्रु और शाश्वत मित्र नही होते सिर्फ राष्ट्र हित ही शाश्वत एवं चिर-स्थिाई होत है।'' अनेक विदवानों को मानना है कि इस कथन का महत्व तब से अब तक बरकरार है। परन्तु समस्या तब उत्पन्न होती है जबकि राष्ट्रीय हित के सम्बंध में कुछ मूल अवधारणात्मक प्रश्न पूछे जाते है। उदाहरण के लिए क्या राष्ट्रीय हित की कोई सर्वमान्य परिभाषा हो सकती है। क्या समय और स्थान के साथ राष्ट्रीय हित परिवर्तित होते रहते है। क्या राष्ट्रीय हित सम्बद्ध देश के लोगो के वास्तविक हितों को सदा स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है या फिर राष्ट्रीय हित किसी देश के अभिजन वर्ग के मूल्यों की अभिव्यक्ति मात्र है। इस प्रकार और भी प्रश्न हो सकते है इतिहास का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि विभिन्न राजनेता ने राष्ट्रीय हित के नाम पर अपनी नीतियों का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया है उदाहरण के लिए नैपोलियन ने रूस के विरूद्ध युद्ध में यह दावा किया कि यह फ्रांस के राष्ट्रीय हित के लिए है। इसी प्रकार का दावा उन्होंने वाटरलू के अपने अन्तिम अभियान में किया था जहाँ उनकी पराजय हुई थी। इस प्रकार हिटलर ने जर्मनी के राष्ट्रीय हित की दुहाई देते हुए अपनी विस्तारवादी नीतियों और बहु-मोर्चा युद्ध को उचित ठहराया था। इस सिलसिले में ब्रिटिश विद्वान ''नेबेल मैक्सवेल'' की एक टिप्पणी भी काफी विचारोत्तेजक है उनके अनुसार ''किसी भी राज्य में राष्ट्रीय हित को तय करने वाला तत्व सत्तारूढ़ शासक और श्रेष्ठ वर्ग होता है जो अपने वर्ग हित के अनुसार राष्ट्रीय हित की परीभाषा तय करता है।'' इस सब के बाबजूद इस बारे में व्यापक सहमति देखने को मिलती है कि देश की एकता अखंडता और भौगोलिक सीमाओं की रक्षा को प्राथमिक राष्ट्रीय हित माना जाता है।

''मौरगेन्थो'' ने अपनी पुस्तक ''इन डिफेंस ऑफ नेशनल इन्ट्रेस्ट'' में लिखा है कि ''राष्ट्रीय हित को विदेश नीति की एक मात्र कसौटी समझा जाना चाहिए।'' मैरगेन्थो की दृष्टि में राष्ट्रीय हित के लिए साधन और साध्य में कोई फर्क नही होता। मौरगन्थो ने राष्ट्रीय हित का वर्गीकरण स्थाई अनिवार्य और प्राथमिक और गौण में किया है।

5.2 उद्देश्य

राष्ट्रीय हित का प्रमुख उद्देश्य होता है अन्तरष्ट्रिीय स्तर पर सभी राष्ट्र यह चाहता है कि वह अन्तरष्ट्रिीय राजनीति में अपनी शाख प्रतिष्ठा वर्चस्व स्थापित करे अपने घरेलू नीतियों बरकस विदेश नीति को प्रबलता से महत्व दे आर्थिक लाभ सैन्य लाभ प्राप्त करने के लिए यदि संभव हो तो किसी प्रकार के गठजोर का निर्माण करने अथवा महाशक्तियों के समूह से अलभ रहते हुए गुरनिरपेक्षता की नीति को अपनाएं उदाहण स्वरूप भारत जब स्वतंत्र हुआ उस समय पूरा विश्व शीत युद्ध की दौर से गुजर रहा था। एक तफर पूँजीवादी शक्तियों के रूप में अमंरीका था वही दूसरी और साम्यवादी शक्ति के रूप में सोवियत रूस इसलिए भारत ने अपनी तात्कालीक राष्ट्रीय हित को देखते हुए गुरनिरपेक्षता की नीति को अपनाना जरूरी समझा। राष्ट्रीय हित का प्राथमिक उद्देश्य ही है देश की एकता अखंडता और भौगोलिक सीमाओं की रक्षा के साथ-साथ अपनी नीति को आगे बढ़ाना।

5.3 राष्ट्रीय हितः अभिप्राय

अन्तरष्ट्रिीय राजनीति में भाग लेने वाले सभी देश अपने कार्यो का संचालन जिस नीति और सिद्धान्त के आधार पर करते है उसे ''राष्ट्रीय हित कहा जाता है। यह राष्ट्रीय हित किसी भी देश की विदेश नीति की आधारशिला होता है।

दिसम्बर 1947 में जवाहरलाल नेहरू ने लोससभा में भाषण देते हुए कहा था ''किसी भी देश की विदेश नीति का आधार उसके राष्ट्रीय हितो की सुरक्षा है। भारत की विदेश नीति का ध्येय इसके राष्ट्रीय हित की सुरक्षा है।''

राष्ट्रीय हित एक बड़ा लचीला तथा व्यापक शब्द है। प्रत्येक देश का राष्ट्रीय हित उसकी आवश्यकताओं के अनुसार अलग-अलग प्रकार का होता है। यह भौगोलिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों से निर्धारित होता है। प्रत्येक देश के आर्थिक तथा सैनिक तत्व उसकी प्राचीन परम्पराएं आचार विचार रीति रिवाज धार्मिक दार्शनिक सामाजिक विचारधाराएं और विश्वास राष्ट्रीय हित के निर्माण में भाग लेते है। इसके आधार पर प्रत्येक देश के व्यक्ति और शासक कुछ विशेष बातों को अपने राष्ट्रीय हित की दृष्टि से आवश्यक और उपयोगी समझते है और इनके आधार पर अपनी विदेश नीति का निर्माण करते है।

राष्ट्रीय हित की अवधारणा बड़ी अस्पष्ट है अतः इसकी परिभाषा करना कठित है। ''रेमा आरों'' के अनुसार राष्ट्रीय हित की अवधारणा इतनी अस्पष्ट है कि यह अर्थहीन ही है या इसे अधिक से अधिक एक दिखावे की धारणा कहा जा सकता है। ''चार्ल्स लर्च'' तथा ''अब्दुल सईद'' के अनुसार ''व्यापक दीर्घकालीन और सतत उद्देश्य जिसकी सिद्धि के लिए राज्य राष्ट्र और सरकार में सब अपने को प्रयत्न करता हुआ पाते है राष्ट्रीय हित है। ''वॉन डिक'' के अनुसार राष्ट्रीय हित की परिभाषा एक-ऐसी चीज के रूप में की जा सकती है जिसकी रक्षा या उपलब्धि राज्य एक-दूसरे मुकाबले में करना चाहते है। राष्ट्रीय हित प्रभुत्व सम्पन्न राज्य की अभिलाषाएं है जिसे वह अन्य राष्ट्रो के सन्दर्भ में प्राप्त करना चाहते है। अन्य राज्यों के मुकाबले में एक राज्य जो अभिलाषाएं रखता है वे मोंटे तौर से विदेश नीति के ध्येय होते है और ध्येयों को ही राष्ट्रीय हित के नाम से पुकारा जाता है। विदेश नीति के इन ध्येयों को लक्ष्य और उद्देश्य भी कहा जाता है। विदेश नीति का लक्ष्य दीर्घकालिक हित है जबकि उद्देश्य केवल तात्कालिक अल्पकालीन होते है।

यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि क्या राष्ट्रीय हित विदेश नीति का उद्देश्य है अथवा मूल्य |जो विचारक राष्ट्रीय हित को उद्देश्य मानते है उनके अनुसार यह स्थायी अपरिवर्तित तथा शक्ति से जुडी हुई अवधारणा है। जो विचारक इसे मूल्यपरक अवधरणा मानते है उनके अनुसार यह शक्ति के अतिरिक्त मूल्यों से जुड़ी हुई अवधारणा है। '' पैडलफोर्ड'' और ''लिंकन'' के अनुसार '' राष्ट्रीय हित की अवधारणा समाज के मूलभूत मूल्यों से जुड़ी हुई है ये मूल्य है राष्ट्र का कल्याण अनेक राजनीतिक विश्वासों का संरक्षण राष्ट्रीय जीवन पद्धति क्षेत्रीय अखण्डता तथा सीमाओं की सुरक्षा।

कभी-कभी राष्ट्रीय हित शब्द का प्रयोग लक्ष्यों के विश्लेषण के लिए भी किया जाता है। पलतः इसके अर्थ में अस्पष्टता का बोध होता है।

''पॉल सीबरी'' ने इस अस्पष्टता को व्यक्त करते हुए बताया है कि '' राष्ट्रीय हित'' शब्दावाली का प्रयोग कम से कम तीन अर्थो में होता है: ''प्रथम'' राष्ट्रीय हित के विचार में भविष्य में प्राप्त होने वाले ऐसे आदर्श लक्ष्य सन्निहित है जिन्हे कोई राष्ट्र आपनी विदेश नीति के माध्यम से प्राप्त करना चाहता है। इसे राष्ट्रहित की आदर्शपरक नागरिक धारणा के नाम से पुकारा जाता है। ''द्वितीय'' राष्ट्रीय हित का अन्य महत्वपूर्ण अर्थ वर्णनात्मक है। इस अर्थ में राष्ट्रीय हित का अर्थ उन लक्ष्यों से है जिन्हें कोई भी राष्ट्र निरन्तर अपने नेतृत्व के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास करता है। इस अर्थ में राष्ट्रीय हित कोई अध्यात्मिक बस्तु नही है परन्तु यथार्थपरक है। ''तृतीय'' इस अर्थ में राष्ट्रीय हित से अभिप्राय उन लक्ष्यों से है जिन्हे किसी राष्ट्र के कर्णधार स्वीकार करते हो। ''जोसेफ फ्रेकेल'' ने अपनी पुस्तक ''नेशनल इण्टरेस्ट'' में राष्ट्रीय हित की व्याख्या राष्ट्र की आकाक्षाओं विदेश नीति के क्रियात्मक व्याख्यात्मक तथा विवादों का निरूपण करने वाले तत्व के रूप में की है।''

5.4 राष्ट्रीय हित की अवधारणा का विकास

विदेश नीति का लक्ष्य राष्ट्रहितों की प्राप्ति अथवा उनकी रक्षा करना है। ''लार्ड पामर्स्टन'' ने वर्षो पूर्व कहा था कि ''हमारे कोई शाश्वत मित्र नही है और ना ही हमारे कोई सदा बने रहने वाले शत्रु। केवल हमारे हित ही शाश्वत है और उन हितों का अनुसरण संवर्द्धन हमारा कर्तव्य है।

प्राचीन एवं मध्य युगों में राज्यों के हित अधिपतियों के हित से भिन्न नही माने जाते थे। राजा अपने व्यक्तिगत गौरव के लिए युद्ध करता था, अश्वमेध या राजसूय यज्ञ करके चक्रवर्ती बनता था राजा के गौरव में प्राजा भी गौरवान्वित होती थी। राजा पेशेवर सैनिक लेकर दिगिवजय करने निकलता था। वापस लौटने पर लूट का कुछ माल प्रजाजनों में भी वितरित कर देता था। अतः वह राजनीति सहज थी विदेश नीति मात्र युद्ध करने अथवा नही करने की नीति तक सीमित रहती थी।

राष्ट्र राज्यों के उदय के साथ अन्तरष्ट्रिीय राजनीति इतनी सहज नही रह गयी। औद्योगिक क्रान्ति व्यापारिक उन्मेष वैज्ञानिक दृष्टि यातायात तथा संचार के साधनों का प्रचार इन सबके फलस्वरूप राजनीति केवल राजाओं राजकुमारो सामन्तों सेनापतियों का ही खेल नही रह गयी। आधुनिक राष्ट्र राज्यों का सर्वप्रथम युरोप में उदय हुआ। इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय संबंध के स्वरूप में परिवर्तन हुआ। तदनुसार राज्यों की विदेश नीति भी नए अयाम लेकर रूपायित हुई। अधिपतियों के व्यकितगत हितों के स्थान पर राज्यों के हित का महत्व बढ़ा। स्पेनी उत्तराधिकार अथवा आस्ट्रियाई उत्तराधिकार के युद्ध मात्र किन्ही राजवंशों राजकुमारो अथवा राजाओं के हित-अहित के लिए नही लड़े गए थे। उनके मूल में प्रकट-अप्रकट कई राष्ट्रों के हित-अहित सन्निहित थे।

5.5 राष्ट्रीय हित के प्रकार

''थाँमस राबिन्सन'' ने राष्ट्रीय हित के विभिन्न प्रकारों को छः वर्गो में बाँटा है ये है।

5.5.1 प्रथम कोटि के हित

ये वे हित है जो किसी राज्य के लिए सर्वाधिक महत्व रखते है और जिनकी रक्षा के लिए राज्य बडे से बड़ा बलिदान और त्याग करने के लिए सदा तैयार रहते है। इस प्रकार का सबसे बड़ा हित राष्ट्र की सुरक्षा है।

5.5.2 गौण हित.

ये वे हित है जो प्राथमिक हितों से कम महत्व रखते है किन्तु फिर भी राज्य की सत्ता बनाए रखने के लिए आवश्यक है। इस वर्ग के हितों के उदाहण है विदेशों में अपने नागरिकों की सुरक्षा के तथा इस बात को सुनिश्चित बनाना कि विदेशों में अपने देश के राजदूतों की राजनयिक उन्मुकितयों की तथा नागरिकों की रक्षा की जाए।

5.5.3 स्थायी हित

ये राज्य के लगभग सदैव बने रहने वाले दीर्घकालीन लक्ष्य एवं प्रयोजन होते है। इनका एक सुन्दर उदाहरण ग्रेट ब्रिटेन द्वारा अपने उपनिवेशों तथा विदेशी व्यापार की रक्षा के लिए महासमुद्रों में नौचालन की स्वतंत्रता को बनाए रखना है। भारत का इस प्रकार का प्रयोजन देश का शान्तिपूर्ण आर्थिक विकास करना है।

5.5.4 परिवर्तनशील हित

ये राष्ट्र के ऐसे हित है जिन्हे कोई राष्ट्र किसी विशेष परिस्थिति में राष्ट्रीय हित के लिए आवश्यक समझता है। ऐसे हित प्रथम एवं द्वितीय कोटि से प्रायः भिन्न होते है। ये लोकमत तथा विभिन्न व्यक्तियों के विचारों से प्रभावित होते है।

5.5.5 सामान्य हित

सामान्य हित वे परस्थितियां होती है जो उस देश को समान्य रूप से अथवा आर्थिक व्यापारिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में लाभ पहुचाने वाली होती है ग्रेट ब्रिटेन के लिए युरोप में शक्ति सन्तुलन बनाए रखना इसी प्रकार का समान्य हित था।

5.5.6 विशिष्ट हित

ये सामान्य हितों से उत्पन्न होते है और उनके साथ गहरा सम्बन्ध रखते है। जैसे युरोप में शक्ति सन्तुलन को बनाए रखना ब्रिटेन का सामान्य हित था, किन्तु इस हित को बनाए रखने के लिए यह भी आवश्यक था कि ब्रिटिश दवीप समूहों के सामने इंगलिश चैनल के उस पार बेल्जियम और हाँलेण्ड के प्रदेशों में युरोप की किसी महाशक्ति का अधिकार न हो। यदि नेपोलियन और हिटलर जैसा कोई सेनापति इस प्रदेश पर अधिकार कर ले तो वह यहां से इंग्लैण्ड पर हमला करने की और उसे जीतने की योजना बना सकता था। दोनों ने ही ऐसा प्रयास किया था। अतः ब्रिटेन का सदेव यह प्रयत्न रहता है कि बेल्जियम सदैव तटस्थ बना रहे और इस पर यूरोप के किसी महाशक्ति का प्रभुत्व स्थापित न हो। इस कारण यह ब्रिरटेन का विशिष्ट हित था।

राँबिन्सन ने उपयुक्त छः प्रकार के हितों के अतिरिक्त तीन प्रकार के अन्य अन्तर्राष्ट्रीय हितों का भी वर्णन किया है। इसमें ''पहला समान हित'' ''प्रामाणित हित'' है । इनका आशय ऐसे हितों से है जो दो या दो से अधिक राज्यों के लिए तुल्य रूप से लाभदायक और उपयोगी हो। जैसे अमरीका और ब्रिटेन दोनों ही यह चाह रहे थे कि युरोप पर सोविय संघ या किसी एक महाशक्ति का अधिपत्य न हो। ''दूसरे प्रकार के हित पूरक हित'' है। ये हिंत समान न होते हुए भी दो देशों में कुछ विशेष प्रश्नों पर समझोतों का आधार बन सकते है जैसे ब्रिटेन और पूर्तगाल के हित। ब्रिटेन को पूर्तगाल के साथ मैंत्री बनाए रखने में और उसे स्वतंत्र बनाए रखने में यह लाभ था कि इसके द्वारा वह स्पेन की शक्ति पर नियंत्रण रख सकता था और अन्धमहासागर में अपनी शक्ति का पूरा विस्तार कर सकता था। इसी प्रकार पूर्तगाल को भी ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध बनाए रखने और उसकी समुद्री प्रभुता को सुस्थिर बनाने में यह बड़ा लाभ था कि वह स्पेन के सम्भावित प्रभुत्व से सुरक्षा प्राप्त कर सकता था। ''तीसरे प्रकार के हित परस्पर विरोधी हित ;ब्वदसिपबजपदह प्दजमतमेजद्ध है।'' ये प्रायः दो देशों में संघर्ष का कारण बनते है। जम्मू-कश्मीर का भारत में वैद्ध रूप से विलय हो जाने से यह भारत का अंग है पाकिस्तान इसे अपने राज्य का अंग बनाना चाहता है। इसके लिए वह तीन बार भारत से विफल सैनिक संघर्ष भी कर चुका है। यह दोनों का परस्पर विरोधी हित है।

5.6 दीर्घ कालिक व तात्कालीन राष्ट्रीय हित

बस्तुतः राष्ट्रीय हित दो प्रकार के है-मार्मिक और अमार्मिक हित अथवा दीर्घकालीन एवं तात्कालीन राष्ट्रीय हित। मार्मिक या दीर्घकालीन राष्ट्रीय हित किसी राष्ट्र के मूलभूत और अत्यन्त महत्वपूर्ण हित है। ये किसी राज्य के वे हित है जिन पर राज्य कोई भी रियात करने को तैयार न हो और जिनकी रक्षा के लिए वह जरूरत पड़ने पर युद्ध करने को भी तैयार हो सकता है किसी देश का मार्मिक हित इतना बुनियादी समझा जाता है कि राष्ट्रीय हित के अन्य सब पहलू इसके सामने गौण समझे जाते है। इसमें राष्ट्रीय सुरक्षा स्वाधीनता और अखण्डता की रक्षा आदि प्रमुख है। राज्य का मूलभूत उद्देश्य बाहरी शत्रुओं से सुरक्षा प्रदान करना तथा आन्तरिक क्षेत्र में सुव्यवस्था स्थापित रखना माने गए है। राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में विदेश नीति निर्धारक पारस्परिक सुरक्षा सन्धियों में सम्मिलित होते है सम्भावित शत्रु देश के विरूद्ध सन्धि व्यवस्था गठित करते है उनकी कूटनीतिक घेराबन्दी करने के प्रयत्न करते है तथा अनेक देशों के साथ आर्थिक सांस्कृतिक व्यापारिक संबंध जोड़कर या सुदृढ़ करके उन्हे प्रभाव क्षेत्र में लाने एवं बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील रहते है। प्रथम विश्व युद्ध काल तक गुप्त सुरक्षा सन्धियों की व्यवस्था राष्ट्रीय सुरक्षा की सर्वप्रमुख तथा मान्य उपकरण थी। ये सन्धियाँ कितनी गुप्त रखी जाती थी इसका अनुमान इसी से क्या जा सकता है कि दो दलीय सन्धि त्रिदलीय संन्धि का पता सम्बद्ध देशों के कतिपय सर्वोच्च नीति निर्धारकों के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नही रहता था। याल्टा शिखर सम्मेलन के कई निर्णय राष्ट्रपति टूमैन को पद ग्रहण के उपरान्त ही मालूम हुए। राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम पर द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त अमेरीका ने नाटो सेण्टो, सीटो, रायो

सन्धि संगठन की स्थापना की। भारत ने गुरनिरपेक्ष होते हुए भी सोवियत संघ के साथ बीस वर्ष की (1971) मैंत्री सन्धि की थी।

जो हित मार्मिक नही होते वे तात्कालीक महत्व के गौण हित होते है और जिनके लिए कोई राज्य युद्ध का खतरा मोल लेना नही चाहता उन्हें अमार्मिक एवं अस्थायी स्वरूप के राष्ट्रीय हित कहते है ऐसे गोण हित जनता का भौतिक कल्याण प्रतिष्ठा की रक्षा विचारधारा का प्रसार व्यापार की वृद्धि संस्कृति का प्रसार आदि है।

5.7 राष्ट्रीय हित की अभिवृद्धि के साधन

अन्तरष्ट्रिीय राजनीति में राज्यों के राष्ट्रीय हितों में विरोध और संघर्ष पाया जाता है। भारत और चीन भारत और पाकिस्तान, भारत और अमेरीका के राष्ट्रीय हित कई बार एक दूसरे के प्रतिकूल देखे गए है। इन देशों के विदेश नीति का उदे्श्य अपने विदेशी संबंधों का इस ढंग से संचालन करना है जिससे राष्ट्रीय हित की सिद्धि यथासम्भव अधिक से अधिक अनुकूल रूप मे होने की गारण्टी रहे।

राष्ट्रीय हितों के सिद्धि के लिए राज्य अनके प्रकार के साधन अपनाते है। ''कौटिल्य '' ने लिखा है ''दुर्बल राजाओं को समझा बुझाकर तथा यदि आवश्यक हो तो कुछ देकर अपने अनुकूल बना लेना चाहिए किन्तु जो राजा सबल हो उसको भेद और दण्ड द्वारा वश में करना चाहिए।

पामर और पर्किन्स के अनुसार अन्तरष्ट्रिीय राजनीति में राष्ट्रीय हित की अभिवृद्धि के साधन निम्नलिखित हैः

(1) कूटनीति

(2) प्रचार और राजनीतिक युद्ध

(3) आर्थिक साधन

(4) साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद

(5) युद्ध

5.8 राष्ट्रीय हित के केन्द्रिय तत्व

राष्ट्रीय हित कई कारकों के प्रभाव से बदलता रहता है कभी-कभी नेतृत्व वर्ग जनता के मूल्यों में परिवर्तन होने से मार्मिक राष्ट्रीय हित की अवधारणा बदल जाती है। उदाहरणार्थ चीन के जन्मदाता डा. सुनियात सेन की यह मान्यता थी कि चीन का हित सोवित संघ के साथ मैंत्री संबंध स्थापित करने में है। परन्तु उनके उत्तराधिकारी चयांग काई शेक की मान्यता इसके ठीक विपरीत थी। टूमैन और आइजनहार्वर साम्यवादी चीन के अवरोध की नीति अपनाने मे ही अमरीका की सुरक्षा समझते थे जबकि निकसन और किसिंगर चीन के साथ देतान्त के मधुर सम्बन्धों की स्थापना में अमरीकी हितों की अभिवृद्धि समझने लगे। राष्ट्रपति बिल क्लंटन रूस में आर्थिक सुधरों की सफलता में ही अमरीकी लोकतंत्र की स्थिरता मानते थे और इसीलिए उन्होने रूस को 1.60 बिलियन डॉलर का ऋण देना स्वीकार किया।

विस्तार में राष्ट्रीय हितों में भिन्नता पायी जाती हो परन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से सभी देशों के लिए राष्ट्रीय हित के मूल तत्व एक जैसे है। सभी देश सुरक्षा चाहते है राजनीतिक स्वाधीनता और क्षेत्रीय अखण्डता बनाए रखना चाहते है। सुरक्षा के बाद सभी देश अपने लिए व्यापारिक सुविधाएं चाहते है। सुरक्षा आर्थिक समृद्धि राष्ट्रीय हित के हृदय है। इनके अतिरिक्त अन्तरष्ट्रिीय शान्ति अन्तरष्ट्रिीय कानून का विकास अन्तराष्ट्रिीय संगठन की सफलता भी राष्ट्रीय हित हो सकते है।

5.9 विदेश नीति और राष्ट्रीय हित

राष्ट्रीय हित की अवधारणा विदेश नीति का मूलभूत सिद्धान्त है। विदेश नीति निर्माण का प्रारम्भिक बिन्दु राष्ट्रीय हित है। जब तक दुनिया राजनीति दृष्टि से राज्यों में विभाजित रहेगी तब तब विश्व राजनीति में राष्ट्रीय हित मार्मिक

विषय रहेगा। वास्तविक रूप से तो राष्ट्रीय हित अन्तर्राष्ट्रिय राजनीति की कुंजी है। चाहे किसी राष्ट्र के कितने ही ऊँचे आदर्श हो और कितनी ही उदार अभिलाषाएं हों वह अपनी विदेश नीति को राष्ट्रीय हित के अतिरिक्त किसी अन्य धारणा पर आधारित नहीं कर सकता। यद्यपि विल्सन जैसे आदर्शवादियों की मान्यता है कि विदेश नीति का राष्ट्रीय हित की धारणा के आधार पर निर्मित होना एक खतरनाक प्रवृत्ति है। विदेश नीति के क्षेत्र में नैतिकता और उपयोगिता ही हमारा मार्गदर्शन होना चाहिए। हमारे अपने कोई निहित स्वार्थ नहीं होने चाहिए। इसके विपरीत मारेन्थाऊ तथा आरनोल्ड वूल्फर्स जैस यथार्थवादियों की मान्यता है कि राष्ट्रीय हित ही विदेश नीत की आत्मा है। यह विदेश नीति का सार है, यही उसकी प्रेरणा और आधारशिला है। राष्ट्रीय हित विदेश नीति की कुण्डली है तथा सर्वश्रेष्ठ तत्वों का निचोड़ है। मॉरगेन्थाऊ के शब्दों में, ''विदेश नीति के ध्येयों की परिभाषा राष्ट्रीय हित के अर्थ में अवश्य करनी होगी तथा इसका यथेष्ट शक्ति द्वारा अवश्य पोषण करना होगा।''

विदेश नीति का संचालन राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से किया जाता है। सिद्धान्तवाद की दुहाई दी जाती है लेकिन व्यवहार में किया वही जाता है जो आवश्यकता और परिस्थिति के अनुसार राष्ट्रीय हितों के अनुकूल हो। निष्पक्ष रूप में देखा जाए तो राष्ट्रीय हितों के अनुकूल वैदेशिक नीति का संचालन प्राचीनकाल से ही किया जाता रहा है और राष्ट्र अधिकांशतः अपने हितों की कीमत पर सिद्धान्तों की रक्षा में अडिग नहीं रहे है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण आज के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति क्षितिज में आन्तरिक विरोधाभासों के फलस्वरूप अपना प्रभाव खोता जा रहा है और वह राज्य की नीतियों के उद्देश्यों और लक्ष्यों की निरन्तरताओं का वर्णन करने में असफल रहा है। यदि हम ध्यान से देखें तो पाएंगे कि विभित्र सत्ताधारी दलों और अपने-अपने निजी अथवा सार्वजनिक दर्शनों के बावजूद ब्रिटिश, अमेरीकन, फ्रेंच और रूसी विदेश नीति में अनेक ऐसी एकताएँ विद्यमान है जो व्यक्तिगत विश्वासों अथवा सिद्धान्त का अतिक्रमण करती है। युद्धोत्तर काल के प्रारम्भ में इंग्लैण्ड की श्रमिक सरकार ने देश के सारभूत रूप में उन्हीं हितो के संरक्षण की नीति अपनायी जिनकी सुरक्षा को टोरियों और ह्रिगो ने शताब्दियों से आवश्यक माना था। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमरीका में डलेसआइजनहावर की विदेश नीति ने देश के उन्हीं केन्द्रीय लक्ष्यों पर ध्यान दिया जिन पर रूजवेल्ट और टूमैन प्रशासन ने ध्यान दिया। अमरीकी व्यावसायिक और आर्थिक हितों की रक्षा के लिए निक्सन-किसिंगर ने चीन से दोस्ती का हाथ बढ़ाया। कहने का तात्पर्य है कि चाहे प्रविधियां उपाया और साधन बदल जाएं लेकिन एक देश के हित और उद्देश्य सापेक्षिक रूप में निरन्तर वने रहते है और इसलिए विदेश नीति राष्ट्रिय हितों के अनुकूल ही संचालित की जाती है, उसमें लचीलापन रहता है सिद्धान्तों का अडियलपन नही। जो राजमर्मज्ञ विदेश नीति का निमार्ण करते है उन्हें राष्ट्रीय हित का सर्वोपरि ध्यान रखना पड़ता है और इसलिए अपने विश्वासों, सिद्धान्तों, आदि पर उन्हें अंकुश लगाना पड़ता है। यदि राष्ट्र की स्वतन्त्रता की रक्षा की जानी है तो उसकी भौगोलिक स्थिति, उसकी अन्तर्राष्ट्रिय भूमिका, उसके हितों, आदि का पूरा ध्यान रखना होगा और अपने सामाजिक, धार्मिक, दर्शन एवं सैद्धान्तिक विचारों को गौण मानना पड़ेगा । समय और परिस्थिति के अनुसार राष्ट्रिय हित की जो मांग है उसी के अनुरूप विदेश नीति का संचालन किया जाना होता है। इसमें भी हितों का क्रम अथवा पदसोपान बैठाना होता है। प्राथमिक हितों की रक्षा पहले की जाती है और गौण हितों की बाद में। कुछ ऐसे हित होते है जिनकी रक्षा हर कीमत पर रनी होती है और कुछ ऐसे हित होते है। दूसरे हित ऐसे हित होते है जिनकी रक्षा कुछ विशेष परिस्थितियों मे अन्तर्गत करनी होती है जिनकी रक्षा यद्यपि वांछनीय है तथापि उनकी लगभग कभी भी रक्षा नही की जाती। यह विदेश नीति का कार्य है कि वह हितों के इस पदसोपान का उपयुक्त निर्धारण करे और दूसरे राष्ट्रो की विदेश नीति का मूल्यांकन करते हुए अपना मार्ग निश्चित करे। सैनिक विज्ञान और तकनीक में प्रगति, आर्थिक समृद्धि अथवा देश के विघटन आदि विभित्र तत्वों के फलस्वरूप राष्ट्रीय हितो में सामयिक परिवर्तन आते रहते हैं और तदनुरूप विदेश नीति में बदलाव आता रहता है।

यह सच है कि प्रत्येक राज्य के राष्ट्रीय हित उसकी परिस्थितियों एंव आवश्यकताओं के आधार पर बदलते रहते है, पर कम से कम तीन बातें ऐसी है जिन्हे प्रत्येक राज्य को अपनी विदेश नीति में आवश्यक रूप से स्थान देना चाहिए। वे है

(1) आत्मरक्षा ; Self-Preservation

(2) सुरक्षा ; Security

(3) लोक कल्याण Welfare of the nation

आत्मरक्षा का अर्थ है प्रत्येक राष्ट्र को अपनी प्रभुसत्ता तथा राष्ट्रीय अखण्डता को बनाए रखना चाहिए। सुरक्षा से अभिप्राय है राज्य की बाहरी आक्रमण में रक्षा करना तथा लोक कल्याण से तात्पर्य है कि राज्य को अपने नागरिकों के सुख एवं समृद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

संक्षेप में, राष्ट्र हितों को ध्यान में रखकर की राष्ट्र अपने लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं तथा विदेश नीति इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का केवल साधन होती है।

5.10 राष्ट्रीय हित की अवधारणाःआलोचनात्मक मूल्यांकन (Concept Of National Interest: Critical Appraisal)

आदर्शवादियों की मान्यता है कि 'राष्ट्रीय हितों का सम्प्रत्यय एक खतरनाक धारणा है। यदि एक राष्ट्र अपने न्यस्त स्वार्थो या हितों को ही प्राथमिकता देता है तो अन्य राष्ट्रों के हितों की उपेक्षा होती है। आज दुनिया के राज्य एक-दूसरे पर अन्तः-निर्भर है और यदि अपने हितों को सर्वोच्चता प्रदान करते है तो विश्वशान्ति, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग आदि सम्प्रत्यय कोरी कल्पना बनकर ही रह जाएगी।

प्रो. रेनोल्ड्स राष्ट्रीय हित दृष्टिकोण के कट्टर आलोचक है। वे कहते है कि किसी देश की विदेश नीति उस दशा में एकमात्र राष्ट्रीत हित पर आधारित होना सम्भव है जब विभित्र देशों के हित एक जैसे हों, किन्तु ये एक जैसे नहीं है। यदि प्रत्येक देश अपने-अपने हितों को ही सर्वोपरि समझते हुए विदेश नीति का संचालन करे तो उसमें सदैव संघर्ष बना रहना चाहिए, किन्तु वास्तव में ऐसी स्थिति नहीं है। अतः विदेश नीति केवल राष्ट्रीय हित पर आधारित नही है यह एक भ्रान्ति है, जिसे राजनीतिज्ञ अपने वैयतिक्त स्वार्थो की सिद्धि के लिए उत्पन करते हैं |ये नेता जब आन्तरिक उसन्तोष, कुशासन तथा आर्थिक कठिनाइयों के कारण जनता को क्षुब्ध तथा रूष्ट देखते है तो उन्हे यह आशंका होती है कि जनता इस दुरावस्था के लिए उन्हें उत्तरदायी समझेगी और उनकी विरोधी बन जाएगी उन्हें वोट नहीं देगी। वे आपसी स्थिति सृदृढ़ बनाने के लिए और जनता को बहकाने के लिए उसका ध्यान विरोधी देशों की ओर मोड़ देते है। उदाहरणार्थ, इण्डोनेशिया में जब आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से जनता परेशान हुई तो राष्ट्रपति सुकर्ण ने उसका ध्यान बांटने के लिए मलेशिया से टकाराव की नीति को अपनाया, राष्ट्रीय हित एवं सम्मान की रक्षा के लिए इस नीति का समर्थन किया।

प्रो. रेनाल्ड्स ने राष्ट्रीय हित के विचार की इसलिए भी आलोचना की है कि इसमें प्रायः व्यक्ति के हितों की उपेक्षा की जाती है और राष्ट्रीय हित की मर्यादाओं और सीमाओं को भुला दिया जाता है। मॉरगेन्थाऊ ने राष्ट्रीय हित की मर्यादाओं की विवेचना करते हुए कहा है। कि कई बार अधोराष्ट्रीय (Subnational) इतर्राष्ट्रीय (Othernational) और अधिराष्ट्रीय (Supranational) हित राष्ट्रीय हितों पर हावी हो जाते है और इन पर अनेक प्रतिबन्ध लगाते है। अधोराष्ट्रीय हितों सें अभिप्राय किसी देश के अल्पंसख्यक, आर्थिक और ऐसे जातीय समूह (ethnical groups) है जो अपने विशिष्ट वर्ग के हितो को राष्ट्रीय हितों का रूप प्रदान करते है। किसी देश में यदि पूंजीपति वर्ग प्रभावशाली है तो वह अपने धन के बल पर अपने वर्ग को विंशेष लाभ पहुंचाने

वाली नीतियो को राष्ट्रीय नीति का रूप प्रदान कर सकता है। इतर्राष्ट्रीय हितों का अभिप्राय यह है कि कई बार किसी देश का अल्पसंख्यक वर्ग किसी अन्य देश की सरकार से अपने को अभिन्न समझने लगता है और उसके हितों को अपना राष्ट्रीय हित मानने लगता है। वार्साय की सन्धि के बाद युरोप में जो नए राज्य बनाए गए थे उनमें से कई राज्यों में जर्मन अल्पसंख्यक वर्ग थे। चेकोस्लोवाकिया में इन जर्मन लोगों को स्यूडेटन कहा जाता था। हिटलर का उत्कर्ष होने पर ये जर्मन विचारधारा के समर्थक बने और अपने देश की नीति तथा राष्ट्रीय हितों के प्रतिकूल जर्मनी के साथ मिलने पर बल देने लगे। किसी देश के अधिराष्ट्रीय हितों का अभिप्राय धार्मिक संस्थाओं और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के हित से होता है। मध्ययुग के यूरोप में चर्च का संगठन बड़ा प्रभावशाली था। संयुक्त राष्ट्र संघ और उसके अनेक अभिकरण राष्ट्रों से ऊंचे है। वे उन पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाते है। अन्तर्राष्ट्रीय विधि भी राष्ट्रीय हितों को अनेक अंशों में मर्यादित करती है।

राष्ट्रीय हित को अपनी विदेश निति का आधार बनाते हुए भी प्रत्येक देश को आजकल इस बात पर भी ध्यान देना पडता है कि वह दूसरे देशों के हितों को कोई बड़ी हानि पहुंचाने वाला कार्य न करे। आणविक युग में यह और भी अधिक आवश्यक हो गया है। क्योकि इस समय कोई देश अपने शत्रु को अपितु अन्य देशों को हानि पहुंचा सकता है। अतः अपने-अपने राष्ट्रो को हित के साथ दूसरे राष्ट्र के हितों को भी देखना आवश्यक हो जाता है। इस समय प्रत्येक न केवल अपने हितों पर अपितु अन्य राज्यों द्वारा किए जाने वाले कार्यों पर भी कड़ी दृष्टि रखता है। इस कारण प्रत्येक राष्ट्र को अपनी विदेश नीति का निर्धारण करते हुए अनेक नैतिक कानूनी तथा परम्परागत नियमों का पालन करना पड़ता है। वे राष्ट्रीय हित पर प्रतिबन्ध का कार्य करते है।

5.11 सारांश-

समग्र रूप से इस अध्याय में अन्तराष्ट्रिय राजनीति में राष्ट्रीय हित के महत्व का वर्णन किया गया है। राष्ट्रीय हित की अवधारणा विदेश नीति का मूल सिद्धान्त है। विदेश नीति निर्माण का प्रारम्भिक बिन्दु राष्ट्रीय हित है। इस इकाई में राष्ट्रीय हित को को मुख्य रूप से छः भागों में विभक्त किया गया है इसमें सबसे पहले राष्ट्रीय हित से अभिप्राय का वर्णन किया गया है जिसमें राष्ट्रीय हित क्या है राष्ट्रीय हित के निर्माण में कौन-कौन सा तत्व शामिल होते है का वर्णन किया गया है। इसके बाद राष्ट्रीय हित के ऐतिहासिक विकास राष्ट्रीय हित के प्रकार दीर्घकालिक एवं तात्कालिक राष्ट्रीय हित, राष्ट्रीय हित के अभिवृद्धि के साधन राष्ट्रीय हित के केन्द्रिये तत्व का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। समग्र रूप से विदेश नीति के एक तत्व के रूप में राष्ट्र हित को परिभाषित करना हालांकि हमेशा चुनौतिपूर्ण रहा है बाबजूद इसके इसकी प्रासंगिकता अन्तरष्ट्रिीय राजनीति मे हमेशा देखी जा सकती है।

5.12 शब्दावली

राष्ट्रीय हित- विदेश नीति के निर्धारण में राष्ट्रीय हित ही कूटनीति का आधार होता हैं।

प्रथम कोहि के हित- प्रथम कोटि हित से अभिप्राय ऐसे हित जिसके लिए राष्ट्र आत्मवलिदान करने को तैयार रहता हैं।

गौण हित- गौण हित उसे कहते है जो प्राथमिक हित से कम महत्व के होते है।

स्थायी हित- यह स्थायी होता है राज्य की सत्ता बदलने के बाद भी इस पर कोई प्रभाव नही पड़ता है।

परिवर्तनशील हित- यह समय और परिस्थिति के अनुसार बदलते रहता है।

सामान्य हित- यह आर्थिक व्यापारिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में लाभ पहुचाने वाले हित होते है।

विशिष्ट हित- विशिष्ट परिस्थिति में सामान्य हित से उत्पन्न होते है।

पूरक हित- दो देशों के बीच कुछ विशेष प्रश्नों के समझोतें से उत्पन्न होता है।

दीर्घकालिक हित- यह राष्ट्र का प्रमुख हित होता है जिस पर वह कोई समझोता नही करता है।

तात्कालिक हित- यह हित तात्कालिक जरूरतों के हिसाब से निर्धारित किया जाता है।

कूटनीति- अन्तरष्ट्रिीय राजनीति में कूटनीति को विदेश नीति को यर्थाथ रूप में क्रियान्वित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। मार्गेन्थाऊ जैसे विचारक इसे अन्तराष्ट्रीय राजनीत का आँख और कान भी कहते हैं।

प्रचार और राजनीतिक युद्ध-यह कोई राष्ट्र शत्रु राष्ट्रों के प्रति हौआ खड़ा करने के लिए करता है।

अभ्यास प्रश्न-

प्रश्नः- ''राष्ट्रीय हित के प्रमुख तत्व के रूप में विदेश नीति'' उपरोक्त कथन की संक्षिप्त व्याख्या करे?

उत्तर- राष्ट्रीय हित की अवधारणा विदेश नीति का मूलभूत सिद्धान्त है। कोई भी राष्ट्र अपने विदेश नीति का निर्धारण अपने राष्ट्रीय हित के अनुसार ही करते है। जब तक दुनिया राजनीतिक दृष्टि से राज्यों में विभाजित रहेगी तब तक विदेश नीति में राष्ट्रीय हित मार्मिक विषय रहेगी। यद्यपि राष्ट्रीय हित की परीभाषा काफी अस्पष्ट है और इसे कई बार सत्तारूढ़ शासकों का निजी हित भी कहा जाता रहा है फिर भी किसी भी राष्ट्र के विदेश नीति का संचालन राष्ट्रीय हित के आधार पर ही किया जाता है। विदेश नीति राष्ट्रीय हित के लक्ष्यों को प्राप्त करने का साधन होता है।

5.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.14 सन्दर्भ ग्रंथ-

1.मौरगेन्थो हैन्स (1951), ''इन डिफेंस ऑफ नेशनल इन्टेष्स्ट'', यूनिवर्सिटी प्रेस ऑफ अमेरिका।

2.पंत, पुष्पेश (2008), ''21वी शताब्दी में अन्तरष्ट्रिीय संबंध'', टाटा मेकग्राहील पब्लीकेशन कम्पनी लिमीटेड

3.हिल, क्रिस्टोफर (2013), द नेशनल इंटरेस्ट इन क्वेश्चन्स, फॉरेन पॉलिसी इन मलटी कल्चर सोसाईटिज

5.15 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री-

1.ब्रूचील, स्कॉट (2005), द नेशनल इण्टेरेस्ट इन इन्टरनेशनल रिलेशन थ्योरी, पेलग्रेव मैकमिलन

2.खन्ना, बी.एन. (2003), अन्तरष्ट्रिीय संबंध, विकास पब्लिशिग हाउफस प्र. लि.

5.16 निबंधत्मक प्रश्न

प्रश्नः- राष्ट्रीय हित से क्या अभिप्राय है? इसके विकास को स्पष्ट करते हुए अभिवृद्धि के प्रमुख साधनों पर प्रकाश डालें?

इकाई – 6 : शीत युद्ध का उदय व अंत

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 शीत युद्ध का अर्थ
6.4 शीत युद्ध का उदय
6.5 शीत युद्ध के चरण
6.5.1 पहला चरण (1946-1962), शीत युद्ध
6.5.1.1 ट्रूमैन सिद्धांत
6.5.1.2 मार्शल योजना
6.5.1.3 बर्लिन की नाकाबंदी
6.5.1.4 चीन में साम्यवादी शासन की स्थापना
6.5.1.5 कोरिया युद्ध
6.5.1.6 वियतनाम युद्ध
6.5.2 दूसरा चरण (1962-1979), दितान्त
6.5.2.1 गैर - पश्चिमी गठबंधनों का उदय
6.5.2.2 दितान्त
6.5.3 तीसरा चरण (1979-1984), दूसरा शीत युद्ध
6.5.3.1 अफगानिस्तान संकट
6.5.3.2 तनाव-शैथिल्य
6.5.4 चौथा चरण (1985 -1991), शीत युद्ध का अंत
6.5.4.1 बर्लिन की दीवार का ध्वस्त होना
6.5.4.2 जर्मनी का एकीकरण
6.5.4.3 नाटो द्वारा शीत युद्ध समाप्ति को घोषणा
6.5.4.4 हेलसिंकी में गोर्बाचोव - बुश वार्ता
6.5.4.5 वारसा व नाटो ऐतिहासिक संधि पर हस्ताक्षर
6.5.4.6 पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्त
6.6 सारांश
6.7 शब्दावली
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 संदर्भ ग्रन्थ
6.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

परिवर्तित समय के साथ - साथ अध्ययन की दृष्टि से अंतराष्ट्रीय सम्बन्धो में भी परिवर्तन आया और इसका महत्व भी बढ़ा | ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रयास किया जाता रहा है की 20 वी शताब्दी में राष्ट्रों के मध्य शक्ति एवं समृद्धि के लिए संघर्ष के वर्णन का विश्लेषिक ढाँचा प्रदान किया जा सके | 20 वी शताब्दी दो महायुद्धों की साक्षी है जिसने शीत - युध्द जैसी विशाल - प्रतिद्वंद्विता को जन्म दिया| शीत युद्ध एक बहुआयामी संघर्ष था | इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका और भूतपूर्व सोवियत संघ द्वारा अपने-अपने प्रभावी क्षेत्रो में नियंत्रण स्थापित करने के लिए रणनीतिक एवं सैनिक प्रतिस्पर्धा शामिल थी | इन दो महाशकितयों ने सम्पूर्ण विश्व को दो शक्ति गुटो में विभाजित कर दिया। | पूर्वी गुट में सामान्यतया साम्यवादी देश थे, विशेषत: पूर्वी यूरोप के वो देश जो सोवियत संघ के राजनैतिक और सैन्य मित्र थे | पशिचमी गुट में **पूँजीवादी** देश थे जिसका नेतृत्व अमेरिका कर रहा था | पशिचमी यूरोप के औधोगिक दृषिटकोण से विकसित राज्य, जैसे कि जापान, कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड, इस गुट के मुख्य सहभागी थे| इसके अलावा, इसके अन्य आयाम भी थे जिसमे पश्चिमी पूँजीवादी मॉडल तथा सोवियत राज्य द्वारा नियंत्रित आर्थिक नियोजन के बीच प्रतिद्वंदिता एवं बैचारिक संघर्ष और विवाद भी शामिल था | महाशक्तियों की रणनीतियों को निर्धारित करने वाले कारक शीत युद्ध के दौरान संघर्ष के केंद्रीय मुद्दो में से एक थे | संबंधित राज्यों ने अपने औचित्य को स्पष्ट करते हुए राष्ट्रीय हित, सुरक्षा, मित्र राज्यों का समर्थन आदि को महत्वपूर्ण माना है |

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम मुख्यत: शीत युद्ध की अवधारणा की व्याख्या, इसका अर्थ तथा शीत युद्ध के उदय और समाप्ति के कारणों की विवेचना करेंगे जिनकी सम्पूर्ण शीत युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका थी, इस इकाई में शीत युद्ध को चार चरणो में बाटा गया है| शीत युद्ध ने विश्व की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था को अस्त - व्यस्त कर दिया यह प्रभाव इतना गहरा था की इसके लक्षण आज भी देखे जा सकते है |

इस इकाई को पढ़ने और समझने के पश्चात हम :-

- सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओ पर शीत युद्ध के प्रभावों का अध्ययन कर सकेंगे |
- शीत युद्ध के उदय के कारणों से परिचित हो सकेंगे |
- हथियारों की होड़ ने विश्व अर्थ व्यवस्था को कहा तक प्रभावित किया इसका अध्ययन कर सकेंगे |
- सोवियत संघ का विघटन शीत युद्ध के समाप्त होने का मुख्य कारण किस प्रकार था, इसको समझने सहायता मिलेगी |
- क्षेत्रीय गुटो का शीत युद्ध पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन कर सकेंगे |

6.3 शीत युद्ध का अर्थ

अमेरिका तथा सोवियत रूस के सम्बन्धों के बीच के तनावों को शीत युद्ध का नाम दिया गया है | शीत युद्ध का अर्थ है अंतर्राष्ट्रीय संबंधो में दो विरोधी प्रतियोगिता के बीच तनावपूर्ण संबंध | **द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने के पहले से ही अमेरिका और सोवियत संघ के संबंध तनावपूर्ण थे परन्तु इसे शीत युद्ध की संज्ञा 1947 के आस-पास ही दी गई।** शीत युद्ध शब्द का प्रयोग पहली बार अमेरिकी राज नेता बर्नाड बारोच द्वारा किया गया परन्तु इसे प्रो. लिप्पमैन ने लोकप्रिय किया | उसने इसका प्रयोग अमेरिका तथा रूस के बीच तनावपूर्ण संबंधो का वर्णन करने के लिए किया |

शीत - युद्ध एक ऐसी स्थिति थी जिसे ' उष्ण शान्ति ' के रूप में जाना जाने लगा | ऐसी स्थिति में न तो पूर्ण रूप से शांति रहती है और न ही वास्तविक युद्ध होता है, बल्कि शांति एवं युद्ध के बीच की अस्थिर स्थिति बनी रहती है | इस स्थिति में दोनों पक्ष परस्पर शान्तिकालीन कूटनीतिक संबंध कायम रखते हुए भी परस्पर शत्रुता का भाव रखते है और सशस्त्र युद्ध को छोडकर अन्य समस्त उपायों का सहारा लेकर एक दूसरे की स्थिति दुर्बल बनाने का प्रयत्न करते है | यह कूटनीतिक दांवपेंचों से लड़ा जाने वाला युद्ध था जिसमे महाशक्तियां एक दूसरे से भयभीत रहती थी | **यह सैन्य संघर्ष न होकर एक कूटनैतिक एवं विचारात्मक युद्ध था । लेकिन ऐसी तनावपूर्ण सिथति में प्रत्यक्ष सैन्य संघर्ष की** गुंजाइश हमेशा बनी रहती है।

6.4 शीत युद्ध का उदय

1917 की बोलशेविक क्रानित के साथ ही शीत युद्ध का उदय माना जा सकता है। सोवियत संघ की उत्पत्ति के साथ ही पशिचमी देशों के साथ इसके **संबंध** तनावपूर्ण रहे । सोवियत संघ में गृह-युद्ध के शुरूआत के दिनों मे ही अमेरिका सहित पशिचमी देशों का हस्तक्षेप इसका कारण माना जा सकता है। 1933 तक तो अमेरिका ने सोवियत संघ को कूटनैतिक मान्यता भी नहीं दी थी। 1941 में हिटलर द्वारा अचानक सोवियत रूस पर हमला करने की वजह से इसे पशिचमी देशों से हाथ मिलाना पड़ा। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान साम्यवादी रूस की साहस और त्याग की वजह से सहयोगी शकितयों को विजय प्राप्त करने में मदद मिली और उनके मन में सोवियत रूस के लिए सम्मान पैदा हुआ। आशा जगी कि पूरब और पशिचम के बीच अच्छे **संबंधो** का एक नया दौर शुरू होगा।

जहा तक इसके उदय का कारण है इसकी जड़े यूरोप में विश्व युद्धों के बाद की परिस्थितियाँ है | दूसरा विश्व युद्ध अमेरिका तथा सोवियत संघ ने साथ मिलकर लड़ा था अत: ऐसी आशा व्यक्त की जा रही थी कि युद्ध के बाद भी इनका सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहेगा | परन्तु ऐसा नही हो सका युद्ध के समय यह दोनों देश मित्र थे परन्तु दोनों के बीच हितो का टकराव काफी पुराना था और यही टकराव विवाद का मुख्ये मुद्दा था | फ़रवरी 1945 में हुए याल्टा सम्मेलन ने यह स्पष्ट कर दिया था कि सोवियत संघ पूर्वी यूरोप को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाना चाहता था जिसकी वजह से अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत संघ के बीच कई तरह के राजनितिक, बैचारिक, एवं सामाजिक भेद भाव देखने को मिले | इन महाशक्तियों का सबसे अधिक विवाद पोलैंड पर केंद्रित था | जहा अमेरिका तथा ब्रिटेन की पोलैंड में विशेष रूचि थी वही स्टालिन की सेनाओ ने 1944 तथा 45 के बीच जर्मनी की सेनाओ को बाहर कर पोलैंड में साम्यवादी अस्थायी सरकार स्थापित कर दी थी | अमेरिक तथा ब्रिटेन ने इसका विरोध किया और यह विरोध याल्टा सम्मेलन से लेकर 1947 तक तनाव का मूल कारण बना| इसी तरह जर्मनी को लेकर भी दोनों महाशक्तियों में विवाद की स्थिति बनी रही |

सोवियत संघ जर्मनी को कमजोर तथा गरीब बने रहना देखना चाहता था ताकि की वह भविष्य में खतरा न बन सके जबकि अमेरिका उसकी अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण चाहता था ताकि वह अपने अत्याधिक उत्पादों को जर्मनी के बाजारों में बेच सके | दोनों के बीच तनाव और भी गहरा हो गया जब स्टालिन ने 1946 में यह बयान दिया की

दूसरा विश्व युद्ध पूंजीवादी साम्राज्यवाद का परिणाम था | इसका अर्थ यह निकला जा सकता था की इस तरह के युद्ध भविष्य में दोबारा भी हो सकते है | अमेरिका और सोवियत संघ के संबंधो में नया मोड़ तब आया जब 1949 में सोवियत संघ ने अणु शक्ति पर सयुक्त राज्य अमेरिका के एकाधिकार को ख़त्म कर दिया |

नए शक्ति संतुलन में परिवर्तन ने प्रत्यक्ष विरोध से आंदोलन की दिशा बदल दी | अब दोनों शक्तियों ने अपने -अपने मित्र राष्ट्रों के साथ संसाधनो का विस्तार करना शुरू कर दिया | उनकी सफलताओ ने दिवध्रुवीय विश्व का निर्माण किया | अमेरिका के यूरोपीय मित्र और सोवियत संघ के मित्र क्रमश: उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (NATO) और वारसा पैक्ट में विभाजित हो गया |

6.5 शीत युद्ध के चरण

दूसरे विश्व युद्ध के बाद शीत युद्ध को चार चरणो में विभाजित किया जा सकता है :- शीत युद्ध (1946 - 1962), दितान्त (1963 - 1979), दूसरा शीत युद्ध (1979-1984), तथा शीत युद्ध का अंत (1985-1991) वस्तुता: यह शीत युद्ध के विकास के विभिन्न चरण है जिसमे उतार चढ़ाव आते रहे |

6.5.1 पहला चरण (1946-1962), शीत युद्ध

यह चरण 1946 से शुरू होकर 1962 तक चला | इस चरण की प्रमुख घटनायें थी: ट्रूमैन सिद्धांत, मार्शल योजना, बर्लिन नाकाबंदी, सोवियत संघ द्वारा पहला परमाणु बम धमाका, नाटो की स्थापना, पश्चिमी तथा पूर्वी जर्मनी की स्थापना, जर्मनी के एकीकरण पर स्टालिन का संदेश, केंद्रीय यूरोप से महाशक्तियों की सेनाओ की वापसी, चीन का गृहयुद्ध एवं साम्यवाद चीन गणराज्य की स्थापना तथा कोरिया युद्ध |

6.5.1.1 ट्रूमैन सिद्धांत

दूसरे विश्व युद्ध अपने अंतिम चरण में था तभी सोवियत संघ ने पोलैण्ड, बुल्गारिया, रूमानिया, हंगरी तथा युगोस्लाविया जैसे पूर्वी यूरोपीय देशों में साम्यवादी शासन की स्थापना की तथा इसके साथ ही उसने प्रजातांत्रिक राजनैतिक दलों को बर्खास्त करने एवं लोकतांत्रिक संगठनों को कुचलने की नीति भी अपनाई। सोवियत संघ ने हंगरी और युगोस्लाविया के उपर ब्रिटेन और अपने संयुक्त प्रभाव वाली 1944 की चर्चिल और स्तालिन के बीच हुए बालकन समझौता का भी उल्लंघन किया। युद्ध के बाद सोवियत संघ ने हस्तक्षेप ने पूरे बालकन क्षेत्रा में साम्यवादी सरकार की स्थापना की। पूर्वी यूरोप के बाद सोवियत संघ ने पश्चिमी यूरोप की ओर साम्यवाद के फैलाव का प्रयास शुरू किया। परन्तु सोवियत संघ के इस बढ़ते प्रभाव को अमेरिका चुप-चाप नहीं देख सकता था।

8 मई 1945 में जब दूसरा विश्व युद्ध समाप्त हुआ तो सोवियत संघ और पश्चिमी देशो की सेनाये यूरोप की मध्य रेखा पर, तैनात थी| वास्तव में याल्टा समझौत में परोक्ष रूप से यह स्वीकार कर लिया गया की दोनों पक्षों की सेनायें जहां है वहां रह सकती है | राजनीतिक दृष्टिकोण से याल्टा समझौता युद्धोपरान्त यथास्थिति पर एक समझौता था जिससे सोवियत यूनियन को यूरोप के तकरीबन 1/3 तथा अमेरिका को 2/3 भाग पर नियंत्रण मिल गया | सोवियत संघ चाहता था की जर्मनी की दोबारा आक्रमण करने की क्षमता को सदा के लिए निरस्त कर दे | दूसरी ओर अमेरिका के नये (1945) राष्ट्रपति ट्रूमैन की अध्यक्षता में, 1941 की रूजवेल्ट योजना के अनुसार आकार देना चाहता था | ट्रूमैन सिद्धांत का विस्तान इस आधार पर किया गया कि यह सोवियत यूनियन के प्रसार को किसी भी तरह से रोका जा सके | इसे निरोधक नीति या कन्टेनमैंट पॉलिसी का नाम दिया गया |

इस पॉलिसी के द्वारा जानबूझकर पूरे विश्व में साम्यवाद के खिलाफ डर पैदा किया गया। इरान से सोवियत सैनिकों का बाहर न निकाला जाना, चेकोस्लोवाकिया में साम्यवादियों द्वारा तख्ता-पलट, 1948 में बर्लिन की घेराबन्दी, 1949 में नाटो गठन और चीन में साम्यवादियों का शासन, इन सब घटनाओं ने शानितपूर्ण सहयोग के विषय पर

विश्व को शंका में डाल दिया। इस समय अमेरिका ने अपना वैचारिक आक्रमण तेज करते हुए कई सैन्य गुटों को प्रोत्साहन दिया एवं हथियारों के लिए होड़ लग गई।

6.5.1.2 मार्शल योजना

मार्शल योजना ट्रूमैन सिद्धन्त का आर्थिक विचार था | आर्थिक पक्ष को कार्यान्वित करने के लिए अमेरिका ने मार्शल प्लान की रचना की | मार्शल प्लान, जो आधिकारिक तौर पर यूरोपियन रिकवरी प्रोग्राम (ERP) के नाम से जानी जाती है, क्या उद्देश्य अमेरिका द्वारा यूरोप कैँ मित्र देशो का आर्थिक पुर्ननिर्माण करके साम्यवाद के प्रसार को रोकना था | अमेरिका की इस पहल, jise अमेरिका के विदेश सचिव जार्ज मार्शल का नाम दिया गया, में विदेश विभाग के अन्य वरिष्ट पदाधिकारियों जार्ज कैनन तथा विलियम क्लेटोन की महत्वपूर्ण भूमिका थी |

मार्शल प्लान 4 वर्षो के लिए थी और यह अपने प्राम्भिक कार्यक्रम के अनुसार 1951 में समाप्त हो गयी | इस अनुदान के परिणाम स्वरूप 1948-52 के चार साल यूरोपीय इतिहास के आर्थिक विकास में सबसे गतिशील वर्ष थे | अमेरिकी सहायता का प्रस्ताव रखते हुए मार्शल ने यूरोप के लोकतान्त्रिक आर्थिक संकट की ओर ध्यान केंद्रित किया और उनका यह विश्वास था की अमेरिका युद्ध से प्रभावित देशो के स्थायित्व में मदद कर सकता है | उन्होंने यह भी उल्लेख किया क़ि आर्थिक पुननिर्माण यूरोपवासियों का व्यवसाय था परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका ऐसे कार्यक्रम का प्रारूप तभी तैयार करेगा जब यूरोप इसमें पहल - शक्ति दिखाए और उन्हें यह भी सुझाव दिया की कोई भी कार्यक्रम तभी सयुक्त रूप ले सकता है जब उसमे, यदि सभी नही तो अधिकांश यूरोपीय राष्ट्र शामिल हो| मार्शल ने अपने भाषण में कहा की हमारी नीति किसी देश या सिडन्ट के विरुद्ध नही है बल्कि यह भुखमरी, गरीबी, निराशा और अव्यवस्था को समाप्त करके के लिए है | मार्शल योजना का औपचारिक उद्देश्य यूरोप के आर्थिक पुननिर्माण को बढ़ावा देना था परन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य तो राजनितिक था वह समृद्धशाली पश्चिमी यूरोप में नियंत्रण को कमजोर करना चाहता था |

6.5.1.3 बर्लिन की नाकाबंदी

याल्टा सम्मेलन और पोस्टडेम सम्मेलन में यह हुआ था की जर्मनी और बर्लिन दोनों को चार क्षेत्रो में विभाजित किया जायेगा | बर्लिन का यधपि व्यावसायिक क्षेत्रो में विभजित कर दिया गया था परन्तु अभी भी उसका प्रसासन चार शक्तियों :- सोवियत संघ, अमेरिका, ब्रिटेन, और फ्रांस द्वारा सयुक्त रूप से चलाया जा रहा था | इस प्रकार बर्लिन की स्थिति शेष जर्मनी से भिन्न थी |

बर्लिन की नाकाबंदी उभरते हुये शीत युद्ध की पहली मुख्ये संकटकालीन घटना थी जब सोवियत संघ ने पश्चिमी बर्लिन तक पहुचने के सभी रेल तथा सड़क मार्गो को बंद कर दिया | बर्लिन नाकाबंदी के मूल में शीत युद्ध ही था जो अभी आरम्भ ही हुआ था | जहां एक तरफ स्टालिन धीरे धीरे पूर्वी यूरोप के देशो पर अपना नियंत्रण स्थापित करता जा रहा था (मार्च 1948 में चेकोस्लोवाकिया में साम्यवादी सरकार स्थापित की गयी), वहां दूसरी तरफ अमेरिका ने सोवियत साम्यवाद को नियंत्रित करने के लिए ट्रूमैन सिद्धांत की घोषणा की | इस संधर्भ में बर्लिन नाकाबंदी शीत युद्ध का प्रयोग था |

इसके अतिरिक्त तीन अन्य घटनाओ ने स्टालिन को बर्लिन नाकाबंदी जैसा कदम उठाने पर मजबूर किया :-

१) जनवरी 1947 में अमेरिका तथा ब्रिटेन ने बर्लिन के अपने अपने क्षेत्रो का विलय कर दिया और उन्होंने इस सयुक्त क्षेत्र को बिजिनिया का नाम दिया | सोवियत संघ को लगा की, ब्रिटेन तथा अमेरिका एक नए सशक्त जर्मनी की स्थापना करने जा रहे है अतः उसकी नाराजगी जायज थी |

२) 31 मार्च 1948 को अमेरिका की कांग्रेस ने मार्शल प्लान को मंजूरी दी | स्टालिन ने इस योजना को सोवियत संघ पर पूर्वी यूरोप में प्रभाव को कम करने की चाल समझा | अतः सोवियत संघ ने बर्लिन जाने वाले सभी रेल तथा सड़क परिवहनों की तलाशी लेनी आरम्भ कर दी |

३) 01 जून को अमेरिका तथा ब्रिटेन ने घोषणा की कि वह पश्चिमी बर्लिन बिजोनिया में नई मुद्रा आरम्भ करने जा रहे है और वे पश्चिमी जर्मनी नाम से नये राज्य की स्थापना करना चाहते है | 23 जून को उन्होंने बिजोनिया तथा पश्चिमी बर्लिन में नई मुद्रा आरम्भ कर दी | पर्वी जर्मनी के लोगो ने अपनी मुद्रा नई बिजोनिये मुद्रा में बदलनी आरम्भ कर दी जिसका आर्थिक मूल्य अपेक्षाकृत अधिक था | इसके दूसरे ही दिन सोवियत संघ ने बर्लिन जाने वाले सभी रेल तथा सड़क परिवहन पर रोक लगा दी |

सोवियत रूस की इस नाकाबंदी की समस्या से निपटने तथा पश्चिमी बर्लिन में वस्तुओ की आपूर्ति बनाये रखने के लिए अमेरिका के कमांडर जनरल लूशियस डी. क्ले ने प्रस्ताव रखा की हथिया बंद सैनिक शांतिपूर्ण तरीके से पश्चिमी जर्मनी से पश्चिमी बर्लिन भेजे जाये| अमेरिका और बि्रटेन ने लगभग एक वर्ष तक वायु मार्ग द्वारा बर्लिन में आवश्यक सामग्री भेजने का काम किया। मई 1949 में यह घेराबन्दी हटा ली गई लेकिन वायुमार्ग द्वारा सामान भेजने का काम सितम्बर तक चलता राह। इस नाकेबन्दी के बाद बर्लिन का विभाजन औपचारिक रूप से पूर्वी और पशिचमी क्षेत्रा में हो गया। सोवियत संघ द्वारा बर्लिन को विभाजित करते हुए मीलों लम्बी दीवार का निर्माण किया गया ताकि शरणार्थी पूर्वी बर्लिन से भागकर पशिचमी बर्लिन में न जा सके।

6.5.1.4 चीन में साम्यवादी शासन की स्थापना

दूसरे विश्व युद्ध के बाद साम्यवादी दल जिसका नेतृत्व माओ कर रहा था तथा चियांग कई शेक चीन के राष्ट्रवादी दल के बीच युद्ध दोबारा आरम्भ हो गया | जहाँ सोवियत संघ चीन के साम्यवादी दल को सिमित सहायता प्रदान कर रहा था, वहीं दूसरी तरफ अमेरिका राष्ट्रीय दल कि आर्थिक और सैनिक रूप से उसकी मदद कर रहा था | परन्तु साम्यवादी दल की जनवादी मुक्ति सेना के आगे भृष्ट और अनुशासनहीन राष्ट्रवादी सेनाये नही टिक सकी| 1949 के अंत तक चीन की लगभग सारी प्रमुख भूमि पर साम्यवादी दल का कब्जा हो गया| अक्टूबर 1949 में माओ ने जनवादी चीनी गणराज्य की घोषणा कर दी| चियांग काई शेक अपनी सेनाओ के साथ भाग कर ताईवान दीवप में आ गया | दिसम्बर 1949 में चियांग कई शेक ने ताईवान को चीनी गणराज्य की अस्थायी राजधानी घोषित किया तथा अपनी सरकार को चीन की वैध सरकार होने का दावा किया | इससे राष्ट्रवादी चीन की सरकार तथा साम्यवादी चीन गणराज्य का झगड़ा पुरे शीत युद्ध के दौरान चलता रहा | 1949 में कोमिंटाग पर साम्यवादी विजय के बाद, माओ ने बिखरे चीन के पुनर्निर्माण का कार्य शुरू किया | प्रारम्भ में वहाँ रुसी सहायता और परामर्श लिया गया परन्तु 1950 के दशक के अंत तक संबंध शांत हो गए और रुसी आर्थिक सहायता को घटा दिया गया | माओ ने चीन की आर्थिक मांगो को पूरा करने के लिए व्यापक रूप से आकस्मिक परिवर्तन किया |

6.5.1.5 कोरिया युद्ध

शीत युद्ध 1950 में यूरोप से एशिया में पहुँच गया। वस्तुत: कोरियन युद्ध (1950-53) दोनों महाशकितयों के बीच एक प्रत्यक्ष संघर्ष था। उत्तरी कोरिया युद्ध सोवियत हथियारों तथा चीनी सैनिक की मदद से लड़ रहा था जबकि संयुक्त राष्ट्र सेना के नाम पर अमेरिका दक्षिणी कोरिया की ओर से युद्धरत था। यह युद्ध निशिचत ही तीसरे विश्व युद्ध का रूप ले सकता था परन्तु युद्ध विराम की घोषणा से यह खतरा टल गया।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद कोरिया को दो भागो - उत्तरी कोरिया (सोवियत नियंत्रण) तथा दक्षिण कोरिया (अमेरिकी नियंत्रण) - विभाजित कर दिया गया | जहाँ उत्तरी कोरिया में सोवियत संघ के नियंत्रण में साम्यवादी सरकार की स्थापना की गयी, वहाँ दक्षिण कोरिया में सयुक्त राष्ट्र की देख रेख में हुए चुनावो के परिणाम स्वरूप पूंजीवाद

सरकार की स्थापना हुई | 1950 में अमेरिका ने जापान के साथ एक संधि पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार अमेरिका जापान में दीर्घकालीन सैनिक अड्डो की गारंटी देगा | कुछ प्रयावेक्षको का मानना था की इस समझोते ने स्टालिन को अमेरिका द्वारा समर्थिक दक्षिण कोरिया पर 20 जून 1950 को आक्रमण करने की योजना को स्वीकृति देने पर मजबूर कर दिया | इस डर से की कहीं एकीकृत कोरिया जापान में अमेरिकी शक्ति को समतल न कर दे और विश्व स्तर पर साम्यवादी आंदोलन को जन्म न दे दे, ट्रूमैन ने दक्षिण कोरिया को सैनिक सहायता देने का निर्णय लिया तथा दक्षिण कोरिया से उत्तरी कोरिया की सेनाओ को हटाने के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का समर्थन भी प्राप्त कर लिया | इस संदर्भ में सोवियत यूनियन ने एक ऐतिहासिक कूटनीतिक गलती की जब उसने सुरक्षा परिषद की बैठक का बाईकाट किया| परन्तु अमेरिका की तरफ से भी भरी गलती हुई जब उसने अपनी सेनाओ को चीन कोरिया सीमा की तरफ जाने की स्वीकृति दे दी | चीन ने इसका जवाब नवम्बर 1950 में भरी जवाबी आक्रमण से दिया जिसमे अमेरिकी तथा चीनी सेनाओ का भरी विनाश हुआ | यह युद्ध दो साल तक चला और कोरिया के विभाजन में समाप्त हुआ |

6.5.1.6 वियतनाम युद्ध

1966 तक अमेरिका के दो लाख के करीब सैनिक वियतनाम में युद्ध कर रहे थे | दूसरी तरह उतरी वियतनाम सोवियत यूनियन तथा अन्य साम्यवादी देशो से सैनिक तथा तकनीकी सहायता प्राप्त कर रहा था | व्यापक सैनिक सहायता, भरी बम्ब वर्षा तथा अधिका अधिक अमेरिकी सेनाओ के बावजूद दक्षिण वियतनाम वियतकोंग एवं उत्तरी वियतनाम की सेनाओ को हराने में असफल रहा | अमेरिका की जीत की आशा वादी रिपोर्ट का पर्दा फाश tab हुआ जब उत्तरी वियतनाम तथा वियतकोंग ने घातक टेट आक्रमण किया जिसमे 100 से अधिक शहरो पर आक्रमण किया गया तथा दक्षिण वियतनाम के ह्यू शहर के लिए एक महीने तक का युद्ध चला |

वियतनाम युद्ध को समाप्त करने के लिए गंभीर वार्ता 1968 के बाद आरम्भ हुई जब अमेरिका के राष्ट्रियपति लिंडन जॉनसन ने दोबारा चुनाव न लड़ने का निर्णय लिया | 1969 ने अमेरिका, उत्तरी वियतनाम , दक्षिण वियतनाम तथा राजनितिक संगठन राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा के बीच वार्ताएँ चली | नये राष्ट्रपति निक्सन ने रणनीति में परिवर्तन किया | वियतनाम से अमेरिकी सेनाओ की वापसी के साथ उसने वियतनाम पर बम बरी और भी तीव्र कर दी जिसमे कम्बोडिया में साम्यवादी दिकणो पर हमले भी शामिल थे |

6.5.2 दूसरा चरण (1962-1979), दितान्त

शीत युद्ध के पहले चरण के खत्म होते ही 1962 क्यूबा मिसाइल संकट का दौर शुरू हो गया । एक तरफ अमेरिका सोवियत संघ को घेरने के उद्देश्य से जगह-जगह अपनी सेनाये भेज रहा था तो दूसरी तरफ अमेरिका की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए सोवियत संघ ने क्यूबा में परमाणु मिसाइल लगाने का सोचा।

क्यूबा मिसाइल को लेकर अमेरिकी प्रशासन में सात-दिनों तक चर्चा हुई और 22 अक्टूबर को राष्ट्रपति केनेडी ने अपने एक टेलिविजन भाषण के माध्यम से इस तथ्य का खुलासा किया और यह चेतावनी भी दी कि क्यूबा की जमीन से हुए किसी भी मिसाइल आक्रमण को सोवियत संघ द्वारा किया गया आक्रमण समझा जाएगा एवं उसका उचित जवाब भी दिया जाएगा। अमेरिका ने क्यूबा की समुंद्री सीमा में जहाजों के आवागमन पर भी प्रतिबंध लगा दिया ताकि सोवियत सैन्य हथियार वहाँ नहीं पहुँच सके।

इस संकट के दौरान दोनों पक्षों के बीच औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों तरह की वार्ता होती रही। 23 और 24 अक्टूबर को –ख्रुश्चेव ने केनेडी को पत्रा लिखे जिसमें यह इंगित किया गया था कि सोवियत संघ का रवैया शांतिपूर्ण है तथा क्यूबा में लगने वाले मिसाइल सुरक्ष के उद्देश्य के लिए लगाया गया हैं। 26 अक्टूबर को –ख्रुश्चेव ने केनेडी को एक और पत्रा लिखा जिसमें यह था कि सोवियत संघ क्यूबा में अपना मिसाइल कार्यक्रम स्थगित कर

देगा यदि अमेरिका यह सुनिशिचत करे कि अमेरिका या उसके आड़ में कोई अन्य देश क्यूबा पर आक्रमण नहीं करेगा। 27 अक्टूबर को –ख्रुश्चेव ने फिर एक पत्रा केनेडी को भेजा जिसकी भाषा पहले से अलग थी। इस पत्रा में –ख्रुश्चेव ने यह प्रस्ताव दिया था कि यदि अमेरिका टर्की से अपना मिसाइल हटा ले तो सोवियत संघ क्यूबा में अपना मिसाइल कार्यक्रम रोक देगा। अमेरिकी प्रशासन ने 26 अक्टूबर वाले पत्रा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। 28 अक्टूबर को –ख्रुश्चेव ने ये घोषणा की कि क्यूबा में मिसाइल कार्यक्रम को सोवियत संघ वापस ले लेगा और अमेरिका क्यूबा पर हमला नहीं करेगा। 28 अक्टूबर वाले समझौते को लागू करने की दिशा में आगे की बातचीत आरम्भ हो गई। इस घटना दोनों महाशकितयों को युद्ध के कगार पर ला कर खड़ा कर दिया था। लेकिन –ख्रुश्चेव और केनेडी के बीच हुए इस समझौते ने विश्व को परमाणु विनाश से बचा लिया।

6.5.2.1 गैर - पश्चिमी गठबंधनों का उदय

1960 के दशक में एशिया, मध्यपूर्व तथा अफ्रीका के तृतीय विश्व के देशो ने भी संगठन बनाने शुरू कर दिए जैसे:- गुटनिरपेक्ष आंदोलन, OPEC, OAU तथा अरब लीग की स्थापना| कुछ विकासशील देशो ने एक नई रणनीति की रचना भी की ताकि महाशक्तियों का अपने राष्ट्रीय हितो के लिए लाभ भी उठाया जाये तथा गुटनिरपेक्ष भी रह सके |

सयुक्त राष्ट्र आम सभा, जिसमे पहले 51 सदस्य राज्य थे, 1970 के दशक में यह सदस्य संख्या बढ़कर 126 हो गयी और 2014 में इसके सदस्यों की संख्या 192 है | पश्चिमी राज्यों का प्रभुत्व घटकर 40 प्रतिशत रह गया तथा एशिया-अफ्रीका के देशो की संख्या का प्रतिशत बड़ गया | जैसे - जैसे पुराने उपनिवेशों को स्वतंत्रता मिलती गयी, वैसे - वैसे सयुक्त राष्ट्र आम सभा में भीड़ बढ़ती गयी| परिणम स्वरूप एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के विकासशील देशो का गुट बहुमत हो गया और सोवियत यूनियन के समर्थन में यह कभी-कभी पश्चिमी विरोधी भी हो जाता था |

6.5.2.2 दितान्त

यह चरण में शीत युद्ध समाप्ति की ओर था और दोनों पक्षों के बीच संबंध सामान्य होने लगे। राष्ट्रपति निक्सन एवं उनके राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार हेनरी ए. किसिन्जर के आगमन से ही यह संभव हो सका। सोवियत - अमेरिका संबंध बढ़ाने की इस नीति को आधिकारिक रूप से 1969 में दितान्त का नाम दिया गया।

शब्द देतान्त का अर्थ है |शीतयुद्ध के दौरान अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धो मे स्थाई ढील ना कि अस्थायी ढील जिसे था का नाम दिया जाता है | देतांत एक फ्रंच शब्द है जिसका अर्थ है तनाव की कमी |

वियतनाम युद्ध में असपफलता की वजह से 1969 और 1975 के बीच अमेरिका आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा था। वियतनाम युद्ध 1959 से लेकर 30 अप्रैल 1975 तक वियतनाम, लाओस तथा कम्बोडिया में चला। अमेरिका को युद्ध में इसलिए शामिल होना पड़ा कि दक्षिण वियतनाम में साम्यवादी शासन की स्थापना न हो पाए। इस दौरान अमेरिकी डालर का मूल्य गिरता जा रहा था। सोवियत संघ की भी आर्थिक स्थिति ख़राब होती जा रही थी और वह तकनीकि रूप से अपने-आप को उन्नत करने के प्रयास में लगा हुआ था। बड़े पैमाने पर सेनाओ का संरक्षण तथा परमाणु आस्त्रो के निर्माण में होने वाले महाकाय व्यय का भी अंदाज होना आरम्भ हो गया था | वियतनाम युद्ध के परिणाम स्वरूप अमेरिका को हुए आर्थिक तथा मानवीय नुकसान ने भी स्पष्ट कर दिया की सोवियत रूस के साथ शांति पूर्ण संबंध ही लाभकारी होंगे | उधर सोवियत रूस भी परमाणु शस्त्रों के विकास पर आपार धन खर्च कर रहा था जिसका सीधा प्रभाव उसकी घरेलू अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा था | सोवियत संघ में जीवन स्तर काफी निम्न था | सोवियत रूस के चीन के साथ संबंध बिगड़ और उसे यह भी पता था की अमेरिका चीन के साथ संबंध सुधरने जा रहा है | चीन के सोवियत रूस के साथ संबंध बिगड़ चुके थे और सोवियत संघ

अमेरिका की शक्ति तथा पहुंच से भी भलीभांति परिचित था अत: अमेरिका, सोवियत यूनियन तथा चीन के त्रिकोण ने तनाव शैथिल्य को जन्म दिया |

1972 में सामरिक हथियार परिसीमन संधि पर जुलाई 1973 में हस्ताक्षर किये गये तथा 1977 में यूरोपीय सुरक्षा बैठक की समीक्षा हेतु बेलग्रेड में आयोजित समीक्षा बैठक एक ऐसा कदम था जिनका दोनों पक्षों के बीच सुसंबंध में महत्वपूर्ण योगदान रहा। फिर भी दोनों पक्षों के बीच कुछ कड़वाहट बची हुई थी। उदाहरणस्वरूप, मध्य एशिया में रूस के बढ़ते प्रभाव को रोकने के दृषिटकोण से अमेरिका ने इरान मे हथियारों के जमावड़े को प्रोत्साहन दिया। इसने डिएगो ग्रेसिया को सैन्य बेस में तब्दील करने की पहल की। बंगलादेश संकट के समय अमेरिका ने पाकिस्तान का साथ दिया जबकि रूस भारत के पक्ष में था। इसी तरह 1973 के मिश्र - इजराइल युद्ध के समय सोवियत संघ मिश्र के पक्ष में था जबकि अमेरिका इज़राएल के साथ था। परन्तु इन सभी घटनाओ में दोनों ही महाशक्तियों ने प्रत्यक्ष सैन्य कार्यवाई में हिस्सा नहीं लिया।

6.5.3 तीसरा चरण (1979-1984), दूसरा शीत युद्ध

1979 में सोवियत संघ के हस्तक्षेप से देतांत का अंत हो गया तथा शीत युद्ध एक बार फिर से शुरू हुआ| इस चरण को दूसरा शीत युद्ध भी कहा जाता है| इस चरण में दोनों पक्षों दोनों पक्षों ने फिर से सैनिक तेयारिया करना शुरू कर दिया | 1983 में पश्चिमी यूरोप द्वारा नकली परमाणु मुक्ति अभ्यास से सोवियत संघ को लगा की अमेरिका उस पर परमाणु आक्रमण करने वाला है| दूसरी तरफ अफगानिस्तान में सोवियत संघ का हस्तक्षेप इस समय की विकट समस्या बन गया | अमेरिका ने अफ़ग़ानिस्तान को हथियार देकर सहायता की जिसने सोवियत संघ के कई जहाजो को मार गिराया | दिसम्बर 1979 में राष्ट्रपति कार्टर ने हाटलाइन पर सोवियत नेताओं को चेतावनी दी कि यदि सोवियत संघ अपफगानिस्तान से बाहर नहीं निकला तो पूरा सोवियत-अमेरिकी संबंध खटाई में पड़ सकता है। आक्रमण के एक साल के अंदर ही 1980 में सोवियत संघ को निर्यात किए जाने वाले अन्न एवं उच्च तकनीक पर अमेरिका ने आंशिक प्रतिबंध लगा दिया। 3 जनवरी 1980 को ही संयुक्त राष्ट्र महासभा ने एक प्रस्ताव पारित करके अपफगानिस्तान में सोवियत आक्रमण की भत्र्सना की। इस प्रकार, संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से व्यक्त अंतर्राष्ट्रीय विचार सोवियत संघ के विरोध में कड़ा रूप धारण कर लिया।

6.5.3.1 अफगानिस्तान संकट

दिसम्बर 1979 में सोवियत संघ ने अफगानिस्तान पर पूर्णरूप से अधिकार कर लिया और बराक कर्मल को राष्ट्रपति बना दिया गया। इसके साथ ही सोवियत संघ और उसके द्वारा बनाई सरकार को भारी विरोध का सामना करना पड़ा | इस विरोध का फायदा उठा कर गुरिल्ला दस्तो ने आक्रमणकारियों के खिलापफ जिहाद की घोषणा कर दी| जिसकी अमेरिका ने पाकिस्तान की मदद से अमेरिकी अत्याधुनिक हथियारों मुजाहिदीन की सहायता के लिए भेजने लगा |

जिससे सोवियत सेनाये इस अफ़ग़ानितं के युद्ध में पराजित होने लगी| यह संघर्ष लगभग बराबरी पर समाप्त हुआ जिसमें शहरी क्षेत्रों पर सोवियत सेना का नियंत्राण था जबकि पहाड़ी क्षेत्रों में मुजाहीदीन गुरिल्ला मुक्त रूप से कार्यरत थे। 1986 में करमल के त्यागपत्रा देने के बाद मोहम्मद नजीबुल्ला राष्ट्रपति बने। अप्रैल 1988 में सोवियत संघ, अमेरिका, अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान के बीच समझौता हुआ जिसका प्रावधान था कि युद्धरत गुटों को किसी तरह की बाहरी सहायता न मिले। फ़रवरी 1988 में राष्ट्रपति मिखाइल गोरबाचेव ने अफगानिस्तान से सोवियत सेना की वापसी की घोषणा की परन्तु एक साल बाद अफगानिस्तान कई नियंत्राण क्षेत्राों में विभाजित हो गया। दशक के अंत तक यही राजनैतिक विभाजन तालिबान के उत्थान का कारण बना।

6.5.3.2 तनाव-शैथिल्य

नये सोवियत नेता मिखाइल गोरबाचेव और अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन के साथ एक विश्व स्तरीय शिखर बैठक में परमाणु हथियार समाप्त करने हेतु एक पांच वर्षीय समय सरणी का प्रस्ताव रखा। अमेरिका ने इस विषय पर सकारात्मक रूख तो दिखाया परन्तु गोरबाचेव की तुलना में यह बहुत कम था। गोर्बाचेव और रीगन ने चार शिखर बैठक की जिसकी विश्वव्यापी सराहना हुई। दोनों देशों ने सामरिक हथियार परिसीमन सन्धि की दिशा में अपना रुख किया | दोनों देश के बीच यह समझोता हुआ कि समुन्द्र एवं सतह पर मार करने वाले मिसाइल के परीक्षण की पूर्व सूचना दी जाए तथा परमाणु हथियारों के परीक्षण की संयुक्त जाँच हो।

1990 के वाशिंगटन शिखर बैठक में राष्ट्रपति बुश एवं राष्ट्रति गोर्बाचेव ने परमाणु, रसायनिक एवं पारम्परिक हथियारों से संबंधित कई समझौतों पर हस्ताक्षर किए। सामरिक हथियार परिसीमन संधि के भी कुछ सिद्धान्तों पर दोनों सहमत हुए एवं 31 जुलाई 1990 को इस पर हस्ताक्षर भी किए।

6.5.4 चौथा चरण (1985 -1991), शीत युद्ध का अंत

1985-91 की कालावधि शीत युद्ध के अंत की दृष्टि से सोवियत संघ और अमेरिका के संबंधो में ऐतिहासिक सीमचिन्ह मानी जाती है| इस समय ऐसी घटनाये घाटी जिसकी वजह से सोवियत संघ के बिघटन के साथ शीत युद्ध का अंत हो गया |

6.5.4.1 बर्लिन की दीवार का ध्वस्त होना

यूरोप में बर्लिन की दीवार शीत युद्ध का कलुषित प्रतिक थी | 9 नवंबर 1989 को बर्लिन को दो भागो में बाटने वाली दीवार ध्वस्त कर दी गयी | पूर्वो जर्मनी से लोग बिना किसी रोक टोक पश्चिमी जर्मनी जाने लगे इस घटना का सोवियत संघ की और कोई प्रतिरोध नही किया गया |

6.5.4.2 जर्मनी का एकीकरण

01 जुलाई 1990 को दोनों जर्मनी का आर्थिक एकीकरण हो गया| 15-16 जुलाई, 1990 को पश्चिमी जर्मनी के चांसलर हेल्मुट कॉल ने सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाचोब से भेट की| बाद में एक पत्रकार सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए सोवियत राष्ट्रपति ने कहा की जर्मनी का एकीकरण निश्चित है, सोवियत संघ जर्मनी से निकट संबंध चाहता है और यह जर्मनी की इच्छा पर है की वह नाटो या वारसा पेक्ट में शमिल हो | इस प्रकार सोवियत संघ ने जर्मनी के एकीकरण को हरी झंडी दिखा दी | 03 अक्टूबर 1990 को जर्मनी का एकीकरण हो गया जिसके साथ ही यूरोप से शीत युद्ध की गंदगी साफ हो गयी |

6.5.4.3 नाटो द्वारा शीत युद्ध समाप्ति को घोषणा

5-6 जुलाई 1990 को लन्दन में दोदिवसीय नाटो शिखर सम्मेलन में राष्ट्रपति बुश ने ऐतिहासिक घोषणा करते हुए खा की नाटो व् वारसा पेक्ट देशो के बीच शीत युद्ध अब समाप्त हो चूका है सोवियत संघ की असंकाओ को दूर करने के लिए नाटो घोषणा में कहा गया की जर्मनी से सेनिको की तादाद कम कर दी जाएगी जैसे - जैसे सोवियत संघ पूर्वी यूरोप से अपनी सेनाए हटाएगा, नाटो भी पश्चिमी जर्मनी से परमाणु हथियारों को हटा लेगा | पश्चिमी जर्मनी ने सोवियत संघ को आश्वासन दिया की वह एकीकरण बाद अपनी सेना आधी कर देगा | नाटो देशो में वारसा पेक्ट के देशो के सामने एक अनाक्रमण घोषणा के साथ परमाणु शस्त्रों को खत्म करने का प्रस्ताव रखा |

6.5.4.4 हेलसिंकी में गोर्बाचोव - बुश वार्ता

8-9 सितम्बर, 1990 को हेकसिंकी में राष्ट्रपति बुश व गौरवबाचोव के बीच बात चित्त हुई दोनों नेताओ ने इराक द्वारा कुवैत पर आक्रमण की निन्दा की और कहा की वह सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव का पूर्णता समर्थन करते है | दोनों महाशक्ति इस बात पर एकमत है की इराक बिना शर्त कुवैत से वापस हो जाये तथा सयुक्त राष्ट्र सुरक्ष परिषद

के सभी प्रस्तावों का अनुपालन करे | सोवियत संघ ने इराक को शस्त्रों की आपूर्ति बंद कर दी तथा कुवैत की स्वतंत्रता एवं संप्रभुता को बहाल करने की मांग की |

6.5.4.5 वारसा व नाटो ऐतिहासिक संधि पर हस्ताक्षर

19 नवंबर 1990 को नाटो व वारसा पेक्ट की संधि पर हस्ताक्षर किया गया इस संधि में जांच पड़ताल की व्यापक व्यवस्था की गयी ताकि कोई भी पक्ष इसका उल्लंघन न कर सके | 21 नवंबर, 1990 को शिखर बैठक सद्भावनापूर्ण विचार - विमर्श के बाद समाप्त हो गयी | और इसके साथ ही 01 जुलाई , 1991 को वारसा पैक्ट भी समाप्त कर दिया गया |

6.5.4.6 पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्त

जून 1987 में गोर्बाचेव के द्वारा आर्थिक एवं राजनितिक सुधारो के लिए उढाये गए कदमो को पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्त का नाम दिया गया | पेरेस्ट्रोइका का अर्थ था आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाओं का पुर्ननिर्माण है | जिससे निजी क्षेत्रा में व्यापार को अनुमति मिल गई एवं विदेशी निवेश के लिए मार्ग खुल गए। इन प्रावधानों का उद्देश्य था शीत युद्ध के दौरान सैनिक प्रतिबद्धता पर हो रहे खर्च को जनहित एवं विकस कायो में लगाया जाए। दूसरी तरफ ग्लासनोस्त का अर्थ था विचारभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, समाचार तथा मीडिया पर सरकारी नियंत्रण में ढील तथा प्रकाशन आदि में सेंसरशिप की समाप्ति आदि |

पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्त पूर्वी यूरोपीय देशो से साम्यवादी शासनो सदा के लिए समाप्त कर दिया, सोवियत रूस के गणराज्यो को भी मास्को से मुक्ति पाने के लिए प्रोत्साहित किया | अभी तक साम्यवादी दाल सोवियत यूनियन के बहुजातीय तथा बहुभाषीय गणराज्यो को इकट्ठा रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था | परन्तु सरकारी नियंत्रण ढीला होने से इन राष्ट्रताओ को सोवियत दमन से मुक्ति पाने की इच्छा तीव्र हो गयी | अगस्त 1989 में इस्टोनिया, लॅट्विया, लिथुनिया, ने सोवियत संघ से स्वतंत्रता पाने के लिए प्रदर्शन किया | जिसकी वजह से सोवियत रूस के यह राज्य स्वतंत्र हो गए | परन्तु इसके बाद भी गणराज्यों की स्वतंत्रता की यह मांग नही रुकी और धीरे - धीरे सोवियत यूनियन का विघटन हो गया | और सोवियत यूनियन के विघटन के साथ ही शीत युद्ध भी समाप्त हो गया |

अभ्यास प्रश्न

1 मार्शल योजना किससे संबंधित थी (?

क रूस की सहायता से . ख यूरोप का आर्थिक पुनरुत्थान .

ग शीत युद्ध की शुरुआत . घ इनमे से कोई नही .

2साम्यवाद के प्रसार पर रोक लगाने के लिए अमेरिका द्वारा सैनिक संगठन था (?

क नाटो . ख वारसा पेक्ट .

ग सीटो . घ कोई नही .

3 कोरिया (युद्ध कब हुआ था?

क१९६० . ख१९५० .

ग१९५५ . घ१९५१ .

4 शीत युद्ध किन दो विचारधराओ के मध्य संघर्ष था (?

क नाजीवादी और फासीवादी . ख पूंजीवादी और साम्यवादी

ग उदारवादी और मार्क्सवादी . घ सभी .

5 नाटो द्वारा शीत युद्ध की समाप्ति की घोषणा कब की गई (?

क .१९९१	ख१९९० जुलाई .
ग१९९० जनवरी .	घ १९९१ अक्टूबर .

6.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हम लोगो ने शीत युद्ध का अर्थ, शीत युद्ध के जन्म के कारण तथा इसके विकास के विभिन्न चरणो का अध्ययन किया | शीत युद्ध का समय एक ऐसा समय था जिसने सम्पूर्ण विश्व को दो गुटो में विभजित कर दिया | पूरा विश्व सिर्फ दो महाशक्तियों के इर्द -गिर्द घूम रहा था| इस समय बहुत से शक्ति समझौते हुए और बहुत से समझौतों को तोड़ा भी गया और कई बार तो ऐसा भी लगा की तीसरा विश्व युद्ध न शुरू हो जाये | बर्लिन की नाकाबंदी, कोरिया युद्ध, वियतनाम युद्ध और अफगानिस्तान संकट आदि ऐसी घटनाये है जिनसे लगा की कभी भी विश्व को तीसरा विश्व युद्ध झेलना पड़ सकता| परन्तु 1985 तक आते -आते दोनों महाशक्तियों के संबंधो में तनाव कम हुआ | जिसका मुखे कारण आर्थिक संकट और सोवियत रूस के गणराज्यो का सोवियत संघ से अलग होने के लिए घरेलू विद्रोह था | जिसकी वजह से 1991 में सोवियत रूस रूस के विघटन के साथ ही शीत युद्ध भी समाप्त हो गया |

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शीत युद्ध के अंत का सम्पूर्ण विश्व पर बहुआयामी प्रभाव पड़ा और इसने विश्व व्यवस्था को बिल्कुल ही परिवर्तित कर दिया है| आज उदार लोकतंत्रवाद तथा पूंजीवाद का हर जगह बोलबाला है | पूंजीवादी अमेरिका का एक छत्र राज है और अपने हितो की पूर्ति के लिए वह हर प्रकार के साधनो का खुल कर प्रयोग कर रहा है| यधपि इस दौरान हितो एवं शक्ति के लिए निरंतर चलने वाले संघर्स के कारण कटटरता, धार्मिक उन्माद, तथा आतंकवाद जैसे नए कारक भी उभर कर सामने आए परन्तु राष्ट्र के मध्य पारस्परिक मित्रता, द्विपक्षीय, बहुपक्षीय सहयोग, सतत विकास, नि - शस्त्रीकरण, मानव अधिकरवाद जैसे मुद्दो पर जागरूकता तथा आम सहमति पूर्वापेक्षा बढ़ी है | इस कारण शीत युद्ध के पूर्ववर्ती स्वरूप के पुनरोदय की संभावना क्षीण ही दिखाई देती है |

6.7 शब्दावली

प्रस्तावना - परिचय, भूमिका, इत्यादि

शीत युद्ध - न तो पूर्ण रूप से शांति हो और न ही वास्तविक युद्ध हो

देतांत - तनावों में कमी

सामरिक - युद्ध नीति -विषयक, रणनीति -संबंधी

6.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1). ख 2). ग 3). ख 4). ख 5). ख

6.9 संदर्भ ग्रन्थ

1.K. Smith S. (ed) (1995), “International Relations Theory Today”, University Press, Cambridge

2.Huntington S (1996), “The Clash of Civilization and the Remaking of World Order”, Simon and Schusgte, New York.

3.Leffier. Melvyn P. (2005), “Cold War and Global Hegemony, 1945- 1991”, OAH Magazine of History, America.

4.Mueller, John (1994), “What Was the Cold War About? Evidence from Its Ending”,

6.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.Appadorai A (1981), “India’s Foreign Policy”, Oxford University Press, New Delhi.

2.Dixit, J. N.(200),*India’s Foreign Policy*, New Delhi: Picus Books

3.Rajan, M.S.(1990), *Non-alignment and Non-aligned Movement: Retrospect and Prospect*, New Delhi : Vikas Publishing House Pvt Ltd.

4.Appadorai, A., M.S. Rajan (1985), *India’s Foreign Policy and Relations*, New Delhi: South Asian Publishers.

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.शीत युद्ध के उदय के कारणों की समीक्षा कर ?

2.शीत युद्ध की समाप्ति के क्या कारण थे ?

3.शीत युद्ध का विश्व अर्थव्यवस्थ पर क्या प्रभाव पड़ा ?

4.उत्तर शीत युद्ध काल में अमेरिका के योगदान की समालोचना करे ?

इकाई-7 : नव शीत-युद्ध , शस्त्रीकरण की होड़

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 शीत-युद्ध की उत्पत्ति

7.4 नये शीत-युद्ध की उत्पत्ति

7.5 नये शीत-युद्ध के कारण

7.5.1 सोवियत संघ की शक्ति में वृद्धि

7.5.2 रीगन का राष्ट्रपति पद पर निर्वाचन होना

7.5.3 अन्तरिक्ष अनुसंधान की सोवियत संघ-अमरीकी होड़

7.5.4 अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप

7.5.5 दक्षिण-पूर्व एशिया में बढ़ता सोवियत प्रभाव

7.5.6 यूरोप में मध्यम मार प्रक्षेपास्त्रों का उलझा सवाल

7.5.7 स्टारवार्स परियोजना

7.6 अमरीकी कूटनीति का प्रयोग

7.7 पश्चिमी एशिया या मध्यपूर्व के बदलते हालात

7.8 नये शीत-युद्ध की प्रकृति

7.9 शस्त्रीकरण की होड़

7.10 सारांश

7.11 शब्दावली

7.12 अभ्यास प्रश्न

7.13 संदर्भ ग्रंथ

7.14 सहायक उपयोगी पाठ्य-सामग्री

7.15 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

जब वाल्टर लिपमैन ने शीत-युद्ध शब्द का प्रयोग किया तब उसका अभिप्राय दो शक्ति गुटों के मध्य ऐसी युद्ध जैसी स्थिति से था, जो कि युद्ध की स्थिति वास्तव में नहीं थी। यह एक कूटनीतिक युद्ध था दो या दो से अधिक शक्तियों के बीच सशस्त्र संघर्ष नहीं था। फ्लेमिंग ने शीत-युद्ध का वर्णन करते हुए इसे एक ऐसा युद्ध बताया जो युद्ध-स्थल में नहीं लड़ा जाता परन्तु मानवों के मस्तिष्क में होता है। एक व्यक्ति अन्य के मस्तिष्क को नियंत्रित करने का प्रयास करता है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मित्र राष्ट्रों में आपस में दरार पड़ गई। यह मित्रता तनाव में परिवर्तित होकर एक विचित्र युद्ध का रूप धारण कर लिया जिसे शीत युद्ध कहा गया। मित्र राष्ट्र दो गुटों में बँट गई एक सोवियत संघ दूसरा अमरीका। ये दोनों एक-दूसरे को कूटनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक और सम्भव हो तो सैनिक मोर्चे पर भी पराजीत करने में संलग्न हो गए।

सन् 1962 के क्यूबा संकट के बाद शीत-युद्ध में शिथिलता या नरमी आने लगी। हेल्सिंकी सम्मेलन के समय पर तनाव शैथिल्य अपनी चरमसीमा पर था परन्तु उसके पश्चात् इसकी गति धीमी पड़ गई। सोवियत संघ और अमरीकी संबंध एक बार फिर इतने बिगड़ गए कि 1980 में ऐसा प्रतीत होने लगा कि शीत-युद्ध वापस आ गया है। जो तनाव इस बार उभरकर आया उसको ''नव-शीत-युद्ध'' की संज्ञा दी गई। दिसम्बर 1979 में जब सोवियत सैनिक अफगानिस्तान में प्रवेश करके उसकी राजनीति में हस्तक्षेप किया और उस पर कब्जा कर लिया तब शीत-युद्ध पुनः सामने आ गया।

7.2 उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शीत-युद्ध का एक महत्वपूर्ण भूमिका रहा है। इस युद्ध के कारण विश्व दो गुटों में बंट गया था। शीत-युद्ध का मुख्य उद्देश्य था अपनी वर्चस्व को बनाये रखना। नये शीत-युद्ध का भी यही उद्देश्य था क्योंकि सोवियत संघ की बढ़ती शक्ति के कारण अमरीका हड़बड़ा गया था उन्होंने सोवियत संघ की शक्ति एवं प्रभाव के विस्तार को रोकने। अफगानिस्तान को सोवियत संघ का वियतनाम बनाना। शस्त्र बेचकर डॉलर कमाना ताकि अपनी अर्थव्यवस्था को सुधर सके। अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति के रूप में अमरीकी प्रतिष्ठा और विश्वसनीयता को बनाये रखना चाहता था। सोवियत संघ भी अपने प्रभाव का विस्तार करना चाहता था ताकि विश्व में उनकी वर्चस्व स्थापित हो। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य है नए शीत-युद्ध काल में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हो रहे बदलाव एवं उसका विश्व राजनीति पर पड़ने वाले प्रभाव का विस्तारपूर्वक वर्णन करना है।

7.3 शीत-युद्ध की उत्पत्ति-शीत-युद्ध शब्द का प्रयोग तनाव की उस अभूतपूर्व स्थिति के लिए किया गया जो कि दो पूर्व मित्रों संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत संघ के मध्य अचानक विकसित हो गई। जापान के आत्मसमर्पण के साथ अगस्त 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध के सशस्त्र संघर्ष का अंत हो गया, यद्यपि औपचारिक शान्ति में काफी समय लग गया था। अगस्त 1945 में मित्र राष्ट्रों की निश्चित विजय हो गई थी, परन्तु मित्र राष्ट्रों के खेमों में जो छिपा हुआ संघर्ष या तनाव धीरे-धीरे उभर रहा था वह अचानक खुलकर सामने आ गया। विश्व युद्ध के दौरान एक अद्भुत गठबंधन हो गया था। जर्मनी द्वारा जून 1941 में सोवियत संघ पर अचानक आक्रमण तथा दिसम्बर 1941 में जापानी लड़ाकू विमानों द्वारा पर्ल हार्बर पर भारी बमवर्षा के साथ ही इन दोनों परस्पर-विरोधी विचारधाराओं वाले देशों में ऐसी मित्रता हो गई कि जिसकी किसी को आशा नहीं थी। साम्यवादी सोवियत संघ तथा पूँजीवादी अमेरिका ने मैत्री के बंधन में बँध कर फासिस्ट तानाशाही को पराजित करने का संकल्प कर लिया। इन दोनों देशों ने ब्रिटेन फ्रांस चीन तथा अन्य मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर नात्सी-फासिस्ट धुरी को पराजित कर दिया, परन्तु इस युद्ध के दौरान ही मित्र राष्ट्रों में आपस में दरार पड़ गई थी। इस अद्भुत मित्रता ने तनाव में परिवर्तित

होकर एक विचित्र युद्ध का रूप धारण कर लिया। इस युद्ध में सेनाओं तथा शस्त्रास्त्रों की सहायता के बिना एक अद्भुत लड़ाई आरम्भ हो गई, जिसे शीत-युद्ध की संज्ञा दे दी गई। 1945 के मध्य तक भी किसी ने यह नहीं सोचा था कि शत्रु को पराजित करते ही पूर्व-पश्चिम की मित्रता इस प्रकार बिखर जाएगी। धुरी राज्यों की शत्रुता ने मित्र राष्ट्रों को जोड़कर रखा हुआ था। धुरी राज्यों के धराशायी होते ही वह मित्रता भी समाप्त हो गई।

फरवरी 1945 के याल्टा सम्मेलन में मित्र राष्ट्रों में इतनी सद्भावना देखी गई थी कि यह सोचना असंभव था कि कुछ ही महीनों में शीत-युद्ध आरम्भ हो जाएगा। जैसे-जैसे विश्व युद्ध का अंत निकट आते जा रहा था, वैसे-वैसे मित्र राष्ट्रों के मतभेद प्रकट होने लगे थे। याल्टा सम्मेलन के आयोजन का एक उद्देश्य इन मतभेदों को सुलझाना भी था। उस सम्मेलन का एक अन्य उद्देश्य यह भी था कि अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट की यह तीव्र इच्छा थी कि सोवियत संघ भी जापान के विरुद्ध युद्ध में शामिल हो जाए। जापान और सोवियत संघ ने 1941 में पाँच वर्ष के लिए एक अनाक्रमण संधि पर हस्ताक्षर किए थे परन्तु युद्ध में जापान की शक्ति में कमी न होते देखकर मित्र राष्ट्र चिंतित थे, और अमेरिका ने यह आवश्यक समझा कि सोवियत संघ को इस बात के लिए राजी किया जाए कि वह भी जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दे। स्टालिन ने यह स्वीकार भी कर लिया कि यूरोप में युद्ध की समाप्ति के तीन महीने पश्चात् वह जापान पर धावा बोल देगा। याल्टा सम्मेलन में वातावरण इतना सौहार्दपूर्ण हो गया कि सभी को स्थायी मैत्री की आशा हो गई थी। प्रधानमंत्री चर्चिल ने 27 फरवरी 1945 को ब्रिटिश संसद में कहा कि सोवियत नेता पश्चिमी लोकतांत्रिक देशों से मित्रता रखना चाहते है ताकि उनके बीच पारस्परिक विश्वास तथा सहयोग का विकास हो सके। चर्चिल ने कहा कि वह सोवियत नेताओं के विचारों को उनकी प्रतिबद्धता मानता था। अमेरिका के राजनयिक हैरी हौप्किन्स को भी सोवियत नेताओं की दूरदर्शिता में पूर्ण विश्वास था तथा उसको इस बात में कोई संदेह नहीं था कि सोवियत संघ तथा पश्चिम के लोकतांत्रिक देशों में स्थायी मैत्री का विकास होगा, किन्तु ये सभी आशाएँ शीघ्र ही निराशा में बदल गई।

7.4 नये शीत-युद्ध की उत्पत्ति

शीत-युद्ध के लिए अनेक तत्व एवं कारक उत्तरदायी थे, परन्तु अन्य तत्वों की अपेक्षा तीन मूल तत्व संघर्ष के लिए अधिक उत्तरदायी थे। जर्मनी की पराजय ने शून्य की स्थिति को जन्म दिया। परमाणु अस्त्रों का आविष्कार और प्रयोग हुआ तथा अमेरिका तथा सोवियत संघ के मध्य वैचारिक मतभेद अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के मूल आकर्षक बन गए। आगे चलकर सोवियत संघ और अमरीकी संबंधों में दितान्त की शुरूआत हुई। दितान्त से अभिप्राय है सोवियत-अमरीकी रिश्तों में तनाव-शैथिल्य और उनमें दिन-प्रतिदिन बढ़ती मित्रता। कभी एक-दूसरे को अपना जानलेवा दुश्मन समझने वालों के बीच खरबों डॉलर का व्यापार होने लगा था। सहकार के इस दौर में अप्रत्याशित रूप से नए शीत-युद्ध का विस्फोट हुआ, जिसे नया शीत-युद्ध कहा जाता है, उसका आरम्भ सोवियत संघ द्वारा अफगानिस्तान में सैनिक हस्तक्षेप को माना जाता है। 1978-88 के मध्य महाशक्तियाँ पुनः शीत-युद्धकालीन भाषा का प्रयोग करने लगी, शस्त्रों की होड़ पुनः तीव्र गति से बढ़ने लगी। टकराव के पुनः विविध केन्द्र उत्पन्न हो गये एक नये शीत-युद्ध की शुरूआत हुई। दोनों शक्ति गुटों में तनाव शैथिल्य के मार्ग से हटने की प्रक्रिया एक समान नहीं थी। सोवियत संघ ने कुछ क्षेत्रों में सहयोग और कुछ क्षेत्रों में संघर्ष का मार्ग अपनाया। हिन्द-चीन, हार्न ऑफ अफ्रीका तथा अफगानिस्तान की घटनाओं ने अमरीका को हताश किया परन्तु उसे इन्हीं घटनाओं ने सोवियत संघ के विरुद्ध प्रचार के अस्त्र के रूप में प्रयोग करने का अवसर भी मिला। इस बार यूरोप के बाहर के संघर्षों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो गई। अमरीका और सोवियत संघ दोनों ही अपने विरोधी के पिछले आँगन में अपनी नीतियों को सक्रिय रूप से लागू करना चाहते थे। सोवियत संघ की सहायता से क्यूबा ने एक बार फिर लैटिन अमरीका में क्रान्तिकारी आन्दोलनों का सक्रिय समर्थन करना आरम्भ कर दिया। अमरीका भी बदला लेने में पीछे नहीं रहा।

सोवियत नेता ब्रेजनेव ने कम्युनिस्ट पार्टी की 27वीं काँग्रेस 1976 में कहा था कि ''तनाव शैथिल्य वर्ग संघर्ष के नियमों में नाममात्रा का भी परिवर्तन नहीं कर सकता था, और न उन्हें बदल सकता था। हम इस तथ्य को बिल्कुल छिपाना नहीं चाहते कि हम तनाव शैथिल्य को उस मार्ग के रूप में देखते है जो कि शान्तिपूर्ण समाजवादी और साम्यवादी संरचना के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करेगा।''

सोवियत संघ शस्त्रास्त्रों के निर्यात के क्षेत्र में अधिक सक्रिय हो गया। सामान्यतया शस्त्र निर्यात के संबंध में अमरीका सोवियत संघ से बहुत आगे था। इस प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ और देशों में शस्त्र-निर्यात को लेकर होड़ शुरू हो गया। अस्सी के दशक के आरम्भ में विश्व के कुल शस्त्र निर्यात का 30 प्रतिशत निर्यात सोवियत संघ कर रहा था। उधर अमरीका का हिस्सा 30 प्रतिशत से कुछ कम था।

7.5 नये शीत-युद्ध के कारण

नये शीत-युद्ध की शुरूआत के निम्नांकित कारण बताये जाते है -

7.5.1 सोवियत संघ की शक्ति में वृद्धि होना

दितान्त के युग में सोवियत संघ परमाणु और नौ-सैनिक शक्ति में अमरीका की बराबरी करने का प्रयत्न कर रहा था। जब अमरीका वियतनाम युद्ध में उलझा हुआ था तब सोवियत संघ ने परम्परागत अस्त्रों और अन्तरिक्ष में अमरीका से आगे निकलने की सफल चेष्टा की। अब सोवियत संघ अमरीका को चुनौती देने की स्थिति में था। उसके समुद्री जहाज सातों समुद्रों की गश्त लगाने लगा अमरीका सोवियत संघ की सर्वोपरि स्थिति को कैसे स्वीकार कर सकता था।

7.5.2 रीगन का राष्ट्रपति पद पर निर्वाचन होना

नवम्बर 1980 के अमरीकी राष्ट्रपति के निर्वाचन में अमरीकी जनता ने जब एक बाज को ह्वाइट हाउस की गद्दी प्रदान कर दी तो नये शीत-युद्ध की गर्मी को सर्वत्र अनुभव किया जाने लगा। दक्षिण-पंथियों और कट्टर रूढ़िवादियों के हाथों ह्वाइट हाउस की बागडोर उग्र-आक्रामक नीतियों का संकेत था। रीगन ने सत्ता में आते ही अमरीका को पुनः कार्य पर लगाने शस्त्र उद्योग को बढ़ावा देने, मित्र राष्ट्रों का पुनः शस्त्रीकरण करने शस्त्र प्रतिस्पर्द्धा को तेज करने और सोवियत संघ के प्रति उग्र नीति अपनाने की घोषणा करके पहले से ही शुरू हुए नये शीत-युद्ध की अग्नि में घी की आहुति दे दी।

7.5.3 अन्तरिक्ष अनुसन्धान की सोवियत संघ-अमरीकी होड़

अन्तरिक्ष में हथियारों की होड़ का सिलसिला पिछले तीन दशक से जारी था। जिस दिन पहला स्पुतनिक छोड़ गया था उसी दिन इस होड़ की भी शुरूआत हो गयी थी। सोवियत संघ और अमरीका दोनों ने यह प्रचार किया कि उनके अन्तरिक्ष अनुसंधान मानव जाति के कल्याण के लिए है। वास्तव में दोनों की नियत साफ नहीं था। दोनों को यह आशंका हमेशा रही कि दूसरा अन्तरिक्ष अनुसंधान में कही बाजी न मार ले जाये, इसलिए दोनों एक-दूसरे पर कड़ी नजर रखने लगे। पहले साधारण उपग्रह फिर संचार उपग्रह, फिर अन्तरिक्ष में प्रयोगशाला तो दूसरी ओर मनुष्य को अन्तरिक्ष में लम्बे समय तक रखकर प्रयोग करने में समर्थ बनाने के प्रयास। एक ओर स्पेस शटल तो दूसरी ओर अन्तरिक्ष स्टेशन। एक ने आदमी को चन्द्रमा पर भेजकर वहाँ की मिट्टी और चट्टानें मंगाकर दुनिया को हतप्रभ कर दिया दूसरे ने यंत्र द्वारा चन्द्रमा से मिट्टी और चट्टाने लाकर दिखा दी। एक ने बृहस्पति और शनि की खोज के लिए यान भेजा तो दूसरे ने अन्तरिक्ष में कारखाने खोलने की तैयारी शुरू कर दी। कहा गया कि अन्तरिक्ष यान इस ब्रह्माण्ड की गुत्थी सुलझाने में मदद करेंगे तो दूसरे ने प्रचारित किया कि अन्तरिक्ष कारखानों में ऐसी उपयोगी चीजें तैयार की जायेगी जिन्हें धरती पर बनाना सम्भव नहीं।

अमरीका के सैन्य संवाद का 80 प्रतिशत उपग्रहों के माध्यम से ही होता है। 1988 तक वह 18 उपग्रहों का ऐसा समूह स्थापित करना चाहता था जो संसार के किसी भी हिस्से में विमानों, जहाजों और फौजियों की बिल्कुल ठीक स्थिति बता सके। इसके लिए उपग्रहों पर परमाणु घड़िया लगाने की बात कही जाने लगी। सोवियत संघ भी पीछे नहीं था। 18 जून 1982 को उसके कॉस्मॉस 1379 उपग्रह-मारक उपग्रह ने अन्तरिक्ष में जाकर बारह दिन पूर्व छोड़े गये कॉस्मॉस यान का रास्ता रोक लिया। पृथ्वी से 950 किलोमीटर ऊपर उपग्रह मारक अस्त्र की स्थापना की दिशा में यह पहला कदम था। उपग्रह-मारक उपग्रह के इस निदर्शन के कुछ ही घण्टों में सोवियत संघ ने अन्तरिक्ष में दो आई.सी.बी.एम. एक मध्यम दूरी का एस.एस. 20 प्रक्षेपास्त्र, एक पनडुब्बी प्रक्षेपित प्रक्षेपास्त्र और दो बैलस्टिक प्रक्षेपास्त्र-रॉकेट छोड़कर खौफनाक युद्ध का माहौल बना दिया। सोवियत संघ की इस अन्तरिक्षीय उपलब्धि के बाद अमरीका भला चुप कैसे बैठ सकता था उसने रफ्तार से अपनी उपग्रह-मारक प्रणाली तैयार कर डाली और 14 सितम्बर 1985 को अपना पहला उपग्रह-मारक परिक्षण कर डाला। यह ठीक है कि अन्तरिक्ष अनुसंधान का लाभ मनुष्य को भी मिला है। संचार उपग्रह के रूप में यह अनुसंधान वरदान है। लेकिन यह भी सच है कि सोवियत संघ और अमरीका जितने उपग्रह छोड़े उनमें से 75 प्रतिशत उपग्रह सैन्य उपयोग के लिए थे। इन तमाम उपग्रहों से दोनों देशों को एक-दूसरे की गतिविधियों का पता चलता था और जहाँ एक-दूसरे को आभास हुआ कि वह किस बात में पिछड़ रहा है, वह अपनी गति तेज कर देता।

7.5.4 अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप

अफगानिस्तान में क्रान्ति का सफल होना तथा काबुल की सत्ता साम्यवादियों के हाथों में आना अमरीका के लिए एक बहुत बड़ा धक्का था। 27 दिसम्बर 1979 को सोवियत संघ ने जिस तत्परता से अफगानिस्तान में कार्यवाही की उससे न केवल अमरीका अपितु सम्पूर्ण विश्व चौंक गया। अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप से अमरीका हड़बड़ा उठा। उसने सोवियत हस्तक्षेप की न केवल निन्दा की अपितु सीनेट में साल्ट-2 पर बहस को स्थगित कर दिया, हॉट लाइन पर तात्कालीन राष्ट्रपति कार्टर ने सोवियत नेताओं से बातचीत में कड़े शब्दों का प्रयोग किया, सोवियत संघ को अनाज देने और तेल की खोज के लिए आधुनिक संयंत्र और तकनीकी जानकारी देने के फैसले को बदल दिया तथा 1980 में होने वाले मास्को ओलम्पिक खेलों का बहिष्कार कर दिया। अमरीका की ये कार्यवाहियाँ दूसरे शीत-युद्ध की शुरूआत थी।

7.5.5 दक्षिण-पूर्व एशिया में बढ़ता हुआ सोवियत प्रभाव

हिन्दचीन में सोवियत प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। वियतनाम की सफलताओं से कम्बोडिया और लाओस के साम्यवादियों को बल मिला। हेंग सामरिन ने वियतनाम से समर्थन एवं सैनिक सहायता प्राप्त करके 7 जनवरी 1979 को पोल पोत के ख्मेर शासन का तख्ता पलट दिया। इससे न केवल चीन नाराज हुआ अपितु अमरीका भी हड़बड़ा उठा क्योंकि वियतनाम के माध्यम से सारे हिन्दचीन में सोवियत संघ के प्रभाव के फैलने की सम्भावनाएँ बढ़ गयीं। हिन्दचीन में सोवियत प्रभाव के विस्तार को रोनके के लिए चीन और अमरीका ने संयुक्त मोर्चा बना लिया। अमरीका से प्रेरणा पाकर वियतनाम को सबक सिखाने के उद्देश्य से चीन ने 17 फरवरी 1979 को वियतनाम पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण ने वियतनाम को सोवियत संघ की गोद में धकेल दिया।

7.5.6 यूरोप में मध्यम मार प्रक्षेपास्त्रों का उलझा सवाल

सोवियत संघ ने यूरोप में एस.एस. 20 प्रक्षेपास्त्रों को लगाने का निर्णय लिया। इससे नाटो देशों को डर था कि सोवियत संघ द्वारा लगाये जा रहे प्रक्षेपास्त्रों के कारण उनकी स्थिति दयनीय हो जायेगी क्योंकि ब्रिटेन और फ्रांस के पास जो 162 प्रक्षेपास्त्र थे वे सोवियत संघ के 340 नये एस.एस. 20 तथा 260 पुराने एस.एस. 4 और 5 प्रक्षेपास्त्रों के मुकाबले बहुत हल्के थे। अतः दिसम्बर 1979 में फैसला किया गया कि अमरीका से नयी पीढ़ी के जानदार

प्रक्षेपास्त्र मंगाकर पश्चिमी यूरोप के नाटो देशों में लगाये जायें। उनकी संख्या 572 हो, 108 तो हों पर्शिंग-2 और 464 हों, क्रूज, 162 पहले से ही थे। सोवियत संघ के लिए यह काफी चिन्ताजनक बात हो गयी। एक ओर परमाणु आयुधों से लैस शक्तिशाली देशों के पास इन सर्वनाशकारी अस्त्रों का जखीरा बढ़ रहा था तो दूसरी ओर महाशक्तियों के बीच तनातनी की बिजलियाँ कौंध रही थी। नवम्बर 1983 में जब सोवियत संघ ने यूरोप में मध्यम मार परमाणु प्रक्षेपास्त्रों में कटौती को लेकर चल रही वार्ता का बहिष्कार किया तो महाशक्तियों का तनाव और भी बढ़ गया।

7.5.7 स्टारवार्स (अन्तरिक्ष युद्ध) परियोजना

स्टारवार्स यह नाम ही कुछ अजब रहस्यमय और कल्पना की उड़ान सा लगता है। 23 मार्च 1983 को राष्ट्रपति रीगन ने राष्ट्र को संबोधित करते हुए स्टारवार्स सम्बन्धी घोषणा की। स्टारवार्स यानी अरबों डालरों से निर्मित हो रही अमरीका की नयी प्रतिरक्षा परियोजना। अनुसंधान का उद्देश्य था हमला रोकने के लिए बैलिस्टिक प्रक्षेपास्त्रों से सुरक्षा की हाल में विकसित टेक्नोलॉजी के उपयोग के तरीके खोजना ताकि अमरीका अपनी और अपने मित्र-राष्ट्रों की सुरक्षा कर सके। स्टारवार्स अभियान के तहत लगभग दो हजार युद्धयान अन्तरिक्ष में तैरेंगे और आधुनिकतम आयुधों से घुसपैठिया प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट करेंगे। नये अस्त्रों की खोज जारी थी - एक तरीका था न्यूकलीय और इलेक्ट्रॉन कणों से युक्त सशक्त प्लाज्मा किरणों का प्रयोग। प्लाज्मा किरणें शक्तिशाली से शक्तिशाली लेजर किरणों से भी कई सौ गुना प्रभावशाली होती है। प्लाज्मा किरणों के साथ-साथ शक्तिशाली एक्स किरणों पर भी काम हो रहा था। रीगन की नजरों में यह एक ऐसा रक्षा कवच था जो शत्रु को बेअसर साबित कर देगा।

7.6 अमेरिकी कूटनीति का प्रयोग

मॉस्को में आयोजित ओलम्पिक खेलों का कई देशों ने अमरीका की अगुवाई में बहिष्कार किया। खेल की राजनीति अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति संघर्ष से अब तक अभिन्न रूप से जुड़ चुकी थी। अब तक नस्लवाद उपनिवेशवाद के कारण ही खेलों की दुनिया में कड़वाहट देखने को मिलती थी। अब विचारधारा का टकराव भी सतह पर आ गया। इसके कई कारण थे। यह वर्ष अमरीकी चुनाव का था राष्ट्रपति कार्टर को इस आक्षेप का सामना करना पड़ रहा था कि वह कमजोर व्यक्ति है और उसका प्रशासन सोवियत संघ के सामने निरंतर समर्पण वाली मुद्रा में खड़ा नजर आता है। उनके लिए यह मजबूरी थी कि कोई ऐसा फैसला ले जिससे अपने आलोचकों को चुप करा सके। दूसरी ओर इसी वक्त पॉलैंड में कोयला खदानों और बंदरगाहों पोतों में काम कर रहे मजदूरों ने साम्यवादी पार्टी के खिलाफ विद्रोह का नारा बुलंद किया। साम्यवादी पार्टी के नेतृत्व को चुनौती देने वाले श्रमिक संगठनों की कल्पना साम्यवादियों ने कभी नहीं की थी। पॉलैंड तथा सोवियत संघ के कट्टरपंथी साम्यवादी नेताओं का सोचना था कि धर्म के कुटिल प्रयोग से अमेरीका पॉलैंड में साम्यवादी पकड़ को अस्थिर करने की कोशिश कर रहा है। अपने कार्यकाल के आरम्भ से ही राष्ट्रपति कार्टर ने अपनी पहचान मानवाधिकारों के प्रखर संरक्षक के रूप में बनाने की कोशिश की। इस मुद्दे पर वे अक्सर सोवियत संघ को अपना निशाना बनाये रखते थे। ब्रेजनेव के शासनकाल में एक बार फिर सोवियत गुप्तचर संस्था के.जी.बी. असरदार होने लगी थी। असहमति और असंतोष मुखर करने वाले सोवियत नागरिकों का दमन काफी बर्बरता से किया जाने लगा था। इससे सोवियत संघ की अन्तर्राष्ट्रीय छवि काफी मलिन हुई थी। अमरीका के लिए यह प्रचार करना सहज हुआ था कि सोवियत व्यवस्था मूलतः दमनकारी तानाशाही है और अपने नागरिकों के लिए भी शोषक-उत्पीड़क ही है। सोवियत नेता ब्रेजनेव ने इसी दौर में ब्रेजनेव सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस स्थापना के अनुसार साम्यवादी खेमे के किसी भी सहयोगी सदस्य राष्ट्र को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपना अलग पथ चुनने की स्वाधीनता नहीं थी। यदि किसी देश की सरकार ऐसा कोई कदम उठाती है तो उसे प्रतिक्रियावादी क्रान्ति विरोधी और साम्यवादी खेमे की सुरक्षा को जोखिम में डालने वाला

ही माना जा सकता है। पश्चिमी विश्लेषकों ने इसे सीमित सम्प्रभुता के सिद्धान्त की स्थापना का एक दुर्भाग्यपूर्ण और खतरनाक प्रयत्न ही समझा।

7.7 पश्चिमी एशिया या मध्यपूर्व के बदलते हालात

1971 से ही मध्यपूर्व में यह बात नजर आने लगी थी कि तेल संसाधनों के मालिक अरब राष्ट्र भविष्य में बहुत देर तक पश्चिमी आधिपत्य स्वीकार करने वाले नहीं है। पहले पहल इस बात का इशारा सऊदी अरब के तेल मंत्री, शेख यमनी ने दिया और उनका अनुसरण लिबिया के क्रान्तिकारी नेता कर्नल गद्दाफी ने किया। तेल के एक और प्रमुख उत्पादक ईरान के शाह की तो यह पुरानी आदत थी कि वे तेल से अर्जित अपनी संपदा के प्रयोग से अमरीका को नीचा दिखा सके। कभी वे यह धमकी देते थे कि अमरीकी बैंकों में जमा अपनी पूँजी को कही और उठा ले जायेंगे तो कभी पैनेम जैसे एयरलाइन को खरीद अमेरीकियों के राष्ट्रीय अहं को ठेस पहुँचाते थे। यह हाल तब था जब उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर अमेरीका का साथी-समर्थक समझा जाता था। ईराक पर बाथ पार्टी के नेता सद्दाम का कब्जा था और उनका रूझान आमतौर पर सोवियत संघ का पक्षधर ही रहा। कुल मिलाकर अमेरीका और पश्चिमी देशों को यह आशंका होने लगी थी कि मध्यपूर्व के तेल संसाधन निकट भविष्य में उनके प्रभुत्व से बाहर जा सकते है। तत्पश्चात तेल की कीमतें अमेरीका और पश्चिम जगत को कमजोर करने के लिए ओपेक राष्ट्रों द्वारा कमरतोड़ ढंग से बढ़ाई जा सकती है। 1973 में इजराईलियों और अरबों के बीच योम कीपुर युद्ध लड़ा गया जिसने ऊर्जा तेल संकट को और भी विकट बना दिया। सोवियत संघ को चुनौती देने के लिए यदि किसी और प्रोत्साहन की जरूरत अमेरीका को थी तो उसे यह युद्ध ने पुरा कर दिया। वियतनाम से अमेरीकी फौज की वापसी ने भी महाशक्ति के रूप में उसका कद बौना ही बना डाला था। 1971 में जब बांग्लादेश पाकिस्तान से टूटकर अलग हुआ तो उस वक्त भी अपनी संधि मित्र की एकता-अखंडता की रक्षा करने में अमरीका असमर्थ ही रहा। अपनी राष्ट्रीय हितों की हिफाजत के लिए भारत ने सोवियत संघ के साथ शांति और मैत्री की संधि पर हस्ताक्षर कर भारत-सोवियत रिश्तों को एक नया सामरिक आयाम दिया। जब अमरीका ने भारत को धमकाने के लिए बंगाल की खाड़ी में अपना युद्ध पोत इंटरप्राइज भेजा और उसका कोई असर नहीं हुआ तो परिणामतः यह बात खुल गई कि इस महाशक्ति की क्षमता बदले परिप्रेक्ष्य में कितनी सीमित है।

1979 में एकाएक ईरान में मोहम्मद रजाशाह पहलवी का तख्ता पलट दिया गया। उनकी जगह अब तक फ्रांस में शरणार्थी की तरह रह रहे इमाम खोमैनी ने ले लिया। नई सरकार इस्लामी कानून, शरियत के अनुसार चलाई जाने लगी। और तेलकूपों समेत सभी राष्ट्रीय संसाधन का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। आरम्भ से ही अमरीका और नए ईरान के हितों का टकराव खुलकर सामने आ गया। बुनियादी सवाल तेल से जुड़ा हुआ था पर शाह के नाम पर जमा अकूल धन राशि को इमाम खोमैनी को सौंपना भी विवाद का कारण बना। जब ईरान विरोधी आचरण का अभियोग लगा अमरीकी दूतावास की नाकेबंदी कर दी गई और दर्जनों अमरीकी राजनयिक बंधक बना दिए गए तब इस अन्तर्राष्ट्रीय संकट ने और भी विस्फोटक रूप ले लिया। अमरीका अपने बंधकों को छुड़ाने के लिए वायु सेना का असफल प्रयोग किया तो अमरीका की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को जबर्दस्त धक्का लगा। दुर्भाग्य से इस अनुभव के बाद भी अमरीका ने ईरान में सत्ता परिवर्तन को उस देश का आंतरिक मामला स्वीकार नहीं किया। खोमैनी को सबक सिखाने के लिए उसके मुकाबले ईराक को खड़ा करने की रणनीति तैयार की गई। ईरान के साथ संघर्ष के लिए बड़े पैमाने पर उन्हें हथियार देना शुरू कर दिया गया। ईरान और ईराक दोनों ही इस क्षेत्र में अपना एकाधिकारी प्रभुत्व स्थापित करने के लिए समान रूप से उत्सुक रहे है और उनकी प्रतिद्वंद्विता पारम्परिक रही है। अमरीका के प्रोत्साहन से ही खाड़ी युद्ध का विस्फोट हुआ। लगभग एक दशक तक चले इस सैनिक संघर्ष में दोनों

पक्षों ने लाखों जाने गंवाई और बहुत बड़ी आर्थिक क्षति उठाई। कुल मिलाकर नए शीत-युद्ध में इस संवेदनशील क्षेत्रों को जोखिम ग्रस्त रखने से तनाव शैथिल्य का ही क्षय हुआ।

7.8 नये शीत-युद्ध की प्रकृति

नये शीत-युद्ध पहले शीत-युद्ध से काफी भिन्न था। पुराना शीत-युद्ध साम्यवाद विरोधी था उसका मूल उद्देश्य साम्यवाद का अवरोध था। इसके विपरीत नया शीत-युद्ध, सोवियत संघ विरोधी था, इसका उद्देश्य सोवियत संघ की बढ़ती हुई शक्ति और प्रभाव का प्रतिरोध करना था। पुराना शीत-युद्ध विचारधारा के घेरे में लड़ा गया था। इसका दायरा पूँजीवाद बनाम साम्यवाद अथवा लोकतंत्र बनाम सर्वहारातन्त्र का अधिनायकवाद था जबकि नया शीत-युद्ध विचारधारा के घेरे में नहीं लड़ा जा रहा था। इस युद्ध में साम्यवादी चीन पूँजीवादी अमरीका के साथ था। नए शीत-युद्ध का मुख्य आधार उपयोगिता और न्यस्त स्वार्थ थे न कि विचारधारा सोवियत शक्ति और प्रभाव के विस्तार के प्रति अमरीका इतना ईर्ष्यालु और सतर्क था कि उसे सीमित करने के लिए साम्यवादी चीन से मित्रता करने में कोई हिचकिचाहट महसूस नहीं होती। पुराने शीत-युद्ध के मुख्य पात्र अमरीका और सोवियत संघ थे जबकि नये शीत-युद्ध के मुख्य पात्र थे अमरीका, ब्रिटेन, चीन, फ्रांस और सोवियत संघ। एक तरफ अमरीका, चीन, ब्रिटेन, फ्रांस थे और दूसरी तरफ अकेला सोवियत संघ था। पुराने शीत-युद्ध में महाशक्तियों की प्रतिद्वंद्विता का मुख्य क्षेत्र यूरोप था। यद्यपि सीटो, सेण्टो जैसे संगठन बनाये गये थे परन्तु उस काल में नाटो संघठन ही लावा उगलता रहा। नये शीत-युद्ध काल में लावा उगलने वाले मुख्य क्षेत्र थे - फारस की खाड़ी, पश्चिमी एशिया, दक्षिण-पूर्वी एशिया और हिन्द महासागर। पुराने शीत-युद्ध में शामिल होने के लिए यूरोपीय देश मजबूर थे। चूँकि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अपनी सुरक्षा और आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए वे अमरीका पर निर्भर थे अतः उनके लिए अमरीकी विदेश नीति का अनुकरण करना अपरिहार्य था। अब स्थिति काफी बदल गयी थी। फ्रांस और पश्चिमी जर्मनी अमरीकी विदेश नीति के पिछलग्गू बनकर नहीं रह सकते थे। न्यूट्रॉन बम का सफलतापूर्वक विस्फोट कर लेने से फ्रांस अब अपनी सुरक्षा के लिए अमरीका पर निर्भर नहीं था। पश्चिमी जर्मनी आर्थिक दृष्टि से न केवल आत्मनिर्भर था अपितु औद्योगिक और इलेक्ट्रॉनिक क्षेत्र में अमरीका को चुनौती देने की स्थिति में था। यही कारण था कि पश्चिमी जर्मनी और सोवियत संघ में व्यापार द्रुत गति से बढ़ रहा था।

प्रथम शीत-युद्ध काल में निर्गुट आन्दोलन का अभ्युदय हुआ और निर्गुट आन्दोलन का उद्देश्य महाशक्तियों के मध्य सेतुबन्ध का कार्य करना था। दूसरे शीत-युद्ध काल में निर्गुट राष्ट्र स्वयं गुटबन्दी के शिकार होते जा रहे थे और निर्गुट मंच पर कुछ देश अमरीका की तरफदारी करने लगे तो कुछ देश सोवियत संघ की तरफदारी। नये शीत-युद्ध महाविनाशकारी शस्त्रों के जमाव एवम भण्डारण से भय और मानसिक तनाव उत्पन्न करके लड़ा जा रहा था। महाशक्ति प्रत्यक्ष टकराव की स्थिति के बजाए एजेण्ट के माध्यम से युद्धरत थी। पहला शीत-युद्ध स्टालिन की उग्र आक्रामक नीतियों का परिणाम था। स्टालिन सोवियत शक्ति में वृद्धि करना चाहता था ताकि वे अमरीका के सामने एक महाशक्ति बन सके। नया शीत-युद्ध अमरीकी मजबूरियों का परिणाम था अब अमरीका औद्योगिक समान और इलेक्ट्रॉनिक्स में फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी और जापान के साथ प्रतिद्वंद्विता नहीं कर सकता था अतः विश्व में शस्त्रों का निर्यात करना चाहता था क्योकि यही एक ऐसा उद्योग है जहाँ उसे पश्चिमी देशों की प्रतिद्वंद्विता सहन नहीं करनी पड़ती। शस्त्र उद्योग का विकास अमरीका की आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु आवश्यक माना जा रहा था। इसलिए अमरीका नाटो के सैनिक बजट में वृद्धि चाहता था और मित्र राष्ट्रों का शस्त्रीकरण चाहता था। इसलिए उसने साल्ट वार्ताओं को स्थगित कर दिया और दितान्त को तिलांजलि देने की तैयारी कर ली।

7.9 शस्त्रीकरण की होड़

नये शीत-युद्ध काल में शस्त्रों की होड़ शुरू हो गयी। जहाँ पहले शीत-युद्ध में 1962 के क्यूबा संकट के बाद दितान्त की शुरूआत हुई। दितान्त सम्बन्धों के इस युग में सीमित परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध संधि 1963, परमाणु अप्रसार संधि 1968, मॉस्को-बोन समझौता 1970, बर्लिन समझौता 1971, यूरोपीय सुरक्षा एवं सहयोग सम्मेलन 1973-75, साल्ट वार्ताएँ 1972 आदि प्रमुख उपलब्धि कही जा सकती है वही नये शीत-युद्ध काल में शस्त्रीकरण का एक ऐसा दौड़ शुरू हुआ जिससे इन सभी प्रयासों को काफी धक्का लगा। रोनाल्ड रीगन के ह्वाइट हाउस में प्रवेश लेते ही शस्त्र उद्योग को बढ़ावा दिया गया, शस्त्रों की होड़ तेज की गयी मित्र राष्ट्रों को विशेषकर पाकिस्तान को एफ-16 जैसे वायुयानों एवं खतरनाक अस्त्रों से लैस किया गया। नाटो के सुरक्षा बजटों में वृद्धि की गयी। रीगन ने स्टारवार्स नामक एक योजना की घोषणा की जिससे अब तक मान्यता प्राप्त एटमी रणनीति और सामरिक राजनय की सभी स्थापनाओं को उलट-पुलट कर दिया। वास्तव में स्टारवार्स परियोजना का पूरा नाम था स्ट्रटेजिक डिफेंस इनीसिएटिव जिसके अन्तर्गत अमेरीकी वैज्ञानिकों का आह्वान एक ऐसे अभेदय रक्षा कवच के आविष्कार के लिए किया गया था जिसे किसी भी शत्रु का कोई भी प्रक्षेपास्त्र न भेद सके। ऐसा कहा जाता है कि कैनेडी-मेक्नामारा टीम ने 1960 के दशक में शस्त्रों के निर्माण का जो कार्यक्रम बनाया था राष्ट्रपति कार्टर ने उससे भी विशाल स्तर पर शस्त्रीकरण की पहल की। सन् 1986 के उत्तरार्द्ध में अमरीकी स्टारवार्स कार्यक्रम के विरुद्ध सोवियत संघ ने भी जवाबी कार्यवाही आरम्भ कर दी। सोवियत वैज्ञानिकों की एक विशेष समिति ने कहा कि अमरीकी कार्यक्रम के विरुद्ध प्रतिरोधी और अप्रतिरोधी दोनों तरह के उपाय किये जायेंगे। प्रतिरोधी कार्यक्रम के अन्तर्गत छोटे प्रक्षेपास्त्रों, अतिरिक्त विस्फोटकों और उच्च क्षमता वाले लेसर शस्त्रास्त्रों का विकास किया जायेगा। 26 फरवरी 1987 को लगभग डेढ़ वर्ष बाद सोवियत संघ ने अपने ऊपर लगाये गये प्रतिबन्ध को समाप्त करते हुए पहला परमाणु परीक्षण किया। उसने अपना अन्तिम परमाणु परीक्षण 25 जुलाई 1985 को किया था। उसने अमरीका को चेतावनी दी कि यदि 1987 में अमरीका ने परमाणु परीक्षण किया तो वह भी इसे पुनः शुरू कर देगा। सोवियत संघ ने अमरीका के प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए पूर्वी यूरोपीय देशों में नई किस्म की 20 मध्य दूरी की मारक मिसाइलों को लगाया। अफ्रीका में अपने सैनिक अड्डों को सुदृढ़ किया। शीत-युद्ध के इस चरण में दोनों महाशक्तियों में शस्त्रीकरण की प्रतिस्पर्धा शुरू हो गयी जिससे विश्वशान्ति को एक बार फिर से खतरा होने लगा। नये शीत-युद्ध की मानसिकता ने परमाणु ही नहीं पारम्परिक शास्त्रस्त्रों के मामलों में भी निःशस्त्रीकरण को नुकसान पहुँचाया। स्टारवार्स परियोजना को इस युग की शस्त्रास्त्रों की होड़ का अब तक का सबसे खतरनाक उदाहरण माना जाता है।

प्रश्न- नव-शीत-युद्ध के कारणों का वर्णन करे?

उत्तर- नव-शीत-युद्ध के शुरूआत के निम्नांकित कारण थे। दितान्त के युग में सोवियत संघ परमाणु और नौ-सैनिक शक्ति में अमरीका की बराबरी करने का प्रयत्न कर रहा था। जब अमरीका वियतनाम युद्ध में उलझा हुआ था तब सोवियत संघ ने अपनी शक्ति में वृद्धि की। दूसरे शीत-युद्ध के शुरूआत का एक कारण राष्ट्रपति कार्टर और रोनाल्ड रीगन की उग्र नीति रही। अन्तरिक्ष अनुसंधान में सोवियत संघ और अमरीका में होड़ शुरू हो गयी। दोनों देशों ने अपने जितने उपग्रह छोड़े उनमें से 75 प्रतिशत उपग्रह सैनिक उपयोग के लिए थे। उनका इस्तेमाल एक-दूसरे के सैनिक गतिविधियों पर नजर रखने के लिए किया जाता था। नव-शीत-युद्ध का एक महत्वपूर्ण कारण सोवियत संघ का अफगानिस्तान में हस्तक्षेप को माना जाता है। इस हस्तक्षेप से अमरीका हड़बड़ा उठा। उसे लगने लगा कि सोवियत संघ साम्यवाद का प्रसार करना चाहता है। दक्षिण-पूर्वी एशिया में भी सोवियत प्रभाव बढ़ रहा था। यूरोप में सोवियत संघ द्वारा मध्य मार प्रक्षेपास्त्रों को लगाने का निर्णय, अमरीका द्वारा स्टारवार्स परियोजना की घोषणा ये सभी नव-शीत-युद्ध के प्रमुख कारण थे। इन्हीं सब कारणों से विश्व एक बार फिर तनाव स्थिल की दौर से निकल कर नव-शीत-युद्ध की ओर अग्रसर हो गया।

7.10 सारांश

समग्र रूप से इस अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में नव-शीत-युद्ध और शस्त्रीकरण की होड़ की अवधारणा का विस्तार से वर्णन किया गया है। यह एक राजनयिक युद्ध था। यह रणक्षेत्र में नहीं लोगों के मस्तिष्कों में लड़ा गया। शीत-युद्ध में सशस्त्र सेनाओं ने भाग नहीं लिया केवल राजनयिक कार्यो के द्वारा पूर्व और पश्चिम के मध्य तनाव को उच्च स्तर पर बनाए रखा गया। इसमें सबसे पहले शीत-युद्ध की उत्पत्ति इसके बाद नव-शीत-युद्ध की उत्पत्ति, नव-शीत-युद्ध के कारण, अमरीकी कूटनीति का प्रयोग, पश्चिमी एशिया के बदलते हालात नये शीत-युद्ध की प्रकृति, शस्त्रीकरण की होड़ का वर्णन किया गया है। नये व दूसरे शीत-युद्ध काल में शान्तिपूर्ण प्रतिद्वंद्विता का स्थान आक्रामक राजनीतिक-सैनिक प्रतिद्वंद्विता ने ले लिया, युद्ध मनोदशा और युद्ध उन्माद का युग प्रारम्भ हुआ।

7.11 शब्दावली

दितान्त -दितान्त से अभिप्राय है सोवियत अमेरीकी रिश्तों में तनाव-शैथिल्य और उनमें दिन-प्रतिदिन बढ़ती मित्रता, सहयोग और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना का विकास।

स्टारवार्स-स्टारवार्स अमरीका की नयी प्रतिरक्षा परियोजना।

निर्गुट-यह उन देशों को कहा जाता है जो दोनों महाशक्तियों से समान दूरी बनाये रखा और किसी भी शक्ति गुट में शामिल नहीं हुआ।

मित्र-राष्ट्र-द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी, ईटली और जापान के विरुद्ध जिन देशों का संगठन बना उन्हे मित्र-राष्ट्र कहा गया।

धुरी-राष्ट्र-द्वितीय विश्व-युद्ध में जर्मनी, इटली और जापान को संयुक्त रूप से धुरी-राष्ट्र कहा गया।

नाटो-अमरीका के नेतृत्व में बना सैन्य संगठन।

हॉटलाईन समझौता- महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय संकट के समय दोनों महाशक्तियों में सीधा सम्पर्क स्थापित करके संकट का निर्वारण करना।

7.13 संदर्भ ग्रंथ

1.लूकास इडवर्ड (2009), द न्यू कोल्ड वार: हॉव द क्रेमलीन मयनेस बोध एशिया एण्ड द बेस्ट, कीन्डले एडिशन।

2.पंत पुष्पेश (2008), 21वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय संबंध, टाटा मेकग्रोंव हील पब्लिकेशन कम्पनी लिमिटेड।

3.खन्ना बी.एन. (2003), अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि.

7.14 सहायक उपयोगी पाठ्य-सामग्री

1.हेवूड एन्ड्रयू (2011), ग्लोबल पॉलिटिक्स, पेलग्रेव फाउण्डेशन

2.फाड़िया बी.एल. (2008), अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा

7.15 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न- नव-शीत-युद्ध के प्रकृति एवं कारणों का वर्णन करते हुए शस्त्रीकरण की होड़ का वर्णन करे?

ईकाई-8 : नाभिकीय प्रसार एवं नियंत्रण के उपाय

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 नाभिकीय प्रसार और नियंत्रण

8.3 अंतर्राष्ट्रीय शक्ति राजनीति में आणविक प्रसार

8.4 परमाणु युग का जन्म

8.5 आणविक शस्त्रों की प्रकृति

8.6 शीतयुद्ध से पूर्व नाभिकीय प्रसार

8.7 शीतयुद्ध के बाद नाभिकीय प्रसार

8.8 आणविक शस्त्रों का विस्तार

8.9 निःशस्त्रीकरण की दिशा में किये प्रयास

8.9.1 राष्ट्र संघ द्वारा किये गये निःशस्त्रीकरण वेफ प्रयास

8.9.2 राष्ट्र संघ वेफ बाहर किये गये निःशस्त्रीकरण वेफ प्रयास

8.9.3 द्वितीय महायुद्ध के बाद निःशस्त्रीकरण के प्रयास

8.10 सारांश

8.11 शब्दावली

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.13 संदर्भ ग्रंथ

8.14 सहायक /उपयोग पाठ्यक्रम

8.15 निबंधत्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान विश्व में विभिन्न देशों वेफ मध्य अपनी उत्तरजीविता को बनाये रखने वेफ लिए शस्त्रा की होड़-सी चल गई थी। शस्त्रा की होड़ ने 'परमाणु युग' को जन्म दिया, इसका कारण अमेरिका ने 16 जुलाई 1945 को न्यू मैक्सिको वेफ 'आल्मागार्दो रेगिस्तान' में विश्व के पहले परमाणु परीक्षण के साथ ही कर दिया। यह परमाणु परीक्षण विश्व भर में 'परमाणु प्रसार' के रूप बदल गया। गौरतलब है कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में 'नाभिकीय प्रसार और नियंत्राण' एक महत्वपूर्ण 'मुद्दे' के रूप में उभर कर आया है। परिणाम स्वरूप 'परमाणु युग की शुरूआत' शीत युद्ध के पहले और बाद में 'आणविक शस्त्रों' का वैसे प्रसार हुआ, यह मुख्य मुद्दा बनकर उभरा।

किन्तु इसके साथ-ही-साथ 'इस प्रश्न' की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है कि 'क्या आणविक शक्ति के बल पर ही अंतर्राष्ट्रीय शक्ति राजनीति में स्थान पाना संभव है?'आणविक शास्त्रों के प्रसार को दो पहलुओं से देखा जा सकता है -

प्रथम पहलू बम वह कुंजी है जो विदेश नीति के अनेक तालों को एक साथ खोल देती है। आणविक शक्ति संपन्न राष्ट्र का हर स्तर पर ओहदा रातों-रात उँचा हो जाता है। उदाहरणस्वरूप अमेरिका, जापान पर हमला के बाद अंतर्राष्ट्रीय जगत में महाशक्ति बन गया था।

दूसरा पहलू आणविक शस्त्रों से शक्ति राजनीति में राज्य की प्रतिष्ठा में वृद्धि हो यह आवश्यक और जरूरी नहीं है। उदाहरणस्वरूप ब्रिटेन परमाणु सम्पन्न होने के बावजूद अपनी प्रतिष्ठा नहीं पा सका।

गौरतलब है कि परमाणु सम्पन्न राष्ट्र बनने के बावजूद राष्ट्रों को इसके द्वारा उत्पन्न 'मानवता' और 'पर्यावरण' दोनों के लिए 'विनाशकारी' सिद्ध हो सकता है।

परिणामस्वरूप 'परमाणु प्रसार' के साथ-साथ 'परमाणु नियंत्राण' महत्वपूर्ण मुद्दा है क्योंकि महाशक्ति होना और अणु शस्त्रों का निर्माण करना दोनों एक-दूसरे के पूरक नहीं माने जा सकते।

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्तिशाली होने के लिए राष्ट्रीय शक्ति के अन्य आवश्यक तत्वों के साथ-साथ सबल प्रतिरक्षात्मक शक्ति से सम्पन्न होना अति महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही आर्थिक और तकनीकी विकास द्वारा राष्ट्रीय विकास अपनी चरम सीमा पर हो, तभी कोई राष्ट्र ,सत्ता केन्द्रों में स्थान पा सकता है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त -

- अंतर्राष्ट्रीय शक्ति राजनीति में आणविक प्रसार को जान सकेंगे |
- परमाणु युग के जन्म को जान सकेंगे|
- आणविक शस्त्रों की प्रकृति समझ सकेंगे |
- निःशस्त्रीकरण की दिशा में किये प्रयास को भी विस्तार से जान सकेंगे |

8.3 नाभिकीय प्रसार और नियंत्रण

‘परमाणु प्रसार और नियंत्रण’ अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में विचारणीय मुद्दा है, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति ‘सुरक्षा’ वेफ इर्द-गिर्द घुमती नजर आती रही है।‘सुरक्षा’ की गंभीरता को ध्यान में रखकर हर राष्ट्र स्वयं को सैन्य रूप से सुदृढ़ करने वेफ लिए हथियारों को भी उतना ही महत्व देता है। 1945 में अमेरिका ने जब विश्व को ‘परमाणु बम’ से परिचित कराया, संसार वेफ अन्य देशों ने भी ‘सुरक्षा’ की दृष्टि अध्कि उपर्युक्त मानते हुए उसका परीक्षण किया और परमाणु सम्पन्न राष्ट्र बन गये।अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ‘सुरक्षा’ वेफ साथ-साथ परमाणु प्रसार से बढ़ते खतरे को भी उतनी गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है, परिणामस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ‘नियंत्राण की राजनीति’ को महत्व दिया गया है।

यह ‘मुद्दा’ विचारणीय है कि जिस गंभीरता के साथ राष्ट्रों ने ‘परमाणु प्रसार’ को लिया, क्या ‘परमाणु अप्रसार’ को भी उसी गंभीरता वेफ साथ ले रहे है?अतः ‘परमाणु प्रसार और नियंत्राण’ में यह मुद्दा ही विचारणीय है।

‘परमाणु प्रसार और नियंत्रण’ अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण चर्चा का विषय बन गया है, इस चर्चा का प्रारंभ 1945 में हुआ कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ‘सुरक्षा’ सबसे अहम मुद्दा है| इसीलिए अमेरिका ने अपनी ‘सुरक्षा’ की आड़ में परमाणु बम का परीक्षण किया। धीरे-धीरे विश्व के अधिकांश राष्ट्र ‘अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ‘सुरक्षा’ के मुद्दे को महत्ता देते हुए स्वयं को परमाणु सम्पन्न राष्ट्र कहलाने के लिए उत्सुकता दिखाने लगे, यहाँ तक कि तृतीय विश्व के देशों भी ‘सुरक्षा’ की गंभीरता को स्वीकारते हुए परमाणु सम्पन्न देश बन गये।

परमाणु प्रसार और नियंत्रण आज के समय में अध्कि महत्वपूर्ण मुद्दा है क्योंकि एक विषय के रूप में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ‘सुरक्षा’ के नाम पर परमाणु प्रसार ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर ‘सुरक्षा’ के लिए ही गंभीर खतरा उत्पन्न कर दिया है।

यह मानवता तथा पर्यावरण दोनों के लिए ‘अतिसंवेदनशील’ खतरा उत्पन्न कर सकता है, गौरतलब है कि ‘परमाणु प्रसार के लिए नियंत्राण’ अधिक संजीदा मुद्दा बन गया है कि परमाणु प्रसार की दौड़ को बढ़ने से रोका जाए! पहले से मौजूद आणविक शस्त्रों को समाप्त तो नहीं किया जा सकता है, किन्तु उनके ‘उपयोग और दौड़’ पर नियंत्रण लगाये जाने के लिए मार्ग तलाश किये जाए, परमाणु बम के विनाशकारी विध्वंस से मानवता और पर्यावरण दोनों को बचाया जा सके। जापान जैसी विभीषण त्रासदी फिर से न लाई जा सके।

8.3 अंतर्राष्ट्रीय शक्ति राजनीति में आणविक प्रसार

विश्व में होने वाले ‘विनाशकारी मुद्दों’ के रूप परमाणु प्रसार के पीछे राष्ट्रों में शस्त्रीकरण की होड़ एक प्रमुख कारण रहा है। इस सदी के प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध शस्त्रीकरण के पफलस्वरूप राष्ट्रों द्वारा शक्ति-संतुलन की सीमा लांघ जाने की प्रक्रिफया या उससे जुड़े हुए भय के कारण ही भड़क उठे थे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पेरिस के शांति सम्मेलन में मित्रा-राष्ट्रों के प्रतिनिध्यिों ने जर्मनी और उसके मित्रा देशों को विसैन्यीकृत करके उनकी सैन्य शक्ति तथा शस्त्रीकरण की सामर्थ्य को परिसीमित कर दिया था, किन्तु इससे यूरोप के देशों में शस्त्रीकरण की होड़ कम नहीं हुई।

सन् 1920-36 के मध्य अनेक सम्मलेनों द्वारा विश्व की प्रमुख शक्तियों ने निःशस्त्रीकरण की दिशा में कुछ निर्णय लिए, जिनका कारगार साबित न होना द्वितीय विश्व-युद्ध को भड़काने का प्रमुख कारण था। इस युद्ध की विभीषिका के बावजूद विश्व का साम्यवादी ;सोवियत संघद्ध और गैर-साम्यवादी ;अमेरिकाद्ध खेमों में बंट जाना निःशस्त्रीकरण का घोर शत्रु साबित हुआ।

यह दोनों ही गुट परमाणु शस्त्रों की प्रतिस्पर्ध में एक-दूसरे को पीछे धकेलने की नियति से अधिकाधिक परमाणु शस्त्रास्त्रा जमा करने लगे। परिणामस्वरूप ‘नाभिकीय प्रसार’ का अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में उदय हुआ।

8.4 परमाणु युग का जन्म

अमेरिका के द्वारा Manhattan प्रोजेक्ट के अंतर्गत 'परमाणु बम' का आविष्कार किया गया था। 18 जुलाई 1945 को अमेरिका द्वारा परमाणु बम का प्रथम परीक्षण न्यू मैक्सिको के रेगिस्तान में किया गया था। परमाणु बम का अमेरिका द्वारा परीक्षण 'हथियारों के युग' में 'नये प्रकार के हथियार' का आविष्कार तथा 'परमाणु युग' की ओर प्रारंभ था। 6 अगस्त 1945 की घटना ने संसार को हथियारों से किये जाने वाले हमलों के एक 'नया युग' में प्रवेश दिलाया।

6 अगस्त 1945 को अमेरिका जापान के हिरोशिमा शहर पर प्रथम बार 'आणविक हमला' किया, यह हमला 'आणविक युग' का सूत्रापात था। इसके तीन दिन बाद ही जापान के ही दूसरे शहर नागासाकी पर 'आणविक हमला' किया गया था।

अमेरिका द्वारा जापान पर किये गये इन हमलों ने संसार को नये हथियार के रूप में 'नाभिकीय परमाणु बम' प्रदान किये गये।

हिरोशिमा पर गिराये गये बम को 'Little Boy' के नाम से जाना जाता है, यह 60 किलोग्राम न-235 तथा 12-15 क्लिंटन TNT से निर्मित किया गया था। परमाणु बम ने 60 प्रतिशत से अधिक शहर को बर्बाद कर दिया था, जिसमें 100,00 सौ हजार लोगों को अपनी जाने गँवानी पड़ी जोकि बाद में बढ़कर 200,000 दो सौ हजार तक पहुँच गई थी। इसके साथ-ही-साथ विस्पफोट से निकली विकिरणों से लोग कैंसर से पीड़ित हो रहे है।

नागासाकी में गिराया परमाणु बम हिरोशिमा में गिराये परमाणु बम की तुलना बड़ा तथा अत्याध्कि विनाशकारी था, इसे 'Fatman' के नाम से जाना जाता है। यह परमाणु बम करोड़ो क्लिंटन प्लुटोनियम 239 तथा 22 किलोटन ज्छज् से भरपूर था, इसने लगभग 30 प्रतिशत नागासाकी ही शेष बचा था, इस शहर में के वल 40 हजार लोग बचे थे, जबकि इसके कारण 75 हजार लोग मृत हो गये थे।

इन दोनों शहरों के विनाशक विस्पफोट ने जापान के सम्राट की जड़ें तक हिला दी, 12 अगस्त 1945 को जापान के सम्राट हिरोहितों ने समर्पण की घोषणा कर दी। जापान पर किया गया नाभिकीय हमला अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को एक नई दिशा दे रहा था।

अमेरिका नाभिकीय शक्ति संपन्न देश बनकर विश्व में स्वयं को महाशक्ति के रूप में रखना चाहता था। जापान पर परमाणु हमले के पीछे उसका मुख्य उद्देश्य सोवियत संघ के बढ़ते प्रभाव को कम करना था। अमेरिका की सोवियत संघ को रोकने की मंशा ने 'युद्ध ' न होते हुए भी 'युद्ध जैसी स्थिति' का वातावरण अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उत्पन्न कर दिया था, जिसे 'शीत युद्ध ' के नाम से जाना जाता है। आणविक शस्त्रों के निर्माण ने शीत युद्ध के उदय में निर्णायक भूमिका निभाई, इसने युद्ध को नई दिशा की ओर अग्रसित किया।

अमेरिका परमाणु संपन्न देश बनाकर सोवियत संघ को अपना वर्चस्व स्वीकार करना चाहता था, इसके विपरीत सोवियत संघ ने आणविक शक्ति सम्पन्न बनाने की अपनी तीव्र इच्छा व्यक्त की।

29 अगस्त 1949 अमेरिका के परमाणु बम के भण्डारण के एकाध्किार को समाप्त करते हुए सोवियत संघ ने अपना पहला सपफल परमाणु बम परीक्षण किया। सोवियत संघ ने अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में परमाणु हथियारों की दौड़ को उर्जा प्रदान कर दी थी।

अमेरिका और सोवियत संघ **'Balance of Terror'** के आधर पर अधिक से अधिक परमाणु हथियारों के प्रसार को बढ़ावा दे रहे थे। मई 1951 में अमेरिका ने और नवम्बर 1952 में सोवियत संघ ने अपने प्रथम हाइड्रोजन शक्ति परीक्षण किये। 1954-55 में दोनों ने हाइड्रोजन बम बना लिये। अक्टूबर 1957 में रूसी 'स्पूतनिक' के सपफल परीक्षण के बाद दूरगामी या अंतरमहाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों का युग आरम्भ हुआ। अब दोनों महाशक्तियाँ घर

बैठे एक-दूसरे पर और साथ ही दुनिया के किसी भी भू-क्षेत्रा पर बम बरसा सकती थी। लगभग एक दशक पूर्व दोनों महाशक्तियों ने एम.आई.आर.वी. या 'मिर्व' नामक ऐसे प्रक्षेपास्त्रों का आविष्कार किया, जिन पर एक साथ बहुत से मेगाटन के परमाणु बम लादे जा सकते है तथा कम्प्यूटर के पूर्व निर्देश पर अलग-अलग कई निशानों पर ठीक-ठीक और बड़ी तेजी से गिराये जा सकते है।

8.5 आणविक शस्त्रों की प्रकृति

परमाणु बम यूरेनियम-235, प्लुटोनियम के साथ-साथ भारी मात्रा में न्यूट्रेन से मिलकर बनाया जाता है, इन्हें मिलकर बनाया गया बम अतिशक्तिशाली होता है जिसे 'हाइड्रोजन बम' भी कहा जाता है। परमाणु बम नाभिकीय विखण्डन के रूप में कार्य करता है, अर्थात् इस प्रक्रिफया द्वारा इसका विस्पफोट किया जाता है। परमाणु बम का अत्यधिक् शक्तिशाली रूप Thermonuclear रूप कहलाता है। ऐसा माना जाता है कि हिरोशिमा और नागासाकी में गिराये गये बम Thermo Nuclear की तुलना में कापफी छोटे थे, यह बम जापान में गिराये गये परमाणु बमों की अपेक्षा 2000 बार अत्यधिक विनाशकारी होने की शक्ति रखते है।

वर्तमान समय में परमाणु हथियारों के अत्यधिक नये रूप विकसित हुए है उदाहरण के लिए 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने Weapons of Mass Destruction (WMD)से परिचित कराया है। WMD के श्रेणी से निकलकर Chemical and Biological Weapons (CBW) बनाया गया हैं। Atomic Biological and Chemical (ABC)इन्हें मिलाकर भी एक नये परमाणु बम की संरचना की गई है।

1945 में अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के मुद्दे में नाभिकीय प्रसार का मुद्दा मुख्य मुद्दे के रूप में उभरकर क्यों आया?अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में 'सुरक्षा' का मुद्दा बहुत ही गंभीर मुद्दा, इस पर विभिन्न राष्ट्र किस प्रकार कार्य कर रहे थे? इसके लिए 'शीत युद्ध से पूर्व' तथा 'शीत युद्ध के बाद' शस्त्रों के प्रसार को जानना महत्वपूर्ण है।

8.6 शीतयुद्ध से पूर्व नाभिकीय प्रसार

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का परम्परागत स्वरूप में विचारकों का मानना था कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति 'भय और अनिश्चितताओं' से घिरी है। इस स्थिति से निकलने के लिए राष्ट्रों को सैन्य-रूप से मजबूत बनना होगा, जिसमें राष्ट्रों के पास अपने को सैन्य रूप से सुदृढ़ करने के लिए शस्त्रों का होना आवश्यक था। राष्ट्रों ने 'सुरक्षा की सुविध' के मद्देनजर हथियारों के प्रसार को बढ़ावा दिया। परिणामस्वरूप शीत युद्ध से पूर्व ही हथियारों की होड़ तथा प्रसार का प्रारंभ हो गया था। नाभिकीय प्रसार को अमेरिका तथा सोवियत संघ के मध्य भय के निवारण के रूप में बढ़ावा दिया गया।

अमेरिका ने स्वयं को 1945 में परमाणु सम्पन्न राष्ट्र घोषित किया, सोवियत संघ ने 1949 में स्वयं को परमाणु सम्पन्न राष्ट्र बना लिया। कहीं न कहीं नाभिकीय प्रसार के पीछे राष्ट्रों में लगी 'प्रतिष्ठा और ओहदे' की होड़ भी एक महत्वपूर्ण कारक था। परमाणु हथियारों के निर्माण के होड़ ने ष्छनबसमंत ब्सनइष् का निर्माण किया। यह ब्सनइ न्छ सुरक्षा परिषद् के 5 स्थाई सदस्य से मिलकर बना था। न्छ सुरक्षा परिषद् के सदस्य बारी-बारी से परमाणु सम्पन्न राष्ट्र बन गये थे। अमेरिका (1945) सोवियत (1949), ब्रिटेन (1952), फ्रांस (1960), चीन (1962)।

शीत युद्ध के पूर्व शस्त्रों के प्रसार का अंदेशा शीत युद्ध के दौरान पूर्णतः वास्तविकता में बदल गई।शीत युद्ध से पूर्व ही नाभिकीय प्रसार को भय और 'निवारण' तथा 'प्रतिष्ठा' के प्रश्न के कारण अत्यधिक बढ़ावा मिला था।

8.7 शीतयुद्ध के बाद नाभिकीय प्रसार

शीत युद्ध के मध्य तक निशस्त्रीकरण को बढ़ावा दिये जाने के लिए संधियों और समझौतों का दौर चल गया था। संधियों और समझौता का उद्देश्य था कि नाभिकीय अप्रसार, दोनों महाशक्तियों की परमाणु शस्त्रों में कमी की जाए। सोवियत संघ और अमेरिका के गुटबंदी से हटकर कुछ राष्ट्र अपने पैरों पर खड़े होकर स्वयं नाभिकीय

सम्पन्न राष्ट्र बनाने की घोषणा कर रहे थे। परिणामस्वरूप नाभिकीय प्रसार अब इन दोनों खेमों से बाहर निकलकर अन्य राष्ट्रों के द्वारा नाभिकीय परीक्षण किये गये। इन दोनों खेमों से हटकर कुछ राष्ट्र अपनी क्षेत्रीय समस्याओं के निपटारे के लिए परमाणु सम्पन्न बनना चाहते थे। उदाहरणस्वरूप भारत और पाक दोनों देशों में आपसी प्रतिद्वंद्विता के कारण भारत ने 18 मई 1974 को पोखरन परमाणु परीक्षण किया।

पाकिस्तान ने भारत को जबाब देने की मंशा से,तथा कुछ अन्य कारणों से स्वयं को परमाणु सम्पन्न राष्ट्र बनाया। इसके अलावा ईराजइल, ईराक, नार्थ कोरिया, परमाणु सम्पन्न राष्ट्र बनने के 'दहलीज' पर खड़े है। परिणामस्वरूप उत्तर शीत युद्ध काल 'दूसरे परमाणु युग' को आगाज देता हुआ नजर आता है।

8.8 आणविक शस्त्रों का विस्तार

1945 में अमेरिका ने आल्मागार्दो परीक्षण के 51 वर्ष पूरे होते-2 परीक्षणों की संख्या 2000 के पार जा पहुँची। 1945 से अब तक 2060 परमाणु परीक्षण किये जा चुके है। अमेरिका ने सर्वाधिक 1032, रूस ने 715 ब्रिटेन ने 45, प्रफांस ने 210, चीन ने 45, भारत ने 6, पाकिस्तान ने 6, उत्तर कोरिया ने 1 परीक्षण किया है।

स्टाकहोम स्थित इण्टरनेशनल पीस रिसर्च इन्स्टीट्यूट की प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार ईजराइल के पास 100 परमाणु हथियार बनाने लायक पर्याप्त सामग्री है। भारत के पास 60, पाकिस्तान के पास 10 परमाणु बम बनाने की सामग्री है। विश्व में कुल भण्डार इस समय क्रमशः एक हजार और 1300 टन है। इससे 50 हजार परमाणु बम बनाये जा सकते है। यह स्थिति अत्यन्त खतरनाक स्थिति है।

तालिका दर्शाती है कि विश्व में विभिन्न राष्ट्र अनुमानतः इस संख्या में भविष्य में आणविक शस्त्रों का निर्माण कर सकते है।

देश	अनुमानतः शस्त्रों का निर्माण
रूस	4,650
अमेरिका	2,468
प्रफांस	300
चीन	180
ब्रिटेन	160
भारत	60-80
पाक	70-90
ईजराइल	60-80
उत्तरी कोरिया	8-12 बम बनाने के उपर्युक्त प्लुटोनियम

स्रोत : एन्ड्यु हैबुड 'ग्लोबल पोलिटिक्स',

यह तालिका सिद्ध कर रही है कि विश्व में परमाणु बम का जखीरा अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए भयंकर खतरा उत्पन्न कर रहा है। अमेरिका द्वारा किया गया 'परमाणु हमला' इतना अधिक विनाशकारी थी कि इसने 'मानवता और वातावरण' दोनों को ही नष्ट किया।इस घटना ने संसार को 'परमाणु प्रसार' से 'परमाणु नियंत्राण' को बढ़ाने के लिए सोचने के लिए मजबूर किया। तथा परमाणु निरस्त्रीकरण का मुद्रा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का एक गंभीर मुद्दा बनकर उभरा था।

8.9 निःशस्त्रीकरण की दिशा में किये प्रयास

निःशस्त्रीकरण का अर्थ मौजूदा हथियारों के नियंत्राण के लिए किया जाता है। विश्व में शस्त्रों की होड़ तथा मौजूदा हथियारों पर नियंत्राण के लिए 'नि:शस्त्रीकरण' का अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में उदय हुआ।

अंतर्राष्ट्रीय शांति के लिए निःशस्त्रीकरण अनिवार्य है ताकि अंतर्राष्ट्रीय समाज में अवैध हिंसा एवं शक्ति के प्रयोग को रोका जा सके।

निःशस्त्रीकरण की दिशा में किये गये प्रयासों का इतिहास अनेक असपफलताओं तथा कुछ सपफलताओं की कहानी है। निःशस्त्रीकरण का प्रारंभ प्रारम्भ विश्व युद्ध की भयानकता से विश्व को बचाने के साथ ही हुआ था, ताकि पिफर से विश्व को युद्ध का संकट न झेलना पड़े किन्तु यह सिर्पफ एक प्रयास बनकर रह गया, जिसे द्वितीय विश्व के प्रारंभ ने सिद्ध किया था।

8.9.1 राष्ट्र संघ द्वारा किये गये निःशस्त्रीकरण वेफ प्रयास

1.शांति और सुरक्षा के लिए निःशस्त्रीकरण की आवश्यकता का अनुभव करते हुए पेरिस के शांति समझौते की विचित्रा संध्यिाँ।

2.जनवरी 1920 में एक स्थायी परामर्शदाता आयोग बनाया गया, 1923 में पारस्परिक सहायता की संधि का मसविदा।

3.1924 में निःशस्त्रीकरण सम्मेलन के लिए सच्चीकरण आयोग बनाया गया।

4.राष्ट्र संघ का निःशस्त्रीकरण सम्मेलन जेनेवा में 3 पफरवरी 1932 को हुआ।

8.9.2 राष्ट्र संघ वेफ बाहर किये गये निःशस्त्रीकरण वेफ प्रयास

1.वाशिंगटन सम्मेलन (1921-22) राष्ट्र संघ ने जिस समय अपना निःशस्त्रीकरण का कार्य आरंभ किया, उसी समय वाशिंगटन में राष्ट्र संघ से सर्वथा पृथक विभिन्न देशों की जलीय शक्ति को नियंत्रित करने के लिए हुआ।

2.जेनेवा सम्मेलन (1927) वाशिंगटन सम्मेलन की सपफलता से प्रभावित होकर जेनेवा में 5 महीने में पुनः जलशक्तियों का एक सम्मेलन बुलाया गया।

3.लंदन नौसैनिक सम्मेलन (1930) 21 जनवरी 1930 से आरंभ होने वाले इस सम्मेलन में ब्रिटिश प्रतिनिधियों ने सब महाशक्तियों द्वारा सब प्रकार के रणपोतों के निर्माण को घटाने पर बल दिया।

4.द्वितीय विश्व के प्रारंभ होने के कारण निःशस्त्रीकरण संबंधी समझौते असपफलता के अंधकार में भटक रहे थे।

8.9.3 द्वितीय महायुद्ध के बाद निःशस्त्रीकरण के प्रयास

द्वितीय महायुद्ध के बाद निःशस्त्रीकरण अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में शान्ति की दृष्टि से अत्याध्कि गंभीर और संजीदा मुद्दा बन गया था। विश्व का दो खेमों में बाँटना, शस्त्रा की होड़ के बढ़ावा को नियंत्राण करने के लिए निःशस्त्रीकरण अत्यध्कि महत्वपूर्ण था।

संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर की दूसरी धरा में निःशस्त्रीकरण की चर्चा की गयी है। चार्टर में निःशस्त्रीकरण के बारे में संयुक्त राष्ट्र की जिम्मेदारी महासभा और सुरक्षा परिषद् दोनों पर डाली गयी थी। 15 नवम्बर, 1945 को उठाया गया जब कनाडा, ब्रिटेन और अमरीका की सरकारों ने एक घोषणा प्रकाशित करके यह प्रस्ताव रखा कि परमाणु उर्जा के अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण पर कार्य करने के लिए एक 'संयुक्त राष्ट्रीय आयोग' स्थापित किया जाए।

संयुक्त राष्ट्र संघ की पहली महासभा ने संयुक्त राष्ट्र परमाणु ऊर्जा (United Nations Atomic Energy Commission) की स्थापना की जिसके सदस्यों में सुरक्षा परिषद के सभी राष्ट्रों के साथ-साथ कनाडा भी था। परमाणु ऊर्जा आयोग की पहली बैठक में अमरीका ने एक राष्ट्रीय परमाणु विकास प्राध्किरण के लिए बरूख योजना पेश की। इस योजना के अनुसार परमाणु ऊर्जा आयोग को विखण्डनीय पदार्थों के उत्पाद की सब अवस्थाओं का निरन्तर निरीक्षण करना था और उसे परमाणु अस्त्रों के परीक्षण करने का और परमाणु ऊर्जा के शान्तिकालीन लाभों को बढ़ावा देने का अनन्य अध्किार दिया गया।

13 पफरवरी, 1947 को सुरक्षा परिषद ने पारस्परिक हथियार आयोग (Conventional Disarmament Commission) की स्थापना की जिसके सदस्य वे सब देश ही थे जो सुरक्षा परिषद के सदस्य थे। इस आयोग को वे कार्य करने की मनाही थी जो परमाणु ऊर्जा आयोग को सौंपे गये थे।

बरूख योजना के विकल्प के रूप में 11 जून, 1947 को सोवियत संघ ने कुछ प्रस्ताव पेश किये। सोवियत योजना में 'एक परमाणु नियंत्रण प्रणाली की शर्त ओर सिद्धांत स्थिर करने की बात कही गयी।

11 जनवरी, 1952 को छठी महासभा ने संयुक्त राष्ट्र निःशस्त्रीकरण आयोग की स्थापना की जिसने परमाणु ऊर्जा आयोग और पारस्परिक हथियार आयोग दोनों का स्थान ले लिया। ऐसा निश्चय किया गया कि निःशस्त्रीकरण आयोग सुरक्षा परिषद के नियंत्रण में कार्य करेगा। इस आयोग ने दो समितियों की स्थापना की। एक समिति को हथियारों से सेनाओं के नियमन का कार्य सौंपा गया और दूसरी समिति को यह कार्य दिया गया कि वह राष्ट्रों द्वारा सेनाओं व हथियारों के सम्बन्ध् में दी गयी सूचनाओं पर विचार-विमर्श करेगी।

10 मई, 1955 को सोवियत संघ के प्रतिनिधि ने संयुक्त राष्ट्र संघ में निःशस्त्रीकरण की एक नयी योजना रखी। रूस ने सेना के एक-तिहाई कटौती की अपनी मांग को छोड़ दिया। आणविक हथियारों को तत्काल नष्ट करने की जिद छोड़कर उसने पश्चिमी गुट की यह बात मान ली की कि तीन-चौथाई हथियारों और सैनिकों की कमी करने के बाद इस दिशा में कदम उठाये जायें तथा एक 'अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण संघ' की स्थापना की जाए।

जेनेवा के शिखर सम्मेलन जुलाई 1955 में सोवियत संघ, ब्रिटेन, अमरीका और प्रफांस ने भाग लिया। इस सम्मेलन में अमरीका के राष्ट्रपति आइजनहॉवर ने मुक्त आकाश योजना रखी। इस योजना का उद्देश्य एक देश को दूसरे देश के आकाश पर निरीक्षण करने का अध्किार प्रदान करना था। इस योजना के अनुसार यह प्रस्ताव रखा गया कि सोवियत संघ व संयुक्त राज्य अमरीका अपनी सेना, शस्त्रागारों की संख्या, सैनिक सामग्री तैयार करने वाले कारखानों व सैनिक अड्डों की पूर्ण जानकारी प्रदान करें तथा विद्युत उपकरणों से हवाई निरीक्षण की व्यवस्था हो।

24 जनवरी, 1957 को सोवियत संघ ने यह प्रस्ताव रखा कि निःशस्त्रीकरण आयोग को विस्तृत किया जाए और मिड्ड, भारत, पोलैण्ड और एक लैटिन-अमरीकी देश को भी इसका सदस्य बनाया जाये।

3 पफरवरी, 1958 को सोवियत संघ के प्रधानमंत्री मार्शल बुल्गानिन ने अमरीका के राष्ट्रपति आइजनहॉवर के समक्ष निःशस्त्रीकरण की एक योजना प्रस्तुत की जो बुल्गानिन योजना के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना में निम्न बातों पर जोर दिया गया-अणु व हाइड्रोजन बमों का परीक्षण बन्द किया जाये;

2. अमरीका, सोवियत संघ और ब्रिटेन आणविक शस्त्रों का परित्याग करें ;
3. नाटो तथा वारसा पैक्ट के देशों में अनाव्रफमण समझौता हो ;
4. जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय देशों से विदेशी सेनाओं को हटाया जाये और ;
5. आकस्मिक आव्रफमणों को रोकने के लिए समझौता हो।

इन्हीं दिनों पोलैण्ड के विदेश मंत्री ने एक योजना प्रस्तुत की जो रापाकी योजना के नाम से विख्यात है। इस योजना में यूरोप में सुरक्षा और शान्ति बनाये रखने हेतु पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया, पश्चिमी व पूर्वी जर्मनी का अुण-विहीन क्षेत्र बनाने का सुझाव दिया गया।

31 मार्च, 1958 को सोवियत संघ की सुप्रीम सोवियत ने यह घोषणा की कि वह अणु परीक्षण बन्द कर रहा है, दूसरे राष्ट्र भी उसका अनुसरण करें।

31 अक्टूबर, 1958 के दिन जेनेवा सम्मेलन में निःशस्त्रीकरण के विषय में अनेक प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये। सोवियत संघ का मत था कि सभी प्रकार के आणविक परीक्षण सदा के लिए बन्द कर दिये जायें, जबकि ब्रिटेन और अमरीका निरीक्षण प्रति के साथ एक वर्ष के लिए आणविक परीक्षणों को बन्द करने के पक्ष में थे।

18 दिसम्बर, 1959 को सोवियत प्रधनमंत्री ख्रुश्चेव ने महासभा में 'पूर्ण सर्वमान्य निःशस्त्रीकरण' का प्रस्ताव रखा जिसमें कहा गया था कि चार साल के भीतर सभी राष्ट्रों को इस प्रकार निःशस्त्रीकरण करना चाहिए कि इस अवधि के बाद उनके पास युद्ध के साधन न रहें। आन्तरिक सुरक्षा के लिए वे थोड़ी-सी सेना व पुलिस रख सकते हैं।

सन् 1960 में निःशस्त्रीकरण पर विचार करने के लिए जेनेवा में 15 मार्च को दस राष्ट्रों का एक सम्मेलन हुआ। इस बार एक साथ दो सम्मेलन हो रहे थेऋ एक, दस राष्ट्रों का निःशस्त्रीकरण सम्मेलन तथा दूसरा, आणविक के तीन सदस्यों को आणविक परीक्षणों को निषेध करने के सम्बन्ध में वार्ता, लेकिन इन दोनों सम्मेलनों में कोई प्रगति नहीं हो सकी।निःशस्त्रीकरण और नियंत्रण पर दोनो पक्षों के बीच गतिरोध उत्पन्न हो जाना अवश्यम्भावी था।

दिसम्बर 1961 में महासभा ने निःशस्त्रीकरण आयोग का विस्तार करके आठ गुटनिरपेक्ष देशों-ब्राजील, बर्मा ;म्यांमार, इथियोपिया, भारत, मैक्सिको, नाइजीरिया, स्वीडन और संयुक्त अरब गणराज्य-को इसमें शामिल कर दिया। इस प्रकार 10 राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण आयोग अब 18-राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण आयोग बन गया। पर प्रफांस ने शुरू से ही इस पुनर्गठित आयोग का इस आधर पर बहिष्कार किया कि 18 राष्ट्रों वाला इतना बड़ा आयोग निःशस्त्रीकरण समस्या का कोई हल नहीं निकाल सकता।

1963 की आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध संधि 14 जुलाई, 1963 को ब्रिटेन, सोवियत संघ और अमरीका के प्रतिनिध्यिों का मास्को में एक सम्मेलन हुआ। 25 जुलाई, 1963 को इन तीनों देशों ने एक 'सीमित अणु प्रतिबन्ध संधि पर हस्ताक्षर किये। इस संधि के द्वारा भूगर्भ परीक्षणों को छोड़कर बाह्य आकाश, समुद्र और वायुमण्डल में अणु परीक्षण करने पर रोक लगा दी गयी। प्रफांस ने इस संधि पर हस्ताक्षर नहीं किये, चीन इसका विरोधी था और भारत हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों में अग्रणी था।

आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध संधि का स्वागत करते हुए इसे ''स्थायी शान्ति और निःशस्त्रीकरण की दिशा में प्रथम कदम'', ''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धे में एक नया मार्ग और अरुणोदय'' और ''मेल-मिलाप की प्रतिज्ञा और एक अध्कि सौम्य भविष्य की आशा'' कहा गया, परन्तु इस संधि से परमाणु परीक्षणों से सम्बन्धित सब समस्याएं, विशेष रूप से परमाणु अड्डों को लक्ष्यों पर पहुंचाने के साध्नों, प्रक्षेपास्त्रा नाशक प्रक्षेपास्त्रों को त्रुटिहीन बनाने, और रूढ़ हथियारों से सम्बन्धित सब समस्याओं को हल नहीं किया जा सकता। यह न तो भूमिगत विस्पफोटों पर रोक लगाती है और न परमाणु हथियारों का उत्पादन बन्द रखती है। इसके अलावा, यह परमाणु शक्तियों का उत्पादन बन्द रखती है। इसके अलावा, यह परमाणु शक्तियों को अपने हथियार अपने मित्रा राष्ट्रों को देने से भी नहीं रोकती। वस्तुतः भू-गर्भ परीक्षण को पकड़ने का कोई उचित तरीका न होने के कारण इस पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता। ख्रुश्चेव ने इसे एक अच्छी शुरुआत और युगान्तरकारी घटना कहा था।

27 जुलाई, 1965 को जेनेवा में निःशस्त्रीकरण आयोग की बैठक बुलाई गयी। इस सम्मेलन ने अपने कार्यों की, जो उसने अब तक किये थे, रपट पेश की। दोनों गुटों की ओर से ऐसे भाषण हुए जिन्होंने सम्मेलन के भाग्य का पहले ही पैफसला कर दिया। अणु-हथियारों के नियंत्रण के तरीकों के सम्बन्ध् में दोनों पक्षों में स्पष्ट मतभेद था।

बाह्य आकाश संधि 1966 - बाह्य आकाश संधि भी शान्ति की दिशा में एक रचनात्मक संधि है। इस संधि द्वारा अमरीका, सोवियत संघ तथा ब्रिटेन ने बाह्य आकाश में न्यूक्लीय शस्त्रों का भेजा जाना निषि(मान लिया।

अणु अप्रसार संधि 1968 - सन् 1966 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा की राजनीतिक समिति ने परमाणु अस्त्रों के प्रसार और निर्माण पर नियंत्रण का प्रस्ताव पास किया। संघ के 112 सदस्यों में से 110 ने प्रस्ताव के पक्ष में मत दिया। अल्बानिया ने प्रस्ताव का विरोध् किया और क्यूबा तटस्थ रहा। इस संधि की मुख्य धराएं निम्नलिखित हैं-;

1.परमाणु राज्य परमाणु अस्त्राविहीन राष्ट्रों को परमाणु बम के निर्माण के रहस्य की जानकारी नहीं देंगे।
2. परमाणु राज्य परमाणु अस्त्राविहीन राज्यों को परमाणु अस्त्रा प्राप्त करने में सहायता नहीं देंगे।
3. परमाणु अस्त्राविहीन राष्ट्र परमाणु बम बनाने का अध्किार त्याग देंगे।
4. परमाणु अस्त्रों के परीक्षण और विस्पफोटों पर रोक लगाने की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था स्थापित की जानी चाहिए।
5.ऐसे देश जिनमें परमाणु अस्त्रा निर्माण की तकनीकी क्षमता है वे परमाणु शक्ति का विकास असैनिक कार्यों के लिए करेंगे।

इस संधि को 1963 की परमाणु निषेध् संधि के उपरान्त निःशस्त्रीकरण की दिशा में एक युगान्तरकारी कदम कहा गया। इस संधि को यद्यपि अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है, परन्तु यह संधि निःशस्त्रीकरण का कोई वास्तविक हल प्रस्तुत नहीं करती। यह संधि भी भूमिगत न्यूक्लीय परीक्षणें पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाती, परमाणु राज्यों द्वारा नये न्यूक्लीय अस्त्रों के निर्माण पर कोई रोक नहीं लगाती, न ही परमाणु राज्यों के न्यूक्लीय अनुसन्धान कार्यक्रम पर किसी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय नियंत्रण या निरीक्षण की व्यवस्था करती है। इसी प्रकार कोई परमाणु राज्य एक शक्तिहीन राज्य पर आव्रफमण करे तो किसी बाध्यकारी प्रतिव्रिफया की व्यवस्था यह संधि नहीं करती। राज्य असैनिक उपयोग के नाम पर जो परमाणु अनुसन्धन करेंगे उनका सैनिक उपयोग नहीं करेगे इसकी कोई प्रत्याभूमि नहीं है। 1968 में अणु अप्रसार संधि को जब महासभा के समक्षा रखा तो भारतीय प्रतिनिधि ने इसका विरोध् करते हुए इसे संयुक्त राष्ट्र संघ के निःशस्त्रीकरण के सिद्धांत के प्रतिकूल माना था, क्योंकि विश्व शान्ति को परमाणुविहीन राज्यों में परमाणु अस्त्रों के प्रसार से ही खतरा नहीं है, वरन् परमाणु राज्यों के पास अणु आयुधें के बने रहने से भी उतना ही खतरा है। वास्तव में, यह संधि एक भेदमूलक दृष्टि पर आधरित है जो परमाणुसम्पन्न और परमाणुविहीन राज्यों के वर्तमान विभाजन को निरन्तर बनाये रखना चाहती है। यह सन्धि उन देशों के लिए अहितकर मानी गयी जो न्यूक्लीय शस्त्रों का निर्माण कर सकते हैं। भारत के साथ पश्चिमी जर्मनी, इटली, संयुक्त अरब गणराज्य, रूमानिया, ब्राजील, अर्जेण्टाइना, नाइजीरिया ने भी इसका विरोध् इन्हीं कारणों से किया।

न्यूक्लीय मुक्त समुद्र तल संधि 1971 - 11 पफरवरी, 1971 को सोवियत संघ, ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका ने न्यूक्लीय मुक्त समुद्र तल संधि पर मास्को, लन्दन तथा वाशिंगटन में हस्ताक्षर किये और उसी दिन 64 अन्य देशों ने भी इस पर हस्ताक्षर किये। संयुक्त राज्य की महासभा ने इसे 7 दिसंबर, 1970 को स्वीकृत किया था। इस संधि के अनुसार प्रत्येक देश के प्रादेशिक समुद्र के 19 किलोमीटर का क्षेत्र छोड़कर समुद्रतल और महासमुद्र तल पर न्यूक्लीय अस्त्रों और भयानक विनाश के अन्य परमाणु अस्त्रा नहीं बिछाये जायेंगे।

सामरिक शस्त्र परिसीमन वार्ताएं और उपलब्धियाँ - नवम्बर 1969 में सामरिक शस्त्रास्त्रों को सीमित करने के मसले पर संयुक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ के मध्य पिफनलैण्ड की राजधनी हेलसिंकी में वार्ता शुरू हुई हेलसिंकी वार्ता के साथ-साथ वियना में सुयक्त राज्य अमरीका और सोवियत संघ के बीच ‘सामरिक शस्त्रास्त्रा परिसीमन वार्ता’ भी शुरू हुई थी।

22 मई, 1972 को अमरीका राष्ट्रपति निक्सन जब मास्को गये तो वहां सोवियत संघ और अमरीका के बीच दो महत्वपूर्ण समझौते किये गये जिनका सम्बन्ध् विभिन्न प्रकार के बैलिस्टिक प्रक्षेपास्त्रों पर रोक लगाने से था। इन समझौते के पक्ष में यह कहा गया कि इनसे शस्त्रों की होड़ में कमी आयेगी और परमाणु युद्ध को रोकने में सहायता मिलेगी।

3 जुलाई, 1974 को अमरीका और सोवियत संघ के मध्य दस-वर्षीय आणविक आयुध् परिसीमन समझौता हुआ जिसे 31 मार्च, 1976 से लागू किया जाना निश्चित किया गया। समझौते के अनुसार दोनों ने 150 किलो टन से अध्कि के भूमिगत आणविक परीक्षणों को रोकने तथा प्रक्षेपास्त्रों पर नयी सीमा लगाने का निश्चय प्रकट किया। यह

निश्चित किया गया कि शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए किए गए विस्पफोट इस आंशिक प्रतिबन्ध व्यवस्था की परिधि में नहीं आएंगे।

लेकिन परमाणु-परीक्षण के खतरे से दुनिया को बचाने के लिए इतनी ही संधि काफी नहीं थी, अतः जून, 1976 से एक नयी धरा जोड़कर इस संधि को अध्कि लाभकारी बना दिया गया।

साल्ट-2 समझौता 1979 - 1979 में अमरीका और सोवियत संघ में साल्ट-2 समझौते पर हस्ताक्षर हुए। इसके बाद इस संधि का दोनों देशों की ससंदों द्वारा अनुमोदन होना था। अमरीकी कांग्रेस इस पर विचार कर ही रही थी कि अपफगानिस्तान में सोवियत संघ का हस्तक्षेप हो गया। राष्ट्रपति कार्टर ने इस हस्तक्षेप के विरोध् में साल्ट-2 के अनुमोदन को स्थगित कर दिया और इस प्रकार एक गतिरोध् की स्थिति आ गयी। 28 नवम्बर, 1980 को अमरीका द्वारा सोवियत संघ से 'साल्ट-2' पर नवीन वार्ता का प्रस्ताव किया गया ताकि इस संधि का पुनर्मूल्यांकन किया जा सके।

मध्यम दूरी प्रक्षेपास्त्रा संधि 8 दिसम्बर, 1987 - राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन और सोवियत नेता मिखाइल गोर्बाच्योव ने 8 दिसम्बर, 1987 को ऐतिहासिक मध्यम दूरी प्रक्षेपास्त्र संधि ;आई.एन.एपफ. सन्ध्दिः पर हस्ताक्षर किए। संधि दोनों देश मध्यम व कम दूरी के प्रक्षेपास्त्रा नष्ट करने को सहमत हो गए। इस संधि से वुफल मिलाकर 1139 परमाणु हथियार नष्ट किए जाने हैं। इन हथियारों की मारक क्षमता 50 कि.मी. से 5 हजार कि.मी. है। संधि के अनुसार सोवियत संघ के एल-एस-12, एस-एस-20, एस-एस-23 प्रक्षेपास्त्रों और अमरीका के पर्शिंग-1 और पर्शिंग-2 और भू-प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट किया जाना तय हुआ। एक अन्य समझौते के तहत दोनों देश अपने यहां परमाणु परीक्षणों की क्षमता की जांच के लिए एक-दूसरे को निरीक्षण की सुविध देंगे।

यह संधि आणविक निःशस्त्रीकरण की दिशा में पहला कदम है। इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ है कि शस्त्रा नियंत्रण की भाषा का स्थान शस्त्रा कटौती ने ले लिया।

बारसा और नाटो में ऐतिहासिक संधि 19 नवम्बर, 1990 - 19 नवम्बर, 1990 को पेरिस में वारसा व नाटो संधि देशों के 34 शासनाध्यक्षों ने एक ऐतिहासिक संधि पर हस्ताक्षर किए। संधि में दोनों गुटों के लिए सैनिकों की संख्या निर्धरित नहीं की गयी है लेकिन परम्परागत शस्त्रों की अध्कितम संख्या प्रत्येक के लिए इस प्रकार नियत की गयी-टैंक 20,000, आर्म पर्सनल, वैफरियर्स 30,000, अर्टीलरी पीसेज 20,000, लड़ावूफ विमान 6,800, लड़ावूफ हैलीकोप्टर 2,000. संधि में जांच-पड़ताल की भी व्यापक व्यवस्था की गयी ताकि कोई भी पक्ष उसका उल्लंघन न कर सके। संधि पर हस्ताक्षर करने के बाद अमरीका के राष्ट्रपति जार्ज बुश ने कहा कि इस संधि से यूरोप में आपसी सद्भव व मैत्री का एक नया युग आरम्भ होगा।

सामरिक हथियारों में कटौती की ऐतिहासिक स्टार्ट-प्रथम संधि - 31 जुलाई, 1991 को मास्को में अमरीकी राष्ट्रपति जार्ज बुश और सोवियत राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाच्योव के शिखर सम्मेलन में ''सामरिक हथियारों में कटौती' की ऐतिहासिक स्टार्ट-1 संधि पर हस्ताक्षर हुए। संधि की शर्तों के अनुसार दोनों महाशक्तियां अपने परमाणु शस्त्रों की स्वेच्छा से 30 प्रतिशत कटौती करने को सहमत हो गयीं। यह संधि पहला बड़ा औपचारिक समझौता है जिसके माध्यम से सर्वाध्कि खतरनाक एवं विनाशकारी शस्त्रों में इतनी कटौती के लिए स्वेच्छा से सहमति हुई।

अमरीका द्वारा सामरिक हथियारों में भारी कटौती की घोषणा - 28 सितम्बर, 1991 को अमरीकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने घोषणा की कि अमेरिका अपने सामरिक परमाणु हथियारों में एकतरपफा भारी कटौती करेगा। राष्ट्रपति के अनुसार उन्होंने स्वेच्छा से यह पैफसला किया है कि ताकि 'विश्व को परमाणु युग में इतनी बेहतर स्थिति प्रदान की जा सके जितनी पहले कभी नहीं रही।' एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं - ;

1. यूरोप और विश्व में कहीं भी विद्यमान अमेरिका के कम दूरी तक मार करने वाले सभी सामरिक परमाणु हथियारों को समाप्त करना, ;

2. जहाजों और पनडुब्बियों से छोड़ी जाने वाली सभी समुद्री परमाणु मिसाइलों की समाप्ति

3. सभी अमरीकी युद्धक बमवर्षकों को चौबीसों घण्टे चौकसी की हालत में न रखने का पैफसलाऋ

4. लम्बी दूरी तक मार करने वाले सभी बी-52 और अन्य वर्षकों को निष्क्रिय हालत में रखना

5. 'स्टार्ट' संधि के अन्तर्गत जिन हथियारों को निष्क्रिय करने पर सहमति हुई थी उन्हें निर्धरित अवधि से पहले ही नष्ट करने का पैफसला। सोवियत राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाच्योव ने बुश की पहल को ''अन्तर्राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण योगदान'' बतलाया।

सोवियत संघ द्वारा परमाणु शस्त्रों में कमी करने पर सहमति - अमरीका के राष्ट्रपति बुश ने सितम्बर 1991 में कम दूरी के परमाणु प्रक्षेपास्त्रा नष्ट करने की घोषणा की थी। इसी के प्रत्युत्तर में सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाच्यसोव ने अपने देश के परमाणु हथियारों में भी कमी करने की घोषणा की। गोर्बाच्योव ने कहा कि सोवियत संघ एक वर्ष के लिए परमाणु परीक्षण भी बन्द करेगा। गोर्बाच्योव ने निम्नलिखित प्रस्तावों पर सहमति प्रकट की - ;

1. जंगी जहाजों और बहु-उद्देशीय पनडुब्बियों से सभी सामरिक हथियारों को हटा लिया जाएगा,

2. भारी बमवर्षकों को तैयारी की स्थिति से हटा लिया जाएगा और उनके परमाणु हथियारों का भण्डारण कम कर दिया जाएगा ;

3. सोवियत संघ के छोटे आकार के सचल अन्तरमहाद्वीपीय बैलेस्टिक प्रक्षेपास्त्रों को सक्रिफय नहीं किया जाएगा |

4. सामरिक महत्व के आक्रामक हथियारों में और कटौती की जाएगी। सोवियत संघ की इस घोषणा का अमरीका ने स्वागत किया। ब्रिटिश प्रधनमन्त्री जान मेजर ने इसे एक रचनात्मक कदम बताया।

मास्को में ऐतिहासिक स्टार्ट-दो संधि पर हस्ताक्षर - 3 जनवरी, 1993 को अमरीकी राष्ट्रपति बुश और रूसी राष्ट्रपति बोरिस येल्तसिन ने भव्य व्रेफमलिन पैलेस ;मास्को में ऐतिहासिक संधि स्टार्ट-दो पर हस्ताक्षर किए। स्टार्ट-दो परमाणु हथियारों में कटौती पहली संधि का अगला चरण है जिस पर जुलाई 1991 में राष्ट्रपति जार्ज बुश और तत्कालीन सोवियत राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाच्योव ने हस्ताक्षर किए। स्टार्ट-दो जिसे राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाच्योव ने हस्ताक्षर किए। स्टार्ट-दो जिसे राष्ट्रपति येल्तसिन ने शताब्दी की 'संधि कहा है, का उद्देश्य दोनों देशों के परमाणु हथियारों में दो-तिहाई कटौती करना है, यानी वर्तमान में लगभग 20,000 को कम करके 6,500 रखना है ;अमरीका के 3,500 और रूस के 3,000 । इस प्रकार अमरीका के शस्त्रागार में परमाणु हथियारों की संख्या उतनी ही रह जाएगी जितनी 1960 में थी और रूसी हथियारों की संख्या उतनी ही रह जाएगी, जितनी 1970 में थी। स्टार्ट-दो पर हस्ताक्षर होना अन्तर्राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण की दिशा में स्मरणीय घटना है इसका महत्व और क्षेत्रा स्टार्ट-एक तथा सुप्रसिद्ध आई.एन.एफ. संधि से अध्कि व्यापक है।

रासायनिक हथियार निषेध (13 जनवरी 1993) - रासायनिक हथियारों के विकास, उनका निर्माण, भण्डारण एवं उनके प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाने से सम्बन्धित संधि 29 अप्रैल, 1997 से लागू हो गई है। इस सम्बन्ध में 13 अप्रैल, 1993 को पेरिस में एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए थे जिसमें 160 देशों की सहमति थी। लेकिन इसे लागू करने के लिए कम से कम 65 देशों द्वारा इसका अनुमोदन किया जाना जरूरी था। 65 देशों के अनुमोदन के बाद इस संधि के कानूनी रूप लेने की अवधि 180 दिन थी। इस हिसाब से यह 29 अप्रैल, 1997 से प्रभावी हो गई है। इस संधि के मसौदे में रासायनिक हथियारों के लिए अनुसन्धन, उनका विकास, उनका भण्डारण एवं उनके हस्तान्तरण पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाने का प्रावधन रखा गया है। मसौदे में संधि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों से

आशा की गई कि वे 1 से 15 वर्ष के बीच अपने-अपने रासायनिक हथियारों के जखीरे नष्ट कर देंगे। रासायनिक हथियारों पर नियंत्रण के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनाई गई है। इस संस्था को मुख्यालय हेग में है।

व्यापक आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध संधि ;सी.टी.बी.टी. - सी.टी.बी.टी. अर्थात् व्यापक आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध संधि विश्व भर में किए जाने वाले परमाणु परीक्षणों पर रोक लगाने के उद्देश्य से लायी गयी संधि या समझौता है जिसका 1993 में भारत, अन्य देशों के अलावा अमेरिका के साथ सह-प्रस्तावक था, लेकिन 1995 में उसने यह कहते हुए कि यह संधि सार्वभौमिक परमाणु निःशस्त्रीकरण के समयबद्ध कार्यक्रम से जुड़ी हुई नहीं है, सह-प्रस्तावक बनने से ही इंकार कर दिया।

अगस्त 1996 में जेनेवा में इस विवादास्पद संधि के मसौदे पर विचार चलता रहा। इस बहुचर्चित संधि में परमाणु परीक्षणों पर प्रतिबन्ध लगाने तथा इस पर अमल की जांच के लिए अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण की व्यवस्था है। भारत ने सी.टी.बी.टी. के प्रस्तावित मसौदे पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया क्योंकि प्रस्तावित मसौदे में परमाणु निःशस्त्रीकरण का कोई प्रावधन नहीं रखा गया। भारत का दूसरा विरोध् यह था कि यह संधि बहुत ही संकीर्ण है यह के वल नए विस्पफोट रोकने की बात करती है, पर नए तकनीकी विकास एवं नए परमाणु शस्त्रों के विषय में चुप है। संधि का स्वरूप परमाणु राष्ट्रों की तकनीकी उपलब्ध्ता को बरकरार रखकर उनके हितों की रक्षा करने के लिए अध्कि है न कि सम्पूर्ण निःशस्त्रीकरण के लिए।

इस संधि पर 24 सितम्बर, 1996 से हस्ताक्षर प्रारम्भ हुए थे। अब तक वुफल मिलाकर 154 राष्ट्रों ने इस पर हस्ताक्षर किए हैं जिनमें से 45 ने इसका विधिवत अनुमोदन भी कर दिया है किन्तु संधि के प्रभावी होने के लिए विश्व के उन सभी 44 देशों द्वारा इसकी पुष्टि किया जाना आवश्यक है जिनके पास परमाणु शस्त्रा अथवा परमाणु विद्युत् संयंत्रा अथवा परमाणु क्षमता उपलब्ध है। विविध् परमाणु क्षमताओं वाले इन 44 राष्ट्रों में से अभी तक 26 ने ही संधि का अनुमोदन किया है जबकि तीन देशों भारत, पाकिस्तान व उत्तर कोरिया ने इस पर अभी तक हस्ताक्षर भी नहीं किए हैं। परमाणु शक्ति के रूप में घोषित पांच राष्ट्रों-अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, प्रफांस व चीन ने यद्यपि सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर कर दिए हैं, किन्तु इनमें से के वल ब्रिटेन व प्रफांस ने ही संधि की पुष्टि की है। सी.टी.बी.टी. के भविष्य को एक बड़ा झटका अक्टूबर 1999 में उस समय लगा जब रिपब्लिकनों के वर्चस्व वाली अमेरिकी सीनेट ने इसका अनुमोदन नहीं किया। 100 सदस्यों वाली सीनेट में इसकी पुष्टि के लिए हुए मतदान ;13 अक्टूबर, 1999द्ध में इसे 48 के मुकाबले 51 मतों से अस्वीकार कर दिया गया।

परमाणु अप्रसार संधि समीक्षा सम्मेलन

अप्रैल-मई, 2000 में सम्पन्न परमाणु अप्रसार संधि समीक्षा सम्मेलन में पाँच परमाणु सम्पन्न शक्तियां अपने परमाणु आयुध भण्डारों को पूरी तरह समाप्त करने पर राजी हो गईं, हालाँकि इसके लिए समय सीमा निर्धरित नहीं की गई। 2 मई, 2005 को न्यूयार्वफ में सम्पन्न परमाणु अप्रसार समीक्षा सम्मेलन में 190 देशों के प्रतिनिध्यिों ने भाग लिया। सम्मेलन में ईरान के विदेश मंत्री कमाल खराजी परमाणु अप्रसार संधि के उस प्रावधन पर अड़े रहे जिसके तहत ईरान सहित 182 देशों ने परमाणु हथियार नष्ट कर दिए थे, जबकि अमरीका और अन्य कुछ देश नए मानदण्ड निर्धारित करते हुए एक बार पिफर से विचार करने के पक्षध्र थे।

अमेरिका-रूस में परमाणु शस्त्रा कटौती संधि मई 2002 - मई 2002 में अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने रूस की यात्रा की और रूस के साथ मित्राता मजबूत करने के लिए परमाणु शस्त्रों में कटौती के ऐतिहासिक समझौते पर हस्ताक्षर किए। संधि की शर्तों के अनुसार अमेरिका और रूस दोनों मिलकर साढ़े चार हजार के करीब परमाणु हथियार कम करेंगे। संधि के अनुसार परमाणु हथियारों में कटौती का लक्ष्य 2012 तक पूरा कर लिया जाएगा।

2.4.10 सारांश

16 जुलाई 1945 में अमेरिका ने नये हथियार के रूप में संसार को 'परमाणु बम' से अवगत कराया। अमेरिका ने अन्य राष्ट्रों को भी 'सुरक्षा' की दृष्टि से सुदृढ़ होने के लिए 'परमाणु सम्पन्न राष्ट्र' बनाने के लिए प्रोत्साहित किया। अमेरिका का परमाणु सम्पन्न देश बनाने के पीछे मुख्य कारण साम्यवादी शक्ति को कमजोर करना था, किन्तु साम्यवादी देश अर्थात् सोवियत संघ ने अपनी 'सुरक्षा' को मद्देनजर रखते हुए स्वयं को परमाणु सम्पन्न राष्ट्र बना लिया था।

इन दोनों देशों के बीच 'उत्तरजीविता' को लेकर उत्पन्न संघर्ष ने परमाणु प्रसार को हवा दे दी थी। धीरे-धीरे यह 'परमाणु प्रसार न्यूक्लिय क्लब' में बदल गया था, जिसमें फांस, इंग्लैण्ड, चीन, भारत, पाक, उत्तरी कोरिया भी शामिल हो गये थे। गौरतलब है कि संसार जापान पर परमाणु हमले की त्रासदी से भी परिचित है, अर्थात् परमाणु हथियारों के निर्माण से संसार के राष्ट्र सुरक्षित नहीं बल्कि विनाशकारी त्रासदी की ओर बढ़ रहे है।

विश्व 'परमाणु हथियारों' के 'आतंक' के साये में जी रहा है। 1961 में राष्ट्रपति कैनेडी ने परमाणु हथियारों के विषय में कहा था कि 'धरती को रहने योग्य बने रहने के लिए परमाणु हथियारों को नष्ट कर देना होगा।' यदि परमाणु युद्ध हुआ तो यह बम इस पृथ्वी से मानवता का समूल नाश कर देंगे। परमाणु युद्ध के बाद ध्रती का तापमान 30 डिग्री 40 डिग्री सेल्सियस तक परिवर्तित हो जायेगा, पृथ्वी के सभी जीव-जन्तु काल के गाल में समाने के लिए बाध्य हो जायेंगे। परमाणु हथियारों से मानवता के साथ ही साथ पर्यावरण को अत्यधिक नुकसान हो सकता है -

१.आजकल परमाणु भट्टियाँ तथा अन्य-यन्त्रा अंतर्राष्ट्रीय बाजार में सहज रूप से उपलबध् हो रहा है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, रूस, प्रफांस, कनाडा, जर्मनी आदि देश परमाणु भट्टियों को मुक्त रूप से बेच रहे है। इनके द्वारा भी अध्कि मात्रा में परमाणु हथियार बनाये जाते है। बमों के परीक्षणों, विस्फोटों तथा परमाणु भट्टियों में प्रक्रीयाओं के कारण पर्यावरण में रेडियोधर्मी तत्वों की प्रतिशत मात्रा बढ़ती जाती है। रेडियोधर्मी तत्व शीघ्रता से विघटित नहीं होते और लम्बी अवधि तक रेडियो विकिरणों का उत्सर्जन करते है, यह पर्यावरण पर अत्यध्कि खतरनाक प्रभाव डालता है। इसके प्रभाव से कैंसर जैसी बीमारियाँ भी उत्पन्न हो सकती है। 1945 में जापान पर परमाणु हमले के बाद हिरोशिमा और नागासाकी में अधिकांश संख्या में लोग कैंसर जैसी भयानक बीमारी से पीड़ित हुए है।

२.न्यूक्लीय कचड़े को फेकने की समस्या, इसके कचरे से भी लम्बे समय तक हानिकारक विकिरण निकलती रहती है, जो पर्यावरण में ''रासायनिक प्रदूषण'' पैफलाती है। इसके कारण जापान में आज भी अपंग बच्चे जन्म लेते है।

३.परमाणु संयंत्रों में होने वाली आकस्मिक दुर्घटनाएँ के वल एक राष्ट्र की सीमा तक पैफले पर्यावरण को ही नहीं बल्कि वैश्विक पर्यावरण पर अपना प्रभाव डालती है। हाल ही 2014 में जापान के शहर में परमाणु संयंत्रा में विस्पफोट से जापान में इसका विनाशकारी प्रभाव हुआ था।

आणविक शस्त्रों से उत्पन्न दुष्प्रभाव ने ही विश्व के राष्ट्र को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर परमाणु प्रसार की राजनीति से नियंत्रण की राजनीति की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया।

वैश्विक शांति को बनाये रखने के लिए 'निःशस्त्रीकरण' को राष्ट्रों के द्वारा बढ़ावा दिया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद निःशस्त्रीकरण वैश्विक स्तर पर गंभीर मुद्दे के रूप में उभरा तथा परमाणु शस्त्रों की होड़ तथा उपयोग को नियंत्रित करने पर जोर दिया गया। परमाणु प्रसार की दौड़ को नियंत्रित करने की संभावनाओं को लेकर निःशस्त्रीकरण वैश्विक स्तर पर अत्यध्कि गंभीर मुद्दा है।

निःशस्त्रीकरण का दौर 1945 से प्रारंभ हुआ, द्वितीय विश्व युद्ध ,शीत युद्ध के दौरान निःशस्त्रीकरण के लिए संधियों और समझौतों का दौर चलाया गया। इस दौर में 4 जुलाई 1974 स्टार्ट-I, 1979 में स्टार्ट-II, परमाणु अप्रसार संधि

1968, व्यापक आणविक परीक्षण प्रतिबंध संधि 1993, परमाणु अप्रसार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से किये गये निःशस्त्रीकरण के प्रयास 'आंशिक' प्रयास प्रतीत होते है। निःशस्त्रीकरण के लिए की गई संधियों और समझौते में पक्षपातपूर्ण प्रतीत होते है उदाहरण - NPT तथा CTBT संधियों पर भारत ने हस्ताक्षर नहीं किये है।

लघुस्तरीय प्रश्न उ

प्रश्न.1 1945 के काल को 'नये हथियारों का युग' क्यों कहा जाता है?

प्रश्न.2 शीत युद्ध के काल को 'दूसरा परमाणु युग' क्यों कहा जाता है?

2.4.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

उत्तर.1 द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका ने जापान की बढ़ती शक्ति को रोकने के लिए '16 जुलाई 1945 को 'परमाणु बम' से हमला किया, संसार को 'नये हथियारों के युग में प्रवेश' दिलाया था।

अमेरिका स्वयं को विश्व के समक्ष 'महाशक्ति' के रूप में दिखाना चाहता था, किन्तु सोवियत संघ की साम्यवादी विचारधरा के बढ़ते प्रसार के कारण ऐसा करना संभव प्रतीत नहीं हो रहा था। परिणामस्वरूप अमेरिका 'परमाणु संपन्न' राष्ट्र बनकर सोवियत संघ की बढ़ती शक्ति को रोकने का प्रयास था।

इसके विपरीत सोवियत संघ ने भी अमेरिका को प्रति उत्तर देते है स्वयं को 1949 में एक 'परमाणु सम्पन्न' महाशक्ति के रूप में घोषित कर दिया गया। सोवियत संघ और अमेरिका में महाशक्ति के बढ़ते प्रसार ने धीरे धीरे-परमाणु शक्ति का प्रसार कर दिया था। इन दोनों महाशक्तियों द्वारा संसार के अन्य राष्ट्रों को सहायता प्रदान की, जिसका लाभ उठाते हुए कमजोर राष्ट्र भी 'परमाणु संपन्न' राष्ट्र बन गया या परमाणु संपन्न राष्ट्र बनाने की 'दहलीज' पर पहुँच गये है।

उत्तर.2 1990 के बाद सोवियत संघ के विघटन के साथ ही शीत युद्ध की समाप्ति हो गई थी, विघटन के साथ ही ऐसा प्रतीत होने लगा कि परमाणु प्रसार युग' की भी समाप्ति हो जायेगी। परमाणु प्रसार अब 'इन दोनों खेमों' से निकल कर तृतीय विश्व के देशों की ओर बढ़ गया था, इन राष्ट्रों द्वारा अपनी क्षेत्रीय समस्या को ध्यान रखकर अपने प्रतिद्वंद्वी को कमजोर करने के उद्देश्य से 'परमाणु बम' का परीक्षण किया गया था। उदाहरणस्वरूप 18 मई 1974 में भारत ने अपने प्रतिद्वंद्वी पाक को कमजोर करने के उद्देश्य से 'परमाणु संपन्न राष्ट्र' बनाने का प्रयास किया, इसके प्रति उत्तर में पाक भी चुप नहीं रहा था, परिणामस्वरूप पाक ने स्वयं को 'परमाणु संपन्न' राष्ट्र बनाया।

इसके अलावा ईरान, सीरिया, इजराईल के कुछ 'धर्मिक संगठन' धर्मिक कट्टता को बढ़ावा देने के लिए 'परमाणु बम' का निर्माण कर रहे है। इजराईल और पिफलिस्तीन में लगातार बढ़ते संघर्ष ने 'परमाणु बम' निर्माण को बढ़ावा दिया था। उत्तरी कोरिया ने भी परमाणु परीक्षण किया है।

गौरतलब है कि उत्तर शीत युद्ध ,परमाणु प्रसार 'दोनों शक्तिशाली खेमों' से निकलकर तृतीय विश्व के कमजोर राष्ट्रों के द्वारा किये गये है।

परिणामस्वरूप उत्तर शीत युद्ध काल 'दूसरा परमाणु युग' कहलाता है

8.10 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विकसित राष्ट्र चाहते है कि अधिक से अधिक निःशस्त्रीकरण तृतीय विश्व के देश की ओर से ही हो। विकसित राष्ट्र 'नियंत्रण की राजनीति' के अंतर्गत तृतीय विश्व के राष्ट्रों को 'परमाणु संपन्न राष्ट्र' बनाने से रोकना तथा परमाणु शस्त्रा का उपयोग न करने के लिए बाध्य करते है, जबकि स्वयं पर इसे नहीं लागू करते है।

परिणामस्वरूप निःशस्त्रीकरण के प्रयास में की जाने वाली संधियों और समझौते 'एकपक्षीय' नजर आते है। वैश्विक स्तर पर परमाणु प्रसार तभी अप्रसार परिवर्तित किया जा सकता है जब सभी राष्ट्रों में निःशस्त्रीकरण को 'संवेदनशील' और संजीदगी से अमल में लाने का प्रयास किया जायेगा।

परमाणु प्रसार के खतरे की गंभीरता को स्वीकारते हुए, परमाणु अप्रसार के लिए किये संधियों और समझौतों को 'निष्पक्षता' के साथ लागू और स्वीकार करना चाहिए। यदि 'निष्पक्षतापूर्ण' परमाणु अप्रसार को बढ़ावा नहीं दिया जायेगा, वैश्विक पटल पर 'परमाणु हमले' का संकट बना रहेगा। परमाणु प्रसार के प्रति राष्ट्रों को वैश्विक पटल पर 'एकजुटता और निष्पक्षता' दिखाने की आवश्यकता है, ताकि विश्व को आगामी 'परमाणु हमले' से बचाये जा सके।

विश्व में कई देश 'धर्मिक कट्टरता' का प्रसार करने के लिए 'परमाणु बम' का अनुचित प्रयोग कर सकते हैं, इजराईल और पिफलिस्तीन के संघर्ष से हम सभी चिर परिचित है, इन दोनों देशों में लगातार बढ़ता संघर्ष कभी भी 'परमाणु आक्रमण' का रूप ला सकता है। विश्व के 'दहलीज' पर खड़े 'परमाणु हमले' को रोकने के लिए राष्ट्रों को परमाणु अप्रसार के लिए संधियों और समझौता को 'एकजुटता', 'निष्पक्षता', 'संजीदगी' के साथ लाने की आवश्यकता है।

8.11 शब्दावली

परमाणु प्रसार - आणविक शस्त्रों का पैफलाव, एक राष्ट्र द्वारा अपनी सैन्य शक्ति को सुदृढ़ बनाने के लिए नये हथियार के रूप 'परमाणु अस्त्रों' का परीक्षण करके स्वयं को 'परमाणु संपन्न' राष्ट्र बनाना। ठीक ऐसी ही सोच रखकर अन्य देशों ने भी जब 'हथियार के रूप में' 'परमाणु बम' का परीक्षण किया, विश्व पटल पर इसे 'परमाणु प्रसार' कहा गया।

निःशस्त्रीकरण- निःशस्त्रीकरण का शाब्दिक अर्थ है शारीरिक हिंसा के प्रयोग के समस्त भौतिक तथा मानवीय साध्नों का उन्मूलन। निःशस्त्रीकरण का प्रयास युद्ध को पूरी तरह नियंत्रित करने की कला नहीं बल्कि यह शस्त्रों के उपयोग को नियंत्रित करने की ध्वनि है। इसका लक्ष्य इस समय जो हथियार उपस्थित है उनके प्रभाव को घटाना है।

भय का संतुलन - अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में 'भय' शब्द की अहम भूमिका है, इसी कारण वैश्विक पटल हर राष्ट्र के लिए 'सुरक्षा' गंभीर मुद्दा बन जाती है। 1945 से प्रारंभ परमाणु प्रसार की राजनीति को भी इन्हीं दो 'गंभीर' और 'महत्वपूर्ण' मुद्दों से जोड़कर देखा जा सकता है।परमाणु सम्पन्न अमेरिका से 'भय का संतुलन' करने के लिए सोवियत संघ तथा अन्य राष्ट्र भी परमाणु सम्पन्न राष्ट्र बन गये।

एक राष्ट्र पर प्रतिद्वंद्वी राष्ट्र आक्रमण न करे, अर्थात् 'युद्ध की स्थिति का भय' उसे अपनी सुरक्षा के लिए प्रतिद्वंद्वी की तुलना में शक्तिशाली हथियार की तैयारी पर बल देता है।अमेरिका और सोवियत संघ के बीच अपनी 'सुरक्षा का भय' से संतुलन बनाने के लिए परमाणु प्रसार को अत्यध्कि बढ़ावा दिया।

8.13 संदर्भ ग्रंथ

1.फडिया, बल.एल. ;2008, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

8.14 सहायक /उपयोग पाठ्यक्रम

1.एंड्रयू, हैवुड ;2011,, ग्लोबल पॉलिटिव्फस, पेलगेरव मैकमिलन।

8.15 निबंधत्मक प्रश्न

1.'अंतर्राष्ट्रीय राजनीति' में 'सुरक्षा' अहम मुद्दा है, आप 'सुरक्षा' को नाभिकीय प्रसार और 'नियंत्राण' से वैफसे जोड़कर देखते है?

इकाई- 9 : भूमंडलीकरण

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 भूमंडलीकरण
9.3.1 भूमंडलीकरण के प्रमुख तत्व
9.3.2 भूमंडलीकरण का समाज के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव
9.3.3 भूमंडलीकरण को बढ़ाने के मुख्य कारक
9.3.4 भूमंडलीकरण के विपरीत प्रभाव
9.4 सारांश
9.5 शब्दावली
9.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.7 सन्दर्भ ग्रन्थ
9.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.9 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

इस इकाई में वर्तमान समय के सबसे ज्वलंत विषय भूमंडलीकरण का अध्ययन किया गया है |जिसमें भूमण्डलीकरण के अर्थ और प्रकृति का अध्ययन किया गया है | साथ ही यह भी अध्ययन किया गया है की इनके तत्व क्या है | इसके सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों के बारे में अध्ययन किया गया है |जिसमें यह स्पष्ट किया गया की भूमंडलीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं का समन्वय किया जाता है ताकि वस्तुओं एवं सेवाओं, तकनालॉजी, पूँजी और श्रम या मानवीय पूँजी का भी निर्बाध प्रवाह हो सके। वर्तमान समय में जब भूमंडलीकरण की बात करते हैं तो आर्थिक पक्ष को प्रधानता दी जाती है | यद्यपि इसमें संबंधो के अन्यपक्ष भी शामिल होते है |

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम

- भूमंडलीकरण के अर्थ को जान सकेंगे |
- भूमंडलीकरण के प्रमुख तत्वों को समझ सकेंगे
- भूमंडलीकरण का समाज के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे |
- भूमंडलीकरण को बढ़ाने के मुख्य कारको और उसके विपरीत प्रभाओं के बारे में समझ सकेंगे

9.3 भूमंडलीकरण

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया का अर्थ एवं प्रकृति समझने के लिये इसकी शुरूआती जड़ों कोढूँढना बहुत आवश्यक है। ऐतिहासिक तौर पर, यह कहा जा सकता है कि आर्थिक रूप से भूमंडलीकरण की शुरूआत सिल्क मार्ग की स्थापना के साथ हुई जो कि यूरोप के भूमध्य देशों एवं चीन के बीच स्थापित हुआ था। आधुनिक काल में, यह कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण की शुरूआत कोलंबस की सन् 1492 की अमेरिका यात्रा के साथ हुयी।
रोबी रॉबर्टसन ने अपनी पुस्तक, 'द थ्री वेव्स आफ ग्लोबलाइजेशन' में आर्थिक भूमंडलीकरण के तीन चरणों की व्याख्या की है। ये तीन चरण निम्नलिखित हैं:-

1.पहला चरण कोलम्बस की सन् 1492 में अमेरिका यात्रा के साथ प्रारम्भ हुआ तथा उसका अंत अठारहवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति के प्रारम्भ के पहले हुआ।

2.दूसरा चरण अठारहवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति के साथ प्रारम्भ हुआ तथा उसका अंत दूसरे विश्वयुद्ध के पहले हुआ।

3.तीसरे चरण का प्रारम्भ दूसरे विश्व युद्ध के उपरान्त सन् 1945 में हुआ और जो आज तक जारी है।

भूमंडलीकरण की बात आज के युग में हर कोई करता है परन्तु इसकी व्याख्या करना कठिन हैं । कुछ विचारक इसे मुख्यतः एक आर्थिक अवधारणा मानते हैं। कुछ भूमंडलीकरण का अर्थ सांस्कृतिक आदान प्रदान के संदर्भ में निकालते हैं । वहीं कुछ इसे एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। अतः जॉन बेलिस तथा स्टीव स्मिथ ने (द ग्लोबलाइज़ेशन आफ वर्ल्ड पॉलिटिक्स) भूमंडलीकरण को विभिन्न समाजों के बढ़ते हुए जुड़ाव की प्रक्रिया की संज्ञा दी जिसके वजह से विश्व के एक भाग में घटित हो रही घटनायें दूर दराज लोगों एवं समाजों को अधिक से अधिक प्रभावित कर रही हैं। एक वैश्वीकृत विश्व में राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक क्षेत्रो में हो रही घटनायें एक दूसरे से जुड़ी हुयी होती हैं।

ऐन्थोनी गिडेन्स ने अपनी पुस्तक 'द कान्सीक्वेन्सेज आफ मॉडरनिटी' में भूमंडलीकरण को परिभाषित करते हुए लिखा है कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतरगत विश्व के विभिन्न क्षेत्रों के बीच में अन्योन्याश्रता तथा पारस्परिकता की बढ़ोत्तरी हुई है जिसके कारण किसी जगह की स्थानीय घटनायें हजारों मील दूर घटित घटनाओं के द्वारा निर्धारित हो रही हैं।

वहीं डी. हार्वे ने अपनी पुस्तक 'द कंडिशन आफ पोस्ट मॉर्डनिटी' में भूमंडलीकरण द्वारा समय एवं स्थान की अवधारणा को जिस तरह प्रभावित किया गया है उस पर जोर दिया है । उसके अनुसार भूमंडलीकरण ने समय और स्थान की अवधारणा को एक नई दिशा दी है जिसके अंतरगत समय की गति और स्थान की दूरी का कोई महत्व नहीं रह गया है।

इस तर्क को आगे बढ़ाते हुए जेम्स रोज़ेनाऊ ने अपनी पुस्तक 'टरब्यूलेंस इन वर्ल्ड पोलिटिक्स' में भूमंडलीकरण के युग में दुनिया में व्याप्त पारस्परिकता, अन्तर्निभरता का कारण तकनीकी तंत्र को बताया है। उसके अनुसार तकनीकि तंत्र ने भौगोलिक और सामाजिक दुनिया के एक सिरे से दूसरे सिरे तक यथाशीघ्र पहुँच जाते हैं।

इसी क्रम में राबर्ट गिलपिन ने अपनी पुस्तक 'द पोलिटिकल ईकान्मी आफ इण्टरनेशनल रीलेशन्स' में भूमंडलीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया बताया है जिससे विश्व की अर्थ व्यवस्था का एकीकरण हुआ है। उसके अनुसार भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के द्वारा विश्व के प्रभुत्वशाली उदारवादी पश्चिमी राष्ट्र अपनी अर्थव्यवस्था और संस्कृति विश्व में विशेष रूप से विकासशील राष्ट्रों पर थोपना चाहते हैं। इसके द्वारा वे पुनः अपना आर्थिक एवं सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की स्थापना करना चाहते हैं।

मैलकम वाटर्स ने अपनी पुस्तक ’ग्लोब्लाइजेशन’ में कहा है कि भूमंडलीकरण की परिभाषा आज भी स्पष्ट नहीं है। अपनी परिभाषा में वाटर्स ने भूमंडलीकरण के युग में भौगोलिक दूरी की निरर्थकता पर बल दिया है। उसके अनुसार भूमंडलीकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था पर जो भौगोलिक दबाव होते हैं वो पीछे हट जाते हैं क्योंकि भौगोलिक सीमाएं बेमतलब हो जाती हैं।

सौम्येन सिकदर ने अपनी पुस्तक ’कंटेम्पोरेरी ईश्यूज इन ग्लोबलाइजेशन’ में भूमंडलीकरण को उदारीकरण से जोड़ा है। उसके अनुसार बाह्य उदारीकरण एक आर्थिक नीति के रूप में पिछले दो दशकों से चली आ रही भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से करीब से जुड़ी हुई है। यह अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण की लगातार चली आ रही प्रक्रिया है जो कि व्यापार, प्रौद्योगिकी, ज्ञान, सूचना एवं विचार के राष्ट्रीय सीमाओं के पार के अप्रत्याशित प्रवाह का प्रतिफल है। इसमें तकनीकी नवाचार, सूचना प्रौद्योगिकी क्रान्ति तथा पैदावार की विकसित प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी का बड़ा योगदान रहा है।

जोसेफ स्टगिलिटज़ ने अपनी पुस्तक ‘मेकिंग ग्लोब्लाइजेशन वर्क’ में लिखा है कि भूमंडलीकरण के अंतर्गत बहुत सी चीजों का समावेश है, जैसे कि विचारों एवं ज्ञान का अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह, संस्कृतियों का आदान प्रदान एव विश्व नगरीय समाज और विश्व पर्यावरण आंदोलन। परन्तु मुख्यतः भूमंडलीकरण का अर्थ आर्थिक भूमंडलीकरण से है जिसके अंतर्गत विश्व के राष्ट्रों के बीच पूँजी, माल एवं सेवा तथा श्रमिकों के बढ़ते हुए प्रवाह के द्वारा आर्थिक एकीकरण की प्रक्रिया को बल मिला है एवं उसमें निकटता आयी है।

दीपक नय्यर ने अपनी पुस्तक ‘गवर्निंग ग्लोब्लाइजेशन: ईश्यूज़ एण्ड इन्स्टीट्यूशन्स’ में भूमंडलीकरण के आर्थिक आधार को महत्व देते हुए उसके सम्बन्ध राष्ट्र राज्यों के सीमा पार बढ़ती हुई आर्थिक गतिविधियों तथा आर्थिक लेने देन से होने की बात की है। उसके अनुसार भूमंडलीकरण को एक ऐसी आर्थिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका सम्बन्ध विश्व अर्थव्यवस्था में राज्यों के बीच बढ़ते हुए आर्थिक खुलापन, बढ़ती हुई आर्थिक अंतरनिरर्भता तथा गहराती हुई आर्थिक एकीकरण से है।

उपरोक्त परिभाषाओं के मूल्यांकन उपरान्त हम भूमंडलीकरण को इस तरह से परिभाषित कर सकते हैं कि वह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के बीच तकनीक और प्रौद्योगिकी के विकास, आर्थिक एकीकरण तथा सूचना, विचारों एवं ज्ञान के प्रवाह के कारण एक ऐसी अंतरर्निभरता एवं पारस्परिकता का विकास हो रहा है जिसमें कि राष्ट्रों की सीमा तथा समय एवं स्थान के बंधन का कोई अर्थ नहीं रह गया।

9.3.1 भूमंडलीकरण के प्रमुख तत्व

अतः हम यह कह सकते हैं कि भूमंडलीकरण के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं:-

1.आर्थिक एकीकरण: 1990 में शीत युद्ध की समाप्ति के बाद पूरे विश्व में धीमे धीमे मुक्त बाजार आर्थिक व्यवस्था को अपनाना शुरू कर दिया जिसने कि राष्ट्रों के बीच में मुक्त व्यापार व्यवस्था को जन्म दिया है। साथ ही विदेशी पूँजी निवेश पर जो प्रतिबन्ध थे वो भी धीमे धीमे करके समाप्त कर दिये जा रहे हैं या कर दिये गये हैं। अतः पूरे विश्व में पाश्चात्य मुक्त उदारवादी बाजार अर्थ व्यवस्था को बोलचाला हो गया है जिसने कि फ्रांसिस क्यूकूयामा जैसे विद्वानों को यह कहने पर मजबूर किया कि इतिहास का अंत हो गया है (End of History)क्योंकि साम्यवादी राष्ट्रों के विघटन एवं उसके उपरान्त उनके द्वारा लोकतांत्रिक राजनैतिक एवं उदारवादी अर्थ व्यवस्था को अपनाने के बाद अब पूरे विश्व के सामने सिर्फ पाश्चात्य उदारवादी लोकतंत्र का विकल्प राजनैतिक एवं आर्थिक दोनों ही क्षेत्रों में रह गया है।

2.तकनीक एवं प्रौद्योगिकी का विकास: तकनीक एवं प्रौद्योगिकी के विकास के कारण एक ऐसी संचार व्यवस्था का निर्माण हुआ है जिससे कि पूरा विश्व एक वैश्विक गाँव (Global Village)बन गया है क्योंकि समय ओर स्थान पर आधारित सीमाओं का अब कोई मायने नहीं रह गया है।

3.सूचना, ज्ञान एवं विचारों का प्रवाह: प्रौद्योगिकी के क्षेंत्र में हुए विकास के कारण विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के बीच सूचना, विचारों एवं ज्ञान का प्रवाह बहुत ही त्वरित गति से हो रहा है।

4.अंतरर्निभरता एवं पारस्परिकता: पूरे विश्व के आर्थिक एकीकरण एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए तेजी से विकास के कारण विश्व के विभिन्न राष्ट्र एक दूसरे पर पारस्परिक रूप से निर्भर हैं तथा कोई भी घटना पूरे विश्व को प्रभावित करती है।

5.वैश्विक संस्कृति का विकास: पूरो विश्व में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के कारण एक ऐसी वैश्विक संस्कृति का विकास हो रहा है जिसके अंतर्गत हम बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पादों को हर जगह प्राप्त कर सकते हैं तथा उनके द्वारा निर्मित खाने पीने तथा पहनने ओढ़ने के वस्त्र एक समान पर पूरे विश्व में उपलब्ध हैं, साथ ही उनमें कामकाज करने वाले लोगों की जीवन शैली भी एक जैसी हो रही है । यह वैश्विक संस्कृति का विकास जो हो रहा है वह मुख्यतः पाश्चात्य संस्कृति ही है जिससे कि पाश्चात्य राष्ट्रों द्वारा सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को स्थापित करने का खतरा भी उत्पन्न हो गया है।

नगैर वुड्स ने जॉन बेलिस तथा स्टीव स्मिथ द्वारा संस्करित पुस्तक 'द ग्लोब्लाइजेशन आफ वर्ल्ड पोलिटिक्स' में अपने लेख 'इण्टरनेशनल पोलिटिकल इकानमी इन ऐन एज ऑफ ग्लोबलाइजेशन' में भूमंडलीकरण के चार मुख्य तत्वों पर प्रकाश डाला है जो निम्नलिखित हैं:-

1.अंतर्राष्ट्रीयकरण (Internationalisation)का अभिप्राय राज्यों के बीच बढ़ते हुए व्यापार एवं पूँजी निवेश से है। अंतर्राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया को बढ़ाने में विभिन्न राज्यों के बीच व्यापार तथा पूँजी निवेश पर हुए समझौते तथा सरकारों की घरेलू नीतियाँ जिनके द्वारा निजी व्यवसायियों को विदेशों में निवेश करने की इजाज़त दी गयी काफी मददगार साबित हुइ।

2.प्राद्योगिकी क्रान्ति (Technological Revolution)का सम्बन्ध जिस प्रकार से आधुनिक संचार व्यवस्था का विकास हुआ है उससे है जिसने स्थान एवं दूरी को न केवल सरकारों के लिये बल्कि निजी कम्पनियों के निर्णयों में तथा अन्य सामाजिक संगठनों की गतिविधियों को भी, कम महत्वपूर्ण बना दिया है।

3.भूमि की सीमाओं का व्यवहारिक रूप में अस्तित्व समाप्त होना ;(Deterritorialisation)इसका अभिप्राय प्रौद्योगिकी क्रान्ति द्वारा स्थान, दूरी एवं राष्ट्र की सीमा के प्रभाव को कम करने से है जिसने वैश्विक नगरीय समाज को जन्म दिया। परन्तु इसका नकारात्मक पहलू यह हो रहा है कि विश्व में अपराध्यिों और आतंकवादियों का नेटवर्क भी पनप रहा है।

4.उदारवाद - जिससे उनका अभिप्राय उन सरकारी नीतियों से है जिसकी वजह से राज्य की भूमिका अर्थव्यस्था में कम हुई है। इनमें व्यापार पर शुल्क और प्रतिबंध की समाप्ति, वित्तीय क्षेत्र को विदेशी पूँजी निवेशकों को खोलना तथा राज्य के उपक्रमों का निजीकरण शामिल है।

9.3.2 भूमंडलीकरण का समाज के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव

उपरोक्त आधार पर स्टीव स्मिथ तथा जॉन बेलिस के अनुसार भूमंडलीकरण का समाज के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव निम्नलिखित ढंग से देखा जा सकता है।

1.आर्थिक क्षेत्र - मुक्त बाजार व्यवस्था एवं पूजीवादी अर्थव्यवस्था का निर्माण, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा विश्व स्तर पर उत्पादन एवं विपणन करना तथा विश्व के वित्तीय बाजारों द्वारा राष्ट्रों को मिलने वाले कर्ज की शर्तों का निर्धारण।

2.सैन्य क्षेत्र - इस क्षेत्र में विश्व अस्त्र शस्त्र व्यापार, जन विध्वंशकारी शस्त्रों (Weapons of mass destruction) का प्रसार, राष्ट्रोपरि आतंकवाद में वृद्धि , राष्ट्रोपरि सैन्य कम्पनियों का बढ़ता हुआ महत्व, और विश्व में व्याप्त असुरक्षा की चर्चा यह सब एक विश्व सैन्य व्यवस्था की स्थापना की ओर इशारा करते हैं।

3.विधि क्षेत्र: राष्ट्रोपरि एवं अंतर्राष्ट्रीय विधि का व्यापार से लेकर मानव अधिकार के क्षेत्र में वृद्धि तथा नव विश्व विधि संगठनों, जैसे कि अंतर्राष्ट्रीय अपराधी कोर्ट की स्थापना यह एक उभरते हुए विश्व विधि व्यवस्था का सूचक है।

4.पर्यावरण क्षेत्र में साझा पर्यावरण समस्याएँ हैं, जो कि विश्व में बढ़ती हुई गर्मी (Global warming)से लेकर विशिष्ट जैविक प्रणालियों की सुरक्षा तक सम्मिलित हैं तथा जिसके निराकरण के लिये एक वैश्विक पर्यावरण शासन व्यवस्था चाहिये।

5.सांस्कृतिक क्षेत्र: जिसमें कि सजातीयता (homogeneity) तथा बढ़ती हुई विजातीयता (heterogeneity) का मिश्रण हो रहा है। जहाँ एक वैश्विक संस्कृति का विकास हो रहा है, वहीं कहीं कहीं पर राष्ट्रवाद, जातीयता (ethnicity) एवं भिन्नता भी प्रभावी हो रहा है।

6.सामाजिक क्षेत्र: में भूमंडलीकरण का प्रभाव लोगों का दक्षिण से उत्तर तथा पूरब से पश्चिम की ओर जाने से प्रवास का एक बहुत बड़ा मुद्दा सामने आया है।

9.3.3 भूमंडलीकरण को बढ़ाने के मुख्य कारक

विश्व में भूमंडलीकरण के प्रभाव को बढ़ाने में जो प्रमुख कारक हैं वो निम्नलिखित हैं :-

1.जो सबसे महत्वपूर्ण कारक है वह है विश्व की सरकारों का भूमंडलीकरण की तरफ एक सकारात्मक रवैया।

2.उतना ही महत्वपूर्ण कारक है वो संस्थायें जो कि आर्थिक भूमंडलीकरण की ही देन हैं। उनमें से एक है अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थायें जैसे कि अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक एवं विश्व व्यापार संगठन। दूसरी प्रकार की संस्थायें जिन्होंने भूमंडलीकरण को बढ़ाने में अग्रणी भूमिका निभायी है वो हैं - बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ जिनका कि पूँजी निवेश, व्यापार एवं रोजगार पर बड़ा प्रभाव है।

3.तीसरा कारक जो महत्वपूर्ण है वह है प्राद्योगिकी का विकास, खास तौर पर परिवहन एवं संचार प्रौद्योगिकी।

9.3.4 भूमंडलीकरण के विपरीत प्रभाव

भूमंडलीकरण के समर्थकों द्वारा यह हमेशा उद्घोषणा की जाती रही है कि भूमंडलीकरण वो प्रक्रिया है जो सभी नावों को उठाने का काम करती है। पर अगर हम तथ्यों का मूल्यांकन करें तो हम पायेंगे कि ऐसा नहीं है क्योंकि भूमंडलीकरण ने अमीर राष्ट्रों को ही मुख्यतः लाभ पहुँचाया है। यह तथ्य हम निम्नलिखित आधार पर कह सकते हैं:-

1.वैश्विक सम्पदा का धुरवीकरण: औद्योगिक क्रान्ति की शुरूआत के उपरान्त विश्व के सबसे अमीर और सबसे गरीब गरीब राष्ट्रों के बीच की खाई और बढ़ी है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के अनुमानों के अनुसार सन् 1820 में विश्व के अमीर और गरीब देशों की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय का अंतर 3: 1 के अनुपात में था जो कि 1913 में 11: 1 के अनुपात में हो गया, जो 1950 में बढ़कर 35: 1 के अनुपात में हो गया और जो 1992 में बढ़कर 72: 1

के अनुपात में हो गया। इसका यह मतलब नहीं कि 250 - 300 वर्ष पहले सब अमीर थे परन्तु इन वर्षो में कुछ गिने चुने ही और अमरी हुए हैं बल्कि बाकी सब पीछे छूट गये हैं।

2.अमीर देशों तक प्रभाव: पिछले 2-3 शताब्दियों में भूमंडलीकरण से विश्व में उत्पादन का केन्द्रीकरण विश्व के अमीर राष्ट्रों में हुआ है जिससे उनकी वित्तीय शक्ति में वृद्धि हुई है। आज अधिकतर औद्योगिक उत्पादन पश्चिम यूरोप, पूर्व एशिया तथा उत्तर अमेरिका में होता है। विश्व में व्यापार और पूंजी का प्रवाह भी इन्हीं राष्ट्रों तक केन्द्रित है। इस केन्द्रीकरण ने विश्व की अन्य आबादी की गरीबी और बढ़ाया है। गरीब राष्ट्रों की विश्व की अर्थ व्यवस्था में भूमिका घटी ही है। सिर्फ छः देश - ब्राजील, मेक्सिको, थाईलैंड, अर्जेन्टीना, इन्डोनेशिया और चीन विश्व के गरीब देशों में होने वाले कुल 32 प्रतिशत पूँजी निवेश का 60 प्रतिशत प्राप्त करते हैं। अतः भूमंडलीकरण ने विश्व वाणिज्य के कुछ गिने चुने केन्द्रों को विकसित किया है जिससे अधिकतर गरीब बाहर हैं।

3.तीसरे विश्व की कर्ज की समस्या: आर्थिक क्षेत्र में भूमंडलीकरण को तीसरे विश्व में थोपने का प्रमुख कारण है इन राष्ट्रों की कर्ज की समस्या। गरीब देश विश्व बैंक तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से कर्ज तभी प्राप्त कर सकते हैं जब वे उनके द्वारा सुझाये गये ढाँचागत सुधारों को अपनायें जो कि उन्हें अपनी अर्थ व्यवस्था को विश्व की मुक्त बाजार व्यवस्था के साथ जोड़ने के लिये मजबूर करते हैं। विश्व के लगभग 40 प्रतिशत देश विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के द्वारा निर्धारित आर्थिक सुधारों को अपनाये हुए हैं। इसका अर्थ यह है विश्व की आधी अर्थव्यवस्थाओं के असली प्रबंधक विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष हैं। आज के परिवेश में वर्ल्ड वाच इन्स्टीट्यूट की 2002-03 की रिपोर्ट के अनुसार तीसरे विश्व का कर्ज 2,530 बिलियन डालर है जो कि सन् 1980 का ढाई गुना है। कर्ज का सबसे अधिक बोझ अफ्रीका के उप सहारा क्षेत्र के देशों पर है।

4.विश्व व्यापार: गरीब देश न केवल कर्ज के बोझ से दबे हुए हैं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भी इनका प्रदर्शन बहुत खराब है। न केवल विश्व व्यापार का बहुत बड़ा हिस्सा अमीर देशों के खाते में आता है बल्कि उसका संतुलन भी उन्हीं के पक्ष में हैं। गरीब देशों का व्यापार घाटा बहुत तेजी से बढ़ रहा है, जबकि अमीर देशों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लाभ बढ़ रहा है। विश्व व्यापार धीमे धीमे तीन बड़े व्यापार समूहों, उत्तर अमेरिका, पूर्व एशिया तथा पश्चिमी यूरोप के इर्द गिर्द केन्द्रित है। इक्कीसवीं सदी की शुरूआत में विश्व के गरीब देशों के मन में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था से होने वाले लाभों के प्रति संशय की भावना उत्पन्न हो गयी है।

5.सहायता: गरीब देशों की गरीबी को देखते हुए लोगों को यह उम्मीद थी कि विदेशी सहायता उन्हें गरीबी से बाहर निकलने में मदद मिलेगी। परन्तु विदेशी सहायता भूमंडलीकरण की कमियों को दूर करने में मददगार नहीं साबित हो पायी है। अधिकतर आर्थिक सहायता देने के पीछे अमीर देशों का अपना छुपा हुआ राजनीतिक हित होता है। 1970 के दशक से आर्थिक सहायता के साथ बहुत सी शर्तें भी जुड़ी रहती हैं।

6.उपरोक्त कारणों की वजह से हर्स्ट एवं थॉम्पसन ने यह तर्क दिया है कि आज की अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था कुछ विषयों के सम्बन्ध में सन 1870 से 1914 के बीच की अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से कम मुक्त है। साथ ही, उनके अनुसार वित्त और पूँजी विकसित से विकासशील देश में हस्तांतरित नहीं हो रही है। अतः यह कहा जा सकता है कि विश्व अर्थ व्यवस्था वैश्विक नहीं है बल्कि व्यापार, पूँजी निवेश एवं वित्तीय प्रवाह यूरोप, उत्तर अमेरिका एवं जापान तक सीमित रह गया है। उनके अनुसार भूमंडलीकरण का एक प्रभाव यह भी है कि वह प्रतीत होने देता है कि राष्ट्रीय सरकारें उसके आगे लाचार हैं जिससे कि वे वैश्विक आर्थिक शक्तियों पर किसी प्रकार का नियंत्रण न स्थापित करें।

7.यह भी कहा जाता है कि वैश्वीकीरण पाश्चात्य साम्राज्यवाद का तात्कालिक एवं आधुनिक चरण है क्योंकि वह जिस तरह की वैश्विक संस्कृति को जनम दे रहा है वह पाश्चात्य संस्कृति का ही पूरे विश्व में प्रसार कर रही है। साथ

ही आर्थिक क्षेत्र में उदारीकरण एवं मुक्त बाजार व्यवस्था के द्वारा विश्व की अर्थव्यवस्था का एकीकरण तथा राजनीतिक क्षेत्र में लोकतंत्र एवं स्वतंत्रता के नाम पर पश्चिमी देश अपना साम्राज्यवाद या वर्चस्व पूरे विश्व, खास तौर पर गरीब एवं विकासशील देशों पर कायम रखना चाहते हैं।

अभ्यास प्रश्न

१ कोलंबस.ने अमेरिका की यात्रा किस सन में की ?

२. 'द थ्री वेव्स आफ ग्लोबलाइजेशन' के लेखक कौन हैं ?

३.रोबी रॉबर्टसन ने आर्थिक भूमंडलीकरण के कितने चरणों की व्याख्या की ?

४.पुस्तक 'कंटेम्पोरेरी ईश्यूज इन ग्लोबलाइजेशन' के लेखक कौन हैं ?

५.भूमंडलीकरण को उदारीकरण से किसने जोड़ा है ?

9.4 सारांश

अंत में हम यह कह सकते हैं कि भूमंडलीकरण वह शक्ति नहीं जिससे पूरे विश्व का भला हो रहा हो जैसा कि पाश्चात्य पूँजीपति राष्ट्रों का दावा है। अतः इसका विस्तार एवं प्रसार का प्रबंधन बहुत ध्यानपूर्वक एवं सोच समझकर होना चाहिए क्योंकि यह लोगों की सशक्तीकरण करने वाली प्रक्रिया होनी चाहिए न कि फिर से एक तरह की गुलामी में ठेलने वाली प्रक्रिया होनी चाहिए। वैसे तो 9.11.2001 की घटनाओं के उपरान्त बहुत से विद्वानों का मानना है कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को एक करारा झटका लगा है क्योंकि राष्ट्रों की सुरक्षा अभी भी राष्ट्र-राज्य व्यवस्था पर ही आधारित हैं और भूमंडलीकरण की प्रक्रिया विश्व में सुरक्षा के क्षेत्र में बिलकुल विफल रही है। बल्कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया का लाभ उठाकर आतंकवादी तथा अन्य विध्वंसकारी संगठन विश्व में अशांति एवं असुरक्षा का माहौल पैदा कर रहे हैं।

अतः हम यह कह सकते हैं कि विश्व के राष्ट्रों का एक दूसरे से जुड़ाव एवं अंतरनिर्भता राष्ट्रों के पारस्परिक लाभ में तो है बशर्ते कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया अंतर्राष्ट्रीयवाद तथा सर्व मैत्री की भावना से लागू की जाय न कि विश्व में लोकतंत्र, स्वतंत्रता तथा आर्थिक विकास के नाम पर पाश्चात्य साम्राज्यवाद को पुनः स्थापित करने की भावना से की जाय।

9.5 शब्दावली

लोकतंत्र – जनता द्वारा निर्वाचित सरकार ,जो जनता के प्रति उत्तरदाई होती है |

भूमंडलीकरण - यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतरगत विश्व के विभिन्न क्षेत्रों के बीच में अन्योन्याश्रता तथा पारस्परिकता की बढ़ोत्री हुई है जिसके कारण किसी जगह की स्थानीय घटनायें हजारों मील दूर घटित घटनाओं के द्वारा निर्धारित हो रही हैं।

9.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. सन् 1492 ,२. रोबी रॉबर्टसन ,३. तीन चरणों की ,४. सौम्येन सिकदर ,५. सौम्येन सिकदर

9.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Palmer and Perkins : International Relations
2. Coloumbis & Wolfe : International Relations – Power and Justice.
3. Prakash Chandra : International Policies
4. Mahendra Kumar : Theoretical Aspects of International Relations.

9.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.कुमार, महेन्द्र (2013), अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक परिपेक्ष्य, शिवलाल अग्रवाल पब्लिकेशनस एण्ड कॉरपोरेशन।

2.फाड़िया, बी.एल. (2008) अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

3.खन्ना, बी.एन. (2003) अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

१- भूमंडलीकरण के अर्थ और उसके महत्वपूर्ण तत्वों की विवेचना कीजिये |

ईकाई -10 : यूरोपीय संघ

ईकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 यूरोपीय संघ के संगठन में सहायक तत्व
10.4 मॉस्ट्रिश संधि
10.5 संविधान का निर्माण एवं लिस्बन संधि
10.6 यूरोपीय संघ में कार्यरत संगठन
10.7 यूरोपीय संघ एक शक्ति
10.8 यूरोपीय संघ एवं भारत
10.9 सारांश
10. 10 शब्दावली
10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.12 सन्दर्भ ग्रंथ
10.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.14 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

आधुनिक विश्व व्यवस्था में क्षेत्रीय संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यह विश्व व्यवस्था के एक केन्द्र के रूप में उभर कर सामने आए हैं। समकालीन विश्व में कुछ ऐसे क्षेत्रीय संगठन है जो लगातार प्रयास करते आ रहे हैं कि संबंधित राज्य प्रादेशिक अखंडता की सुरक्षा तथा आंतरिक मामलों में न हस्तक्षेप करते हुए क्षेत्रीय सहयोग को प्रोत्साहन दे। क्षेत्रीय संगठनों के माध्यम से क्षेत्रीय एकीकरण की अवधारणा को संस्थात्मक संरचना का रूप दिया जा सकता है, जिसका जीता जागता उदाहरण यूरोपीय संघ है। कुछ अन्य प्रतिबद्ध संगठनों को भी यूरोपीय संघ की तर्ज पर प्रतिरूप किया जा सकता है जिसमें प्रमुख हैं- अफ्रीकन संघ, दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन, अरब लीग। अफ्रीका ने इस दिशा में कदम भी बढ़ा दिया है परंतु यूरोपीय संघ की भांति इसके सदस्य देश अपने राष्ट्रीयता सम्प्रभुता के अंश को त्यागने को तैयार नहीं है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम -

- यूरोपीय संघ और उसके संगठन में सहायक तत्वों का अध्ययन कर सकेंगे |
- यूरोपीय संघ में कार्यरत संगठनो का अध्ययन कर सकेंगे |
- यूरोपीय संघ एवं भारत के बीच संबंधो का अध्ययन कर सकेंगे |
- भारत और यूरोपीय संघ के बीच के सम्बन्ध के संभावनाओं का भी अध्ययन सकेंगे |

10.3 यूरोपीय संघ के संगठन में सहायक तत्व

यूरोपीय संघ 28 सदस्य राज्यों का राजनीतिक आर्थिक संगठन है जो मुख्यतया यूरोप केन्द्रित है। विश्व व्यवस्था में यह एक अत्यंत प्रभावी क्षेत्रीय संगठन है। इस संगठन को क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग का मार्गदर्शक माना जाता है। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य आर्थिक एकीकरण है जिसमें सदस्य देशों के साथ आर्थिक सहयोग एवं मुक्त व्यापार शामिल है। यूरोपीय संघ कई नामों से जाना जाता है परंतु यह यूरोपीय आर्थिक समुदाय के रूप में प्रयोग किया जाता है और यही इसका अधिकृत शीर्षक है। यूरोपीय संघ राजनीतिक-आर्थिक एकीकरण की दिशा में कार्यरत है।
यूरोप को संगठित करने का विचार काफी पहले से चला आ रहा था। यूरोपियन आंदोलन के नेता काऊट कलेगो ने यूरोप को संगठित करने की संकल्पना प्रस्तुत की। फिर यूरोपीय एकीकरण की योजना को, शीत युद्ध में पूर्व सोवियत प्रभाव क्षेत्र के रूप में तबदील होने से रोकने की नीति के रूप में देखा गया। इसके संगठन की शुरूआत 1952 में छह देशों बेल्जियम, फ्रांस, पश्चिम जर्मनी, इटली, लेक्जमबिग तथा नीदरलैंड्स के द्वारा स्थापित यूरोपीय कोयला एवं इस्पात समुदाय से हुई थी। लगभग चार दशकों तक यूरोप के राजनीतिक एकीकरण के कई प्रयास किये गये जिसमें यूरोपीय रक्षा समुदाय, यूरेटोम, यूरोपीय अणु ऊर्जा समुदाय तथा यूरोपीय रक्षा समुदाय, यूरेटोम, यूरोपीय अणु ऊर्जा समुदाय तथा यूरोपीय आर्थिक समुदाय हालांकि ये आर्थिक एकीकरण के प्रयास थे परंतु संस्थापकों का ये अनुमान था कि एक दिन यूरोप में राजनीतिक एकीकरण का पौध अवश्यक उपजेगा।
छः राष्ट्रों के साथ आने के बाद इसमें ब्रिटेन, आयरलैंड, डेनमार्क और नार्वे भी इस संधि में शामिल हो गये। 1981 में ग्रीस तथा 1986 में स्पेन और पूर्तगाल भी यूरोपीय आर्थिक समुदाय के सदस्य बने। बाद में आस्ट्रिया, फिनलैंड तथा स्वीडन को भी इसके सदस्य नियुक्त किया गये। श्लेगेन संधि का यूरोपीय एकीकरण में महत्वपूर्ण स्थान है जिसके बाद सदस्य राष्ट्रों के नागरिक का एक-दूसरे के राष्ट्र में बैगर पासपोर्ट के आना जाना शुरू हुआ।
वास्तव में इस संघ का उद्देश्य आर्थिक संघ का निर्माण करना था, जिससे द्वारा सभी सदस्य देशों के रहन के स्तर में वृद्धि की जा सके। आपसी अंतर्विरोध इतने थे कि आर्थिक सहयोग अधिक व्यावहारिक तथा मध्य मार्गों माना गया। इस यूरोपीय समुदाय की यह महत्वाकांक्षा थी कि 1992 तक पूरा पश्चिमी यूरोप एक एकात्मक बाजार के रूप में विकसित हो। राज्यों की की वर्तमान सीमाओं को आर्थिक विषणन की दृष्टि से विलीन कर दिया जाए। डेन्यू ने इस संबंध में स्पष्ट किया है कि सामान्य दृष्टि से यह आर्थिक संधि है, लेकिन इसका राजनीतिक पहलू अधिक प्रभावशाली है। हेलिस्टाइन तो इसकी तुलना तीन अवस्था वाले राकेट में करते हैं, जिसमें कि पहली अवस्था तटकर संघ, दूसरी अवस्था आर्थिक संघ तथा तीसरी अवस्था राजनीतिक संघ की है। इस उद्देश्य की पूर्ति अर्थात् यूरोप के आर्थिक एकीकरण में बहुत से महत्वपूर्ण सहायक तत्वों ने भूमिका निभाई।
१.संकीर्ण राष्ट्रवाद के कारण हुए प्रथम तथा दूसरे विश्व युद्ध ने सभी राज्यो को यह अनुभव करा दिया था कि यह क्षति व्यर्थ है। इनके परिणामों और यूरोप के इन अनुभवों के कारण ही यूरोपीय एकीकरण की संभावना प्रबल हुई।
२.दूसरे विश्व युद्ध के कारण क्षतिग्रस्त यूरोपीय अर्थव्यवस्था को स्थापित करने के लिए एक संगठन प्रयास की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता ने ही यूरोपीय देशों को आर्थिक विकास के लिए संगठित होने के किए प्रेरित किया।
३.आर्थिक विकास के लिए आवश्यक राजनीतिक स्थिरता के लिए भी यह एक प्रयास था। बुरी तरह से क्षतिग्रस्त यूरोपीय अर्थव्यवस्था और राजनीतिक अस्थिरता ने भी पश्चिमी यूरोप को एक साथ आने को मजबूर किया। पूर्वी यूरोप में सोवियत संघ के प्रभाव के विस्तार के रोकने के लिए भी एक संगठित प्रयास की आवश्यकता थी।

४.अन्य राष्ट्रों विशेषतया महाशक्तियों पर निर्भरता को खत्म करने का प्रयास अर्थात् ये राज्य अमरीका पर निर्भर नहीं रहना चाहते थे। मार्शल योजना का एक संकटकालीन सहायता के रूप में स्वीकार किया गया। यूरोप अपने विकास के लिए अपनी निजी स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए प्रयासरत थे।

५.यूरोप की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के लिए इन राज्यों का परस्पर सहयोग आवश्यक था। द्वितीय विश्व युद्ध ने यूरोपीय शक्तियों का अत्यंत कमजोर बना दिया था। इस शक्तिहीनता की स्थिति में आ जाने के कारण यूरोपीय राष्ट्रों को परस्पर प्रतिद्वंद्वता तथा युद्ध पर हुई क्षति का पूर्णतः आभास हो गया था। शीत युद्ध में दो महाशक्तियों के मध्य अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए सहयोग ही एक रास्ता था।

६.शीत युद्ध के कारण दोनों महाशक्तियों, अमेरिका और सोवियत संघ, अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने का प्रयास कर रही थी। पश्चिमी यूरोप पूरी तरह से अमरीकी वर्चस्व में था, वही पूर्वी यूरोप साम्यवाद के प्रभाव में था। साम्यवाद के इस बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए यूरोप का विकास आवश्यक था। यह विकास ही साम्यवाद के प्रसार के विरूद्ध एक सुरक्षा-साधन के रूप में था क्योंकि साम्यवाद का पौधा वहीं उगता था जहां आवश्यक वस्तुओं की कमी तथा निर्धनता विद्यमान हो। इस प्रभाव को रोकने के लिए अतः यूरोप के विकास के लिए सामुहिक प्रयास आवश्यक था।

७.अंत में, यूरोपीय राष्ट्रों को यह विश्वास हो गया था कि शीत युद्ध की इस विभीषिका से अपने आप को बचाने के लिए अपनी सुरक्षा के लिए एकता बनाए रखना अनिवार्य है। अतः दूसरे विश्व युद्ध के बाद की परिस्थितियों ने यूरोप में आर्थिक, राजनीतिक तथा सुरक्षा की दृष्टि से एकीकरण को प्राप्त करने की दृढ़ इच्छा यूरोपीय राष्ट्रों में पैदा कर दी थी। इसकी शुरूआत 1951 में कोयला और स्टील समुदाय के निर्माण के द्वारा परस्पर सहयोग के निर्णय के द्वारा लिया गया जिसमें पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, इटली, बेल्जियम, नीदरलैंड और लॅक्जमबर्ग सम्मिलित थे। इसी दशक में दो अन्य महत्वपूर्ण समुदाय का निर्माण किया गया जो यूरोपीय राज्यों को संगठित करने में आवश्यक कदम थे। 1957 में 'यूरोपीय आर्थिक समुदाय' की स्थापना हुई तथा इसी वर्ष 'यूरोपीय परमाणु ऊर्जा समुदाय' की भी स्थापना हुई तथा इसके द्वारा सदस्या राज्यों के मध्य 'एक समान प्रशुल्क संघ की व्यवस्था की गई। राज्यों के मध्य सहयोग और समन्वय को बढ़ावा देने के लिए 'यूरोपीय आर्थिक समुदाय' के संस्थापक ढांचे का भी निर्माण किया गया। इन समुदायों द्वारा ही यूरोपीय एकीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई तथा तीनों यूरोपीय समुदाय, कोयला और स्टील समुदाय, यूरोपीय परमाणु ऊर्जा समुदाएं तथा यूरोपीय आर्थिक समुदाय, इस यूरोपीय एकीकरण प्रक्रिया के उपकरण बन कर कार्य करने लगे। इन समुदायों के सदस्यों ने साझी नीतियों तथा प्रयासों द्वारा इन क्षेत्रों के विकास, उत्पादन तथा व्यापार को व्यवस्थित ढंग से विकसित करने के लिए दृढ़ता से कार्य करना आरंभ कर दिया। 1967 के पहले संपन्न हुए सभी समझौते या संधियों को मिलाकर 'यूरोपीय समुदाय' का निर्माण हुआ तथा सत्तर के दशक में ही यूरोपीय समुदाय में डेनमार्क, आयरलैंड, ब्रिटेन और नार्वे जैसे नए सदस्य सम्मिलित हुए लेकिन नार्वे की संसद ने इस सदस्यता को अनुमोदित नहीं किया। 1979 में पहली बार यूरोपीय संसद के लिए प्रत्यक्ष चुनाव आयोजित किया गया। अस्सी के दश में ग्रीस, स्पेन और पुर्तगाल भी यूरोपीय समुदाय के नए सदस्य हो गए। इस प्रकार यह संगठन लगातार विकसित और मजबूत होता जा रहा था। यूरोपीय समुदाय का तीव्र गति से विकास हो रहा था। 1987 में सम्पन्न हुए एकल यूरोपीय अधिनियम के तहत यूरोप को आर्थिक रूप से एकीकृत करने का निर्णय लिया गया, तथा 1992 तक यूरोपीय राज्यों में आर्थिक एकीकरण के लिए परिस्थितियों का निर्माण किया गया। इसी समझौते के अंतर्गत एक 'यूरोपीय सेंट्रल बैंक' की स्थापना का भी प्रावधान किया गया, जिससे भविष्य में यूरोपीय समुदाय में समान मुद्दा का प्रचलन हो सके। यूरोपीय संघ की राजधानी ब्रुसेल्स है जिसने यूरोपीय संघ को एक वास्तविक रूप प्रदान किया वह संधि 1991 में मास्ट्रिश संधि के रूप में सामने आयी। यह संधि 1 नवंबर,

1993 को लागू हो गयी और अब ये यूरोपीय समुदाय के स्थान पर यूरोपीय संघ की स्थापना के रूप में प्रकट हुई। इस संघ में यूरोपीय कोयला एवं इस्पात समुदाय, यूरोपीय अणु ऊर्जा समुदाय एवं यूरोपीय आर्थिक समुदाय तीनों का विलय कर यूरोपीय संघ की स्थापना हुई।

10.4 मॉस्ट्रिश संधि

मास्ट्रिश संधि उस वक्त विश्व व्यवस्था में सामने आयी जब विश्व व्यवस्था परिवर्तन के दौर से गुजर रही थी। शीत युद्ध के समापन एवं सोवियत संघ के विकास के पश्चात् स्थापित एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में अमेरिका भले ही एकल महाशक्ति के रूप में उभरा तथा विश्व के प्रमुख क्षेत्रों पर उसका प्रभाव था। परंतु यूरोपीय संघ उस समय विद्यमान विश्व व्यवस्था में उसका तत्कालिक उद्देश्य संघ राष्ट्रों के बीच आर्थिक उन्नति एवं आर्थिक सहयोग बढ़ाना तथा समस्त संघ में एक साझी मुद्रा का प्रचलन करना है। एक साझी मुद्रा के चलन से न केवल सभी देशों का एक साझा व्यापार संभव होगा और मुक्त व्यापार हो सकेगा बल्कि यूरोप के राजनीतिक एकीकरण का मार्ग भी प्रशस्त होगा। वर्तमान समय में यूरो को मुद्रा के रूप में स्वीकार करने वाले राष्ट्रों की संख्या 19 है जो लगातार बढ़ रही है। मॉस्ट्रिश संधि, यूरोपीय आर्थिक समुदाय जो अब यूरोपीय संघ कहा जाता है, के 12 सदस्यों के मध्य हस्ताक्षरित हुई थी जिसने यूरोपियन यूनियन (संघ) की संकल्पना को वास्तविक रूप प्रदान किया। मॉस्ट्रिश संधि में निम्नलिखित मुख्य प्रावधान हैं-

1.वर्ष 1999 तक एक मुद्रा का लक्ष्य, लेकिन इसमें भी डेनमार्क ओर ब्रिटेन जैसे देशों के लिए वैकल्पिक व्यवस्था की गई थी। यह व्यवस्था की गई थी कि जो देश 1999 तक अपनी मुद्रास्फीति दर और बजट घाटे को कम कर सकेगे वे ही अपनी मुद्रा की जगह यूरोपियन मुद्रा ईकाई जिसे (यूरो) कहा गया को अपना सकते हैं।

2.यूरोपियन समुदाय की सुरक्षा की व्यवस्था, लेकिन नाटो जैसे सैनिक संगठनों के साथ कोई गठबंधन नहीं।

3.समान यूरोपियन समुदाय नागरिकता। सभी को स्थानीय और यूरोपियन समुदाय में मत देने का अधिकार।

4.आपसी विचार-विमर्श के बाद समान विदेश नीति अपनाना।

5.यूरोपीय संसद को विधि निर्माण का सर्वोच्च अधिकार, कुछ बातों में निषेधाधिकार (वीटो) के साथ।

6.मंत्रियों के परिषद में बहुमत द्वारा निर्णय लेने की व्यवस्था।

7.ब्रिटेन और इसके 11 सहयोगी, सामाजिक नीति पर अलग जा सकते हैं।

8.यूरोपियन समुदाय के निर्धन देशों के विकास के लिए समन्वित कोष का निर्माण

मॉस्ट्रिश संधि ने यूरोपीय एकीकरण में निश्चित ही एक महत्वपूर्ण कदम को रेखांकित किया। नीदरलैंड के मेस्ट्रिच नगर में 12 सदस्यीय यूरोपीय समुदाय ने यूरोपीय मौद्रिक संघ के अनुबंध पर सभी सदस्य देशों के हस्ताक्षर प्राप्त कर लिए जिसके द्वारा इन देशों में समान मुद्रा का चलन होगा। समान मुद्रा के साथ-साथ एक यूरोपीय केन्द्रिय बैंक की स्थापना भी की जाएगी। यह संधि यूरोप की एकता को बढ़ाने और इसे अपरिहार्य बनाने के लिए की गई थी। एक मुद्रा, एक बैंकिंग व्यवस्था, मौद्रिक एवं राजनीतिक संघ, सामान्य नागरिकता, यूरोपीय संसद तथा यूरोपीय समुदाय कार्यकारी आयोग जैसी प्रतिनिधि संस्थाएं यूरोप को एक शक्तिशाली संगठन के रूप में अर्थात् यूरोपीय समुदाय को एक यूरोपीय महासंघ बनाने के लिए गठित की गई है ताकि यह अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था तथा संबंधों में एक ईकाई के रूप में कार्य कर सके। यूरोपीय समुदाय को अब यूरोपीय संघ के रूप में जाना जाने लगा और अब यह राजनीतिक एकता की ओर अग्रसर है।

संक्षेप में इस संधि द्वारा निम्नलिखित समझौते हुए-

1.यूरोपीय आर्थिक समुदाय या समान मौद्रिक संघ- इस संधि के द्वारा एक साझे मुद्रा के प्रयोग का निर्णय लिया गया जिसको व्यावहारिक रूप में वर्ष 2002 में लागू किया गया। इस समय यह संगठन विश्व का सबसे बड़ा बाजार

है जहां सभी राज्यों में वस्तु, सेवाओं और वित्त का मुक्त आदान-प्रदान होता है, परंतु अभी केवल राज्यों ने ही यूरो के प्रचलन को स्वीकार किया है। इसकी संख्या में लगातार वृद्धि हुई है।

2.सुरक्षा तथा समान विदेश नीति पर भी इसके द्वारा सहमति बनी। विटकॉफ के अनुसार, 'यूरोपीय यूनियन आर्थिक दृष्टि से भीमकाय है, जबकि सुरक्षा की दृष्टि से कीड़ा या मच्छर है, क्योंकि यूरोपीयन यूनियन अभी भी अपनी सुरक्षा के लिए नाटो पर निर्भर है। यह स्पष्ट दर्शाता है कि यदि यूरोपीय राज्यों को एक एक स्वतंत्र संगठन के रूप में कार्य करना है तो एक स्वतंत्र सुरक्षा नीति आवश्यक है। अधिकतर यूरोपीय संघ के सदस्य नाटो के सदस्य हैं।

3.समान गृह और न्याय के मामले में भी इन राज्यों ने एक व्यवस्था का निर्माण किया। इसके अंतर्गत नागरिकों की आवाजाही 'अप्रवासियों की समस्या सुलझाने के लिए नियमों का निर्माण किया गया। शेंजेन संधि के द्वारा बिना पासपोर्ट के पूरे यूरोप में भ्रमण करने की अनुमति प्रदान की गई तथा इसे 1995 में लागू किया गया है।

यूरोपीय यूनियन की सदस्यता प्राप्त करने के लिए 'कोपेनहेगन मानदंडों' (1993) का निर्माण किया गया जिसके मूल प्रावधान लोकतांत्रिक शासन प्रणाली, मानव अधिकारों का बेहतर रिकार्ड तथा बेहतर राजकोषीय प्रबंधन है।

यूरोपीय संघ के इतिहास में एक महत्वपूर्ण शिखर सम्मेलन फ्रांस के नीस में संपन्न हुआ। इस शिखर वार्ता में ब्रिटेन और स्वीडन द्वारा 'यूरोपीय मुद्रा संघ' के सदस्य न बनने के कारण इसकी सदस्यता को अनिवार्य नहीं वरन स्वैच्छिक बनाया गया। इस शिखर वार्ता का एक अन्य लक्ष्य था। मत शक्ति का युक्तिसंगत पुनर्निर्धारण तथा मतदान प्रक्रिया का सरलीकरण। वर्ष 2001 में नीस संधि के द्वारा यूरोपीय संघ में 10 नए पूर्वी यूरोपीय राज्यों को सम्मिलित किया गया। सबसे महत्वपूर्ण था कि ये राज्य पहले साम्यवादी खेमे में सम्मिलित राज्य थे।

10.5 संविधान का निर्माण एवं लिस्बन संधि

रोम में समझौते के द्वारा यह महत्वपूर्ण निर्णय लिया गया कि यूरोपीय यूनियन के पिछले सभी समझौते और संधियों के स्थान पर एक संविधान का निर्माण किया जाएगा। यूरोपीय संसद ने भारी सहमति से यूरोपीय संघ के लिए एक संविधान को स्वीकार करने का निर्णय लिया तथा संघ के सदस्य राज्यों के पर इस संविधान की पुष्टि के लिए भेजा गया। इस संविधान के निम्नलिखित भाग थे-

1. संस्थात्मक सुधार
2. वैधानिक ढांचा और मूल अधिकारों का चार्टर
3. वर्तमान संधियां और समझौते
4. समझौते के संशोधन और पुष्टिकरण की प्रक्रिया

इस संविधान को सदस्य राष्ट्रों की संसद के अनुमोदन के पश्चात् 2007 तक लागू करने की योजना थी किंतु फ्रांस की जनता तथा नीदरलैंड की जनता द्वारा यह ठुकरा दिया गया। इन दोनों देशों का यूरोपीयन राज्यों में एकता स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान था।

वर्ष 2009 में 'लिस्बन संधि' के द्वारा पुनः यूरोपीय राज्यों में एकता स्थापित करने के लिए महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। अब यूरोपीय संसद 2 सदस्यीय बनाई गई। यूरोपीय परिषद के अध्यक्ष पद का निर्माण किया गया, जिसका कार्यकाल 6 महीने का होगा। यूरोपीय यूनियन के उच्च प्रतिनिधि की नियुक्ति जो विदेश नीति एवं सुरक्षा संबंधी मामलों को देखेगा। इसमें अधिकारों के दस्तावेज का निर्माण किया गया।

10.6 यूरोपीय संघ में कार्यरत संगठन

1.यूरोपीय आयोग- इसमें 28 सदस्य होते हैं जो 5 वर्ष के लिए कार्यरत रहते हैं। इनका चुनाव सदस्य राज्य मिलकर करते हैं। यूरोपियन आयोग यूरोपीय एकता के लिए की गई संधियों तथा उनके प्रावधानों के संरक्षक का कार्य करता है। संधियों का संरक्षण इस आयोग का उत्तरदायित्व है। यह परिषद को कार्यवाही करने का प्रस्ताव भेजता है। यह

परिषद के निर्णयों को लागू करता है। इसके वर्तमान अध्यक्ष जीन-क्फोड जस्कर है। अध्यक्ष का नाम यूरोपीय आयोग द्वारा प्रस्तावित तथा यूरोपीय संसद द्वारा नियुक्त किया जाता है। इसका मुख्यालय ब्रुसेल्स (बेल्जियम) में है। यह यूरोपीय युनियन की नौकरशाही नामक संस्था है।

2.यूरोपीय परिषद- यह मंत्रिपरिषद सदस्य राज्यों अथवा सरकारों के सर्वप्रमुख नेताओं से बनती है। यह नियमों को बनाने के लिए दिशा निर्देश करती है। इसमें यूरोपीय आयोग का अध्यक्ष तथा यूरोपीय संसद के अध्यक्ष को भी शामिल किया जाता है। प्राथमिकताओं का निर्धारण करने तथा राजनीतिक दिशाओं को तय करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। यह यूरोपीय संघ के विकास के प्रेरणा देने जैसे कार्य करती है।

3.यूरोपीय संसद- इसमें यूरोपीय राज्यों से 751 सदस्य हैं। यह आयोग तथा मंत्रिपरिषद के साथ मिलकर यूरोपीय संघ के लिए कानून का निमा्रण करती है। यह संसद भारतीय संसद के बाद विश्व का दूसरा बड़ा लोकतांत्रिक चुना हुआ सदन है। इसके प्रथम बार गठन 1999 में हुआ था। इसका कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। इसकी महत्वपूर्ण भूमिका बजट निर्माण को स्वीकृति तथा विधायी प्रस्तावों को स्वीकृति प्रदान करने में होती है। इसको ब्रुसेल्स में स्थापित किया गया है।

4.यूरोपीय न्यायालय- इसके द्वारा विवादों का समाधान किया जाता है। इस संघ के लिए की गई संधियों के नियमों को लागू करने से उत्पन्न विवादों के निपटारे के लिए 1989 में स्थापित किया गया था। यह संघ के सदस्य राज्यों को संधियों के पालन के लिए बाध्य करता है। यह लेग्जयबर्ग में स्थित है।

5.यूरोपीय केन्द्रिय बैंक- यह फ्रैंकफर्ट में स्थित है। यह यूरोपीय संघ की मुद्रा यूरोप तथा इसकी मौद्रिक नीति का संचालन करना है। यह यूरोपीय संघ की महत्वपूर्ण संस्थाओं में से एक है।

6.यूरोजोन (1999)- यूरोप में साझे मुद्रा का प्रयोग जो यूरोपीय संघ का विश्व के अन्य क्षेत्रीय संगठनों से कही आगे ले जाता है। इससे यूरोपीय बाजार को एकीकरण करने में मदद मिली है। हालांकि अभी सभी यूरोपीय संघ के राज्यों ने इसे स्वीकार नहीं किया है लेकिन इसकी संख्या लगातार बढ़ रही है। वर्तमान में इसकी संख्या 19 है। यूरोपीयन संघ के वे देश जो यूरो अपनाए हैं- आस्ट्रिया, बेल्जियम, साइप्रस, एस्टोनिया, फिनलैंड, फ्रांस, जर्मनी, ग्रीस, आयरलैंड, इटली, लेक्जमबर्ग, माल्टा, नीदरलैंड, पुर्तगाल, स्लोवाकिया, स्लोवेनिया, स्पेन, लाटविया एवं लिथुवानिया प्रमुख है। यूरोजोन का संकट ग्रीस, आयरलैंड, पुर्तगाल, स्पेन, इटली, स्लोवाकिया एवं हालैण्ड प्रमुख है।

यूरोपीय संघ - विकास के प्रमुख सीमा चिन्ह

1.पेरिस की संधि (1951) जिसके तहत यूरोपीय कोयला और इस्पात समुदाय की स्थापना हुई।

2.रोम की संधिया (1957) जिसके तहत यूरोपीय आर्थिक समुदाय और यूरोपीय परमाणु ऊर्जा समुदाय की स्थापना हुई।

3.1973 में डेनमार्क, आयरलैंड और यू0के0 इसके सदस्य बन गये।

4.1981 में यूनान तथा 1986 में स्पेन और पुर्तगाल सदस्य बन गये।

5.सिंगल यूरोपियन एक्ट (1986)

6.1995 में आस्ट्रिया, फिनलैंड और स्वीडन इसमें शामिल हो गये।

7.यूरोपीय संघ संबंध मैस्ट्रिच संधि (1992)

7.एमस्टरडम संधि (1997)

8.नीस संधि (2001)

9.ऐथन्स में 10 अधिमिलन संधियों पर हस्ताक्षर तथा 1 मई, 2004 को 10 नए सदस्य यूरोपीय संघ में सम्मिलित।

10.जून 2003 में यूरोपीय संघ का प्रारूप संविधान प्रस्तुत।

11.29 अक्तूबर, 2004 यूरोपीय संघ के प्रारूप संविधान पर हस्ताक्षर

12. 29 मई 2005 यूरोपीय संघ के संविधान को जनमत संग्रह में फ्रांस की जनता द्वारा ठुकरा देना।

13.1 जून 2005 को नीदरलैंड की जनता ने जनमत संग्रह में इस संविधान को अस्वीकार कर दिया।

स्रोत- बी0एल0फाडिया।

10.7 यूरोपीय संघ एक शक्ति

यदि यूरोपीय संघ को एक इकाई मान ले तो यह बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण ध्रुव के रूप में सामने आया है। यूरोपीय संघ को एक महाशक्ति कहा जा सकता है, जिसके लिए निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं।

यूरोपीय संघ के देश राजनीतिक दृष्टि से स्थिर तथा वैश्विक स्तर पर सफल देश है। शीत युद्ध की शुरूआत ने इसके विकास को अमेरिकी वर्चस्व में बांध रखा था। इस कारण यूरोपीय संघ यूरोप के आस पास ही प्रभावशाली था, परंतु अब वह विश्व राजनीति में अमेरिकी नेतृत्व से निकलकर अपनी अलग पहुंच बनाने लगा है। फ्रांस एवं जर्मनी अमेरिकी नेतृत्व को विभिन्न क्षेत्रों व मुद्दों पर चुनौती दे रहे हैं। कई वैश्विक मुद्दों पर वह अमेरिकी सहमति के विरूद्ध नजर आये इसका महत्वपूर्ण उदाहरण ईराक एवं ईरान के परमाणु कार्यक्रम के प्रति अमेरिकी हस्तक्षेप की संभावित नीति का विरोध इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। ब्रिटेन एवं फ्रांस सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य हैं और जर्मनी जन्म के माध्यम से इस प्रक्रिया में लगा हुआ है। यूरोपीय संघ की अपनी संसद, न्यायालय, परिषद, मुख्यालय, झंडा, मुद्रा, मानवाधिकार पत्र आदि अस्तित्व में आ चुका है। बहुत से अन्य मद्दों पर सहमति बनाने का प्रयास किया जा रहा है जो इस संगठन को और अधिक शक्तिशाली बनाने में मदद करेगा। एक संविधान व विदेश नीति विकसित करने की कोशिश की जा रही है यदि ऐसा हुआ तो यूरोपीय संघ संयुक्त यूरोप में बदल जाएगा और निःसंदेह महाशक्ति बन जाएगा।

यूरोपीय संघ विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था तथा सबसे बड़ा पूंजी बाजार है। अन्य महाशक्तियों की अपेक्षा इसका सकल घरेलू उत्पादन अधिक है तथा विश्व व्यापार तीन गुना है। यह विश्व का सबसे बड़ा आंतरिक बाजार तथा सबसे बड़ा निर्यातक है। यूरो का तेजी से प्रसार हो रहा है, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा के रूप में यूरो, डॉलर के लिए एक खतरा है। यह विश्व व्यवस्था में डालर के एक विकल्प के रूप में देखा जा रहा है।

यूरोपीय संघ विश्व की दूसरी सबसे बड़ी ताकत है। उसका रक्षा बजट अमेरिका के बाद द्वितीय स्थान पर है। ब्रिटेन और फ्रांस को मिलाकर 600 परमाणु हथियार है। विज्ञान एवं तकनीकी के मामले में यूरोपीय संघ का स्थान द्वितीय है। यूरोप की यह तकनीकी बहुआयामी है।

यूरोपीय संघ का क्षेत्रफल 40 लाख वर्ग कि0मी0 है जो विश्व में सातवें स्थान पर है। यदि सदस्य संख्या बढ़ती है तो क्षेत्र एवं जनसंख्या दोनों का विस्तार होगा। यूरोपीय संघ के पास पेट्रोलियम का विशाल भंडार है तथा प्राकृतिक संसाधनों के मामले में यूरोप समृद्ध है। यूरोपीय संघ की आबादी जो दुनिया में नंबर तीन पर है। मानव विकास सूचकांक में यूरोपीय संघ अमेरिका से ऊपर है। यूरोपीय संघ में गरीबी और अपराध कम है तथा यूरोपीय संघ की संस्कृति का संपूर्ण विश्व पर प्रभाव है।

कई सर्वेक्षणों से यह स्पष्ट है कि यूरोपीय संघ के लोग यूरोपीय संघ को एक विश्व शक्ति के रूप में देखना चाहते हैं तथा एक ऐसी विदेशी नीति चाहते हैं जो किसी भी विश्व शक्ति के प्रभाव से मुक्त हो। सुरक्षा की दृष्टि से यूरोप नाटों पर निर्भर है, इसलिए अनेक देश विशेषतः जर्मनी एवं फ्रांस नाटों प्रभाव से मुक्ति चाहते हैं।

10.8 यूरोपीय संघ एवं भारत

भारत एवं यूरोपीय देशों के मध्य संबंध शीत युद्ध के दौरान सामान्य एवं औसत रहे हैं। भारत में उदारीकरण तथा शीत युद्ध की समाप्ति के बाद संबंधों में तेजी से सुधार हुआ। भारत-यूरोपीय संघ संबंध शीतयुद्धोत्तर विश्व में आये आमूलचूल परिवर्तनों की पुष्टि करते हैं। वैश्विक व्यवसथा के प्रति भारतीय अनुकूलता का भारत-यूरोपीय संघ संबंधों के संदर्भ में समझा जा सकता है। शुरूआत में भारत यूरोपीय संबंध मधुर नहीं कहे जा सकते, लेकिन 21वीं सदी के आते-आते वैश्वीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो चुकी थी तथा वैचारिक द्वंद्व के अंत होने के कारण अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में सहमति मूलक आधारों को बल मिला। इससे भारत और यूरोपीय संघ में मध्य संबंध में तेजी सुधार हुआ। अब इन संबंधों को और बेहतर तथा विविधता पूर्ण बनाने की कोशिश की जा रही है। पश्चिमी यूरोप के देश शीतयुद्ध के दौरान परम्परागत रूप से अमेरिकी प्रभाव में रहे हैं। इसलिए इसकाल में अमेरिका के साथ भारत के गैर बेहतर संबंधों का असर इस पर दिखाई देता है। यह कहा जा सकता है कि भारत-यूरोपीय देशों के मध्य अच्छे संबंध न होने के कारण शीतयुद्ध का प्रभाव था। फिर भी जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन आदि के साथ भारत के संबंध शीत युद्ध काल में भी बेहतर कहे जा सकते हैं। शीत युद्ध की समाप्ति के बाद अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था और संबंधों में अमूलचूल परिवर्तन हुआ। भारत-अमेरिकी संबंधों में भी सुधार आया। विश्व व्यवस्था एकध्रुवीय हो गई। इसलिए अमेरिकी प्रभाव के देश सहित अन्य सभी संयुक्त यूरोप के देशों के साथ भारत के संबंध बेहतर हुए हैं जिसका प्रमुख कारण उदारीकरण व वैश्वीकरण है।

भारत में उदारीकरण की एक मुख्य वजह आर्थिक संकट थी। इस आर्थिक संकट व उदारीकरण के कारण भारत को वित्तीय सहायता तथा निवेश की आवश्यकता थी और इस दृष्टिकोण से यूरोपीय देश व उसका समूह भारत के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो गया। शीत युद्ध के दौरान भारत को सोवियत संघ से जो सदस्यता मिल जाती थी वह अब रूस से नहीं मिल पा रही थी। अतः रूस के कमजोर हो जाने के कारण कमी को पूरा करने के लिए वैश्वीकरण के युग में भात को मजबूत राजनीतिक-आर्थिक-तकनीकी व सामरिक सहयोगी की आवश्यकता महसूस हुई जिसके तहत भारतीय विदेश नीति में पश्चिम को विशेष महत्व दिया गया।

यूरोपीय संघ- भारत संबंध : मील के पत्थर

1963- भारत ने यूरोपीय आर्थिक समुदाय (इईसी) के साथ कूटनीतिक संबंध स्थापित किए।

1973- भारत और ई ई सी द्वारा वाणिज्य सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर।

1976- ईईसी ने उत्तर प्रदेश और गुजरात के बाद संभावित क्षेत्रों के लिए लगभग 30 करोड़ रूपए की राशि प्रदान की।

1981- भारत और ई ई सी के बीच पांच वर्षीय वाणिज्यिक और आर्थिक सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर।

1983- यूरोपीय आयोग ने नई दिल्ली में एक डेलिगेशन का गठन किया।

1988- ईईसी और भारत ने प्रथम संयुक्त आयोग बैठक का आयोजन किया।

1989- प्रबंधन स्कूलों से अध्यापकों के आदान-प्रदान के लिए यूरो भारत सहयोग कार्यक्रम की शुरूआत।

1992- भारतीय व यूरोपीय कारोबारियों के संयुक्त कारोबार मंच की शुरूआत

1993- जिा प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) के समर्थन के लिए यूरोपीय संघ की ओर से 747 करोड़ की राशि प्रदान। संयुक्त राजनीतिक वक्तव्य और साझेदारी और विकास पर सहयोग समझौता पर हस्ताक्षर।

1994- साझेदारी और विकास पर समझौता लागू।

1996- यूरोपीय आयोग द्वारा ईयू-भारत सछित व हित साझेदारी पर सम्प्रेषण स्वीकृत परिवार कल्याण क्षेत्र में 996 करोड़ रूपये की राशि प्रदान

1998- कारोबार संबंधी नेटवर्किंग को बढ़ावा देने की दृष्टि से 'एशिया इन्वेस्ट' की शुरूआत। नगरीय प्राधिकरणों के बीच सहयोग 'एशिया-अबर्स की शुरूआत।

1999- हेलसिकी में 'ईयू-इंडिया राउण्ड टेबल' शुरू करने का प्रस्ताव स्वीकृत।

2000- लिस्बन में पहली बार ईयू-भारत शिखर सम्मेलन का आयोजन।

2001- नई दिल्ली में दूसरे ईयू-भारत शिखर सम्मेलन का आयोजन।

2002-कोपनहेगन में तीसरे ईयू-भारत शिखर सम्मेलन का आयोजन।

2003- नई दिल्ली में चौथा ईयू-भारत शिखर सम्मेलन का आयोजन।

2004-हेग में पांचवा ईयू-भारत शिखर सम्मेलन।

2005- नई दिल्ली में छठा भारत शिखर सम्मेलन। स्रोत- बी0एल0फाडिया।

सर्वप्रथम भारत एवं यूरोपीय आर्थिक समुदाय के बीच 1963 में कुटनीतिक संबंध तथा 1973 में वाणिज्य सहयोग की शुरूआत हुई। 1988 में सहयोग विस्तार हेतु संयुक्त आयोग का गठन किया गया तथा 1990 के दशक में उदारीकरण व वैश्वीकरण का संयुक्त लाभ-उठाने के लिए 1992 में भारत एवं यूरोपीय समुदाय के बीच साझेदारी व विकास पर सहयोग समझौता सम्पन्न हुआ। दोनों पक्षों के उद्योगपतियों व व्यावसायियों को करीब उसे व उनके मध्य संपर्क विस्तार हेतु भारत-यूरोपीय समुदाय व्यवसाय फोरम का गठन किया गया। भारत-यूरोपीय समुदाय का यह संबंध यूरोपीय संघ के गठन के बाद भारत-यूनाइटेड यूरोप संबंध में तब्दील हो गया। आज भारत एवं यूनाइटेड यूरोप के बीच संबंध अनेक क्षेत्रों में बढ़ रहा है। जिसे निम्नवत स्पष्ट किया जा सकता है।

यूरोपीय संघ के साथ भारत के संबंध लगातार बेहतर हुए है। यद्यपि इस संघ के कुछ देश परम्परागत अमरिकी नेतृत्व को स्वीकार करते हैं और इसके विपरीत कुछ देश इससे मुक्त होने का प्रयास कर रहे हैं। इस कारण यूरोपीय संघ के कुछ देशों के साथ भारत के संबंध और बेहतर हुए हैं। यूरोपीय संघ एक ध्रुवीयता की जगह बहु ध्रुवीयता का समर्थन करता है। फ्रांस एवं जर्मनी की अगुवाई में यूनाइटेड यूरोप के देश बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था के पक्षधर हैं तथा यूरोपीय संघ एवं भारत को इस व्यवस्था में शक्ति केन्द्र के रूप में स्वीकार करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका को लेकर भी दोनों सहमत हैं। यूरोपीय संघ एवं भारत संयुक्त राष्ट्र की केन्द्रीय भूमिका के समर्थक है और इसका पुनर्गठन चाहते हैं। यूरोपीय संघ भारत के सुरक्षा परिषद में परिवर्तन के साथ भारत की स्थाई सदस्यता का समर्थक है। अंतर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय संगठनों में यूरोपीय संघ एवं भारत एक दूसरे के साथ कई मुद्दों पर साथ खड़े हैं। दोनों पक्षों के बीच सन् 2000 से शिखर वार्ताएं आयोजित होती है जिसमें बहुपक्षीय मामलों पर चर्चा होती है और अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर सहमति बनाने और सहयोग का प्रयास होता है।

वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण के दौर में दोनों के मध्य आर्थिक संबंधों में तीव्रता आयी है। आर्थिक क्षेत्र में भारत-यूरोपीय संघ संबंध का तेजी के साथ प्रसार हो रहा है। यूरोपीय संघ एवं भारत के मध्य 1994 में साझेदारी व विकास समझौता सम्पन्न हुआ। कारोबार नेटवर्क विस्तार हेतु एशिया इन्वेस्ट तथा नगरीय प्राधिकरण के बीच सहयोग हेतु एशिया अनर्स की शुरूआत हुई है। दोनों पक्षों के बीच आर्थिक संबंधों के विस्तार हेतु संयुक्त आर्थिक आयोग कार्यरत है। वर्ष 2005 की शिखर वार्ता में भारत-यूरोपीय संघ के मध्य नौ बिंदुओं पर संयुक्त कार्य योजना का मंजूरी दी गई है जिसमें आतंकवाद व सुरक्षा के मुद्दे पर सहयोग, गेलीलियो नेवीगेशन परियोजना में भारत की भागीदारी तथा उच्च स्तरीय व्यापार समूह की स्थापना जैसे मसले शामिल हैं।

विश्व व्यापार संगठन से हटकर भारत एवं यूरोपीय संघ के मध्य 2006 में एक व्यापक व्यापार एवं निवेश समझौता करने पर सहमति हुई है। एक अन्य समझौता अगले ही वर्ष विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग हेतु रणनीतिक दस्तावेज पर

हस्ताक्षर किए गए। भारत-यूरोपीय संघ का महत्वपूर्ण रणनीतिक साझेदार है। यूरोपीय संघ भारत में बड़े निवेशकों में से एक है। भारत का भी यूरोपीय संघ के विभिन्न राज्यों में निवेश लगातार बढ़ रहा है। जिसमें विशेषतया जर्मनी, इटली तथा यूनाइटेड किंगडम है। व्यापार के मामले में भी यूरोपीय संघ भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक साझीदार है।

दोनों पक्षों के मध्य अन्य वैश्विक मुद्दों पर भी सहमति और सहयोग बढ़ा है। सामरिक क्षेत्रों में भारत ने यूरोपीय संघ के सदयों के साथ दो पक्षीय स्तर पर पहले से ही संबंध रहे हैं। परंतु अब यह दो पक्षीय सहयोग, सामूहिक रूप से रक्षा संबंध बढ़ाने विशेषतः आतंकवाद के विरूद्ध एक साथ सहयोग विस्तार करने की कोशिश हो रही है। दोनों पक्षों के मध्य आतंकवाद पर संयुक्त कार्यदल कार्यरत है। आतंकवाद जो आज वैविश्वक समस्या है उसका हल भी वैश्विक सहयोग के द्वारा ही हो सकता है। आतंकवाद पर 2004 में एक पंच सूत्रीय कार्य योजना पर सहमति हुई है जिसमें आतंक के वित्तीय एवं आर्थिक स्रोतों पर पाबंदी लगाने, सीमा नियंत्रण को प्रभावी बनाने, आतंकवाद की परिस्थितियों पर नियंत्रण व आतंकवाद विरोधी मुहिम तेज करने पर सहमति हुई है। एक दूसरे की खुफिया एजेंसी के द्वारा सूचनाओं का आदान-प्रदान जारी है।

विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में यूरोपीय संघ काफी आगे है जो भारत के लिए अत्यंत लाभकारी है। भारत-यूरोपीय संघ के साथ बनाये हुए बेहतर संबंधों के कारण इस तकनीकी प्रगति का फायदा उठा सकता है। गैलीलियों नेवीगेशन परियोजना के अतिरिक्त अन्य संयुक्त परियोजनाओं के विकास हेतु 2008 में भारत यूरोपीय संघ के मध्य सहमति हुई है। तकनीकी के साथ सूचना एवं संचार के क्षेत्र में भी तकनीकी सहयोग जारी है। संलयन ऊर्जा अनुसंधान के क्षेत्र में इंटरनेशनल थर्मो न्यूकिलयर एक्सपेरीमेंट रियेक्टर हेतु भारत व यूरो रोग के बीच समझौता सम्पन्न हुआ है। यूरोपीय संघ भारतीयों को विशेष सुविधा भी प्रदान करती है जो अभी सिर्फ विशेषज्ञों को ही प्राप्त है।

प्रथम विश्व तथा तृतीय विश्व के देशों के मध्य मुख्य अंतर विकास और सुविधाओं का है। इसमें यूरोपीय संघ एवं भारत की सहयोग बढ़ा है। शिक्षा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी भारत-यूरोपीय संघ का संबंध अच्छा रहा है। कई ऐसी योजनाओं को यूरोपीय संघ द्वारा बड़ी राशियां प्रदान की जा रही है जो भारतीय समाज में स्वास्थ्य और शिक्षा को प्रगति के लिए आवश्यक है। शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थियों का आदान-प्रदान की योजनाएं शुरू की गई है। यूरोपीय संघ भी भारतीय विद्यार्थियों को आकर्षित करना चाहता है इसलए उसने कई समझौते भारत के साथ किये हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी यूरोपीय संघ ने एक बड़ी राशि भारत को दी है। सन् 2007 में उसने भारतीय आयुर्वेद को मान्यता प्रदान की है जिसे आयुर्वेदिक दवाओं की यूरोपीय संघ के देशों में आपूर्ति हेतु सहमति बनी है। इसके लिए एक आयोग का भी गठन किया गया है। भारतीय योगा की पहचान ने भी यूरोपीय देशों को प्रभावित किया है।

अभ्यास प्रश्न

1. यूरोपीय आर्थिक समुदाय की स्थापना किस वर्ष हुई थी ?
   A. 1957 B. 1950 C. 1959 D. 1960
2. यूरोपियन यूनियन साझे मुद्दे का प्रयोग कितनी देश कर रहे हैं?
   A. 17 B. 18 C. 19 D. 20
3. यूरोपियन यूनियन मेँ शामिल नए सदस्य कौन सा है?
   A. तुर्की B. क्रोएशिया C. अजरबैजान D. आर्मेनिया
4. यूरोपियन यूनियन मेँ साझे मुद्रा का प्रयोग करने वाले देशोँ मेँ शामिल नया सदस्य कोन सा है?
   A. तुर्की B. क्रोएशिया C. लिथुआनिया D. आर्मेनिया

5. यूरोपियन यूनियन के निर्माण में महत्वपूर्ण मास्ट्रिच संधि किस वर्ष हुई थी?
   A.1991 B.1992 C.1993 D.1994
6. यूरोपियन सेंट्रल बैंक स्थित है?
   A. बर्लिन B. पेरिस C. फ्रैंकफर्ट D. लंदन
7. लिस्बन संधि की स्थापना किस वर्ष हुई?

A. 2008 B.2009 C.2010 D.2011

10.9 सारांश

इस सकारात्मक पहलुओं के अतिरिक्त कई ऐसे बिन्दु हैं जिनमें यूरोपीय संघ एवं भारत के मध्य सहमति नहीं है। यह विवाद प्रथम विश्व तथा तृतीय विश्व के सामान्य मुद्दे हैं जहां प्रथम विश्व का प्रतिनिधित्व यूरोपीय संघ द्वारा वही तृतीय विश्व का प्रतिनिधित्व भारत द्वारा किया जाता है। यूरोपीय संघ कृषि के संरक्षण नीतियां व व्यापार में गैर-प्रशुल्क अवरोधों का भारत विरोधी है। मानवाधिकार तथा पर्यावरण के मानकों कई मुद्दों की सहमति के बावजूद कई अन्य मुद्दों पर आमने-सामने नजर आते हैं। असैन्य परमाणु सहयोग के क्षेत्र में भी कई समस्याएं मौजूद थी जो 2008 में भारत-अमेरीकी न्यूक्लीयर समझौते की स्वीकृति एनएसजी द्वारा दिए जाने के बाद इस क्षेत्र की असहमति समाप्त हो चुकी है।

इन समस्याओं के बावजूद भारत और यूरोपीय संघ के मध्य कोई ऐसी बाधा नहीं है जो बेहतर संबंधों में व्यवधान पैदा कर सके। विश्व व्यापार संगठन वार्ताओं तथा पर्यावरण मावाधिकार, श्रम मानक जैसे मुद्दों पर भारत यदि विकासशील देशों की अगुवाई करता है तो यूरोपीय संघ विकसित देशों को मच प्रदान करता है। आधुनिक विश्व में यूरोपीय संघ एवं भारत दोनों लोकतांत्रिक व्यवस्था के समर्थक हैं। दोनों विश्व को एक या दो ध्रुवीय के बजाए बहुध्रुवीय विश्व के रूप में देखना चाहते हैं। विकास, वाणिज्य, निवेश तथा व्यापार में दोनों एक दूसरे के साथ सहयोग कर रहे हैं। जहां भारत को यूरोपीय सवं के आर्थिक, राजनीतिक व तकनीकी सहयोग एवं समर्थन की आवश्यकता है तो वही यूरोपीय संघ को भी भारत में निवेश व्यापार व बाजार जैसी संभावनाओं को दरकिनार नहीं कर सकता है। दोनों पक्षों में समान हित ही वैश्वीकरण तथा तेजी से बदलती वैश्विक व्यवस्था में बेहतर संबंधों को लगातार गति प्रदान कर रहा है।

10. 10 शब्दावली

द्विध्रुवीयताः विश्व व्यवस्था में दो महाशक्तियों का अस्तित्व जो संपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था पर नियंत्रण रखती हो।

शीत युद्ध- दो शक्तियों के मध्य 1947 से 1990 के दौरान राजनीतिक, आर्थिक व वैचारिक मतभेद और प्रतिद्विंद्वता।

साम्यवाद- वैचारिक दृष्टि से उत्पादन के साधनों का सामूहिक स्वामित्व जो वस्तुओं, सेवाओं और पूंजी के समान वितरण को मान्यता देता है।

राष्ट्रवाद- अपने राष्ट्र एवं राष्ट्र के प्रति निष्ठा और जुड़ाव की भावना ।

राष्ट्र-राज्य- ऐसा राज्य जिसकी एक विशिष्ट प्राधान्य राष्ट्रीय पहचान है।

निजीकरण- सरकारी-स्वामित्व की समाप्ति और क्रियाओं के निजी क्षेत्रों में विक्रय को निजीकरण कहते हैं।

विश्व व्यापार संगठन- यह अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के आधार नियम बनाने के लिए बनाया गया एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है।

एकध्रुवीयता- अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की वह संरचना जिसमें व्यवस्था में केवल एक राज्य का प्रभुत्व होता है।

द्विध्रुवीयता- अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था पर नियंत्रण रखने वाले अपेक्षाकृत समान शक्तियों से युक्त केवल दो शक्तिशाली राज्य।

बहुध्रुवीय व्यवस्था- अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की वह संरचना जिसमें दो से अधिक राज्यों की मोटे तौर पर समान शक्ति प्राप्त हो।

यूरोपीय आर्थिक समुदाय- एक आर्थिक गुट जो बेल्जियम, फ्रांस, इटली, लैक्जबर्ग, पश्चिमी जर्मनी तथा नीदरलैंड- इन देशों के बीच रोम की संधि के परिणामस्वरूप 1957 में हुई।

10.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. A, 2. C, 3. B, 4. C, 5. D, 6. C, 7.B

10.12 सन्दर्भ ग्रंथ

1.वरमानी, आर. सी. (2007) "समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध", गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

2.फड़िआ, बी. एल. (2013) "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", साहित्यिक भवन पब्लिकेशन, ।

3.बीस्वाल, तपन (2010), "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध", मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लि., नई दिल्ली।

4.एडिटेड बी जॉन बेलीज़, स्टीव स्मिथ, एंड पत्रिकि ओवेंस. (2013) "द ग्लोबलाइजेशन ऑफ़ वर्ल्ड पॉलिटिक्स अं इंट्रोडक्शन तो इंटरनेशनल रिलेशंस". सिक्स्थ एडिशन ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस न्यूयॉर्क

10.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.फड़िआ, बी. एल. (2013) "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", साहित्यिक भवन पब्लिकेशन,

10.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.विश्व मे क्षेत्रीय संगठनो के महत्व पर प्रकाश डालिए |

2.यूरोपीय संघ के विकास मे हुई महत्वपूर्ण समझौते और संधियों के विकास की व्याख्या कीजिए|

3.यूरोजोन के विकास की संभावनाओं पर प्रकाश डालिए |

इकाई - 11 : आसियान

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 आसियान
11.3.1 आसियान का गठन
11.3.2 आसियान की संरचना
11.3.3 आसियान शिखर सम्मेलन
11.3.4 आसियान क्षेत्रीय फोरम (एआरएफ़)
11.3.5आसियान की चुनौतियाँ
11.3. 6आसियान एवं यूरोपीय संघ
11.3.7आसियान की प्रासंगकिता
11.4 सारांश
11.5 शब्दावली
11.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
11.7 संदर्भ ग्रंथ
11. 8सहायक उपयोगी / पाठ्य सामाग्री
11.9 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

विश्व के अतिविकसित, अल्पविकसित और विकासशील देशों में आपस में मिलकर काम करने की परंपरा बनी हुई है। व्यक्ति हो या देश, अकेले कोई भी आगे नहीं बढ़ सकता, किसी न किसी की मदद लेनी ही होती है। आसियान के गठन के पीछे भी यही अवधारणा कार्य कर रही थी, जिसमें पड़ोसी धर्म को विस्तार दिया गया। जब पूरा विश्व शीत युद्ध की चपेट मे था तब दक्षिण पूर्वी एशियाई के देशों ने अपने विकास के लिए एक संगठन बनाने के बारे मे सोची। शीत युद्ध मे पूरा विश्व दो गुटों मे बाटा हुआ था- साम्यवादी और पूंजीवादी । ऐसे मे दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों ने इस राजनीति से दूर रहकर अपना विकास करने के लिए आसियान का गठन किए। ऐसा माना जाता है कि आसियान के गठन मे अमेरिका का भी समर्थन था क्यूंकि अमेरिका नही चाहता था कि इस क्षेत्र मे सोवियत संघ का प्रभाव बढ़े। इसीलिए वह आसियान के गठन मे समर्थन दे रहा था। चाहे जो भी कारण रहा हो लेकिन इस क्षेत्र के विकास के लिए यह सगठन वरदान साबित हुआ। आसियान का प्रमुख उद्देश्य हैं- दक्षिण पूर्वी एशियाई के लोगों के कल्याण को बढ़ावा देना, जीवन की उनकी गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए क्षेत्र में आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति और सांस्कृतिक विकास में तेजी लाना, दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों के बीच सामूहिक आत्म निर्भरता को बढ़ावा देना, आपसी विश्वास, एक दूसरे समस्याओं के प्रति समझ बढ़ाना, आर्थिक, सांस्कृतिक, तकनीकी, सामाजिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों में सक्रिय सहयोग।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम आसियान के गठन, कार्य और वर्तमान मे विश्व राजनीति मे भूमिका के बारे में जानेंगे। जैसा कि हमलोगों को पता है कि अभी विश्व मे बहुधृवीय व्यवस्था हैं। ऐसे मे क्षेत्रीय संगठनों की भूमिका का मूल्यांकन करेंगे। इस इकाई को भलीभाँति पढ़ने और समझने के बाद आप :-

- आसियान की विश्व राजनीति मे भूमिका को समझ लेंगे
- आसियान के क्षेत्रीय महत्व के बारे मे समझ जाएंगे
- अंतर्राष्ट्रीय राजनीति मे क्षेत्रीय संगठनों की महत्व को समझ जाएंगे
- आसियान की आर्थिक क्षेत्रों मे भागीदारी को समझ जाएंगे

11.3 आसियान

विश्व के अनेक क्षेत्रीय संगठनों जैसे कि यूरोपीय संघ, अफ्रीकन यूनियन, शंघाई सहयोग संगठन एवं एपेक की भांति आसियान भी एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रीय संगठन है। दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रों का संगठन 'आसियान'(ASEAN-Association of South East Asian Nations) एक क्षेत्रीय संगठन है जिसके सदस्य राष्ट्रों का कुल क्षेत्रफल 4.46 मिलियन वर्ग किमी. तथा इनकी जनसंख्या 600 मिलियन है जो विश्व की कुल जनसंख्या का 8.8 प्रतिशत है। वर्ष 2012 में आसियान देशों का सम्मिलित GDP 2.3 ट्रिलियन डॉलर था तथा एक संगठन के रूप में वर्तमान में आसियान विश्व की छठीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। आसियान का उद्देश्य सदस्य देशों की संप्रभुता, क्षेत्रीय अखंडता और स्वतंत्रता को कायम रखना है, इसके साथ ही झगड़ों का शांतिपूर्ण तरीके से निपटारा भी। इसके अलावा अपने लोगों को प्रशिक्षण तथा शोध सुविधाएं देने मे परस्पर सहयोग तथा सहायता देना, दक्षिण – पूर्वी एशियाई देशों के अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करना, कृषि व्यापार तथा उद्योग के विकास में सहयोग देना तथा समान उद्देश्यों तथा लक्ष्यों वाले दूसरे क्षेत्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ लाभप्रदों तथा निकटतम सहयोग कायम करना।

11.3.1 आसियान का गठन

दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संगठन (एसोसिएशन ऑफ साउथ ईस्ट एशियन नेशंस, :आसियान) दस दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों का समूह है, जो आपस में आर्थिक विकास और समृद्धि को बढ़ावा देने और क्षेत्र में शांति और स्थिरता कायम करने के लिए भी कार्य करते हैं। इसका मुख्यालय इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता में है। आसियान की स्थापना 8 अगस्त,1967 को थाईलैंड की राजधानी बैंकॉक में की गई थी जब समूचे विश्व मे शीतयुद्ध घेरे में था। इसके संस्थापक सदस्य थाईलैंड, इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलिपींस और सिंगापुर थे। ब्रूनेई इस संगठन में 1984 में और 1995 में वियतनाम शामिल हुआ । इनके बाद 1997 में लाओस और बर्मा इसके सदस्य बने। 1976 में आसियान की पहली बैठक में बंधुत्व और सहयोग की संधि पर हस्ताक्षर किए गए। 1994 में आसियान ने एशियाई क्षेत्रीय फोरम (एशियन रीजनल फोरम) (एआरएफ) की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य सुरक्षा को बढ़ावा देना था। अमेरिका, रूस, भारत, चीन, जापान और उत्तरी कोरिया सहित एआरएफ के 23 सदस्य हैं। 'आसियान प्लस थ्री' (APT) में 3 राष्ट्र हैं-चीन, जापान, दक्षिण कोरिया। आसियान के 11 वार्ताकार राष्ट्र एवं संगठन हैं- ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, चीन, यूरोपीय संघ, भारत, जापान, दक्षिण कोरिया, न्यूजीलैंड, रूस, अमेरिका एवं संयुक्त राष्ट्र (UNDP)।

11.3.2 आसियान की संरचना

आसियान मे सर्वोच्च स्थान पर शिखर – सम्मेलन, जो सदस्य राष्ट्रों के शीर्ष नेताओं की बैठक, होता हैं। यह हर तीन वर्ष मे एक बार होता हैं। आसियान मंत्री-स्तरीय बैठक होती हैं जो प्रत्येक वर्ष होता है। यह नीति निर्माण का उच्चतम अंग हैं। आसियान की फैसला लेने वाली निर्णायक बॉडी की सालाना बैठक होती है। इसकी एक स्थायी समिति है, जिसकी अध्यक्षता शिखर सम्मेलन को आयोजित करने वाले देश का विदेश मंत्री करता है। यह एक परामर्शी की भूमिका मे रहती हैं। आसियान मंत्री-स्तरीय बैठक अंतर्गत पाँच आर्थिक समितियाँ आती हैं। इनके अलावा पाँच अन्य गैर-आर्थिक समितियाँ हैं जो आसियान के सहयोग हेतु समितियाँ के कार्यक्रमों को सुझाती एवं तैयार करती हैं। इसके महासचिव आसियान द्वारा

पारित किए गए प्रस्तावों को लागू करवाने और कार्य में सहयोग प्रदान करने के लिए काम करता है। इसका कार्यकाल पांच वर्ष का होता है। वर्तमान में वियतनाम के ली लुयांग मिन्ह इसके महासचिव हैं। 1976 में बाली सम्मेलन के बाद पाँच समितियां बनाई गयी जो निम्न हैं:-

- आसियान राज्यों की प्रमुख बैठक के सहयोग कार्यक्रमों के लिए आयोजित की जाती हैं।
- आसियान के विदेश मंत्रियों की बैठक एक वर्ष में एक बार आयोजित
- एक वर्ष में दो बार आयोजित आसियान आर्थिक मंत्रियों की बैठकों।
- आसियान अन्य मंत्रियों
- आसियान सचिवालय

11.3.3 आसियान शिखर सम्मेलन

आसियान देशों का पहला सम्मेलन फरवरी, 1976 मे बाली मे हुआ। इस शिखर सम्मेलन में आसियान और अन्य देशों के साथ "उपयोगी संबंधों को विकसित करने के लिए" पारस्परिक रूप से लाभप्रद सहयोग और अपनी तत्परता व्यक्त की। आसियान के नेताओं ने दक्षिण पूर्व एशिया में सौहार्द और सहयोग की संधि पर हस्ताक्षर किए। दूसरा आसियान शिखर सम्मेलन 1977 में कुआलालम्पुर, मलेशिया में आयोजित किया गया। यह जापान और आसियान के बीच पहली शिखर बैठक था। इस शिखर सम्मेलन में जापान ने आसियान के साथ सहयोग को बढ़ावा देने के अपने इरादे जाहिर की। आसियान के चौथे शिखर सम्मेलन (जनवरी, 1992 सिंगापुर) मे आसियान मुक्त व्यापार पर हस्ताक्षर किए गए। आसियान आर्थिक सहयोग बढ़ाने पर सिद्धांतों, अवधारणाओं और फ्रेमवर्क समझौते के आदर्शों का पालन कर 28 जनवरी 1992 को सिंगापुर में हस्ताक्षर किए। आसियान के क्षेत्रीय मंच की स्थापना 1994 मे एशिया प्रशांत क्षेत्र के सुरक्षा, सामरिक एवं राजनीतिक समस्याओं और मुद्दों पर विचार के लिए की गयी। इसकी अब तक 8 बैठक हो गयी हैं। 15-16 दिसंबर, 1998 मे आसियान की छठी शिखर बैठक हनोई मे हुई । इस बैठक मे आसियान ने शांति, स्थिरता एवं न्यायसंगत विकास के लिए सहयोग करने का निश्चय किया। हनोई मे निम्न घोषणा एवं एक्शन प्लान पर सहमति हुई:-

- व्यापक आर्थिक और वित्तीय सहयोग को मजबूत करना
- अधिक से अधिक आर्थिक एकीकरण करना
- विज्ञान और प्रौद्योगिकी विकास को बढ़ावा देना और सूचना प्रौद्योगिकी के बुनियादी ढांचे का विकास करना
- मानव संसाधन विकास को बढ़ावा देना
- पर्यावरण की रक्षा और सतत विकास पर कार्य करना
- क्षेत्रीय शांति और सुरक्षा को मजबूत करना
- एशिया प्रशांत में एक प्रभावी शांति, न्याय के लिए शक्ति और संयम के रूप में और दुनिया में आसियान के भूमिका को प्रबल करना

9वीं आसियान शिखर सम्मेलन बाली, इंडोनेशिया में 7 अक्टूबर 2003 को हुई। जिसमे सदस्यों देशों के नेताओं ने 2020 तक आर्थिक एकीकरण को आगे बढ़ाने के लिए एक घोषणा पर हस्ताक्षर किए। जिसे द्वितीय बाली समझौते के रूप में जाना जाता है। 11वीं आसियान शिखर सम्मेलन 12-14 दिसंबर 2005 कुआलालंपुर, मलेशिया में हुई। जिसमे सात मुख्य मुद्दों पर चर्चा की गई। मुद्दे हैं:

- बर्ड फ्लू के प्रसार
- दक्षिणी थाईलैंड संघर्ष
- म्यांमार में लोकतंत्र
- कच्चे तेल की कीमतों में उतार-चढ़ाव और गरीबी
- निवेश और व्यापार
- आसियान चार्टर

12वें आसियान शिखर सम्मेलन में मूल रूप से 10-14 दिसंबर 2006 को फिलीपींस में सेबू द्वीप पर किया जाना निर्धारित किया गया था। लेकिन तूफान आने कारण इसको 9-15 जनवरी 2007 को किया गया। 12वें आसियान शिखर सम्मेलन में आसियान के सदस्य देशों के आसियान के एकीकरण को जारी रखने और इस क्षेत्र में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सहयोग बढ़ाने से संबंधित पांच समझौतों पर हस्ताक्षर किए जो निम्न हैं:-

- समुदाय के प्रति सहयोग और समर्थन पर सेबू घोषणा।
- आसियान चार्टर के लिए खाका पर सेबू घोषणा।
- 2015 तक एक आसियान समुदाय की त्वरण स्थापना पर सेबू घोषणा।
- प्रवासी कामगारों के अधिकारों का संरक्षण और संवर्धन पर आसियान घोषणा।
- आतंकवाद पर आसियान कन्वेंशन।

13वें आसियान शिखर सम्मेलन 18-22 नवंबर 2007 सिंगापुर में आयोजित किया गया था। जिसका विषय था "एक आसियान में विकसित एशिया का दिल"। इस सम्मेलन में प्रमुख विषय "ऊर्जा, पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन और सतत विकास" विषय पर चर्चा किया गया। 13वें आसियान शिखर सम्मेलन मे पर्यावरण पर एक साथ काम करने के लिए प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किए गए। आसियान-यूरोपीय संघ संबंधों की 30वीं वर्षगांठ शिखर सम्मेलन 22 नवंबर को आयोजित की गई थी।

15 वीं आसियान शिखर सम्मेलन 23-25 अक्टूबर 2009 को थाईलैंड मे हुआ। हिन चा में आयोजित की गई थी। इस शिखर सम्मेलन मे भागीदारी राष्ट्र चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, भारत ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड से आसियान लीग के नेताओं से वार्ता हुई। 14-19 नवम्बर 2011 को उन्नीसवीं आसियान शिखर सम्मेलन बाली, इंडोनेशिया मे सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन मे जलवायु परिवर्तन, आसियान देशों के बीच संपर्क, एड्स मरीजों की कमी के बारे मे समझौतें हुए। 21वीं आसियान शिखर सम्मेलन कंबोडिया मे नोम पेन्ह मे 15-20 नवंबर 2012 को सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन मे आर्थिक मजबूती प्रदान करने की बात की गई। मलेरिया नियंत्रण के लिए मलेरियारोधी दवाओं की उपलब्धता के बारे मे समझौते हुए। आसियान के 22वें शिखर सम्मेलन 24-25 अप्रैल को ब्रुनेई मे हुआ। इस सम्मेलन में दक्षिणी चीन सागर में तनाव को कम करने के लिए उठाए जाने वाले क़दमों पर भी विचार किया जा

रहा है। यह सोचा जा रहा है कि यूरोपीय संघ की तरह से आसियान के सदस्य देशों का एक आर्थिक संघ बना लिया जाए, जो दुनिया का सबसे बड़ा आर्थिक-व्यापारी संघ होगा। बैठक के बाद जारी की जाने वाली विज्ञप्ति के मसौदे के अनुसार आसियान को एकजुट ब्लॉक के रूप में ढालने और एकात्म उत्पादन इकाई के रूप में प्रस्तुत करने के लिए 77 प्रतिशत काम पूरा किया जा चुका है। इस एकीकरण में बस, एक ही बाधा है कि आसियान के सदस्य देश एक-दूसरे से बहुत ज़्यादा भिन्न हैं। इस शिखर सम्मेलन में आसियान के नेता आस्ट्रेलिया, भारत, चीन, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी कोरिया और जापान के साथ भी व्यापक क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग करने के सवाल पर विचार करेंगे। इस तरह दुनिया का एक बड़ा आर्थिक ब्लॉक बनाना सम्भव हो जाएगा, जिसमें दुनिया की आधी से ज़्यादा आबादी शामिल होगी और जिसका कुल सकल उत्पाद पूरी दुनिया के सकल उत्पाद के एक तिहाई हिस्से से अधिक होगा

23वीं आसियान शिखर सम्मेलन ब्रुनेई मे दारुस्सलाम में 9-10 अक्टूबर 2013 को सम्पन्न हुआ। इसमे खाद्य सुरक्षा, गैर- संचारी रोगों पर बात की गई। 24वीं आसियान शिखर सम्मेलन म्यांमार की राजधानी नेपीदाव मे 10-11 मई 2014 को सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन मे अच्छी सरकार और लोकतन्त्र पर ज़ोर दिया गया। कानून के शासन की बात की गई। दक्षिण पूर्वी एशिया को परमाणु मुक्त करने के लिए भी प्रयास जारी रखने की बात की गई। म्यांमार की राजधानी नेपीदाव में जमा नेताओं की बातचीत आर्थिक रिश्ते बेहतर बनाने के अलावा दक्षिण चीन सागर में सीमाई विवाद पर केंद्रित रही जिसपर इलाके के कई देश दावा कर रहे हैं। आसियान के दस सदस्य देशों के अलावा शिखरभेंट में भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी, अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा, जापानी प्रधानमंत्री शिंजो आबे के अलावा चीन के प्रधानमंत्री ली केचियांग ने भी हिस्सा लिया, हालांकि ये आसियान के सदस्य नहीं हैं।

सम्मेलन की मेजबानी थेन सेन ने की जो 2011 में सैनिक तानाशाही के खत्म होने के बाद म्यांमार के पहले लोकतांत्रिक नेता है, उन्होंने 2015 तक आसियान आर्थिक समुदाय बनाए जाने के कदमों की चर्चा करते हुए इलाके की अर्थव्यवस्था को और करीब लाने की मांग की। उन्होंने मांग की कि आसियान को "सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के अलावा महिलाओं, बच्चों और बुजुर्गों के अधिकारों की रक्षा के लिए कड़ी मेहनत करनी चाहिए।" सम्मेलन में इंडोनेशिया के नवनिर्वाचित राष्ट्रपति जोको वीदोदो और थाईलैंड में रक्तहीन सैनिक तख्तापलट के बाद प्रधानमंत्री बने प्रयुथ चान ओचा ने पहली बार हिस्सा लिया।

25वां आसियान शिखर सम्मेलन 12 नवंबर 2014 को म्यांमार की राजधानी नैप्यिडॉ में उद्घाटित हुआ। 25वें आसियान शिखर सम्मेलन का केंद्रीय विषय था-''एक शांतिपूर्ण एवं समृद्ध समुदाय के लिए एकबद्ध आगे बढ़ना। आसियान की शिखर बैठक के परिप्रेक्ष्य में 95 बिंदुओं का अध्यक्ष का वक्तव्य जारी किया गया। अध्यक्ष के वक्तव्य में आसियान आर्थिक समुदाय, आसियान सामाजिक-सांस्कृतिक समुदाय, आसियान के आपसी संपर्क एवं सहयोग संवर्द्धन तथा आसियान के बाह्य संबंधों तथा क्षेत्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों के ऊपर चर्चा की गई। चेयरमैन स्टेटमेंट में आसियान चार्टर, इनीशिएटिव फॉर आसियान इंट्रीग्रेशन (IAI) वर्क प्लान-II (2009-15) एवं मास्टर प्लान ऑन आसियान कनेक्टिविटी (MPAC) के महत्त्व पर जोर दिया गया तथा आसियान समुदाय के 'पोस्ट-2015 विजन' पर बांदर सेरी बेगावान घोषणा की प्रशंसा की गई। चेयरमैन स्टेटमेंट में दक्षिण चीन सागर के संबंध में शांति, स्थिरता एवं सामुदायिक सुरक्षा पर जोर दिया गया।

साथ ही अध्यक्ष के वक्तव्य में, तिमोर-लेस्ते के आसियान सदस्यता के आवेदन के संबंध में हुई प्रगति पर संतोष व्यक्त किया गया। आसियान के ध्येय वाक्य ''एक दृष्टि, एक पहचान, एक समुदाय'' को आसियान समुदाय के प्रति सार्थक पाया गया। इसके अतिरिक्त वर्ष 2015 के पश्चात के लिए आसियान समुदाय का नाय पी ताव घोषणा-पत्र जारी किया गया। वू थेनसेन के अनुसार विश्व के आर्थिक वातावरण में भरी चुनौतियों के बावजूद अनुमान लगाया जा सकता है कि अगले कई वर्षों में पूरे आसियान क्षेत्र में 5 प्रतिशत वृद्धि होगी। साथ ही आसियान स्वयं की संस्थाओं के निर्माण और क्षमता की मज़बूती पर भी चर्चा होगी। आसियान के मौजूदा अध्यक्ष म्यांमार के राष्ट्रपति वू थेनसेन ने उद्घाटन भाषण में कहा कि यह शिखर सम्मेलन आसियान समुदाय के निर्माण के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। सम्मेलन में आसियान के 10 सदस्य देशों के नेता आसियान समुदाय के निर्माण की प्रगति और भविष्य में इस समुदाय के विकास पर विचार-विमर्श करेंगे।

शिखर सम्मेलन के बाद आसियान अलग-अलग तौर पर चीन और जापान के साथ वार्ता करेंगे। बाद में चीन, जापान और दक्षिण कोरिया के साथ वार्ता करेगा। दूसरी तरफ़ आसियान के सदस्य देश 8 सहयोगी देशों के साथ भी वार्ता करेंगे। इस घोषणा-पत्र के साथ आसियान सचिवालय और आसियान के अंगों की समीक्षा एवं इन्हें मजबूत बनाने की अलग से घोषणा की गई। म्यांमार में संपन्न शिखर सम्मेलन के साथ आसियान की अध्यक्षता मलेशिया को स्थानांतरित की गई। जिस प्रतिबद्धता एवं जिम्मेदारी के साथ म्यांमार ने अध्यक्षीय कार्य का निर्वाह किया वह प्रशंसनीय थी।

मलेशिया अपने अध्यक्षीय कार्यकाल में ''हमारे लोग, हमारा समुदाय, हमारा दृष्टिकोण'' विषय पर आसियान की प्रगति में प्रतिबद्ध होगा। योजना के अनुसार आसियान समुदाय वर्ष 2015 के अंत तक बन जाएगा। इस योजना का अधिकांश भाग पूरा किया जा चुका है। लेकिन आसियान के सदस्य देशों को फिर भी प्रयास जारी रखना चाहिये।

25वें आसियान शिखर सम्मेलन के दौरान महत्त्वपूर्ण गतिविधियां निम्न हैं-

- आसियान+3 की 17वीं शिखर बैठक संपन्न हुई।
- जलवायु परिवर्तन-2014 पर आसियान-अमेरिका संयुक्त वक्तव्य जारी किया गया।
- आतंकवाद और अंतर्राष्ट्रीय अपराध का मुकाबला करने के लिए आसियान-जापान द्वारा संयुक्त घोषणा-पत्र जारी किया गया।
- इबोला विषाणु द्वारा फैल रहे रोग के विरुद्ध 9वां घोषणा-पत्र जारी किया गया।

11.3.4 आसियान क्षेत्रीय फोरम (एआरएफ़)

एशिया- प्रशांत क्षेत्र के देशों के साथ आर्थिक राजनीतिक तथा सुरक्षा सम्बन्धों को अधिक सहयोगी तथा उत्पादक बनाने के लिए आसियान देशों ने 1992 मे यह निर्णय लिया कि आसियान क्षेत्रीय फोरम बनाया जाए। एआरएफ़ को दो वर्ष पश्चात 1994 मे स्थापित भी हो गया । इस एआरएफ़ मे आस्ट्रेलिया, ब्रुनी, दारुसालेय, लाओस, मलेशिया, म्यांमार, मंगोलिया, कंबोडिया, कनाडा, चीन, यूरोपीय संघ, भारत, इन्डोनेशिया, जापान, कोरिया गणतन्त्र, नन्यूजीलैंड, पापुआ, न्यू गिनी, रूस, सिंगापूर, थाईलैंड, अमेरिका, तथा वियतनाम शामिल हैं। एआरएफ़ का उद्देश्य सभी सदस्य देशों मे आपस मे विश्वास का निर्माण करना, निवारक कूटनीति तथा विरोध समाधान करना हैं।

आसियान क्षेत्रीय मंच की स्थापना के 10वें वर्ष में एआरएफ़ मंत्रियों ने 18 जून, 2003 को नोम पेन्ह में बैठक की और घोषणा की कि "सदस्यता की महान विविधता के बावजूद इस मंच ने ऐसी अनेक रेकॉर्ड उपलब्धियां अर्जित की है जिनसे इस क्षेत्र में शांति, सुरक्षा तथा सहयोग बनाए रखने में योगदान मिला।" उन्होने विशेषकर निम्नलिखित का उल्लेख किया:-

- बहुपक्षीय एवं द्विपक्षीय संवाद तथा विचार-विमर्शों के एक मंच के रूप में आसियान क्षेत्रीय मंच की उपयोगिता और संवाद तथा सहयोग हेतु प्रभावी सिद्धांतों का निर्माण जैसे कि सर्वसम्मति के आधार पर नीति निर्णय, हस्तक्षेप, क्रमिक प्रगति एवं सभी देशों के लिए अनुकूल गति से आगे बढ़ना।
- बहुपक्षीय स्वरूप में विभिन्न सुरक्षा मुद्दों पर चर्चा करने की एआरएफ़ भागीदारों की इच्छा तथा राजनैतिक एवं सुरक्षा मामलों पर संवाद एवं परामर्शों से संवबाधित सहकारी गतिविधियों एवं आदतों द्वारा क्रमिक रूप से आपसी विश्वास का निर्माण करने की इच्छा।
- प्रतिरक्षा नीति एवं प्रतिरक्षा श्वेत पत्रों के प्रकाशन से संबन्धित सूचना के आदान-प्रदान जैसे एआरएफ़ उपायों द्वारा संवर्धित पारदर्शिता, और
- एआरएफ़ सहभागियों के राष्ट्रीय सुरक्षा, प्रतिरक्षा एवं सैन्य अधिकारियों के बीच नेटवर्किंग का विकास।

11.3.5आसियान की चुनौतियाँ

1967 मे जिन उद्देश्यों, राजनीतिक एकता और बाह्य हस्तेक्षेप से दूर रखने को लेकर आसियान की स्थापना हुई वे वैश्वीकरण के दौर मे न केवल वृहत हो रहे हैं बल्कि बहुध्रुवीय व्यवस्था मे अनेक चुनीतियों का यह संगठन सामना भी कर रहा हैं। आसियान देशों के सामने सबसे बड़ी चुनौती उनके बीच असमानता हैं। जिसके कारण आपस मे व्यापार को लेकर एक नीति नही बना पते। जिसके कारण 1997 मे आर्थिक संकट भी देखने को मिला। दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की अर्थव्यवस्थाओं मे बार बार उत्पन्न हो रहे मुद्रा संकटों से इस क्षेत्रीय संगठन की भूमिका मे कमजोरी आ रही है। अगस्त- सितंबर 1998 मे रूसी अर्थव्यवस्था मे संकट के कारण इस क्षेत्र के देशों मे मुद्रा तथा आर्थिक संकट पैदा हो गया था। इस कारण आसियान की कार्यकुशलता पर गहरा प्रभाव असर पड़ा। आसियान का गठन शीत युद् के समय हुआ। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य महाशक्तियों के चंगुल से ये क्षेत्र बचा रहे। आसियान की बढ़ती आर्थिक शक्ति से आकर्षित हो कर दुनिया के हर देश इसके भागीदार सदस्य बनने के लिए उत्सुक हैं। वर्तमान समय मे जिस तरह अमेरिका, जापान, कनाडा, चीन रूस जैसे देश इसके भागीदार बने है, उससे ऐसा प्रतीत होता हैं कि शायद ये क्षेत्र इन महाशक्तियों के चंगुल से बच पाएँ।

आसियान के समक्ष अन्य चुनौती दूसरे क्षेत्रीय संगठन है। जैसे यूरोपीय संघ, एपेक, सार्क आदि। जिस तरह से एपेक अपने सदस्य देशों से मुक्त व्यापार संधि बनाने का प्रयास किया है ठीक उसी तरह क्या आसियान कर पाएगा ? एपेक एक 18 सदस्यीय आर्थिक संगठन हैं। यूरोपीय संघ तो बहुत आगे निकाल गया है। यूरोपीय सदस्य देशों के बीच तो एक मुद्रा प्रणाली, एक संसद व्यवस्था, एक वीसा हैं। ऐसे मे क्या आसियान सदस्य देशों के बीच ठीक इसी तरह का व्यवस्था विकसित हो पाएगा। ये एक जटिल प्रश्न है। आसियान देशों के बीच लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए कोई प्रयास नहीं होता। आज के विकसित समाज मे लोकतन्त्र के बिना जिंदा रहना तो दूर सोचना भी मुश्किल हैं। इंडोनेशिया, थाईलैंड म्यांमार इन देशों मे हमेशा लोकतंत्र के मूल्यों का नुकसान किया गया हैं। लेकिन कभी भी कोई देश आसियान के मंच

से विरोध नही किया। ठीक इसी तरह मानव अधिकार के लेकर भी आसियान के देश गंभीर नही हैं। इन देशों मे मीडिया को भी सीमित स्वंत्रता मिली हैं। आसियान के दो मुस्लिम सदस्य इंडोनेशिया और मलेशिया आतंकवाद की चुनौतियों से जूझ रहे हैं और इन दोनों देशों के बड़ी संख्या में नागरिक, सीरिया और इराक़ में आतंकवादी गुटों में शामिल होकर दमिश्क़ और बग़दाद सरकार के विरुद्ध लड़ रह हैं।

आसियान देशों के आपस मे भी मतभेद हैं। इन देशों के समुद्री सीमा एक- दूसरे के मतभेद का कारण बनी हुई हैं। समुद्र से प्राप्त करने की प्रकृतिक खनिजों के होड़ के कारण एक-दूसरे से तनाव का माहौल बना रहता हैं। थाईलैंड और कंबोडिया के बीच सीमा विवाद बना हुआ। इस संगठन मे कोई ऐसा सत्ता नही हैं जिसका निर्णय सभी सदस्य के लिए बाध्यकारी हो। इनके बीच स्वस्थ प्रतिद्वंद्विता का अभाव हैं। सदस्य देश महाशक्तियों से संबंध बनाने मे ज्यादा रुचि दिखा रही हैं। आसियान देशों मे भी शक्ति प्राप्त करने की होड़ लगी हुई है। इस क्षेत्र मे शस्त्र होड़ तेज हो रही हैं। थाईलैंड अपने रक्षा खर्च मे अभिवृद्धि कर रहा हैं। नवीन किस्म के लड़ाकू विमान खरीद रहा हैं एवं ऐरक्राफ्ट कैरियर प्राप्त कर रहा हैं जबकि सुरक्षा की दृष्टि से ऐसे केरियर ख़रीदारी की इसे आवश्यकता नहीं हैं। मलेशिया और इन्डोनेशिया रक्षा क्षेत्र मे हथियारों की खारीदारी मे एक-दूसरे से टक्कर ले रहे हैं। जिसके कारण आपस मे विश्वास की कमी दिखाई देती है। इंडोनेशिया विश्वविद्यालय के राजनीतिक वैज्ञानिक बंदार्तो बंदोरो मानते हैं "लगभग 40 साल पुराने इस संगठन के सामने काफी चुनौतियां हैं। आसियान के लिए एकजुटता बनाए रखना बहुत जरूरी है. जब कभी आसियान के दखल की जरूरत पड़ती है तो देशों को अपनी संप्रभुता की आड़ नहीं लेनी चाहिए. मुझे खतरा इस बात का लग रहा है कि जब ऐसा कोई विवाद होगा जिसे आसियान नहीं सुलझा पाया तो संगठन की एकता टूट जाएगी. ऐसे वक्त में एकता बनाए रखने के तरीके हमें खोजने होंगे."

11.3. 6आसियान एवं यूरोपीय संघ

1967 आसियान का गठन हुआ जबकि यूरोपीय संघ 1973 मे बना। वर्तमान समय मे किसी भी क्षेत्रीय संगठन की सफलता का पैमाना यूरोपीय संघ से देखा जाता हैं। यूरोपीय संघ जिस तरह से वैश्वीकरण के दौर मे एक क्षेत्रीय संगठन रूप मे काफी हद तक सफल रहा है उस तरह आसियान अभी भी संघर्ष कर रहा हैं। आसियान मे लोकतान्त्रिक मूल्यों का काफी अभाव है जो यूरोपीय संघ इन मूल्यों को देखा जा सकता है। आर्थिक स्तर पर आसियान उतना सफल नही हुआ जितना की यूरोपीय संघ है। इसके पीछे यूरोपीय संघ के सदस्यों की प्रतिबद्दता है। आसियान मे आपस मे एकता नही देखने को मिलती हैं। एक मुद्रा, एक वीसा, और यूरोपीय संघ का संसद की व्यवस्था बनी हुई हैं। जो यूरोपीय देशों की अखंडता बनाने मे मदद करती है। इस तरह से दक्षिण –पूर्वी एशिया के देशों मे देखने को नही मिलता हैं। आसियान मे महाशक्तियों का प्रभाव देखने को मिलता है जबकि यूरोपीय संघ मे इस तरह के प्रभाव से दूर रहा है।

विश्व राजनीति मे जितना प्रभाव यूरोपीय संघ का हैं उतना आसियान का नहीं हैं। यूरोपीय संघ एक क्षेत्रीय संगठन की तरह कार्य कम बल्कि एक राष्ट्र की तरह कार्य कर रहा हैं। उनके आपस मे जो भी मतभेद हो वो अपने मंच पर ही समाधान कर लिया जाता है। आसियान आज भी अपने क्षेत्रीय मूल्यों को मजबूती देने मे लगा हुआ है। आर्थिक स्तर पर आसियान को कुछ सफलता जरूर मिली हैं लेकिन राजनीति मामले मे असफल साबित हुआ हैं। कभी- कभी राजनीति मामले आर्थिक मामले पर हावी हो जाते है। जबकि यूरोपीय संघ अपना हर मुद्दे इस मंच पर रखते है और समाधान भी कराते हैं।

आसियान के सदस्य देश उम्मीद कर रहे हैं कि वे 2015 तक यूरोपीय संघ जैसा एक संयुक्त समुदाय बनाने में कामयाब हो जाएंगे। 2008 में इस संगठन के चार्टर पर दस्तखत हुए जिसमें सदस्य देशों से अपने

विवाद बिना हिंसा के सुलझाने की अपील की गई। इंडोनेशिया विश्वविद्यालय के राजनीतिक वैज्ञानिक बंदार्तो बंदोरो मानते हैं कि यह सब इतना आसान नहीं होगा। उनके मुताबिक लगभग 40 साल पुराने इस संगठन के सामने काफी चुनौतियां हैं। उनके अनुसार, "आसियान के लिए एकजुटता बनाए रखना बहुत जरूरी है। जब कभी आसियान के दखल की जरूरत पड़ती है तो देशों को अपनी संप्रभुता की आड़ नहीं लेनी चाहिए। मुझे खतरा इस बात का लग रहा है कि जब ऐसा कोई विवाद होगा जिसे आसियान नहीं सुलझा पाया तो संगठन की एकता टूट जाएगी। ऐसे वक्त में एकता बनाए रखने के तरीके हमें खोजने होंगे।"

11.3.7आसियान की प्रासंगकिता

आसियान की प्रासंगिकता इसी बात से समझ मे आ जाती है कि आज दुनिया के सभी देश वार्ता सदस्य बनने के लिए बेचैन हैं। आज वैश्विक राजनीति और आर्थिक मामलों में आसियान की अपनी खास पहचान और महत्व है। आज समूचा एशिया-प्रशांत क्षेत्र एकीकरण और सहयोग के लिए बेताब है। आसियान देशों का बाजार अब यूरोपीय देशों के बराबर हो रहा है। विश्व व्यापार संगठन भी बहुपक्षीय व्यापार समझौते का अच्छा मंच है किंतु वहाँ यूरोप व अमेरिका की संरक्षण वाली नीति आड़े आ रही है। दोहा समझौते के छह वर्ष गुजर जाने के बाद भी स्थिति वैसी ही है, जैसी कि 2001 में थी। इस लिहाज से आसियान देशों के साथ मुक्त व्यापार का करार देश की समूची अर्थव्यवस्था के लिए अधिक हितकर है। आसियान का आपसी कारोबार आसियान का 25 फीसदी है। न्यूज़ीलैंड और ऑस्ट्रेलिया ने आसियान देशों के समूह के साथ मुक्त व्यापार संधि पर को हस्ताक्षर किये. इस समझौते के बाद दक्षिण एशियाई देशों के समूह आसियान के सभी सदस्य देशों का सकल घरेलू उत्पाद 2020 तक 48 अरब अमेरिकी डॉलर से बढ़ जाएगा। जिससे सदस्य देश एक-दूसरे के अर्थव्यवस्था को मजबूती देने का कार्य करते हैं। भारत को "लुक ईस्ट पॉलिसी" के बदले "एक्ट ईस्ट पॉलिसी" की बात करना इस संगठन का आर्थिक शक्ति को प्रदर्शित करता हैं। पिछले दो दशक से पूर्वी एशिया की विकास दर इसी क्षेत्र के भीतर हो रहे व्यापार की तेज गति पर ही टिकी रही है।

साल 1986-87 से 2006-07 के बीच अंतर-क्षेत्रीय व्यापार (निर्यात और आयात) की हिस्सेदारी 34 फीसदी से बढ़कर 52 फीसदी हो गई। चीन का इसमें बड़ा योगदान रहा है। साल 1994-95 और 2007-08 के बीच पूर्वी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं से चीन को होने वाले निर्यात की हिस्सेदारी 7.6 फीसदी से बढ़कर 21 फीसदी पर जा पहुंची है, आसियान देशों में यह हिस्सेदारी 2.5 फीसदी से बढ़कर 13.7 फीसदी पर आ गई। एक जनवरी से प्रभावी हुआ चीन-आसियान मुक्त व्यापार क्षेत्र क्षेत्रीय एकता की इस प्रक्रिया को और आगे बढ़ाएगा। आबादी के लिहाज से (1.9 अरब) यह सबसे बड़ा मुक्त व्यापार क्षेत्र है और मात्रा के लिहाज से यूरोपीय यूनियन व उत्तरी अमेरिका मुक्त व्यापार क्षेत्र के बाद यह तीसरे स्थान पर आता है। भारत और आसियान का जीडीपी में 1.8 मिलियन लोगों और 3.8 ट्रिलियन डॉलर का योगदान है और अकेले वर्ष 2012 में व्यापार में 40 प्रतिशत की जबरदस्त बढ़ोतरी हुई है। भारत और आसियान के बीच व्यापार एवं निवेश 2015 तक 100 अरब डॉलर और 2022 तक 200 अरब डॉलर का लक्ष्य रखा गया है वर्तमान मे भारत, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया और ऑस्ट्रेलिया-न्यूजीलैंड के साथ आसियान का मुक्त व्यापार समझौता है।

अभ्यास प्रश्न

1. आसियान का गठन कब हुआ ?

अ.1959 अगस्त 5	ब.1960 अगस्त 8
स.1961 अगस्त 9	द.1967 अगस्त 8
.2आसियान का मुख्यालय कहाँ हैं ?	
अ. जकार्ता	ब.रंगून
स. नेप वी	द. नई दिल्ली
.3आसियान क्षेत्रीय फोरम की स्थापना कब हुई ?	
अ.1994	ब.1993
स.1990	द.1991
.425वां आसियान शिखर सम्मेलन 12 नवंबर को 2014 कहाँ सम्पन्न हुआ ?	
अ. नैप्यिडॉ मे	ब. जकार्ता मे
स. लाओस	द. सिंगापूर
.5आसियान दिवस' कब मनाया जाता है ?	
अ. 8 अगस्त	ब.अगस्त 10
स.अगस्त 12	द.अगस्त 14
.6आसियान चार्टर सिंगापुर में कब हस्ताक्षर हुए थे ?	
अ. 20 नवंबर, 2007	ब.नवंबर 22 ,2007
स.नवंबर 23 ,2007	द.नवंबर 24 ,2007

11.4 सारांश

निष्कर्ष के रूप मे कहा जा सकता है कि आसियान क्षेत्रीय संगठन के रूप मे सफल रहा हैं। अपने लक्ष्य के प्राप्ति हेतु एकीकरण की ओर अग्रसर हैं तथा ऐसा समाज बनाने के लिए प्रयासरत है जो आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टियों से अपनी पहचान बनाएगा। आसियान अपने सम्मेलन में ऊर्जा, पर्यावरण, आपदा प्रबंधन, शिक्षा एवं जन-दर-जन संपर्क, वैश्विक स्वास्थ्य एवं वैश्विक बीमारियों, वित्त, आपसी सहयोग संपर्क, व्यापार एवं अर्थव्यवस्था, खाद्य सुरक्षा, सामूहिक सुरक्षा एवं सहयोग, गैर-परंपरागत सुरक्षा एवं अप्रसार, सहयोग के अन्य क्षेत्रों तथा विभिन्न क्षेत्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर चर्चा करता हैं। इस तरह हम कह सकते हैं कि आसियान न केवल क्षेत्रीय मुद्दे बल्कि अंतराष्ट्रीय मुद्दे पर भी साथ हैं। वर्तमान मे सम्पन्न हुए पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन में इराक एवं सीरिया में आतंकी और अतिवादी संगठनों द्वारा हिंसा एवं बर्बरता में वृद्धि पर विशेष वक्तव्य जारी किया गया, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय कानून एवं संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुसरण में हिंसा एवं बर्बरता पर रोक लगाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ काम करने की प्रतिबद्धता को दोहराया गया।

11.5 शब्दावली

द्विपक्षीय – दो भागीदार
बहुपक्षीय – दो से अधिक भागीदार
हस्तक्षेप - दखल देना
क्रमिक – उत्तरोत्तर

11.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

12.14 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1. द. 8 अगस्त 1967	2. अ. जकार्ता	3. अ. 1994	4. अ. नैप्यिडॉ मे
5. अ. 8 अगस्त	6. अ. 20 नवंबर, 2007		

11.7 संदर्भ ग्रंथ

1.तपन विस्वाल “अंतर्राष्ट्रीय राजनीति” मैकमिलन पब्लिशिंग नई दिल्ली

2.पुष्पेश पंत “21वीं शताब्दी में अंतराष्ट्रीय संबंध” टाटा मैकग्रा हिल नई दिल्ली

3.यू. आर. घई “अंतर्राष्ट्रीय राजनीति” न्यू अकेडमी पब्लिशिंग कंपनी जालंधर

4.बी एएम जैन “अंतराष्ट्रीय संबंध” राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर

11. 8 सहायक उपयोगी / पाठ्य सामाग्री

1.हरीश कुमार वैश्य “अंतराष्ट्रीय संबंध” आर्य पब्लिकेशन नई दिल्ली

2.पुष्पेश पंत एवं श्रीपाल जैन “अंतराष्ट्रीय संबंध” मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. आसियान के गठन और भूमिका का वर्णन करें ?
2. आसियान और यूरोपीय संघ का तुलनात्मक अध्ययन करें ?
3. आसियान के प्रासंगिकता पर टिप्पणी करें ?

इकाई 12 : एपेक (एशिया-प्रशांत आर्थिक सहयोग), नाफ्टा (उत्तरी अमेरिका मुफ्त व्यापार समझौता)

इकाई की संरचना

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 एपेक क्या है
12.3.1 एपेक की आवश्यकता
12.3.2 एपेक के लक्ष्य एवं उद्देश्य
12.3.3 महिलाएं तथा एपेक
12.3.4 एपेक और भारत
12.3.5 एपेक का मूल्यांकन
12.4 क्या है नाफ्टा
12.4.1 नाफ्टा की आवश्यकता
12.4.2 नाफ्टा के लक्ष्य एवं उद्देश्य
12.4.3 नाफ्टा की उपलब्धिया
12.4.4 गोलार्ध एकीकरण में नाफ्टा की भूमिका (नाफ्टा का विस्तार)
12.4.5 उत्तरी गोलार्ध के एकीकरण में बाधा के रूप में अमेरिका
12.4.6 नाफ्टा की त्रुटियां/आलोचना
12.4.7 नाफ्टा का संशोधन - बराक ओबमा
12.5 सारांश
12.6 शब्दावली
12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.8 संदर्भ ग्रंथ
12.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.10 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

वैश्वीकरण के इस दौर में दुनिया के देश विभिन्न सांझा बाजारों, आर्थिक समुदायों अथवा इकोनॉमिक ब्लॉक्स के जरिए विश्व अर्थव्यवस्थाओं में अपना भविष्य बेहतर बनाने की होड़ में लगे हुए है। इसी का परिणाम है कि थोड़ी बहुत भिन्न प्रकृति के साथ आसियान, नाफ्टा, एपेक, यूरोपीय संघ, इकोसाक, बिम्सटेक, शंघाई सहयोग संगठन, कैरीकाम, ई.ए.सी इत्यादि जैसे तमाम सहयोग संगठन या सांझा बाजार पूरी दुनिया में उपस्थित है और आगे भी ऐसे ही नए मंचों के निर्माण की सांभावना बनी रहेगी। इन सहयोग संगठन या क्षेत्रीय संगठन में से आसियान या नाफ्टा जैसे ब्लॉक्स अपने मकसद में ज्यादा कामयाब रहे है। एशिया-प्रशांत आर्थिक सहयोग (।Asian Pacific Economic Cooperation-APEC) एशिया प्रशांत के देशों का एक संगठन है, जिसकी स्थापना नवम्बर 1989 में की गयी। इसके सदस्य देशों की संख्या 21 है। यह विश्व का सबसे बड़ा व्यापारिक संगठन है। उत्तर अमेरिका मुक्त व्यापार समझौता (North America free Trade agreement या NAFTA) नाफ्टा संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और मेक्सिको की सरकार द्वारा बनाया उत्तरी अमेरिका में एक त्रिपक्षीय व्यापार गुट है। यह समझौता तीनों देशों के नेताओं द्वारा दिसंबर 1993 में हस्ताक्षर किए गए कनाडा के डनसतवदमल मेक्सिको के ळवतजंतप और अमेरिका के बिलंटन ने किए, इसकी स्थापना 1 जनवरी 1994 में की गई।

12.2 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः क्षेत्रिय संगठन क्या होता है और ये क्यों आवश्यक है समझ सकेंगे।
- व्यापार समझौता विभिन्न देशो के परस्पर संबंधों में क्या महत्व रखता है? समझ सकेंगे।
- इन बहुपक्षीय संदर्भ में क्षेत्रिय व्यापार संगठन के विस्तार की आवश्यकता की बारीकी समझ सकेंगे।

12.3 एपेक क्या है

एशिया-प्रशांत आर्थिक सहयोग Asian Pacific Economic Cooperation-APEC) एशिया प्रशांत के देशों का एक संगठन है, जिसकी स्थापना नवम्बर 1989 में की गयी। इसके सदस्य देशों की संख्या 21 है, ये देश है ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, कनाडा, चीन, मैक्सिको, जापान, ब्रूनाई-दारूस्सलाम, दक्षिण कोरिया, इण्डोनेशिया, फिलीपीन्स, ताईवान, सिंगापुर, मेलेशिया, थाइलैण्ड, पापुआ, न्यूगिनी (न्यूगाना), न्यूजीलैण्ड, चिली, पेरू, रूस तथा वियतनाम। विश्व मामलों में एपेक को एशिया प्रशांत की आवाज कहा जाता है। यह विश्व का सबसे बड़ा व्यापारिक संगठन है। यह हिमालय से एंडीस तक तथा न्यूजीलैण्ड से कनाडा तक विस्तृत क्षेत्र में फैले विश्व की बड़ी एवं विस्तारोंन्मुख अर्थव्यवस्था वाले देशों का संगठन है। स्थापना के समय यह शर्त थी कि एशिया-प्रशांत आर्थिक सहयोग केवल परामर्श देने वाला मंच होगा। इस मंच को आर्थिक सहयोग का सर्वाधिक प्राभावी संगठन कहा गया। एपेक में न केवल संयुक्त राज्य अमेरिका तथा उसके अनेक पश्चात्य मित्र देश शामिल है, परंतु चीन भी इसका सदस्य है। इस प्रकार एशिया-प्रशांत में विचार-धाराओं का संगम पाया जाता है। एपेक के सदस्यों की जनसंख्या 2.8 अरब या विश्व की कुल जनसंख्या का 40 प्रतिशत है। वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में इन देशों का योगदान 46 प्रतिशत है। एपेक ने 2020 तक एशिया प्रशांत क्षेत्र को स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र बनाने की घोषणा की है, यह विश्व का सबसे बड़ा स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र होगा।

12.3.1 एपेक की आवश्यकता

एशिया-प्रशांत आर्थिक सहयोग संगठन की स्थापना में आर्थिक सहयोग (एशिया-प्रशांत के सदस्य देशों के मध्य) का सर्वाधिक प्रभाव रहा है, इसीलिए एशिया-प्रशांत आर्थिक सहयोग मंच को कोई विस्तृत संस्थागत संगठन नहीं रचा गया था। इसका एक कारण अमेरिका की भूमिका थी। अमेरिका साम्यवाद के प्रसार को (शीत युद्ध काल में) रोकने की अपनी नीति (Containment Policy) के अन्तर्गत सुरक्षा के लिए द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय समझौता की रणनीति के साथ-साथ अपने समर्थक देशों को निर्बाध रूप से पूंजी निवेश, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण तथा घरेलू बाजार की सुविधाएं देता रहा था। साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए वह इस क्षेत्र मे भी अपने मित्रों के सामाजिक संबंध स्थापित करने का प्रयास करता रहा था। इस नीति का सबसे अधिक लाभ जापान को हुआ। शीत युद्ध के बाद भी अमेरिका ने जापान तथा अन्य मित्र देशों के साथ द्विपक्षीय आर्थिक संबंधों पर बल दिया।

लगभग 20 वर्ष तक जापान, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के उद्योगपति, राजनीतिज्ञ तथा बुद्धिजीवी क्षेत्रीय सहयोग के लिए असफल प्रयास करते रहे थे। इन प्रयासों की विफलता का एक कारण यह था कि आसियान के देश इनको विरोध कर रहे थे, क्योंकि उन्हें भय था कि दक्षिण पूर्व एशिया पर जापान तथा अमेरिका अपना वर्चस्व स्थापित करने की चेष्टा करेंगे। अमेरिका और जापान के उकसाने पर 1989 में ऑस्ट्रेलिया ने एपेक मंच की स्थापना का एक बार फिर प्रयास किया। जो आसियान की शर्तों को मान लिए जाने के कारण सफल हुआ। उस समय सार्क जैसे अन्य क्षेत्रीय संगठन उभरने लगे थे। ऑस्ट्रेलिया ने यह प्रयास किया कि इस नए मंच में सरकारी तंत्र को उसी प्रकार सीमित रखा जाए जैसे कि प्रशांत-आर्थिक सहयोग परिषद (च्ंबपपिब म्बवदवउपे ब्ववचमतंजपवद बवनदबपस च्म्ब्ब्) में था। उधर आसियान के देशों की भी यह शर्त थी कि एपेक में तभी शामिल होंगे जबकि इसे परामर्श देने वाले मंच का स्थान दिया जाए ताकि आसियान के साथ मुकाबला न कर सके।

सन् 1994 में एपेक सदस्यों की बोगोर (इंडोनेश्यिा) में हुई बैठक में 'बोगोर घोषणा' जारी की गई, जिसके अनुसार मंच के सभी (तत्कालीन) 18 देशों ने यह निश्चय किया कि औद्योगिक विकसित देश 2010 तक और विकासशील

देश 2020 तक मुक्त व्यापार लागू करेंगे। अतः एपेक के द्वारा ये देश विश्व में सबसे विशाल मुक्त व्यापार क्षेत्र स्थापित करके अपनी जनता की विशाल जनसंख्या का जीवन स्तर ऊंचा उठाने में सफल होंगे।

एपेक के निर्माण में एपेक का भोगोलिक विस्तार सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं। एक ओर सुंदूर पूर्व में चीन और जापान है, दूसरी ओर उत्तरी अमेरिका में संयक्त राज्य अमेरिका और कनाडा इसके सदस्य है। दक्षिण अमेरिका में चिली एवं पेरू, दक्षिण पूर्व एशिया में मलेशिया, वियतनाम एवं थाइलैण्ड तथा दक्षिण प्रशांत में ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड एवं इंडोनेशिया सभी इसमें शामिल है। यह मंच लगभग आधी मानवता का प्रतिनिधित्व करता है। एपेक के मुकाबले में इतना विशाल और कोई सहयोग संगठन नहीं है।

12.3.2 एपेक के लक्ष्य एवं उद्देश्य

इस संगठन के विभिन्न देशों की अर्थव्यवस्था के साथ-साथ आर्थिक विकास के स्तर में विभिन्नता है, फिर भी उनमें सहयोग बढ़ रहा है, जिसके कारण क्षेत्रीय एवं विश्वव्यापी विकास संभव हो सकेगा। सन् 1989 में स्थापित होने से लेकर अब तक एपेक ने बहुत प्रगति की है। आरंभिक वर्षो में एपेक ने मात्र विचारों के आदान-प्रदान पर बल दिया। अब वह सदस्य देशों की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित हुआ है। एपेक की भिन्न भिन्न बैठकों/सम्मेलनों में एपेक के उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है, जो निम्नलिखित है-

एपेक की प्रथम बैठक जो सन् 1993 में वांशिगटन में हुई, उसमे एपेक के लिमिटेड कई लक्ष्य सुनिश्चित किए गए जैसे वसतुओं एवम् सेवाओं का मुक्त आदान-प्रदान, जीवन एवं शिक्षा का उच्च स्तर, प्राकृतिक पर्यावरण का आदर।

बोगोर सम्मेलन (1994) में एपेक नेताओं ने एक कार्यक्रम निर्धारित किया। इस कार्यक्रम में तीन स्तंभ स्थापित किए गए। 1) व्यापार और पूंजी निवेश का उदारीकरण 2) व्यापार की अधिक सुविधाएं तथा (3) आर्थिक एवं तकनीकी सहयोग।

बैन्कूवर (कनाडा) में सन् 1997 में हुई एपेक बैठक में इन लक्ष्यों पर बल दिया गया-व्यापार, शिक्षा एवं अन्य क्षेत्रों के विशेषज्ञों महिलाओं एवं युवकों की भागीदारी की प्रगति पर बल देना।

सन् 1998 के कुआलालम्पुर (मलेशिया) सम्मेलन में एपेक नेताओं ने विश्वास व्यक्त किया कि एशिया-प्रशांत की अर्थव्यवस्था में शीघ्र ही सुधार होगा, वह समय था जब कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशा में गंभीर संकट व्याप्त था।

सितंबर 1999 में ऑकलैण्ड (न्यूजीलैण्ड) की बैठक में एपेक नेताओं ने यह निर्णय लिया कि बाजारों को सशक्त बनाया जाए तथा व्यापार एवं पूंजी निवेश की अन्तर्राष्ट्रीय वयवस्था में सुधार किया जाएगा। खाद्य व्यवस्था संबंधी कार्य को आगे बढ़ाने तथा व्यापार सुविधाओं को बढ़ावा देने का निर्णय भी किया गया।

सन् 2000 की ब्रूनई बैठक में निम्नलिखित लक्ष्यों को प्राथामिकताएं दी। व्यापार और पूंजी निवेश का उदारीकरण, मानव संसाधनों के विकास पर विशेष बल, सूचना प्रौद्योगिकी एवं संचार प्रौद्योगिकी जैसी ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन देना।

एपेक के सदस्य देशों की 22वीं शिखर बैठक में क्षेत्रीय एकीकरण को मजबूत बनाने के लिए व्यापाक स्तर पर कार्रवाही करने पर सहमति बनी।

एपेक की सन् 2014 में आयोजित बैठक में मंत्रियों ने एशिया प्रशांत महासागरीय क्षेत्र में एक मुक्त व्यापार क्षेत्र की करने के लिए 'रोड मैप' अपनाया है। लेकिन इस 'रोड मैप' के विवरणों का खुलासा नहीं किया गया।

12.3.3 महिलाएं तथा एपेक

एपेक के नेताओं ने अपने संगठन में महिलाओं की बढ़ती भूमिका का स्वागत किया। सन् 1999 में एपेक में महिलाओं के एकीकरण के लिए तीन व्यवस्थाओं को स्वीकार किया गया। ये थे-

1) लिंग (नर-नारी) समीक्षा एक ऐसा उपाय जिसके द्वारा, पुरूषों और महिलाओं के जीवन में विभिन्नताओं का परीक्षण किया जा सकेगा। (2) नर-नारी विविधता संबंधी आंकडों का संकलन और उनकी समीक्षा ताकि महिलाओं और पुरूषों में अंतर को समझा जा सकेगा; (3) एपेक मंच में महिलाओं की अधिक भागीदारी हो सके। ऑकलैण्ड में एपेक नेताओं के सम्मेलन में 1999 में न्यूजीलैण्ड की प्रधानमंत्री जेनी शिपले ने कहा था कि, एशिया-प्रशांत की अर्थव्यवस्थाओं में महिलाओं की भूमिका बढ़ रही है, तथा एपेक की उनकी बढ़ती भागीदारी तलाश करनी चाहिए।''

12.3.4 एपेक और भारत

एपेक के बढ़ते महत्व को ध्यान में रखते हुए भारत स्वाभाविक ही इसमें प्रवेश करने का इच्छुक है। भारत एपेक की सदस्यता शीघ्र प्राप्त करना चाहता है। परंतु अभी नहीं लगता कि भारत को इसमें शामिल कर लिया जाएगा। फिर भी जापान चाहता था कि एपेक के विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संबंधी कार्य-दल में भारत को प्रेक्षक के रूप में शामिल कर लिया जाए, यह अन्ततः भारत के लिए एपेक का द्वार खोल सकता है। एपेक में नए सदस्यों को शामिल करने पर लगा प्रतिबंध 2010 में हटा लिया गया था। भारत एपेक के ऊर्जा संबंधी कार्यदल में एक सदस्य के रूप में शामिल किया जा चुका है। एशिया-प्रशांत क्षेत्र में मुक्त व्यापार व्यवस्था स्थापित हो जाने पर भारत की सदस्यता और उसका सहयोग स्वयं भारत तथा एपेक दोनों के हित में होगा।

12.3.5एपेक का मूल्यांकन

एपेक अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यूरोपीय संघ की भांति एपेक व्यापार तथा आर्थिक सहयोग को प्रोत्साहित करने का एक ऐसा प्रयोजन है, जिसे कानूनी तथा तकनीकी चुंगल में न फंसाकर पारस्परिकता के आधारपर साजाया गया है। यह आसियान की भांति कोई सामाजिक सुरक्षात्मक एवं सांस्कृतिक संघ न होकर केवल व्यापार व वाणिज्य को सशक्त करने की संरचना है। यह सार्क रूप संगठन से भी एक अलग सा ऐसा क्षेत्रीय सहयोगीय संगठन है जो 'व्यापार' तक सीमित है। और जो उतना व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धाओं को महत्व नहीं देता जितना आर्थिक सहयोग को जरूरी समझाता है। यह मुक्त व्यापार के लिए भेदभावपूर्ण प्रतिबंध खड़े नहीं करता जैसे कि विश्व व्यापार संगठन करता है, यह तो व्यापार में वृद्धि करता है तथा उसके मार्ग के बंधनों का हटाता है।

एपेक में 21 सदस्य देश शामिल है, तो स्वाभाविक ही इस क्षेत्र में कुछ विकसित और ताकतवर शक्तियां अपना वर्चस्व स्थापित करने की राजनीति करते है, इससे बचने के लिए एपेक की स्थापना के बाद मलेशिया के प्रधानमंत्री डॉ महावीर मोहम्मद ने सुझाव दिया था कि एक पूर्वी-एशिया आर्थिक समूह (East Asian Economic Grouping) की स्थापना की जाए, ताकि पश्चिमी देशों को बाहर रखकर इनका प्रभाव कम किया जाए। एपेक सन् 1996 शिखर सम्मेलन में अमेरिका चाहता था कि कंप्यूटर-उपकरणों तथा दूर संचार के उपकरणों को भूमण्डलीय मुक्त व्यापार का रूप दे दिया जाए। परंतु मलेशिया सहित छोटे देशों ने इस प्रस्ताव के आधार पर विरोध किया कि इससे अनेक बजारों में पश्चिमी उपकरणों की भरमार हो जाएगी।

एपेक नेताओं के 22वीं शिखर सम्मेलन में भाग लेने आए अमेरिकी राष्ट्रपति ओबमा ने अमेरिका की प्रशांत पारगमन भागीदारी (टीपीपी) का प्रस्ताव इस क्षेत्र के लिए बेहतर बताया है। टी.पी.पी में अमेरिका और जापान के अलावा 10 अन्य देश शामिल है लेकिन चीन को इससे बाहर रखा गया है, इसके सदस्य देश अधिकांश वस्तुओं परसीमा शुल्क कम करने या हटाने पर विचार कर रहे है, जो चीन को क्षति पहुँचा सकता है।

चीन भी दक्षिण कोरिया से लेकर ऑस्ट्रेलिया जैसे पड़ोसी देशों के साथ व्यापार में अपना आर्थिक प्रभाव बढ़ाकर अमेरिकी प्रभाव या अमेरिकी वर्चस्व को कम करने का प्रयास कर रहा है।

एपेक के भीतर विभिनन गतिरोध/मतभेद होने के बावजूद भी यह विश्व का सबसे बड़ा व्यापारिक संगठन है। इन देशों का संयुक्त व्यापार विश्व के कुल व्यापार का 40 से 45 प्रतिशत के बीच है। अतः एपेक संगठन को आर्थिक क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

12.4 क्या है नाफ्टा

उत्तर अमेरिका मुफ्त व्यापार समझौता जो अंग्रेजी में नाफ्टा के नाम लोकप्रिय है, यह मेक्सिको, कनाडा और अमेरिका के बीच एक व्यापर समझौता है। यह 1 जनवरी 1994 से प्रभाव में आया। इस समझौते के कारण इन तीनों देशों के बीच माल की ढुलाई पर लगने वाले कर को समाप्त कर दिया गया। इसके अंतर्गत मुद्राधिकार, पैटेण्ट और ट्रेडमार्क की सुरक्षा का भी प्रावधान है। इस उत्तर अमेरिकी आर्थिक सहयोग समझौते के द्वारा आधारित किया गया, जिसने प्रदूषण को कम करने के लिए पर्यावरण विनियमकों की स्थापना में सहायता की। इसका और अधिक अद्यतन उत्तर अमेरिकी श्रम सहयोग समझौते के रूप में किया गया, जिसके अंतर्गत बेहतर कार्य स्थितियों के लिए लड़ सकते थे। नाफ्टा के तहत ये तीनों देश 2015 तक अपने यहां व्यापार पर लगे सारे प्रतिबंधों को हटाकर मुक्त बन जाएंगे। नाफ्टा के सचिवालय-मेक्सिको, सिटी, औटवा और वंशिगटन, डीसी, नाफ्टा के अधिकारिक भाषाएं-अंग्रेजी, फ्रेंच और स्पेनिश, नाफ्टा की स्थापना-1994 1 जनवरी, नाफ्टा का क्षेत्र - कुल 21,783,850 वर्ग कि.मी (1), नाफ्टा की जनसंख्या-2008 Estimated 445,335,091 (3), सकल घरेलू उत्पाद 2007 अनुमान - $ 15,457 अरब (1)।

नाफ्टा समझौता- उत्तर अमेरिका मुक्त व्यापार समझौता दो समझौते/खुराक है।

(I) पर्यावरण सहयोग पर उत्तर अमरिका समझौते (NAAEC) और (II) श्रम सहयोग पर उत्तर अमरिकी समझौते (NAALC)

(NAAEC) तीनों देश लगातार पर्यावरण विनियम प्राप्त नहीं किया है तो संयुक्त राज्य अमेरिका अपने मानको को कम कर देंगे कि पर्यावरणविदों की चिंताओं के जबाव में था।

(NAALC) का समझौता नाफ्टा श्रम समस्यों के समाधान के लिए हुआ। साथ ही सुधार की स्थिति से लड़ने के लिए टेड यूनियनों और सामाजिक संगठनों के बीच अधिक से अधिक सहयोग देने के लिए है।

12.4.1 नाफ्टा की आवश्यकता

नाफ्टा, अमेरिका, कनाडा और मेक्सिको का एक ऐसा समझौता है, जिसके पूरे गोलार्द्धा में व्यापारिक सहयोग को बढ़ावा दिया है और नाफ्टा जैसे व्यापारिक सहयोग का कोई अन्य उदाहरण नहीं मिलता। इस नाफ्टा की स्थापना 1994 में हुई थी, यद्यपि 1988 के पहले एक समझौता संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा के बीच परस्पर व्यापार हेतु हो चुका था व्यापार की दृष्टि से 1990 तक संयुक्त राज्य अमरिका व कनाडा पहले नंबर पर आता है, जापान तथा संयुक्त राज्य अमेरिका दूसरे नंबर पर, तथा मेक्सिको एवं संयुक्त राज्य के बीच व्यापार तीसरे नंबर पर था। वास्तव में इन तीनों देशों के बीच परस्पर व्यापार कुल अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक तिहाई भाग था। संयुक्त राज्य अमेरिका को 1994 में इस नाफ्टा रूपी मुक्त व्यापार की आवश्यकता इसीलिए पड़ी थी कि वह यूरोपीयन संघ के बढ़ते व्यापार को चुनौती देना चाहता था। यूरोपीय संघ अमेरिकी संसार से बहुत आगे जा चुका है जबकि अमेरिकी शक्ति इस चुनौती के उत्तर में अपने बढ़ते परस्पर व्यापार को प्रयोजन करना चाहता था।

नाफ्टा जो 1994 में हुआ इसने कनाडा संयुक्त राज्य अमेरिका के मुक्त व्यापार समझौते का स्थान लेते हुए उसे पीछे छोड़ दिया। नाफ्ट के अन्तर्गत इस व्यापार भागीदारी में कनाडा तथा यू.एस.ए के साथ मेक्सिको भी सम्मिलित हो गया।

नाफ्टा के बाद अन्त तीन समझौते ने कनाडा संयुक्त राज्य अमेरिका और मेक्सिको के परस्पर संबंधों को और अधिक मजबूत बना दिया। ये तीन समझौते थे-

(I) आर्थिक सहयोग हेतु उत्तर अमेरिकी समझौता (North American Agreement for Economic Coorpreation-NAAEC)।

(II) श्रम सहयोग हेतु उत्तर अमेरिकी समझौता (North American Agreement for Laour Coorpration-NAALC)

(III) उत्तर अमेरिका की सुरक्षा एवं संपन्नता भागीदारी (Security and Prosperity Partership of North American)

12.4.2 नाफ्टा के लक्ष्य एवं उद्देश्य

नाफ्टा पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्य राज्य एक दूसरे को अति कृपापात्र राष्ट्र (Most Favoured Nation) का दर्जा देंगे,

उत्पादों, वस्तुओं तथा सेवाओं के व्यापार तथा शुल्क आदि के बंधनों का उन्मूलन करेंगे,

मुक्त व्यापार क्षेत्र में मुफ्त, उचित तथा समानता प्रतिस्पर्धा की गारण्टी देंगे,

एक दूसरे राज्य में बौद्धिक संपत्ति की सुरक्षा उपलब्ध कराएंगे,

सदस्य राज्य, सन्धि के प्रावधानों के कुशल-कार्यान्वयन उनके संयुक्त प्रबंधन तथा परस्पर विवादों के समाधान के लिए प्रयासरत रहेंगे,

सदस्य-राज्य के त्रिस्तरीय सहयोग को इस दृष्टि से सुधारेगे कि नाफ्टा का लाभ सब पर समान रूप से वितरित हो पाए,

नाफ्टा के लाभों के विस्तार हेतु त्रिस्तरीय, क्षेत्रीय तथा बहुआयामी की स्थापना हेतु उपयुक्त दायरा तैयार हो सके।

नाफ्टा सदस्य राज्यों में व्यापार हेतु वस्तुओं व उत्पादों पर शुल्क आदि हटा लिया गया है। इस सन्धि से पहले कनाडा व मेक्सिको में जाने वाले अमेरिका माल पर काफी शुल्क लगता था तथा इसके फलस्वरूप इन देशों में अमेरिकी माल महंगा भी बिकता था। कभी-कभी ऐसे भी होता था कि अधिक शुल्क न देने के कारण व मेक्सिको में अमेरिकी वस्तुएं नहीं खरीदी जाती थी और इसका व्यापार पर कुप्रभाव भी पड़ना स्वाभाविक हो जाता था। नाफ्टा द्वारा ऐसे सभी कर व शुल्क हटा लिये गए है। तथा इन तीनों देशों के व्यापार में खासी वृद्धि होने लगी है। आज स्थिति यह है कि जी.डी.पी. की दृष्टि से नाफ्टा देशों का मुक्त व्यापार, संसार में सबसे बड़ा व्यापार है। जनवरी 2008 तक, नाफ्टा राज्यों के बीच व्यापार से संबंधित सभी शुल्क हटा लिये गए है। इस राज्यों के बीच मुक्त व्यापार का दौर चल रहा है। 1993 से 2007 के बीच नाफ्टा राज्यों में व्यापार तीन गुना बढ़ गया है-297 अरब अमेरिकी डॉलर से 930 अरब अमेरिकी डॉलर।

12.4.3 नाफ्टा की उपलब्धिया

नाफ्टा के फलस्वरूप सदस्य राज्यों के बीच व्यापार की वृद्धि का सांकेतिक संक्षिप्त ब्यौरा निम्नलिखित है। यह आंकड़े नाफ्टा समझौते के फलस्वरूप आरंभिक वर्गों का विवरण हैः

कनाडा एवं मैक्सिको में अमेरीकी निर्यात में 157 प्रतिशत वृद्धि हुई-142 अरब अमेरिकी डालर से 364.6 अरब अमेरिकी डॉलर (1993-2007),

अमेरिका में कनाडा एवं मेक्सिको को निर्यात में 231 प्रतिशत वृद्धि हुई 151 अरब अमेरिकी डालर से 501 अरब अमेरिकी डालर,

अमेरिका कृषि निर्यात मेक्सिको में बड़ा है-अमेरिका कृषि उत्पाद मेक्सिको में पसंद किए जाते है। 1993 में यह निर्यात 22 प्रतिशत था, जो 2007 में 30 प्रतिशत हो गया,

सेवाओं के क्षेत्र में कनाडा व मेक्सिको का निर्यात 125 प्रतिशत बढ़ा है 25 अरब अमेरिकी डॉलर से 62 अरब अमेरिकी डालर (1994-2006),

नाफ्टा के लागू होने के पश्चात अमेरिकी पूंजी निवेश कनाडा तथा मेक्सिको में 2006 तक तीन गुना बढ़ा है,

नाफ्टा राज्यों के बीच कुल व्यापार औसतन 676 अरब अमेरिकी डालर रहा है,

संयुक्त राज्य अमेरिका कनाडा को कुल व्यापार का 23 प्रतिशत निर्यात करता है। यह राशि यूरोपीय देशों में हुई निर्यात राशि से अधिक है,

नाफ्टा के पहले सतत वर्ष के दौरान संयुक्त राज्य में उत्पादन 30 प्रतिशत बढ़ा है। जबकि नाफ्टा के आरंभ से पहले के सात वर्षों के उत्पादन केवल 20 प्रतिशत बढ़ा था,

मेक्सिको में बनी वस्तुओं की कुल मात्रा 82 प्रतिशत निर्यात केवल संयुक्त अमेरिका को जाता है,

कनाडा के संदर्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका के कुल आयात-निर्यात में आयात 77 प्रतिशत तथा निर्यात 85 प्रतिशत है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर नाफ्टा व्यापार समझौते से प्रमुखतः निम्नलिखित लाभ हुए हैः

(1) चूंकि इस समझौते के कारण उत्पादों पर लगने वाला कर (शुल्क) समाप्त हो गया, इसीलिए मेक्सिकोवासी अमेरिका से बहुत सा सामान खरीद रहे थे। इस कारण अमेरिका कंपनियों की बचत हुई क्योंकि पहले इन उत्पादों को सीमा पर पहुंचाने में बहुत खर्च होता था और इस कारण मेक्सिको का भी पैसा बचा जो पहले अमेरिका से सामान खरीदने में खर्च होता था।

(2) इस समझौते का एक अन्य लाभ या आदान-प्रदान वाले सामान पर लगने वाला नाम-पत्र (लेबल) जो फ्रांसीसी, अंग्रजी और स्पेनी तीनों भाषा में होता है। इस कारण मेक्सिकोवासी और कुछ अमेरिकीवासी स्पेनी में लिख-पढ़ सकते है।

(3) नाफ्टा के कारण अमेरिका और मेक्सिको के बीच आप्रवासन में भी वृद्धि हुई है। हालांकि इसके कारण मेक्सिको और कनाडा या अमेरिका और कनाडा के बीच आप्रवासन में वृद्धि नहीं हुई हैं।

12.4.4 गोलार्ध एकीकरण में नाफ्टा की भूमिका (नाफ्टा का विस्तार)

गोलार्द्ध की राजनीति में जो एक स्वरूप बार-बार उभरा है, वह है संयुक्त राज्य अमेरिका की संलिप्तता और प्रभाव। 1994 में उत्तरी अमेरिकी मुक्त व्यापार क्षेत्र-नाफ्टा के बनने और 'अमेरिकी राज्य संगठन' के काफी समय से अस्तित्व में होने से इस क्षेत्र में संयुक्त राज्य अमेरिका की संलिप्ता को औपचारिक रूप मिल गया।

इसके नाम के विपरीत, उत्तरी अमेरिकी मुक्त व्यापार क्षेत्र मात्र एक मुक्त व्यापार क्षेत्र ही नहीं है, इसमें निवेश, निजीकरण, बौद्धिक संपदा अधिकार, श्रम मानक और परिवेश जैसे अनेक क्षेत्रें पर विनियम और साझा मानक शामिल है। उत्तरी अमेरिकी मुक्त व्यापार क्षेत्र इसीलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसे गोलार्द्ध मुक्त व्यापार क्षेत्र अर्थात् अमेरिकास के मुक्त व्यापार क्षेत्र की ओर एक कदम के रूप में देखा जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका की संलिप्तता और प्रभाव मरकोसर देश (लेटिन अमेरिका में प्रमुख क्षेत्रीय संगठन है) में बढाना चाहता है।

12.4.5 उत्तरी गोलार्ध के एकीकरण में बाधा के रूप में अमेरिका

आज क्षेत्रीय संगठन उन लोगों (देशों) के लिए वास्तविक राजनीतिक साधन भी है। क्षेत्रीय संगठन केवल क्षेत्रीय समूहों जिनसे वे संबंद्ध है कि शर्तो में राज्य अन्य राज्यों के साथ भी संबंध स्थापित कर रहे है। अनेक क्षेत्रीय संगठन आतंरिक सीमा शुल्क अवरोधों को समाप्त करते है जबकि गैर-सदस्यों के साथ सामान्य बाह्य सीमा शुल्क

(Common External Tariffs-CEE) उपलब्ध होते है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने लेटिन अमेरिका के देशों के साथ व्यक्तिगत रूप से मुक्त व्यापार समझौता करने की कार्यनीति अपनाने का निश्चय किय है। हाल में ही चिली के साथ किए गए समझौतों इसके साक्ष्य है, इस समझौते में मरकोसर देश (लेटिन अमेरिका में प्रमुख क्षेत्रीय संगठन है) के साथ सामूहिक समझौते से बचा गया है अथवा जान-बूझकर उसको अलग अलग रखा गया है। इस तरह की नीतियां संयुक्त राज्य अमेरिका, मध्य अमेरिका क साथ भी अपना रहा है। ऐसा लगता है कि इस गोलार्द्ध में संयुक्त राज्य अमेरिका के हितों और मुक्त व्यापार की प्रगति के बीच मतभेद है।

12.4.6 नाफ्टा की त्रुटियां/आलोचना

नाफ्टा से संबंधित त्रुटियां भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि मेक्सिको में श्रम अपेक्षाकृत सस्ता है इसीलिए 1994 से 2002 के बीच संयुक्त राज्य में करोड़ों लोगों को बेरोजगारी का सामना करना पड़ रहा है। शुल्कों में कमी होने के कारण अमेरिका को मेक्सिको में खाद्यान्न के निर्यात में अपने उत्पादको को आर्थिक सहायता देनी पड़ रही है। व्यापार में शुल्क उन्मूलन ने संयुक्त राज्य अमेरिका को वार्षिक रूप से अरबो डालर का घाटा सहना पड़ा रहा है। नाफ्टा से होने वाले लाभ के बदले संयुक्त राज्य अमेरिका को कही अन्य स्थानों पर हानि उठानी पड़ रही है। 2006 में दक्षिण कोरिया ने संयुक्त राज्य अमेरिका को 7 लाख कारे निर्यात की थी, जबकि इस दौरान दक्षिणी कोरिया को केवल 6000 कार निर्यात कर पाया था।

नाफ्टा जो बेरोजगारी और गरीबी के लिए नेतृत्व की भाविष्यवाणी गलत सिद्ध हो गई। नाफ्टा पड़ोसियों देशों के साथ व्यापार करने की स्वतंत्रता के उद्देश्य से आया किंतु इसका स्थान दौलत और अवसर और अधिक विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धा बन गया। अतः नाफ्टा से अभी तक बढ़ती अपेक्षाआं की पूर्ति नहीं हुई है, इसीलिए पुनः नाफ्टा के निर्माण के उद्देश्य पर एक नजर देखने की आवश्यकता है।

12.4.7 नाफ्टा का संशोधन - बराक ओबमा

नाफ्टा या एन.ए.एफ.टी.ए. को सही दिशा देने के लिए ओबमा कनाडा और मैक्सिको के नेताओं के साथ मिलकर काम करेगे ताकि वह अमेरिकी श्रमिकों के हित में कार्य करे। देश में नाफ्टा से बड़ी से बड़ी उम्मीदें जगाई गई थी उसने वादों के अनुसार रोजगार और खुशहाली पैदा नहीं की। बारक ओबमा का विश्वास है कि अमेरिकी वस्तुओं के लिए विदेशी बाजारों को खोलकर तथा समझौते के मुख्य उद्देश्यों के श्रम और पर्यावरण संबंधी अन्य मानकों को शामिल करके व्यापार को अमेरिकी श्रमिकों का हितकारी बना सकते है, और बनाना चाहिए। राष्ट्रपति के रूप में वे नाफ्टा मे संशोधन के लिए काम करेंगे, ताकि वह उपयुक्त महत्वपूर्ण सिद्धांतों के अनुरूप हो।

अभ्यास प्रश्न

(कल देशों के नाम बताइए।एपेक में शामि (

(ख एपेक से आप क्या समझते है। (

(ग नाफ्टा किस महाद्वीप के देशों का संगठन है तथा नाफ्टा देशों के नाम बताइए। (

(घनाफ्टा क्या है (, इसके बारे में सक्षिप्त में बताए।

(ङ नाफ्टा के दो उद्देश्यों के बारे में (बताए।

(चआवश्यक है क्षेत्रीय संगठन क्यों (?

12.5 सारांश

एपेक परामर्श का मंच है, वार्ता का नहीं। एपेक सदस्यों द्वारा किए गए सभी प्रकार के प्रतिबद्धताएं ऐच्छिक है। इस संगठन का कार्य संचालन सर्व संपति व सर्वसहमति से होता है। यह संगठन वाद-विवाद का मंच नहीं है,

पारस्परिक, मेल-जोल का संवाद है। एपेक के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि एक व्यवस्था है, कोई संस्था नहीं, एक ताना-बाना है, जाल नहीं, घोसला है, कैद नहीं, बाजार को गति देता है, उसे रोकता नहीं।

नाफ्टा व्यापार या आयात और निर्यात सकल घरेलू उत्पाद आदि के विकास के मामले के समय की सबसे सफल संधियों में से एक है लेकिन दूसरी ओर यह भी है कि नौकरियों की हानि, प्रवास, असमानता के लिए जिम्मेदार है, इस प्रकार यह संधि नाफ्टा के कारण उत्पन्न समस्याओं के लिए कदम उठाने के बारे में आगे के विषय मंे किया जाना चाहिए कि महत्वपूर्ण है, अन्यथा यह नाफ्टा तीनों देशों के लिए भविष्य में खराब स्थिति को जन्म दे सकता है, जो कई मामलों में असमानता पैदा करेगा।

12.6 शब्दावली

शीत युद्ध- जब वास्तविक युद्ध न हो तथा दो या दो से अधिक देश एक दूसरे के प्रति शत्रु का भाव रखे तथा प्रचार के माध्यम से आरोप-प्रत्यारोप की प्रक्रिया निरंतर चलती रहे, तो उस स्थिति को शीत युद्ध कहते है। यही स्थिति द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ (रूस) के मध्य थी।

मुक्त व्यापार- स्वदेशी और विदेशी वस्तुओं के संदर्भ मंे एक जैसी शर्तें अपनाना मुक्त व्यापार कहलाता है। मुक्त व्यापार की नीति अपनाने वाला राष्ट्र विदेशी वस्तुओं पर किसी भी प्रकार का अतिरिक्त शुल्क नहीं लगाता है।

वर्चस्व/प्राधान्य- वह स्थिति जिसमें शासक वर्ग अपने हितों से जुड़े मूल्यों और मान्यताओं को संपूर्ण समाज के लिए उपयुक्त या आदर्श मूल्यों और मान्यताओं के रूप में स्थापित कर दे। ताकि उसका शासन लोगों की सहमति पर आधारित प्रतीत हो।

वैश्वीकरण- वैश्वीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है। वैश्वीकरण एक ऐसी निरंतर प्रक्रिया है जिसके तहत विचार, पूंजी, वस्तु ओर लोगों का प्रवाह विश्व के एक हिस्से से दूसरे हिस्से में होता है।

क्षेत्रीय संगठन- क्षेत्रीय संगठन क्षेत्रीय एकीकरण के आधार पर बनाए जाते है। क्षेत्रीय संगठन के द्वारा किसी एक क्षेत्र के अनेक राष्ट्रों को एक-दूसरे के साथ सामूहिक निर्णय व्यवस्था लेने से जोड़ा जाता है।

बौद्धिक संपत्ति/संपदा- बौद्धिक संपदा से तात्पर्य किसी देश के बौद्धिक ज्ञान और तकनीकी ज्ञान से है जिसके आधार पर ही राष्ट्र की स्थिति निर्धारित होती है। इसीलिए बौद्धिक संपदा की अधिक सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए।

आप्रवासन- आप्रवासन से तात्पर्य किसी व्यक्ति का या व्यक्ति समूह का अन्य किसी देश में गैर कानूनी रूप से जाना तथा वहां गैर कानूनी तरीके से बसने से है।

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(क) एपेक सदस्य देशों की संख्या 21 है, ये देश है ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, कनाडा, चीन, मैक्सिको, जापान, ब्रूनाई-दारूस्सलाम, दक्षिण कोरिया, इण्डोनेशिया, फिलीपीन्स, ताईवान, सिंगापुर, मेलेशिया, थाइलैण्ड, पापुआ, न्यूगिनी (न्यूगाना), न्यूजीलैण्ड, चिली, पेरू, रूस तथा वियतनाम।

(ख) एशिया-प्रशांत आर्थिक सहयोग एशिया प्रशांत के देशों का एक संगठन है, जिसकी स्थापना नवम्बर 1989 में की गयी। इसके सदस्य देशों की संख्या 21 है। विश्व मामलों में एपेक को एशिया प्रशांत की आवाज कहा जाता है। यह विश्व का सबसे बड़ा व्यापारिक संगठन है। यह हिमालय से एंडीस तक तथा न्यूजीलैण्ड से कनाडा तक विस्तृत क्षेत्र में फैले विश्व की बड़ी एवं विस्तारोंन्मुख अर्थव्यवस्था वाले देशों का संगठन है। स्थापना के समय यह शर्त थी कि एशिया-प्रशांत आर्थिक सहयोग केवल परामर्श देने वाला मंच होगा। इस मंच को आर्थिक सहयोग का सर्वाधिक प्राभावी संगठन कहा गया। एपेक में न केवल संयुक्त राज्य अमेरिका तथा उसके अनेक पश्चात्य मित्र देश शामिल है, परंतु चीन भी इसका सदस्य है। इस प्रकार एशिया-प्रशांत में विचार-धाराओं का संगम पाया जाता है।

(ग) उत्तरी अमेरिका के नाफ्टा में शामिल देशों के नाम हैंः संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और मैक्सिको।

(घ) उत्तर अमेरिका मुफ्त व्यापार समझौता अंग्रेजी में नाफ्टा के नाम लोकप्रिय है, यह मेक्सिको, कनाडा और अमेरिका के बीच एक व्यापर समझौता है। यह 1 जनवरी 1994 से प्रभाव में आया। इस समझौते के कारण इन तीनों देशों के बीच माल की ढुलाई पर लगने वाले कर को समाप्त कर दिया गया। इसके अंतर्गत मुद्राधिकार, पैटेण्ट और ट्रेडमार्क की सुरक्षा का भी प्रावधान है। इस उत्तर अमेरिकी आर्थिक सहयोग समझौते के द्वारा आधारित किया गया, जिसने प्रदूषण को कम करने के लिए पर्यावरण विनियमकों की स्थापना में सहायता की। इसका और अधिक अद्यतन उत्तर अमेरिकी श्रम सहयोग समझौते के रूप में किया गया, जिसके अंतर्गत बेहतर कार्य स्थितियों के लिए लड़ सकते थे। नाफ्टा

(ङ) नाफ्टा के लक्ष्य एवं उद्देश्यः-

१.नाफ्टा पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्य राज्य एक दूसरे को अति कृपापात्र राष्ट्र (डवेज थ्ंअवनतमक छंजपवद) का दर्जा देंगे,

२.उत्पादों, वस्तुओं तथा सेवाओं के व्यापार तथा शुल्क आदि के बंधनों का उन्मूलन करेंगे।

(च) द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के दौर में, यूरोप में अनेक क्षेत्रीय संगठनों की स्थापना की गई, जिनका उद्देश्य विशेषकर फ्रांस और जर्मनी के बीच शांति की नींव रखना था। संगठनों-यूरोपीय कोयला और इस्पात समुदाय (1951) का आधार मुक्त व्यापार नमूना था। इसी प्रकार उत्तरी अमेरिका ने क्षेत्रीय सहयोग की ओर पहले कदम में उदारवादी आर्थिक मुक्त व्यापार के इसी ढांचे को अपनाया गया। यह उत्तरी अमेरिका मुक्त व्यापार समझौता-नाफ्ता था। भूमण्डलीकरण के इस युग में, इसकी एक विशिष्ट परिभाषा यह निर्धारित हो चुकी है कि संपूर्ण विश्व में क्षेत्रीय संघों की स्थापना हुई है।

यूरोप से लेकर अफ्रीका तक जो क्षेत्रीयकरण हुआ है, उसे इस रूप में देखा जा सकता है कि यह आर्थिक प्रगति या विकास करने का एक साधन है, और आर्थिक उपलब्धि का मार्ग है। क्षेत्रीय संगठनों की स्थापना राज्यों द्वारा की गई है ताकि वे नवउदार आर्थिक व्यवस्था के हानिकारक प्रभावों से अपनी सुरक्षा करने में सक्षम हो जाएं। क्षेत्रीयकरण के लिए प्राथमिक उद्देश्यों में एक प्रतियोगिता में वृद्धि होना है।

12.8 संदर्भ ग्रंथ

1.तपन विस्वाल “अंतर्राष्ट्रीय राजनीति” मैकमिलन पब्लिशिंग नई दिल्ली

2.पुष्पेश पंत “21वीं शताब्दी में अंतराष्ट्रीय संबंध” टाटा मैकग्रा हिल नई दिल्ली

3.यू. आर. घई “अंतर्राष्ट्रीय राजनीति” न्यू अकेडमी पब्लिशिंग कंपनी जालंधर

4.बी एएम जैन “अंतराष्ट्रीय संबंध” राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर

5.हरीश कुमार वैश्य “अंतराष्ट्रीय संबंध” आर्य पब्लिकेशन नई दिल्ली

6.पुष्पेश पंत एवं श्रीपाल जैन “अंतराष्ट्रीय संबंध” मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ

12.9 सहायकउपयोगी पाठ्य सामग्री /

1.<https://books.google.co.in/books?isbn=0070144869>

2.<https://books.google.co.in/books?isbn=8125913947>

3.<https://books.google.co.in/books?isbn=0070705453>

4.<https://books.google.co.in/books?isbn=817482795>

5.<http://hindi.sputniknews.com/hindi.ruvr.ru/news/2014_11_08/279776768/>

6.<http://hindi.irib.ir/leh{kk@fVIi.kh@item@49335&,isd&lEesyu&vkSj&vkfFkZd≶ksx&dks&c<+kok&nsus&dk&iz;kl>
7.<http://www.drishtiias.com/hindi/current-affairs-daily-description-Asia---Pacific-Economic-Cooperation---APEC---Summit>
8.<https://truthabouttrade.org/hi/2014/01/06/nafta-at-20-a-model-for-trade-policy/>
9. <emosens.net/t- mÙkj&vesfjdh&eqä&O;kikj&le>kSrk >
10.<https://books.google.co.in/books?id=NVSxBQAAQBAJ>
11.<https://books.google.co.in/books?isbn=8173157278>
12.<http://hi.wikipedia.org/wiki/oS'ohdj.k>
13.<http://www.dailynewsnetwork.in/news/editorial/15112011/editorial/48857.html>
14.http://www.bbc.co.uk/hindi/international/2013/11/131106_uk_migration_contribution_rd>
15.<https://books.google.co.in/books?isbn=81731572787>

12.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.किस प्रकार एपेक विश्व का सबसे बड़ा स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र है और भारत के लिए यह क्यों महत्त्वपूर्ण है?

2. संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा तथा मैक्सिको के लिए नाफ्टा का क्या महत्व है तथा वर्तमान में इसे संशोधित करने की बात क्यों की जा रही है।

3. नाफ्टा के उदय में संयुक्त राज्य अमेरिका की भूमिका का विश्लेषण करे।

इकाई – 13 : भारत की विदेश नीति , विदेश नीति के निर्धारक तत्व

इकाई की संरचना

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 विदेश नीति की अवधारणा
13.4 भारतीय विदेश नीति की अवधारणा
13.5 विदेश नीति के निर्धारक तत्व
13.5.1 राष्ट्र का आकर
13.5.2 भूगौलिक तत्व:
13.5.3 आर्थिक विकास
13.5.4 तकनीकी विकास
13.5.5वैचारिक तत्व
13.5.6 इतिहास और परम्परा
13.5.7 राष्ट्रीय हित
13.5.8 सैनिक तत्व
13.5.9 नेतृत्व-व्यक्तित्व
13.5.10 भारतीय समाज
13.6 भारतीय विदेश नीति की विशेषताए
13.6.1 गुट निरपेक्षता की नीति
13.6.2 विश्व शांति की नीति
13.6.3 पंचशील सिद्धांत
13.6.4 साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध
13.6.5 प्रजातीय विभेद का विरोध
13.6.6 सयुक्त राष्ट्र संघ में भारत का विश्वास
13.7 भारत एक उभरती शक्ति के रूप में
13.7.1 भौगोलिक कारक
13.7.2 आर्थिक कारक
13.7.3 सैनिक कारक
13.7.4 विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी
13.7.5 ऊर्जा
13.8 सारांश
13.9 शब्दावली
13.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
13.11 संदर्भ ग्रन्थ
13.12 सहायक - उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.13 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

भारत विश्व में एक विस्तृत भूभाग और विशाल जनसख्या वाला देश है | अत : इसकी विदेश नीति का विश्व की राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ता है | स्वतंत्रता से पूर्व भारत की कोई विदेश नीति नही थी क्योकि भारत ब्रिटिश सत्ता के अधीन था, परन्तु विश्व मामलों में भारत की एक सुदीर्घ परम्परा रही है | इसका सांस्कृतिक अतीत अत्यन्त गौरवमय रहा है | न केवल पड़ोसी देशो के साथ, अपितु दूर - दूर के देशो के साथ भी भारत का सांस्कृतिक एवं व्यापारिक आदान-प्रदान होता रहा है | आज भी अनेक पड़ोसी देशो पर उसकी सांस्कृतक छाप स्पष्ट दिखायी पड़ती है | भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता हुआ और अपनी स्वतंत्रता के साथ ही विश्व का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक देश बन गया |

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम मुख्यत: विदेश नीति की अवधरणा, इसका अर्थ, भारतीय विदेश नीति के निर्धारक तत्व और बदलते परिवेश में भारतीय विदेश नीति पर पड़ने वाले प्रभावों तथा विदेश नीति को प्रभावित करने वाले बाह्य कारको का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे, वैश्वीकरण के दौर में भारतीय विदेश नीति कहा तक सफल रही है यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है |

इस इकाई को पढ़ने और समझने के पश्चात हम :-

- विदेश नीति की अवधारणा से परिचीत हो सकेंगे |
- बदलते परिवेश में भारतीय विदेश नीति कहा तक सफल रही है से परिचय हो पाएंगे |
- भारतीय विदेश नीति को प्रभावित करने वाले कारको को जान सकेंगे |
- भारतीय विदेश नीति की मूलभूत विशेषताओ के महत्व को समझ सकेंगे |

13.3 विदेश नीति की अवधारणा

अंतर्राष्ट्रीय संबंधो का निर्धारण प्राय: विदेश नीति के आधार पर होता है | प्रत्येक देश पहले अपने राष्ट्रीय हितों की समीक्षा करता है और फिर उन सिध्दांतों को निश्चित करता है जिन पर उसकी विदेश नीति आधारित होगी | किसी भी देश की विदेश नीति उसके राजनीतिक उद्देश्यों और महत्वपूर्ण कारको पर अधारित होती है जो यह स्पष्ट करता है कि कोइ देश विश्व के अन्य देशों और अन्य गैर - राजकीय संस्थाओं के साथ किस तरह के सम्बन्ध स्थापित करेगा | देश की विदेश नीति को प्रभावित करने वाले ये कारक घरेलु और बाह्य दोनों तरह के होते है| विदेश नीति का निर्माण प्राय: किसी देश के राष्ट्रीय हितों, राष्ट्रीय सुरक्षा, विचारधारा तथा आर्थिक विकास को सुरक्षित करने के लिए किया जाता है | सामान्यता: विदेश नीति के निर्माण का उत्तरदायित्व सरकार के अध्यक्ष एवम विदेश मंत्री का होता है परन्तु इसकी निर्माण प्रक्रिया में कई प्रकार के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक समूहों वर्गो अथवा वर्ग हितो के दबाव कार्य कर रहे होते है |

13.4 भारतीय विदेश नीति की अवधारणा

जनसंख्या की दृष्टि से भारत संसार का दूसरे नंबर का सबसे बड़ा देश है जिसमे भिन्न - भिन्न जाति, धर्मो और भाषाओ वाले लोग रहते है | ऐसी व्यापक विभिन्नता वाले देश में एकता लाना और इसे प्रजातांत्रिक तरीके से प्रबंधित करना अपने आप में एक उपलब्धि है | 1947 के बाद, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत एक स्वतंत्र देश के रूप में उभरा और अपनी स्वतंत्रता के साथ ही भारत ने अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का निर्माण किया| भारतीय विदेश नीति पर भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू की गहरी छाप है | उनके द्वारा निर्धारित विदेश नीति के मूलभूत सिद्धान्त आज भी उतने ही महत्वपूर्ण है | भारत की विदेश नीति की रूप रेखा को स्पष्ट करते हुए जवाहर लाल नेहरू ने सितम्बर 1946 में यह कहते हुए उद्घोष किया था कि "विदेशिक संबंधों के क्षेत्र में भारत एक स्वतंत्र नीति का अनुसरण करेगा और गुटो की खींचतान से दूर रहते हुए संसार के समस्त पराधीन देशों को आत्म निर्णय का अधिकार प्रदान करने तथा जातीय भेदभाव की नीति का दृढ़तापूर्वक उन्मूलन करने का प्रयत्न करेगा |" नेहरू का यह कथन आज भी भारत की विदेश नीति एक आधार स्तम्भ है | शीत युद्ध युध्द के समय भारत ने गुट - निरपेक्षता की नीति अपनाई तथा दोनों महाशक्तियों के संदर्भ में जहाँ तक हो सका राष्ट्रीय हितों के अनुरूप अपनी स्वायत विदेश नीति का अनुसरण किया |

भारत की विदेश नीति की मूल बातों का समावेश हमारे संविधान के अनुच्छेद 51 में कर दिया गया है जिसके अनुसार राज्ये अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बढ़ावा देगा, राज्य राष्ट्रों के मध्ये न्याय और सम्मान पूर्वक संबंधो को बनाये रखने का प्रयास करेगा, राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानूनो तथा संधियों का सम्मान करेगा तथा राज्य अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ो को पंच फैसलों द्वारा निपटाने की नीति को बढ़ावा देगा |

परन्तु बदलते परिवेश एवं समय के साथ भारतीय विदेश नीति में बहुत से बदलाव आये है | जिसके आधार पर भारत की विदेश नीति को तीन अलग - अलग ऐतिहासिक चरणो में बांटा जा सकता है। पहला चरण 1947 से 1962 तक, दूसरा चरण 1962 से 1991 तक और तीसरा 1991 से वर्तमान समय तक | पहली अवधि में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के संरक्षण के अंतर्गत भारतीय विदेश नीति के सबसे आदर्शवादी चरण का गठन हुआ।

दूसरा चरण, (1962) भारत-चीन सीमा युद्ध में भारत की विनाशकारी हार के साथ शुरू हुआ, और इसके साथ ही भारतीय विदेश नीति में क्रमिक बदलाव आना शुरू हो गया था |

तीसरे चरण में शीत युद्ध के अंत और यथार्थवाद के सिद्धांतों को बारीकी से तराश कर एक और अधिक व्यावहारिक विदेश नीति की गोद लेने के साथ शुरू हुआ।

जब भारत स्वतंत्र हुआ उस समय विश्व परिदृश्य काफी बदल चूका था | यह समय शीत युद्ध का था और विश्व दो शक्ति गुटो में विभाजित हो गया था | पहला गुट पूंजीवादी विचारधारा से प्रभावित था जिसकी अध्यक्षता अमेरिका कर रहा था और दूसरा गुट साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित था और इसका अध्यक्ष सोवियत रूस था | भारत के प्रधान मंत्री नेहरू जी किसी भी गुट में शामिल नही होना चाहते थे जिसकी वजह से उन्होंने एक नई नीति अपनायी जिसे गुट - निरपेक्षता के नाम से जाना जाता है | गुट - निरपेक्षता भारतीय विदेश नीति की सबसे बड़ी विशेषता है इसका उद्देश्य बाहरी हस्ताक्षेप से राष्ट्रिय स्वतंत्रता को मुक्त रखना था | गुट - निरपेक्षता का अर्थ न तो तटस्थता न गैर-भागीदारी है और न ही पृथकतावाद था यह एक गतिशील अवधारणा थी जिसका मतलब अंतर्राष्ट्रीय मुद्दो पर स्वतंत्र रूप से खड़ा होना था |

परन्तु बदलते समय के साथ भारतीय विदेश नीति में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आये जैसे 1954-55 में पकिस्तान ने अमेरिका के प्रतिनिधित्व वाले सैनिक गठबंधन केंद्रीय संधि सहयोग की सदस्यता स्वीकार की तो भारत को सोवियत संघ की ओर रुख करना पड़ा। दूसरी तरफ पाकिस्तान में अमेरिका के अड्डो ने सोवियत संघ की चिता बड़ा दी जिसके परिणामस्वरूप सोवियत संघ की भारत में रुचि बढ़ने लगी | इसके साथ ही अमेरिका और पाकिस्तान के संबंधो में मजबूतिया आई और दूसरी तरफ पाकिस्तान और चीन के बीच सैनिक और राजनैतिक सन्धियां हुई जिससे पकिस्तान, 1965 के भारत - पाक युद्ध में चीन की सहायता प्राप्त करने में सफल रहा | वियतनाम युद्ध में व्यस्त होने की वजह से अमेरिका दोनों देशो के बीच कोई समझौता नही करवा पाया जिसका फायदा सोवियत संघ ने ताशकंद में भारत और पाकिस्तान के बीच समझौता करवा के शांति स्थापित करने का श्रेय प्राप्त किया | एक तरफ 1971 में भारत और सोवियत संघ के बीच एक मैत्री समझौता हुआ जिसके तहत भारत को न केवल सैनिक और तकनीकी सहायता मिली बल्कि भविष्य में होने वाले भारत पाक युद्ध में पूर्ण रानीतिक समर्थन भी मिला |

दूसरी तरफ अमेरिका ने 1971 के युद्ध में न केवल पाकिस्तान का साथ दिया बल्कि, भारत को चेतावनी दी और अपने 17वा फ्लीट के समुंद्री बड़े को बंगाल की खाड़ी की तरफ भेज दिया जो की भारत के लिए खतरा बन सकता था | परन्तु सोवियत संघ की मदद से भारत को इस युद्ध में भी विजय प्राप्त हुई | वास्तव में कश्मीर का मुद्दा तथा अमेरिका का पाक समर्थित दृष्टिकोण, भारत की गुट - निरपेक्ष नीति, भारत का सोवियत संघ के साथ नजदीकी संबंध, और भ्रारत का एन पी टी तथा सी टी बी टी पर हस्ताक्ष न करना ये कुछ ऐसे मुद्दे थे जिनके चलते भारत एवं अमेरिका में नजदीकी संबंध विकसित नही हो सके |

1991 में सोवियत संघ के विघटन से भारत ने सयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में बड़ी शक्ति रखने वाला अपना एक विश्वसनीय दोस्त खो दिया इसके साथ ही सोवियत यूनियन से मिलने वाली आधुनिक सैनिक टेक्नोलॉजी गारंटी भी समाप्त हो गई| सोवियत संघ के पतन से भारत की राज्य निर्देशित आर्थिक विकास की नीति को भी जबरदस्त धक्का लगा जिससे विदेश नीति के संदर्भ में भी गम्भीर खतरा उत्पन हो सकता था | भारत ने अपने आंतरिक आर्थिक संकट के कारण उदारीकरण तथा निजीकरण की नीति अपनाई | जिससे भारत का झुकाव पश्चिमी देशो की तरफ बढ़ाने लगा | 1999 का कारगिल युद्ध और 2001 में 9/11 की घटना के उपरांत अमेरिका में आतंकवाद के विरुद्ध भारत और अमेरिका का रुख| मार्च 2006 में हुआ भारत-अमेरिका परमाणु समझौता | यह सबित करता

है की भारत का झुकाव पश्चिमी देशो की तरफ ज्यादा रहा | परन्तु इसके बावजूद भी भारतीय विदेश नीति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया और यह कहना की भारत का झुकाव पश्चिमी देशो की तरफ रहा है यह पूरी तरह सही नही है क्योंकि आज भी भारत और रूस का संबंध उतना ही मजबूत है जितना पहले था, दिसम्बर 2014 में राष्ट्रपति पुतिन द्वारा की गई भारत यात्रा और संधि समझौते इस बात का प्रमाण है कि भारत, अमेरिका तथा रूस दोनों देशो से आर्थिक सहायता प्राप्त करने का इच्छुक है |

13.5 विदेश नीति के निर्धारक तत्व

भारतीय विदेश नीति को निर्धारित करने वाले निम्नलिखित कारक है :-

13.5.1 राष्ट्र का आकर

राष्ट्र का आकार विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण तत्त्व होता है | आकार, उस मनोवैज्ञानिक तथा परिचालक वातावरण को प्रभावित करता है जिसमें नीति - निर्माताओं तथा लोगों ने प्रतिक्रिया करनी होती है | बड़े आकार वाले राज्य से छोटे आकार वाले राज्य की विदेश नीति भिन्न होती है | बड़े आकार वाले राज्य की विदेश नीति निश्चय ही अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में बड़ी शक्ति बनने की इच्छा द्वारा संचालित होती है | अमरीका, रूस, जर्मनी, फ्रांस, चीन, भारत तथा अन्य सभी राज्यों की विदेश नीतियों में आकार एक महत्वपूर्ण तत्व है | बड़े आकार वाले राज्य सदैव सक्रिय विदेश नीति बनाते है, जिसके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संबंधो में प्रमुख भूमिका निभने का प्रयास करते है |

भारत अपने आकार के कारण दक्षिण एशिया का सबसे बड़ा देश है | भारत की केवल अफगानिस्तान को छोड़कर सार्क के सभी देशो के साथ साझी सीमाएँ हैं और अपने आकार एवं आबादी की दृष्टि से यह इन सभी देशो में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति का लाभ उठा रहा है | इसके आलावा, भारत की विश्व के सभी देशो में एक विशिष्ट स्थिति है | क्योकि यह सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है | यह क्षेत्र की दृष्टि से विश्व का सातवा बड़ा देश है और विभिन्न भाषाओ एवं प्रादेशिक विविधताओं वाला विश्व में दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश है | ये सभी विशेषताएँ वैशिवक शक्तियों द्वारा भारत को भी इसमें शामिल करने के लिए उन्हें प्रभावित करती हैं |

13.5.2 भूगौलिक तत्व:

किसी भी विदेश नीति के निर्माण में उस देश की भौगोलिक परिस्थितियां प्रंमुख और निणार्यक भुमिका निभाती है| **के. एम. पणिक्कर** के अनुसार, "जब नीतियों का लक्ष्य प्रादेशिक सुरक्षा होता है तो उसका निर्धारण मुख्य रूप से भौगोलिक तत्व से हुआ करता है | **नेपोलियन बोनापार्ट** ने भी कहा था "की किसी देश की विदेश नीति उसके भूगोल द्वारा निर्धारित होती है |" **डा. एयर्स** का मत भी है की "समझोते तोड़े जा सकते है, सन्धियां भी एक तरफा समाप्त की जा सकती है, परन्तु भूगोल अपने शिकार को कसकर पकड़े रहता है |" भारत के संदर्भ में उपर्युक्त बाते सही है | भारत की विदेश नीति के निर्धारण में भारत के आकार, एशिया में उसकी विशेष स्थिति तथा दूर - दूर तक फैली हुई भारत की सामुद्रिक और पर्वतीय सीमाओ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है | नेहरू g ने 1949 में कहा था की भारत की स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसके कारण कोई भी देश भारत की उपेक्षा नही कर सकता | भारत उत्तर में साम्यवादी गुट के दो प्रमुख देशो - पूर्व सोवियत संघ और चीन के बिलकुल समीप है | भारत के एक छोर पर पाकिस्तान है तो दूसरे छोर पर उसकी सीमा समुद्रो से घिरी हुई है | स्वतंत्रता - प्राप्ति के बाद अपनी लम्बी सीमाओ की सुरक्षा भारत के लिए मुख्ये चिंता का विषय था | यदि भारत साम्यवादी गुट में सम्मिलित हो जाता तो उसकी

समुद्री सीमा पर खतरा उत्पन्न हो जाता, क्योकि पश्चिमी गुट का अपनी नौ-शक्ति के कारण हिन्द महासागर पर दबदबा था | यदि भारत पश्चिमी गुट में सम्मिलित होता तो उत्तरी सीमा पर साम्यवादी राष्ट्र उसके लिए स्थियी खतरा उत्पन्न कर सकते थे | इन भौगोलिक परिस्थितियों में विदेश नीति की दृष्टि से भारत के लिए यह उचित है की वह दक्षिण में समुद्री सीमा सुरक्षित बनाये रखने के लिए ब्रिटेन से मैत्री सम्बन्ध बनाये रखे और उत्तर में अपनी स्थिति सुरक्षित रखने के लिए साम्यवादी देशो से अनुकूल संबंध बनाये रखने की चेष्टा करे |

हिमालय और हिन्द महासागर दोनों ही भारत की सुरक्षा में बहुत बड़ी भूमिका अदा करते है | हिमालय को भारत का प्रकृतिक सुरक्षा पहरी के रूप में देखा जाता है और दूसरी ओर हिन्द महासागर से जुडी लगभग 3500 कि. मी. की समुंद्री सीमा कि सुरक्षा के लिए नई और मजबूत नौ सेना की जरूरत है | ताकि वह महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा को हिन्द महासागर में रोक सके | हिन्द महासागर में भारत का सबसे बड़ा हित यह है कि वह 'स्वतंत्रता एवं शांति का क्षेत्र' बना रहे | अतः भारत ने डियागो गार्शिया में अमरीकी सैनिक अड्डो का उतना ही विरोध किया जितना की वह इस क्षेत्र में बढ़ते हुए सोवियत प्रभाव का विरोधी रहा है | भारत की धारणा है कि इस क्षेत्र में महाशक्तियों की गतिविधिया बढ़ जाने से उसकी सीमाओं एवं व्यापार को खतरा उत्पन्न हो सकता है |

13.5.3 आर्थिक विकास

किसी भी देश की विदेश नीति में आर्थिक तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है | भारत की आर्थिक उन्नति तभी संभव थी जब अंतर्राष्ट्रीय शांति बनी रहे | आर्थिक दृष्टि से भारत का अधिकांश व्यापार पाश्चात्ये देशो के साथ था और पाश्चात्ये देश भारत का शोषण कर सकते थे | भारत अपने विकास के लिए अधिकतम विदेश सहायता का भी इच्छुक था | इस दृष्टिकोण से भारत के लिए सभी देशो के साथ मैत्री का बर्ताव रखना आवश्यक था और वह किसी भी एक गुट से बंध नही सकता था | गुटबंदी से अलग रहने के कारण उसे दोनों ही गुटो से आर्थिक सहायता मिलती रही, क्योकि कोई भी गुट नहीं चाहता था की भारत दूसरे गुट के प्रभाव - क्षेत्र में आ जाए |

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय विदेश नीति के ये मुख्ये निर्धारक रहे जिसका विवेचन निम्नलिखित रूपों से किया जा सकता है :-

1.भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी ताकि शांति को प्रोत्साहन देते हुए वह दोनों गुटो से आर्थिक सहायता प्राप्त करता रहे |

2.भारत जैसे विशाल और महान देश के लिए यह स्वभाविक था की वह ऐसी विदेश नीति का अनुसरण करता जिससे स्वयं के निर्णय शक्ति पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़ सके |

3.भारत के नीति - निर्माताओं ने यह भली-भांति समझ लिया की उनका देश विश्व के पूंजीवादी और साम्यवादी शिविरों के साथ मित्रता स्थपित करके दोनों को अपनी और आकर्षित कर सकता है |

13.5.4 तकनीकी विकास

स्वतंत्रता के समय भारत एक पिछड़ा हुआ देश होने के साथ अविकसित प्रौद्योगिकी और निम्न स्तर का औद्योगीकरण था , जिसकी वजह से भारत तकनीकी विकास और औद्योगीकरण के लिए विकसित राष्ट्रों के आयात पर निर्भर करता था | परन्तु बाद में भारत ने धीरे -धीरे तकनीकी और औधोगिक विकास किया, भारतीय वैज्ञानिको ने तकनीकी में सफलता प्राप्त कर ली है | आज भारत तीसरी दुनिया के देशो में अपनी नई तकनीक और औधोगिक मॉल निर्यात कर रहा है | राकेट टेक्नोलॉजी, सैटेलाइट टेक्नोलॉजी, एटॉमिक टेक्नोलॉजी और बढ़ता

हुआ औधोगिक उत्पादन इन सभी ने भारत की भूमिका को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर और ज्यादा बढ़ा दिया है | भारत और विकसित राष्ट्रों के बीच आज भी बहुत बढ़ा अंतर है भारत आज भी विकासशील राष्ट्र है जो अपने विकास के लिए विकसित राष्ट्रों पर निर्भर करता है | अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओ पर भारत की लगातार बढ़ती निर्भरता उसकी विदेश नीति की सफलता में एक बड़ा खतरा बन सकती है |

13.5.5 वैचारिक तत्व

भारत की विदेश नीति के निर्धारण में शांति और अहिंसा पर आधारित गाँधीवादी विचारधारा का भी गहरा प्रभाव दिखाई देता है | इस विचारधारा से प्रभावित होकर ही संविधान के अनुच्छेद ५१ में विश्व शांति की चर्चा की गई है | भारत के द्वारा हमेशा ही विश्व शांति और शांतिपूर्ण सह - जीवन का समर्थन तथा साम्राज्यवाद और प्रजातीय विभेद का घोर विरोध किया गया है | भारत ने लोकतान्त्रिक समाजवाद को अपनी शासन व्यवस्था का आधार बनाया है | भारत की विदेश नीति की नींव डालने वाले पं. जवाहरलाल नेहरू पाश्चात्य लोकतंत्रीय परम्परा से बहुत प्रभावित थे | वे पशिचमी लोकतंत्रवाद और साम्यवाद दोनों की अच्छाइयों को पसंद करते थे | इस प्रकार की समन्वयकारी विचारधारा ने गुट निरपेक्षता की नीति के विकास में योगदान दिया |

13.5.6 इतिहास और परम्परा

भारत की विदेश नीति के निर्धारण में ऐतिहासिक परम्पराओं का भी बडा योगदान रहा है | प्राचीनकाल से ही भारत की पहचान एक सहिष्णु और शांतिप्रिये देश के रूप में रही है | भारत ब्रिटिश उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का शिकार हुआ लेकिन उसने स्वयं कभी भी किसी भी देश पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न नही किया | भारत की यह परम्परा विदेश नीति में स्पष्ट दिखायी देती है |

हिन्दू सभ्यता का चरित्र और उसकी विशेषताए ; जैसे - शांति , समन्वय और सहिष्णुता की भावनाए हमारी विदेश नीति का बहुत बड़ा आधार है | 190 वर्षो के अंग्रेजी शासन का भी हमारी विदेश नीति के निर्धारण में बहुत बडा योगदान रहा है | देश में संसदीय प्रणाली, उदारवाद, अंग्रेजी भाषा का प्रयोग, प्रशासनिक ढाचा, आदि इसके प्रमाण है | ब्रिटिश साम्राज्यवाद का हमारा कटु अनुभव इसके मूल में है | भारत का शुरु से ही पाकिस्तान के साथ शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध रहा | पाकिस्तान ने भारत पर एक के बाद एक आक्रमण किए और प्रतेक युद्ध में भारत ने पाक को हराया लेकिन भारत ने कभी भी उस पर अपनी शर्ते आरोपित नहीं की | साम्यवादी चीन ने भारत के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया अपनाया और १९६२ में भारत पर आक्रमण करके इसके विशाल भू - भाग पर अधिकार कर लिया इसके बावजूद भारत चीन के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए प्रयत्नशील है | इसके साथ ही दक्षिण - पूर्व एशियाई राष्ट्रों के साथ सांस्कृतिक व आध्यात्मिक सम्बन्ध भी ऐतिहासिक अनुभवों के परिणाम है |

13.5.7 राष्ट्रीय हित

किसी भी देश की विदेश नीति प्राय: राष्ट्रीय हित को ध्यान में रख कर निर्धारित होती है स्वयं नेहरू ने भी संविधान सभा में कहा था की "किसी भी देश की विदेश नीति की आधारशीला उसके राष्ट्रीय हित की सुरक्षा होती है और भारत की विदेश नीति का ध्येय यही है" | भारत के भी अपने राष्ट्रीय हित है जिनकी छाप भारत की विदेश नीति पर स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है | भारत के दो प्रकार के राष्ट्रीय हित है स्थायी हित जैसे की अखंडता और सुरक्षा तथा दूसरा अस्थायी राष्ट्रीय हित जैसे खाधान्न, विदेश पूंजी, तकनीकी विकास आदि |

यदा - कदा भारत की विदेश नीति में विरोधाभास दिखाई देता है, यह इस बात को सिध्द करता है की भारत की विदेश नीति में राष्ट्रीय हितो का सबसे बड़ा स्थान है | राष्ट्रीय हितो के सन्दर्भ में ही भारत ने पशिचमी एशिया के संकट में इजरायल के बजाय अरब राष्ट्रों का सदैव समर्थन किया | गुट - निरपेक्ष होते हुए भी ९ अगस्त 1971 को सोवियत संघ के साथ एक 20 वर्षीय संधि की | भारत की विदेश नीति दूसरे देशो के आतंरिक मामलो से हस्तक्षेप के विरूद्ध है, परन्तु अपने राष्ट्रीय हितो को ध्यान में रखते हुए ही भारत ने अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप की भर्त्सना नहीं की| भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के १४ जनवरी १९८० के उस प्रस्ताव के मतदान में हिस्सा ही नहीं लिया जिसमे अफगानिस्तान से विदेशी सेनाओं तत्काल बिना शर्त और पूर्ण वापसी की बात कही गयी थी | भारत ने ५ जून, 1987 को मानवीय आधात पर श्रीलंका में जाफना की पीड़ित जनता का लिए हवाई मार्ग से रहत सामग्री पहुंचायी | स्वतंत्रता के बाद के इतिहास में यह पहला अवसर था जब भारत ने किसी देश की अंतर्राष्ट्रीय सीमा का उल्ल्ंघन किया | निशस्त्रीकरण का प्रबल समर्थक होते हुए भी भारत ने अणु अप्रसार संधि (N.P.T.) तथा व्यापक परीक्षण प्रतिबंध संधि (CTBT) पर हस्ताक्षर करने से साफ इंकार कर दिया क्योकि भारत का नाभिकीय विकल्प राष्ट्रीय सुरक्षा का एक अंग है |

13.5.8 सैनिक तत्व

नवोदित भारत सैनिक दृष्टि से निर्बल था अतः विदेशी नीति के निर्धारकों ने यह उपयुक्त समझा की दोनों गुटो की सहानुभूति अर्जित की जाये | यह तभी संभव था जब गुटनिरपेक्षता और सह - अस्तित्व की नीति अपनाई जाती | अपनी रक्षा के लिए अनेक दृष्टियों से वह पूरी तरह विदेशो पर निर्भर था | भारत की दुर्बल सैनिक स्थिति उसे इस बात के लिए बाध्य करती रही की विश्व की सभी महत्वपूर्ण शक्तियों के साथ मैत्री बनाये राखी जाये | प्रारम्भ से ही भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य बना रहा, उसका भी यही राज था कि सैनिक दृष्टि से भारत ब्रिटेन पर ही निर्भर था |

13.5.9 नेतृत्व-व्यक्तित्व

भारत की विदेश नीति पर वैयक्तिक तत्वों का विशेषकर पंडित नेहरू के व्यक्तित्व का व्यापक प्रभाव रहा | पंडित जवाहरलाल नेहरू न केवल भारत के प्रधान मंत्री थे, अपितु विदेश मंत्री भी थे उनक उनके व्यक्तित्व की छाप विदेश नीति के हर पहलू पर झलकती है | वे साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, और फासीवाद के प्रबल विरोधी तथा अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के प्रबल समर्थक थे | वे मैत्री, सहयोग और सहअस्तित्व की विचारधारा के पक्ष पाती थे | नेहरू जी महाशक्ति के संघर्ष में भारत के लिए ही नही अपितु विश्व के समस्त नवस्वाधीन राष्ट्रों के लिए असंलग्नता की नीति को सर्वोत्तम मानते थे | अपने इन्ही विचारो के अनुरूप उन्होंने भारत की विदेश नीति को ढाला और आज इसका जो कुछ भी रूप है वह पंडित नेहरू के विचरो का ही मूर्त रूप है |

लेकिन स्वयं नेहरू इसे नहीं मानते थे | उन्होंने एक बार कहा था की "भारत की विदेश नीति को नेहरू नीति कहना सर्वथा भ्रांतिपूर्ण है | यह इसलिए गलत है की मैंने केवल इस नीति का शब्दों में प्रतिपादन किया है, मैंने इसका अविष्कार नहीं किया | यह भारतीय परिस्थितियों की उपज है | वैयक्तिक रूप से मेरा यह विश्वास है की भारत के वैदेशिक मामलो की बागडोर यदि किसी अन्य व्यक्ति या दल के हाथ में होती तो उसकी नीति वर्तमान नीति से बहुत भिन्न न होती |" पंडित नेहरू के अतिरिक्त राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन, विदेश मंत्री वी. के. कृष्ण मेनन और के. एम. पणिक्कर भी उन विशिष्ट व्यक्तियों में थे जिन्होंने भारत की विदेश नीति को प्रभावित किया |

13.5.10 भारतीय समाज

सामाजिक स्तर पर भारत एक बहुलवादी समाज रहा है जिसमें, बिभिन्न जातियां, उपजातियां, वर्ग, विचारधारायें, भाषायें, धर्म, नस्लों आदि का सम्मिश्रण रहा है | राजनीतिक आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक सभी दृष्टिकोणों से यह भिन्नता का देश रहा है | अत: भारत की इस बिभिन्नता में एकता बनाये रखने के लिए भारत को ऐसी विदेश नीति अपनाने की आवश्यकता थी जो सभी राष्ट्रीयताओं अथवा उप - राष्ट्रीयताओं को संतुष्ट कर सके | परिणामस्वरूप राष्ट्रीय हिट को ध्यान में रखते हुए भारत ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बिभिन्न राज्यों में समझौता, तालमेल तथा सहयोग की नीति अपनाने में जोर दिया | जहा भारत पश्चिम की उदारवादी प्रजातांत्रिक परम्पराओं से प्रभावित हुआ, वह यह मार्क्सवादी समाज की उपलब्धियों का भी प्रशंसक रहा और अपनी समझौतावादी नीति के अनुरूप दोनों को उचित सम्मान दिया |

13.6 भारतीय विदेश नीति की विशेषताए

किसी भी देश की विदेश नीति के निर्माण में अनेक तत्वों का योगदान होता है| भारत की विदेश नीति के निर्माण में भी अनेक तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है | ये तत्व या कारक आंतरिक वातावरण और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों, दोनों से संबंधित है जिनका विस्तृत वर्णन उपर्युक्त किया जा चूका है | भारत के नीति निर्माताओं ने कुछ विदेश नीति से संबधित कुछ सिद्धांतों एवं उद्देश्यों को भी निशिचत किया जिन पर भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंध आधारित थे |भारत की विदेश नीति का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित विशेषताए भारतीय विदेश नीति में दिखाई पड़ती है |

13.6.1 गुट निरपेक्षता की नीति

विश्व राजनीति में भारतीय दृष्टिकोण मुख्यत गुट निरपेक्षता का रहा है | इसे भारतीय विदेश नीति का सार कहा जाता है | राष्ट्र के रूप में भारत का जन्म हुआ | स्वतंत्र भारत के समक्ष यह विकट समस्या थी की वह किस गुट में शामिल हो और किसमे नहीं? भारत के समक्ष दो मार्ग थे - या तो किसी एक गुट के साथ मिलकर संसार के संघर्ष क्षेत्र को और अधिक व्यापक करने में अपना योगदान दे या फिर गुटबन्दियों से दूर रहकर दो विरोधी गुटों में मेल मिलाप कराने का यत्न करे | बहुत विचार विमर्श के पश्चात भारत ने किसी गुट में शामिल न होना स्वीकार किया, गुटबंदी में शामिल होना न तो भारत के हित में था और न ही संसार के, अत: भारत ने दोनों गुटो से अलग रहने की जो नीति अपनाई उसे गुट निरपेक्षता की नीति के नाम से जाना जाने लगा जिसके अंतर्गत भारत अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रश्नो पर गुट निरपेक्षता की नीति का अनुसरण करते हुए उनकी वास्तविकता का ध्यान रखते हुए स्वतंत्रता रूप से सभी प्रश्नो पर अपना निर्णय देता है | स्वतंत्रता से लेकर आज तक भारत गुट निरपेक्षता की नीति का अनुसरण करता आ रहा है |

13.6.2 विश्व शांति की नीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विश्व शांति की स्थापना के लिए सदातत्पर रहना और इस महान कार्य में योगदान करना भारतीय विदेश नीति का एक मूल तत्व बन गया है भारत ने इस तरह अपनी विदेश नीति का निर्धारण करना शुरू किया जिनसे विश्व की शांति सुरक्षित रहे इसी उद्देश्य से प्रेरित हो कर उस ने गुट निरपेक्षता की नीति का अनुसरण किया क्योकि गुटबंदी और हथियारों की होर को बढ़ावा देना विश्व शांति के लिए बहुत अधिक खतरनाक है विश्व शांति के लिए ही भारत ने निशस्त्रीकरण का जबरजस्त समर्थन किया क्योकि खतरनाक आणविक हथियारों का अस्तित्व तीसरे विश्व युद्ध का कारण बन सकता है इसलिए 1953 में जब आणविक परीक्षण रोक संधि हुई तो भारत वह पहला देश था जिसने अविलम्ब इस संधि पर हस्ताक्षर किये आज भी इस दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नही आया है भारत ने हर उस निर्णय की आलोचना की जो की विश्व शांति के लिए खतरा उत्पन्न कर सकता है |

13.6.3 पंचशील सिद्धांत

पंचशील सिध्दांतों को भारत की विदेश नीति की आधारशिला कहा जाता है २९ जून १९५४ को अपनाये गए सिध्दान्त ने भारतीय विदेश नीति को एक नई दिशा प्रदान की ये सिद्धांतनिम्नलिखित है :-

1.एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और संप्रभुता का सम्मान करे
2.एक - दूसरे राज्य पर अनाक्रमण
3.अहस्तक्षेप की नीति
4.पारस्परिक सहयोग और समानता का व्यवहार
5.शांतिपूर्ण सहअस्तित्व

इन सिध्दांतों का निर्धारण तिब्बत के संबंध में भारत और चीन के बीच हुए एक समझोते में किया गया था जिसमे चीन और भारत ने आपसी संबंधो के संचालन के लिए इन पांच सिध्दांतों के पालन का निश्चय किया, की वे एशिया तथा विश्व के अन्य देशो के साथ अपने संबंधो में भी इनका अनुसरण करेगा |

13.6.4 साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध

भारत स्वयं एक लम्बे अरसे तक उपनिवेशवाद का शिकार रहा यही कारण था की विश्व में जहां कहीं भी राष्ट्रवादी आंदोलन विदेशी सत्ता से मुक्ति पाने के लिए हुए भारत ने खुल कर उसका समर्थन किया साम्राज्यवादी राष्ट्रों की कटु आलोचना की | इण्डोनेशिया पर जब हॉलैण्ड ने दूरसे विश्व युद्ध के बाद पुनः अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया तो भारत ने इसका घोर विरोध किया | इसके साथ - साथ भारत सयुक्त राष्ट्र संघ में भी उपनिवेशवाद के विरुद्ध बराबर आवाज उठाता रहा है | भारत इस बात पर भी जोर देता रहा है की स्वशासन करने वाले देशो का शासन राष्ट्र संघ के चार्टर के सिध्दांतों के अनुसार किया जाना चाहिए इसमें कोई संदेह नही है की साम्राज्यवाद को जड़ से हिलाने में भारत बहुमूल्य योगदान रहा है |

13.6.5 प्रजातीय विभेद का विरोध

भारत सभी लोगो को समान मानता है तथा उनमे रंगभेद के आधार पर भेदभाव का पूर्ण विरोध करता है | अपनी इसी वैदेशिक नीति के शिध्दांत के आधार पर ही भारत ने दक्षिण अफ्रीका के नस्लवादी शासन की कड़ी आलोचना की जहा पर लोगो के मध्य गोर और काले का विभेद मौजूद था | इसके विरोध में भारत ने न केवल दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध कुछ प्रतिबंध लगाये बल्कि कूटनीतिक संबंधो का विच्छेद भी किया | भारत के प्रयास के फलस्वरूप ही सयुक्त राष्ट्र संघ और विश्व के अन्य राष्ट्रों ने दक्षिण अफ्रीका की सरकार को इस नीति को छोड़ने के लिए बाध्य किया|

13.6.6 सयुक्त राष्ट्र संघ में भारत का विश्वास

भारत शुरू से ही सयुक्त राष्ट्र संघ का प्रबल समर्थक रहा है | सयुक्त राष्ट्र संघ की विचारधारा का समर्थन करने तथा इसके क्रियाकलापों में सक्रियता, सकारात्मक तथा रचनात्मक रूप में भाग लेना भारतीय विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धांतरहा है | भारत ने अंतराष्ट्रीय झगड़ो का निपटारा हमेशा ही सयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में करने की नीति अपनायी | इसकी संबंध संस्थाओ में भी भारत की सक्रिय भागीदारी रही है | अंतर्राष्ट्रीय श्रम संघ तथा सयुक्त राष्ट्र आर्थिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतक संगठनो के कार्यो में उसकी विशेष रूचि रही है | इस प्रकार भारत सयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थक है यह भारतीय विदेश नीति का महत्वपूर्ण पहलु है |

इस प्रकार भारत की विदेश नीति के विभिन्न पहलुओ पर विचार करने से ही स्पष्ट होता है की अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत की प्रतिष्ठा इसकी विदेश नीति के करण ही है क्योकि इसमें विश्व शांति, सहअस्तित्व और सयुक्त राष्ट्र संघ में एवं सिद्धांतहै जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत को एक नई पहचान दी है|

13.7 भारत एक उभरती शक्ति के रूप में

13.7.1 भौगोलिक कारक

भारत अपने भौगोलिक आकार और जनसंख्या के कारण विश्व स्तर पर सातवे नंबर का सबसे बड़ा देश हैI भारत 8°4 'और 37° 6' उत्तरी अक्षांश और 68°7 'और 97 ° 25' पूर्वी देशांतर के बीच भूमध्य रेखा के उत्तर में स्थित हैI भारत का कुल क्षेत्रफल 3,166,414 वर्ग किलोमीटर है I और यह हिन्द महासागर के उत्तर में स्थित है | जिससे यूरोप और एशिया बहुत से रास्ते भारत के समुंद्री क्षेत्र से होकर गुजरते है | उत्तर और उत्तर पूर्व में हिमालये न सिर्फ इसे कड़ाकेदार शर्दी से बचाता है बल्कि मानसून की हवाओं को संरक्षित रखने में भी सहायता करता है | भारत में आवश्यक खाधान्न एवं जल संसाधन भरपूर मात्रा में उपलब्ध है, जो भारत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है | प्रचुर मात्रा में संसाधनो के होने से यह विकसित राष्ट्रों का आकर्षक केंद्र है और इसके साथ ही भारत विश्व का सबसे बड़ा बाजार है जिसमे उत्पादित वस्तुओ की खपत आसानी से हो जाती है जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत के महत्व को बढ़ा देती है

13.7.2 आर्थिक कारक

भारत का अर्थव्यवस्था की दृष्टि से विश्व स्तर में अमेरिका, चीन जापान के बाद चौथा स्थान है | सबसे महत्वपूर्ण बात यह है की भारत की विकास दर दिन प्रति बढ़ती जा रही है 1989 में भारत की विकास दर 1.9 billion थी, 1990 में यह बढ़कर 7.1 billion हो गयी और 2003 में 10.4 % था | 2004 से 2014 तक भारत की विकास दर 721.6 से बढ़कर 1876.8 हो गई जो की अन्य उभरती अर्थव्यवस्थाओं में सर्वोच्य है | वास्तव में यह वृध्दित्व विकास दर ही भारत को एक महाशक्ति के रूप में उभरने के लिए परिपक्व कर रही है |

13.7.3 सैनिक कारक

भारतीय सैन्य शक्ति विश्व में अमेरिका और चीन के बाद तीसरे नंबर की सबसे बड़ी सैन्य शक्ति है जिसकी संख्या 24 लाख से ऊपर है | भारत ने अमेरिक, रशिया,, इजराइल तथा यूरोपियन यूनियन के साथ सैनिक तकनीक हस्तांतरण समझोते किये हुए है | भारतीय सेनाय न केवल भारतीय सीमाओ की रक्षा करती है बल्कि सयुक्त राष्ट्र की शांति सेना में भी यह अहम भूमिका निभा रही है | भारत सयुक्त राष्ट्र प्रजातान्त्रिक निधि का सबसे बड़ा अंशदाता है जिसमे अमेरिका का अनुदान न के बराबर है |

13.7.4 विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी

भारत ने विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी में भी काफी सफलता प्राप्त की है | 2002-03 में भारत ने 3.7 बिलियन यु स $ विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी में निवेश किया है| 31विकासशील देशो में से सिर्फ भारत,चीन, ईरान, दक्षिण अफ्रीका और ब्राजील देशो ने सफलता प्राप्त की है | दुनिया के कुल वैज्ञानिक उत्पादकता में 97.5% इन विकासशील देशों का योगदान हैं, शेष 162 विकासशील देशों का योगदान 2.5% रहा है | इसके साथ -2 भारत में अधिक से अधिक शोध एवं विकास केंद्र खुलते जा रहे है जिससे भारत जिसकी वजह से भारत विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी में धीरे -धीरे सफलता प्राप्त कर रहा है | और इसके साथ ही भारतीय राष्ट्रीय अंतरिक्ष एजेंसी आई. एस. आर. ओ जिसे अमेरिका के बाद भारत में ही लगाया गया है जो की भारत के वैज्ञानिक प्रयत्नो का सबसे बड़ा उदाहरण है | भारत अंतरिक्ष में सेटलाइट भेजने वाला तीसरा नंबर का सबसे बढ़ा देश है |

13.7.5 ऊर्जा

भारत पेट्रोलियम के बड़े आयातकों में से एक है भारत ने अपने इस ऊर्जा संकट को कम करने के लिए अमेरिका के साथ 2006 परमाणु समझौता किया और दिसम्बर २०१४ रूस के साथ संधि की जिससे भारत को भविष्य में होने

वाले ऊर्जा संकट से राहत मिलेगी | और अपने इस ऊर्जा संकट को कम करने के लिए भारत, नागरिक परमाणु एक्टयर तथा जल ऊर्जा केन्द्रो का निर्माण कर रहा है |

अभ्यास प्रश्न

1.भारत की विदेश नीति के मूल तत्व कौन से है ?

A.गुटनिरपेक्षता की नीति B. साम्राज्यवाद और प्रजातीय भेदभाव का विरोध

C.शांति की विदेश नीति D.उपर्युक्त सभी

2. भारत ने किस देश की रंगभेद नीति का विरोध किया

A.नेपाल B. पाकिस्तान

C.दक्षिण अफ्रीका D.घाना

3. ताशकंद समझौते के लिए किसने मध्यस्थता की ?

A.अमेरिका B. सोवियत संघ

C.फ्रांस D.चीन

4. १९९७ में भारत के किस प्रधानमंत्री ने नेपाल की ?

A.देवगौड़ा B. अटल बिहारी वाजपेयी

C.विश्वनाथ प्रतापसिंह D.श्री इंद्र कुमार गुजराल

13.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हमने, "विदेश नीति का अर्थ, भारतीय विदेश नीति की अवधारणा, बदलते परिवेश में भारतीय विदेश नीति के महत्व और भारतीय विदेश नीति के निर्धारक तत्वों का अध्ययन किया है | 1947 के बाद भारत ने अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का निर्माण, भारत के पहले प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में किया जिसकी आधारशिला गुट-निरपेक्षता थी| भारतीय विदेश नीति की रुपरेखा आज भी उतनी ही सफल है जितनी की पहले थी परन्तु बदलते परिवेश में भारत को कई उत्तार चढ़ाव का सामना करना पड़ा जिससे विदेश नीति में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन आये परन्तु इसके वावजूद भी भारत ने गुट – निरपेक्षता की नीति का त्याग नही किया | भारत की विदेश नीति का विश्व के सिद्धान्तो में अपना विशेष महत्व है | आज भारत विश्व में विकशित देशो के बराबर है और अगले 20 सालो में भारत एक महाशक्ति के रूप में उभर कर विश्व के एक विकसित देश के रूप में अपनी पहचान बनाएगा|

13.9 शब्दावली

प्रस्तावना - परिचय, भूमिका, इत्यादि

साम्राज्यवाद - किसी अन्य देश पर राजनीतिक नियंत्रण स्थापित कर लेना

उपनिवेशवाद - किसी देश द्वारा अपने आर्थिक लाभ के लिए दूसरे देश में उपनिवेश स्थापित करना |

गुट – निरपेक्षता - किसी भी शक्ति गुट में शामिल न होना, स्वतंत्र रूप से निर्णय लेना |

निःशस्त्रीकरण - एक ऐसा अधिनियम जिसके द्वारा हथियारों की होड़ को कम करना

13.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.A, 2. .C. 3. .B. 4.D

13.11 संदर्भ ग्रन्थ

Appadorai A (1981), “*India’s Foreign Policy*”, Oxford University Press, New Delhi.

Dixit, J. N.(200),*India's Foreign Policy*, New Delhi: Picus Books

Appadorai, A., M.S. Rajan (1985), *India's Foreign Policy and Relations*, New Delhi: South Asian Publishers.

J.Bandyopadhyaya (2003), *The Making of India's Foreign Policy-Determinants, Institutions, Processes and Personalities*, New Delhi: Allied Publishers Pvt. Limited.

आर. सी. वरमानी (2012), समकालीन अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, गीतांजलि पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

13.12 सहायक - उपयोगी पाठ्य सामग्री

Rajan, M.S. (1990), *Non-alignment and Non-aligned Movement: Retrospect and Prospect*, New Delhi: Vikas Publishing House Pvt Ltd.

Kissinger Henry (1994), Diplomacy, New York, Simon and Schuster.

Waltz Kenneth (1979), Theory of International Politics, New York, McGraw Hills.

13.13 निबंधात्मक प्रश्न

भारतीय विदेश नीति और बदलते समय में उस पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करो ?

गुटनिरपेक्षता भारतीय विदेश नीति की प्रमुख विशेषता है विवेचन करो ?

क्या भारतीय विदेश नीति अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रही है ?

भारतीय विदेश नीति की मुलभुत विशेषताओं का अध्ययन करो ?

ईकाई-14 : गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एवम् उसकी प्रासंगिकता

ईकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 गुटनिरपेक्षता की अवधारणा
14.4 भारतीय गुट निरेपक्षता की अवधारणा
14.5 गुटनिरपेक्ष की नीति अपनाने का कारण
14.6 भारतीय गुटनिरपेक्ष नीति के विकास के विभिन्न चरण
14.7 अभी तक संपन्न गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सम्मलेन
14.8 गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता
14.9 भारत की भूमिका
14.10 गुटनिरपेक्ष नीति
14.11 सारांश
14.12 शब्दावली
14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.14 संदर्भ ग्रन्थ
14.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.16 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

गुट निरपेक्ष आन्दोलन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन है तथा यह भारतीय विदेश निति की एक विशिष्ट विशेषता रही है। भारतीय विदेशनीति के एक आधारभूत विशेषता के रूप में गुट निरपेक्षता का निहितार्थ विभिन्न शक्ति गुटो से समान एवं सैद्धान्तिक दुरी बनाये रखना, सभी गुटो से समान मित्रवत सम्बन्ध बनाये रखना, किसी भी सैन्य गठजोड़ में शामिल न होना तथा एक स्वतंत्र विदेश नीति के मार्ग पर चलना, से है। ऐसा माना जाता है कि गुटनिरपेक्षता की नति मुख्यतः शीतयुद्ध का राजनीति परिणाम थी जो द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होने के तत्काल बाद शुरू हो गया था। इस नीति के विकास में भारत का योगदान प्रमुख था तथा यह अब भी इस आंदोलन के अग्रणी सदस्यों मे से एक हैं। जिस समय गुटनिरपेक्षता की नीति पर बल दिया जा रहा था, उस समय पूरा विश्व शीत युद्ध के दौर से गुजर रहा था। पूरा विश्व दो ध्रुवो-सयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत यूनियन में बँटा हुआ था। साम्यवाद के बढ़ते प्रसार को रोकने के लिए जहां लगभग सम्पूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया तथा पश्चिमी युरोप अमेरिका के नेतृत्व वाले गठबंधन से जुड़ गया था, वही दूसरे तरफ पूर्वी युरोप तथा चीन, सोवियत यूनियन के साथ जुड़ गये थे। उसी समय भारत समेत अनेक तीसरी दुनियाँ के देश, उनके यहाँ राष्ट्र निर्माण और विकास का प्रतिरूप किस प्रकार हो कि समस्या से जुझ रहे थे। इस परिस्थिति में किसी एक गुट के साथ गठबन्धन का अर्थ, दूसरे गुट से मिलने वाली सहायता से वंचित होना था। अतः इन नवोदित राष्टों ने दोनों गुटों से समान दूरी बनाकर, दोनों गुटो से सहायता प्राप्त कर अपने राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया को बढ़ाने का प्रयास किया। स्वाभाविक रूप से इस सन्दर्भ में गुटनिरेपेक्ष की नीति का अनुसरण करना सर्वोतम मार्ग था।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत हम मुख्यतः गुटनिरपेक्षता की अवधारणा की व्याख्या, इसका अर्थ तथा उन कारणों की विवेचना करेंगे जिनका गुट निरपेक्ष आन्दोलन के उद्भव मे मुख्य भूमिका थी। वर्तमान भूमण्डलीकरण के दौर में, विदेश नीति के आधार के रूप में गुटनिरपेक्षता की नीति कहाँ तक प्रासंगिक है, यह अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस इकाई को पढ़ने एवं समझने के पश्चात् हम:-

- गुटनिरपेक्षता की विशेषताएँ अवधारणाओं से परिचीत हो सकेंगे ।
- भारतीय विदेश नीति के आधार के रूप में गुटनिरपेक्षता का अर्थ, विषेषताएँ और महत्व समझ सकेंगे।
- गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का विभिन्न कालो के दौरान विकास और कार्यान्वयन को जान सकेंगे।
- उत्तर शीत युद्ध काल में गुटनिरपेक्षता की नीति कहाँ तक प्रासगिक है, इसका विश्लेषण कर सकेगे।

14.3 गुटनिरपेक्षता की अवधारणा

जैसा कि हमने प्रस्तावना में देखा कि गुटनिरपेक्षता का अपना एक विशिष्ट अर्थ है। अनेको पश्चिमी विद्वानो ने गुट निरपेक्ष के शाबदिक अर्थ को संज्ञान में लेते हुए इसे नाकारात्मक अवधारणा के रूप में व्याख्यायित किया है। उन्होने गुटनिरपेक्षता का तात्पर्य, तटस्थता या तटस्थतावाद के रूप में लिया है। अतः गुटनिरपेक्षता के विशेषताओं और उद्देश्यों का विवेचन करने से पूर्व, इसकी, इससे मिलती जुलती कुछ शब्दालियों से तुलना करना अत्यन्त आवश्यक है। सामान्यतया गुटनिरपेक्षता को तटस्थता,तटस्थीकरण, अलगाववाद एकलवाद, गैर प्रतिबद्धता असम्बद्धता जैसे शब्दों से तुलना की जाती है। तटस्थता शब्द का तात्पर्य युद्ध में सहभागी न होने से है। यह एक कानुनी अवधारणा है जो कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून से सम्बन्धीत है तथा केवल युद्ध के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता है। यह

एक ऐसी अवस्था है जो कि केवल युद्ध की स्थिति में अपनाया जा सकता है। अतः तटस्थता पद केवल प्रत्यक्ष संघर्ष के स्थिति में प्रासंगिक है। एक तटस्थ देश वह देश होता है जो कि तटस्थता के नीति का पालन करता है। तटस्थीकरण किसी देश विशेष के स्थायी तटस्थ अवस्था को प्रदर्शित करता है, जो कि किसी भी अवस्था में तटस्था की नीति को छोड़ नहीं सकता। उदाहरणस्वरूप स्वीटजरलैण्ड ऐसा देश है जो कि स्थायी रूप से तटस्थ है। अलगाववाद से तात्पर्य, दुसरे देशों के समस्याओं से पूर्ण रूप से अलग होने की अवस्था से है। प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व तक अमेरिका पूर्ण अलगाववाद की नीति के पालन के लिए जाना जाता था। गैर प्रतिबद्धता से तात्पर्य त्रीकोणीय या बहुपक्षीय सम्बन्धों में दुसरे शक्तियों से दुरी बनाये रखना है। एकलवाद से तात्पर्य सुनियोजित जोखिम उठाकर अपने ही नीतियों पर सदैव चलना, जैसे अपने थर्मोन्युक्लीयर हथियारां को नष्ट करना। असम्बद्धता से तात्पर्य विभिन्न महाशक्तियों के बीच चल रहे विचारधारात्मक सघंर्ष से दुरी बनाए रखना, लेकिन कुछ विशेष परिस्थिति में जबकि दूरी बनाये रखना असम्भव हो तो, कुछ हद तक एक विशेष गुट की तरफ झुकने से है।

गुटनिरपेक्ष का तात्पर्य, महाशक्तियों के साथ किसी भी तरह के सैन्य गुट में गैर-सहभागिता से है। भारतीय गुटनिरपेक्षता के नीति के निर्माण कर्त्ता, पंडीत जवाहरलाल नेहरू ने भी गुट निरपेक्षता को राष्ट्रो के द्वारा सैन्य शक्ति से दुरी बनाये रखने के रूप में परिभाषित किया है। इसका तात्पर्य यह है कि, जहाँ तक सभव चीजो को सैन्य दृष्टि से न देखना, बल्कि देशो को स्वतंत्र रूप से अन्य देशों के साथ स्वतंत्र मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने से है।

नेहरू के अनुसार गुटनिरपेक्षता एक विस्तृत अवधारणा है। तटस्थ देशों के विपरित, गुटनिरपेक्ष देश प्रत्येक घटना को उसके गुणो के आधार पर परखेगा न कि केवल दुसरे देशों के दृष्टिकोण के अनुसार। इस वधरणा का सिधा सम्बन्ध स्वतंत्रता से है। तटस्थता के विपरित गुटनिरपेक्षता का संबध शांति एवं युद्ध दोनों की अवस्थाओं से होता है। गुटनिरपेक्षता की नीति प्रत्येक देशों को विभिन्न परिस्थितियों में अपने-अपने निर्णय के अनुसार अपने-अपने र्राष्ट्रीय हितों में अभिवृद्धी करने के नीति पर आधारित है। लेकिन गुटनिरपेक्षता की नीति अन्तराष्ट्रीय घटनाओं के प्रति उदासिनता नहीं है। गुटनिरपेक्षता के अवधारणा को स्पष्ट करने लिए इसे दो रूपो में दिखना आवश्यक है- साकारात्मक और नाकारात्मक। नाकारात्मक रूप में यह किसी भी प्रकार के सैन्य गठजोड़ को निषेध करता है। यह गुटनिरपेक्षता का सबसे निम्नतम शर्त माना जा सकता है। अपने-अपने विदेश नीति का संरक्षण सवंर्द्धन गुटनिरपेक्षता का महत्वपूर्ण सकारात्मक स्वरूप है। यह पांरपरिक रूप से विदेश नीति का संरक्षण और संवर्द्धन गुटनिरपेक्ष का सबसे माना जा सकता है।अप ने विदेश नीति का संरक्षण और संवर्द्धन गुटनिरपेक्षता का सबसे महत्वपूर्ण सकारात्मक स्वरूप है। यह पांरम्परिक रूप से विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धान्त भी माना जाता है। साकारात्मक रूप में यह विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर खुल कर उसके गुणों-अवगुणों के आधार पर निर्णय लेना भी है।

यदि देखा जाय तो गुटनिरपेक्ष के नीति की शुरूआत एक साकारात्मक अर्न्राष्ट्रीय घटना के द्वारा हुई थी। इस आन्दोलन का बीज 1955 में इण्डोनशिया के वांडुंग में हुए एफ्रो-एशियाई देशो के सम्मलेन में पड़ गई थी। इस सम्मेलन में एशिया और अफ्रीका के नवोदित स्वतंत्र देशों ने पूर्व-पशिचमी वैचारिक संघर्ष मे शामिल न होने की स्वतंत्र इच्छा की घोषणा की थी। एक राजनीतिक आन्दोलन के रूप में गुटनिरपेक्षता के विकास के लिए बांडुग सम्मेलन मील का पत्थर साबित हुआ।

आगे चलकर 1961 में युगोस्लाविया के बेलग्रेद में हुए प्रथम सम्मलेन में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की औपचारिक शुरूआत हुई। इस सम्मेलन में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के लिए कुछ प्रतिबद्धताओं की घोषणा हई थी, जिसके माध्यम से गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का अर्थ बहुत हद तक स्पष्ट किया जा सकता है-

I.शाति और निशस्त्रीकरण, मुख्य रूप से महाशक्तियों के बीच तनाव को कम करना।

II.स्वतत्रंता, सारे औरपनिवेशिक लोगों को आत्मनिर्णय का अधिकार तथा सभी प्रजातियो को समानता का अधिकार।

III.आर्थिक समानता की माँग, मुख्य रूप से अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की पुर्नसंरचना की मागँ मुख्य था, जिसमें गरीब और सम्पन्न राष्ट्रों की बीच असमानता न हो।

IV.सांस्कृतिक समानता की माँग। पशिचमी सांस्कृतिक वर्चस्व का विरोध।

VI.सार्वभौमिकतावाद और बहुदेशवाद की मागँ, जिसमें, सयुक्त राष्ट्र संघ व्यवस्था में विश्वास पर जोर दिया जाए।

स्पष्ट है कि ये सारे के सारे प्रतिबद्धताएँ आज के सन्दर्भ में भी प्रासगिक है। शीत युद्ध के समाप्त होने से विकासशील और गैर-विकसीत देशो की समस्याए अभी खत्म नहीं हुई है।

14.4 भारतीय गुट निरेपक्षता की अवधारणा

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के गठन में भारत के जवाहर लाल नेहरू, इण्डोनेशिया के सुकार्णे, इजिप्ट के कर्नल नासिर और घाना के क्वामे एनक्रुमा का योगदान महत्वपूर्ण है। परन्तु जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में भारत ही वह पहला देश था जिसने गुटनिरपेक्षता की नीति को सर्वप्रथम अपनाया। जिसका सीधा तात्पर्य अपनी विदेश नीति को स्वतत्रं बनाये रखना, किसी भी शक्ति गुट से संलग्न न होना, अपने विकल्पो को खुला रखना, पूर्वधारणा आधारित निर्णयो को न लेना और सभी मुद्दो को उसके गुण-दोषों के आधार पर परखना था। भारतीय गुटनिरपेक्षता का तात्पर्य अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दो से अलगाव नही था। जैसा कि नेहरू जी ने 1948 में अमेरिकी काँग्रेस में घोषणा के द्वारा स्पष्ट किया था कि जहाँ पर भी स्वतंत्रता को कुचला जायेगा या न्याय को खतरा पहुंचाया जायेगा, या फिर आक्रमण होता है, हम न तटस्थ रह सकते है, न ही रहेंगे.....। हमारी नीति तटस्थतावाद नहीं है बल्कि हमारा मुख्य उद्देश्य शान्ति का संरक्षण है। भारतीय गुटनिरपेक्षता की मुख्य विशेषताओं को निम्न उपशीर्षकों के माध्यम से देखा जा सकता है।

I.सैन्य गठजोड़ का विरोध - गुट निरपेक्षता का एक मुख्य आवश्यक शर्त सैन्य गठजोड़ का विरोध करना था। सैन्य गठजोड़ के कारण पाकिस्तान शुरू-शुरू में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में शामिल नही हो सका था, क्योकि वह पशिचमी सैन्य सगठनों-दक्षिण पूर्व अटलांटिक एशियाई सन्धि-संगठन (सीटो) तथा मध्य पूर्व सन्धि संगठन (सेंटो) का सदस्य था। बाद में 1979 में इन सैन्य संगठनों की सदस्यता छोड़ने के बाद वह गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का सदस्य बन सका।

II.राष्ट्रीय हित का सवर्द्धन - गुटनिरपेक्ष का तात्पर्य अपने विदेश नीति के स्वतंत्र रखने से भी था क्योंकि इसी के माध्यम से कोई भी देश विभिन्न विकल्पों में से सर्वोतम विकल्प चुन सकता था। विभिन्न मुद्दो पर उसके गुणो-दोषों के आधार निर्णय दे सकता था।

III.शीत युद्ध का विरोध - गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के जन्म के पीछै शीत युद्ध ही मुख्य कारण था जो कि अमेरिका और सोवियत संघ के आक्रामक गुट निर्माण के प्रक्रिया के रूप में पहचाना जाता था। इस शीत युद्ध के वातावरण ने गुटनिरपेक्षता के नीति के उद्धव के लिए एक सशक्त आधर प्रस्तुत किया, क्योंकि इसी नीति के माध्यम से आसानी से विश्वशान्ति के लक्ष्य को पूरा किया जा सकता था। विशेषक कर यह एशिया और अफ्रिका के नवोदित स्वतंत्र देशों के लिए ज्यादा उपयोगी था क्योंकि इसके माध्यम से वे संघर्ष से दुर रहकर, विकास के मार्ग को अपना सकते थे।

IV.शक्ति के राजनीति का विरोध - गुटनिरपेक्षता शक्ति राजनिति के स्थान पर प्रभाव राजनीति का विकल्प प्रस्तुत करता है जो कि शांति, न्याय और विकास जैसे मुद्दो को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मुख्य लक्ष्य मानता है।

V.अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना - शीत युद्ध ने अनावश्यक रूप से विश्व में आंतक और अशांति का वातावरण उत्पन्न कर दिया था। गुटनिरपेक्षता की नीति का मुख्य दर्शन यह है कि शक्ति के माध्यम से किसी भी समस्या का हल नही प्रस्तुत किया जा सकता बल्कि इससे समस्या और गंभीर हो जाती है। जबकि अन्तराष्ट्रीय शांति के माध्यम में विश्व में व्यापत गरीबी तथा अविकास जैसे मुद्दों का आसानी से हल प्रस्तुत किया जा सकता है।

VI.स्वतंत्र विदेश नीति का पालन - किसी भी गुट में शामिल न होकर कोई भी देश स्वतंत्र विदेश नीति का पालन कर सकता है तथा अपनी सम्प्रभुता एवं राष्ट्रीय हित का संरक्षण एवं संवर्द्धन कर सकता है।

VII.गुटनिरपेक्षता क्रियात्मकता आधारित नीति है न कि अलगाववाद आधारित- गुटनिरपेक्षता की नीति अलगाववाद की नीति का विरोध करती है। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में तटस्थता एक प्रकार से अन्याय का समर्थन ही होता है। इसके विपरीत गुटनिरपेक्षता की नीति, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों मे पूर्ण भागीदारी तथा निरंतर सहयोग के लिए तत्परता की नीति है।

VIII.दोहरी गुट की नीति नहीं - गुटनिरपेक्षता एक आन्दोलन है न कि संगठन जिसे किसे औपचारिक संगठन के समर्थन की आवश्यकता है। निर्गुट आन्दोलन देशों का कोई तीसरा गुट नहीं है। वास्तव में गुटनिरपेक्षता शांति और विकास के मार्ग पर चलने की एक वैक्लपिक व्यवस्था है।

IX.विकास का अपना प्रतिरूप - गुटनिरपेक्षता की नीति अपने पर थोपे गये किसी भी तरह के विकास के प्रतिरूप का पुर-जोर विरोध करती है। यह नीति गुटनिरपेक्ष देशों को अपने आर्थिक, राजनीतिक और समाजिक व्यवस्था को आकार देने के लिए स्वयं का अपना प्रतिरूप और दृष्टिकोण अपनाने पर जोर देती है। इसके लिए अर्न्राष्ट्रीय स्तर पर अन्तराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का नवनिर्माण करने का प्रयास करती है।

X.नवीन अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का निर्माण - नवीन अन्तराष्ट्रीय विश्व अर्थव्यवस्था की मागँ, गुटनिरपेक्षता की नीति को एक नवीन आयाम देती है। इसी के साथ या विश्व राजनीति को भी पूर्नपरिभाषित करती है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बधों के सन्दर्भ में ‘‘यथास्थितिवाद’’ का विरोध करती है।

इस प्रकार भारतीय गुटनिरपेक्षता की नीति तात्पर्य उपनिवेशवाद, सामाज्यवाद प्रजातीवाद तथा आधुनिक सन्दर्भ में नव-उपनिवेशवाद के विरोध से है। यह महाशक्तियों के वर्चस्व का विरोध करती है। यह सभी देशों के समान सम्प्रभुता तथा उनमें मित्रवत सम्बन्ध को बढ़ावा देने में विश्वास करती है। यह अर्न्राष्ट्रीय विवादो के शांति पूर्ण समाधान में विश्वासकरती है। तथा शक्ति द्वारा किसी भी तरह के समाधान का सर्वथा विरोध करती है। यह संयुक्त राष्ट्र संघ व्यवस्था तथा निःशास्त्रीकरण के प्रक्रिया का समर्थन करती है। सबसे महत्वपूर्ण भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति सामाजिक और आर्थिक मुद्दो को प्राथमिकमता देती है। भारत नवीन आर्थिक अन्तराष्ट्रीय व्यवस्था का पूर्ण समर्थन करता है, जिससे विश्व में अन्यायपूर्ण एवं अंसतुलीत आर्थिक व्यवस्था के जगह न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना हो सके।

14.5 गुटनिरपेक्ष की नीति अपनाने का कारण

भारत द्वारा गुटनिरेक्ष की नीति अपनाने के पिछे निम्न कारण थे-

नाकारात्मक तत्व

I.शीत युद्ध - भारत को अपने विकास की चुनौति से निपटने के लिए दोनों गुटों के सहायता की आवश्यकता थी। अतः भारत ने दोनां गुटों स दुरी बनाये रख, दोनों से मित्रतापूर्ण संबंध रखने का प्रयास किया।

II.सैनिक सगंठन-नाटो, सीटो, सेंटो, वारसा पैक्ट जैसे सैन्य संगठन शीत युद्ध के देन थे। इनमें से किसी संगठन में शामिल होना, विपक्षी गठबंधन से शत्रुता लेना था। साथ ही ये सैन्य संगठन अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिए खतरा और शस्त्र होड़ को बढ़ाने वाले थे।

III.साम्राज्यवाद और उपनिवेशाद का विरोध - शीत युद्ध के समय हो रहे विचारधारात्मक और प्रसारवादी संघर्ष एक तरह उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के पर्नावृति का प्रयास था अतः इनका विरोध गुटनिरपेक्षता की नीति के पालन से आसानी से सम्भव था।

सकारात्मक तत्व

I.प्रबल राष्ट्रवाद - सभी सम्प्रभु राष्ट्रो की तरह भारत भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में स्वतत्रं भागीदारी चाहता था। गुटनिरपेक्ष की नीति इसके लिए सर्वथा उपयुक्त प्लेटफार्म था।

II.राष्ट्रीय हित - गुटनिरपेक्ष की नीति को अपनाने के पश्चात् भारत के पास सभी तरह के विकल्प खुले थे, जोकि किसी एक गुट के साथ होने पर सभंव नहीं था।

III.आर्थिक विकास की आवश्यकता - गुटनिरपेक्षता के नीति के साथ भारत दोनों गुटों से आर्थिक सहायता प्राप्त करने में सक्षम था।

IV.शान्ति की स्थापना - गुटनिरपेक्षता की अवधारणा और भारत के पारम्परिक विश्वासों शांति, अहिंसा, सहिष्णुता इत्यादि में बिल्कुल अनूरपता है। अतः गुटनिरपेक्षता के माध्यम से भारत अपने स्वाभाविक शांतिवाद विकास के मार्ग पर चल सकता था।

V.विश्व राजनिति में सक्रिय भूमिका - भारत जैसा विशाल देश विश्व राजनिति में किसी विशेष गुट का पिछलग्गु बन कर नही रह सकता था। उसे सारे गुटो से हटकर अर्न्राष्ट्रीय राजनीति को एक साकारात्मक आयाम देना था। गुटनिरपेक्षता की नीति निश्चय ही इसके लिए उचीत मंच था।

VI.भू-राजनीति तत्त्व - भारत विश्व को दो सबसे बड़े साम्यवादी देशों चीन और सोवियत संघ रूस का पड़ोशी था। राजनीतिक रूप से एक लोकतांत्रिक देश होने के चलते भारत पश्चिम के नजदीक था, जबकि भौगोलिक रूप से पूर्व के नजदीक। इस स्थिति भारत का किसी एक गुट के साथ जाना उचित नही था।

स्पष्ट है कि गुटनिरपेक्ष की नीति अपनाने के पिछे अनेक कारण उत्तरदायी थे। 5-12 जुन 1961 में काहिरा में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के प्रथम सम्मेलन के तैयारियो के लिए हुए मीटिगं में गुटनिरपेक्षता के लिए पाँच शर्त्ते तय की गई। ये शर्ते निम्न लिखित है-

I.देशों को स्वतंत्र विदेश नीति अपनाना होगा, जो कि विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था वाले देशो के साथ शांतिपूर्ण सह अस्तिव पर आधारित होनी चाहिए। इन राज्यों की विदेश नीति गुटनिरपेक्षता पर आधारित होनी चाहिए।

II.इन देशों को विभिन्न देशों में चल रहे राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलनो को समर्थन देना चाहिए।

III.गुटनिरपेक्ष देशो को महाशक्तियों में चल रहे संघर्ष हेतु स्थापित बहुपक्षिय सैनिक सगठनों का भाग नही होना चाहिए।

IV.यदि किसी देश का किसी महाशक्ति के साथ द्विपक्षीय सैनिक गठंबधन है या वह किसी क्षेत्रीय सुरक्षा संधि का सदस्य है, तो ये गठजोड़ जानबुझकर शीत युद्व के सन्दर्भ वाले नही होने चाहिए।

V.यदि कोइ गुटनिरपेक्ष देश किसी विदेशी शक्ति को अपने यहाँ सैनिक अड्डा बनाने की सहमति देता है तो यह आवश्यक रूप से महाशक्तियों के शक्ति संघर्ष के सन्दर्भ में नही होना चाहिए।

14.6 भारतीय गुटनिरपेक्ष नीति के विकास के विभिन्न चरण

भारतीय गुटनिरपेक्ष नीति के इतिहास को निम्न चरणों में विभाजित यिा जा सकता हैं

I. 1946-1954 यह चरण गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का शुरूआती निर्माण काल था। सितम्बर 1946 में अतरिंम सरकार में शामिल होने के तुरतं बाद जवाहरलाल नेहरू ने यह स्पष्ट किया था कि, भारत की अर्न्राष्ट्रीय राजनीति में

महत्वपूर्ण भूमिका होगी तथा भारत एक स्वतंत्र विदेश नीति का अनुसरण करेगा जो कि इसके राष्ट्रीय हित में होगी। इस स्वतंत्र विदेश नीति का तात्पर्य होगा कि भारत किसी भी गुट में शामिल नही होगा। परन्तु कुछ विश्लेषक ऐसा मानते है कि भारतीय गुटनिरपेक्षता अपने आरभिंक दैर में पश्चिम की तरफ झुका हुआ था विशेषकर अमेरिका की तरफ। इसके कुछ महत्वपूर्ण कारण थें-

i.भारत सुरक्षा उपकरणों के लिए मुख्यतः ब्रिटेन पर निर्भर था। हमारी सेना ब्रिटीश स्वरूप पर आधारित थी।

ii.भारतीय प्रबृद्ध जनमानस तथा नेतृत्व शासन के वेस्टमिनिस्टर स्वरूप से अत्यन्त प्रभावति था

iii. हमारे व्यापार सबधं मुख्यतः पशिचमी देशों के साथ थे।

iv.तथा अतं में उस समय सोवियत नीति विकासशील देशों के पक्ष में नहीं थी तथा गैर साम्यवादी देश को साम्यवाद विरोधी देश माना जाता था।

लेकिन भारत के पश्चिम की ओर झुकाव के बावजूद, पश्चिम ओर पूर्व के बीच एक तरह का सेतु बनने का काम किया। जैसे भारत ने सयुंक्त राष्ट्र के इस निर्णय को स्वीकार किया था कि उत्तरी कोरिया आक्रमण कारी है, परन्तु सयुंक्त राष्ट्र सघं सेना के उत्तरी कोरिया में प्रवेश का विरोध किया था। कोरिया संकट के समाधन में भारत की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका थी। भारत ने 1949 में सर्वप्रथम साम्यवादी चीन को मान्यता दी। इस समय तक सोवियत रूस से भारत का कोई विशेष सम्बन्ध नही था। परन्तु जब भारत ने दक्षिण पूर्वी एशियाई संधि सगंठन (सीटों) में शामिल होने के अमेरिकी प्रस्ताव को ठुकराया, तब से सोवियत संघ गुट भारत के साथ सहयोगी संबध स्थापित करने का प्रयास करने लगा था।

II. 1954-62- गुटनिरपेक्षता के इस चरण में 1954 में भारत ने सर्वप्रथम चीन के तिब्बत पर अधिपत्य को स्वीकार किया। भारत और चीन ने भारत और तिब्बत के बीच व्यापार संबधी सुवधाओं के लिए मसौदा तैयार किया। इस मसौदे का प्रस्तावना पंचशील सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है जो कि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व पर आधारित है। यह तय किया गया कि दोंनो देश आपसी संबधों को पंचशील के आधार पर ही विकसीत करेगे इस चरण में एफ्रो-एशियाई देशों का वांडुंग सम्मेलन हुआ, जो कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की आधार शिला थी। यह सम्मेलन वांडुंग में 18-24 अप्रैल 1955 के दौरान सम्पन्न हुआ इस सम्मेलन में एशिया और अफ्रीका दोंनों महाद्विपों के 29 देशों के राज्यध्यक्षों ने भाग लिया जो कि इन देशों की पहली उत्तर-औपनिवेशिक नेतृत्व की पिढ़ी थी तथा जिनका उद्ेश्य विश्व मुद्दों पर विचार-विमर्श कर उनके समाधान के लिए सामुहिक नीतियो का निर्माण एवं कार्यन्वयन था। बांडुग सम्मेलन के छः वर्षो बाद 1-6 दिसम्बर 1961 के दौरान गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के पहले सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन का भोगोलिक आधार वांडुंग से ज्यादा व्यापक था। इसमें 25 देशो के राज्याध्यक्षो ने भाग लिया था।

III.1962-71 - इस चरण में सर्वप्रथम भारत और चीन के मध्य हुए सीमा विवाद के कारण 1962 में दोनों देशों के बीच युद्ध छीड़ गया। युद्ध के दौरन नेहरू ने अमेरिका से सैन्य सहायता लेने का प्रयास किया जो कि आलोचको के निर्गुट राज्य के रूप में भारत की स्थिति पर सवाल उठाने के लिए पर्याप्त था। इसके अलावा भारत चीन सीमा विवाद ने भारत के सैन्य तैयारियों और कमजोर सुरक्षा व्यवस्था पर भी प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया था। आलोचको का मानना था कि विदेश नीति, सुरक्षा नीति द्वारा समर्थित होती है और युद्ध मे भारत की असफलता भारतीय विदेश नीति की विफलता को दर्शाता है। परन्तु यह धरणा सुरक्षा नीति के संकुचित अवधारणा पर आधारित थी। भारतीय गुटनिरपेक्षता जिस तरीके से संचालित हो रही थी, सोवियत रूस ने वही रूख अपनाया। उसने युद्ध में बजाय कम्युनिस्ट भाई और एक गैर पूँजीवादी मित्र (भारत) में से किसी एक से चुनने में तटस्थता की नीति अपनाई, और दोनों देशों को प्रत्यक्ष वार्ता के माध्यम से युद्ध अतं करने का सलाह दिया। गुटनिरपेक्षता की नीति इतनी

लचीली थी। कि भारत युद्ध के दौरान अमेरिका से सहायता प्राप्त कर सकता था। भारत ने पहली बार इतने बड़े पैमाने पर सैन्य सहायता की माँग की थी। दुसरी तरफ नेहरू के शब्दों मे गुटनिरपेक्षता की नीति भारत के राष्ट्रीय हितों के सुरक्षा का एक साधन थी। विशेषकर जब भारत की सुरक्षा हित खतरे में हो तब गुटनिरपेक्षता का तंत्र खतरे के हटाने के लिए भारत को महाशक्तियों से सैन्य सहायता प्राप्त करने का स्पष्ट रूप से सुविधा मुहैया कराता था। संक्षेप में महाशक्तियों में से एक से सैन्य सहायता प्राप्त कर भारत उपमहाद्विप में शान्ति बहाल करने में सक्षम हुआ। युद्ध में हारने के बावजुद, बिना गुटनिरपेक्षता के मूल को त्याग किये भारत ने इस प्रक्रिया को पुरा किया। 1964 में नेहरू के निधन के बाद उनके उत्तराधिकारी लाल बहादुर शास्.त्री ने अधिक दृढ़ता से गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन किया। यहाँ तक की 1964 में चीन के प्रथम परमाणु परीक्षण करने के बावजूद शास्त्री जी ने परमाणु परीक्षण करने के लिए किसी भी तत्काल भारतीय योजना से इकारं किया। उसी समय भारत में लगभग 18 महिनो की खाद्यान की कमी हुई थी। अमेरिका ने वियतनाम युद्ध में भारत के समर्थन के शर्त पर भारत को सहायता की पेशकश किया। लेकिन भारत ने इस शर्त्त को स्वीकार नहीं किया 1965 के भारत-पाक युद्ध में अमेरिका और चीन दोनों ने पाकिस्तान को मदद दिया। दुसरे तरफ भारत को सोवियत संघ ने हथियारों की सहायता प्रदान किया। भारत ने इस युद्ध को जीत करके अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त किया। दुर्भाग्य से लाल बहादुर शास्त्री जी का ताशकंद समझौता होने के बाद निधन हो गया। इसके बाद इदिंरा गाँधी भारत की प्रधानमंत्री बनी। जिन्होने पूनः एफ्रो-एशियन देशो के सगंठन को बढ़ावा देने का प्रयास किया।

IV. 1971-1990 - इस दौर में भारतीय गुटनिरपेक्षता की नीति को एक और चुनौति भारत-पाक के बीच 1971 के युद्ध के द्वारा मिला जो कि अतंतः बाग्लादेश के जन्म का कारण भी बना। भारत की मदद से बाग्लादेश एक सम्प्रभु राष्ट्र बना। इसी दौरान 1971 में भारत ने सोवियत संघ के साथ मैत्री और सहयोग का समझौता किया। यह संधि अमेरिका के युद्ध में पाकिस्तान के पक्ष में शामिल होने के भारत को दिये गये धमकी के निवारक क रूप में किया गया था। दूसरी तरफ सोवियत सघं ने भी भारत के गुटनिरपेक्ष की नीति का समर्थन करते हुए इस संधि को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए उपयोगी बताया। अतः इस संधी को गुटनिरपेक्षता की नीति विरूद्ध बताना सही नही है। भारत जैसा देश उस समय इस उपमहाद्धीप में हो रहे घटनाओं के प्रति निष्क्रीय नही बना रह सकता था।

भारत द्वारा निभाया गया यह सक्रिय भूमिका वास्तव में गुटनिरपेक्षता के आदर्श का पालन था, क्योंकि इसके द्वारा जहाँ भारत ने अपनी क्षेत्रीय अखण्डता और एकता को सुरक्षित किया वही दुसरी तरफ मानवता खिलाफ हो रहे अन्याय का सशक्त विरोध किया। आगे चलकर जनता पार्टी सरकार ने ''वास्तविक गुटनिरपेक्षता '' का नारा दिया जो कि महाशक्तियों से समान दुरी बनाये रखने के सिद्धान्त पर आधारित थी। यद्यपि कुछ आलोचको मानना था कि जनता सरकार के काल में भारत-सोवियत संघ संबंध थोड़ा ठड़ा पड़ा, जबकि भारत-अमेरिका संबधों में सुधार हुआ। लेकिन कुछ भी हो जनता सरकार भी सोवियत संघ के विरूद्ध नही गया। इस सरकार ने चीन और पाकिस्तान से भी संबधों में सुधार किया। इसी दौरान भारत ने अमेरिका के दबाव की अवहेलना करते हुए परमाणु अप्रसार संधी पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। 1980 से 1990 तक के काल में भारत और सोवियत संघ के सबंध अपने ऊँचाई पर थे। परन्तु भारत अपने गुटनिरपेक्ष नीति का लगातार बढ़ावा देता रहा। भारत ने इसी समय 1983 में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के साँतवें बैठक की मेजबानी किया। 1990 तक आते-आते शीत युद्ध की समाप्ती की घोषणा हो गई।

V. 1991 से अब तक - सोवियत संघ के बिखराव के बाद शीत युद्ध के समाप्ति की घोषणा हुई तथा इस घटना ने गुटनिरपेक्षता के प्रासंगिकता को सबसे बड़ी चुनौति दिया। अनेक आलोचको का मानना था कि गुटनिरपेक्षता का

अर्थ, महत्व और प्रासंगिकता, शीत युद्ध के कारण ही था। परन्तु अब जबकि सोवियत गुट पुरी तरह टुट गया था, देशों द्वारा गुटनिरपेक्षता के नीति को अपनाने का कोई अर्थ नहीं था। लेकिन इसी समय अपने पाँचवें चरण में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने उभरते हुए नवीन विश्व व्यवस्था के सन्दर्भ में नया स्वरूप धरण किया। अब भारतीय गुटनिरपेक्षता का प्रमुख मुद्दा आर्थिक, साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का विरोध करना हो गया। आगे चलकर नरसिम्हा राव सरकार ने अमेरिका के व्यापक परमाणु अप्रसार निषेध संधि ;ब्ज्ठज्द्ध का समर्थन किया जो कि नेहरूवादी निःशस्त्री करण नीति की पूर्नावृत्ति थी। आगे चलकर इन्द्र कुमार गुजराल और देवगौड़ा के नेतृत्व में भी भारत ने उत्तर शीत युद्ध काल के दौरान भारतीय विदेश नीति के आधार के रूप में गुटनिरपेक्षता के महत्व को स्वीकारा और इस नीति का लगातार समर्थन करते रहे। भारत, इजिप्ट और क्यूबा के नेताओं ने गुटनिरपेक्ष आदोलन के कार्टेगना (1996) और डरबन (1998) सम्मेलनों में दक्षिण-दक्षिण संवाद पर जोर दिया तथा पर्यावरण के मुद्दा को पृथ्वी के अस्तीत्व के लिए सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा बताया। क्वालालम्पुर में 2003 के गुटनिरपेक्षता आन्दोलन के 13 वें सम्मेलन में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के पुनरोद्धार का प्रयास किया गया। इस सम्मेलन में एकलवादी वर्चस्व की आलोचना की गई तथा गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को और सशक्त बनाने पर जोर दिया। भारत ने गुटनिरपेक्ष देशों के मध्य अधिक से अधिक व्यापारिक सहयोग बढ़ाने पर जोर दिया। भारत ने शुरू से ही गुटनिरपेक्षता की नीति को विकासशील देशों के द्वारा अपने आर्थिक स्थिति को सुधारने का एक मचं के तौर पर देखा है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने अनेकों सघर्षो का शांतीवादी ढ़ग से सुलझाने का प्रयास किया। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के 14वें सम्मेलन में भारत के तात्कालिन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के बदलते भूमिका और प्रांसगिकता पर जोर देते हुए, समावेशी भूमण्डलीकरण, पश्चिम एशिया के लिए उच्च स्तरीय समुह का निर्माण, ऊर्जा चुनौति से निपटने के लिए ऊर्जा सुरक्षा का गुटनिरपेक्ष देशों की समीति बनाने इत्यादि का आह्वान किया। इजिप्ट में हुए 15 वें गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सम्मेलन में भारतीय प्रधानमंत्री ने आतंकवाद को वैश्विक शांति के लिए खतरा बताया और उससे निपटने के लिए पुरे विश्व को एक होने की माँग की। तेहरान में हुए 16 वें सम्मेलन में भी भारतीय प्रधानमंत्री ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सामुहिक लक्ष्य, शांति और समृद्धि को साकार करने के प्रयास पर जोर दिया। इस प्रकार हम कह सकते है कि उत्तर शीत युद्ध काल में भी भारत गुटनिरपेक्षता की नीति को लगातार समर्थन और सवर्द्धन करने का प्रयास कर रहा है।

16.5 अभी तक संपन्न गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सम्मलेन

स्थान	वर्ष	भाग लेने वाले देशो की संख्या	मुद्दा
1.बेलग्रेद (यूगोस्लाविया)	1961	25	गुटनिरपेक्ष आंदोलन का औपचारिक शुभारंभ,प्रतिभागियों को द्वारा आंदोलन को पहचान करने के लिए शब्द "तटस्थ" को अस्वीकार कर दिया। भले ही उसके आगे “सकारात्मक" उपसर्ग का ही प्रोयोग क्यो ना हो |
2.काहिरा (मिस्र)	1964	47	इसमे उस समय के तीसरी दुनिया के लिए चिंता का विषयों जैसे उपनिवेशवाद के समापन, नस्लीय भेदभाव, आत्मनिर्णय, निरस्त्रीकरण, सैन्य गठबंधन, और आर्थिक विकास इत्यादि मुख्य रूप से राजनीतिक मुद्दों पर चर्चा हुई।

3.लुसाका(ज़ाम्बिया)	1970	54	शिखर सम्मेलन में आंदोलन का प्रारंभिक उद्देश्य- आर्थिक मुद्दो को वरीयता दी गई**a**। शिखर सम्मेलन ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों को लोकतांत्रिक बनाने तथा एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में, स्वतंत्रता विकास और सहयोग जैसे मुद्दो को साथ इस प्रक्रिया को जोड़ने की बात की गई।
4.अल्जीयर्स (अल्जीरिया)	1973	76	एकनवीन आर्थिक विश्व व्यवस्था बनाने का आह्वान किया गया और इसके लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा मे एक प्रस्ताव लाने की बात की गई।
5.कोलंबो (श्रीलंका)	1976	87	एशियाई महाद्वीप में आयोजित होने वाला पहला शिखर सम्मेलन I यह उस समय हुआ था जब पूरे विश्व मे राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रताओं, शांति और प्रगति, दुनिया के सभी लोगों के लिए आत्मनिर्णय का अधिकार तथा शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए लोगों द्वारा संघर्ष किया जा रहा था|
6. हवाना (क्यूबा)	1979	100	लैटिन अमेरिका में आयोजित होने वाले इस पहले शिखर सम्मेलन में इस क्षेत्र की समस्याओं के समाधान की शुरुआत की बात की गई। साथ हीं वैश्विक परिदृश्य पर संघर्ष की संख्या की वृद्धि पर भी चर्चा हुई। शिखर सम्मेलन मे आत्मनिर्णय के अधिकार और मानव स्वतंत्रता पर एक तदर्थ घोषणा भी जारी किया गया।
7.नई दिल्ली (भारत)	1983	101	इसमे सुपर शक्तियों के बीच बढ़ रही बेलगाम आयुध होड़ और विकसित और विकासशील देशों के बीच तेजी से बढ़ती आर्थिक खाई को समकालीन अंतरराष्ट्रीय राजनीति के दो बुनियादी मुद्दों के रूप में पहचान की गई।
8. हरारे (जिम्बाब्वे)	1986	101	इस शिखर सम्मेलन में रंगभेद और नस्लीय भेदभाव का स्पष्ट शब्दों में निंदा की गई
9.बेलग्रेद (यूगोस्लाविया)	1989	103	शिखर सम्मेलन मे कई मुद्दों की समीक्षा की गई जैसे; फिलीस्तीन लेबनान और अफगानिस्तान में स्थिति; ईरानी-इराक सबंध, पश्चमी सहारा, साइप्रस और कोरिया के घटनाक्रम; रंगभेद नीति; दक्षिणी अफ्रीका की स्थिति, अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा और निरस्त्रीकरण की स्थिति; आदि |इसके अलावा विकास में महिलओं का प्रश्न, पर्यावरण की भूमिका, अंतरराष्ट्रीय व्यापार, खाद्य और कृषि, विकासशील देशों के बीच आर्थिक सहयोग इत्यादि की भी चर्चा हुई |
10.जकार्ता (इंडोनेशिया)	1992	108	शिखर सम्मेलन मे कई मुद्दों पर चर्चा की गई जैसे; शीत युद्ध के बाद के युग में गुटनिरपेक्ष आंदोलन के लिए एक नई भूमिका के लिए खोज, समानता, न्याय और लोकतंत्र के आधार पर एक नई विश्व व्यवस्था के निर्माण की समस्या; ऋणग्रस्तता की समस्या; अंतरराष्ट्रीय आर्थिक सहयोग, निरस्त्रीकरण; मानव अधिकार; फिलीस्तीनी मुद्दा और सोमाली संकट।

11.कार्टागेना (कोलम्बिया)	1995	113	शिखर सम्मेलन विकासशील देशों के समग्र विकास लिए, और अधिक अंतरराष्ट्रीय सहयोग और एक नए विश्व व्यवस्था के निर्माण का आह्वान किया गया ।शीत युद्ध के बाद के युग में विकासशील देशों के प्रवक्ता के रूप में आंदोलन की भूमिका बढ़ाने का निश्चय किया गया। शिखर सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के पुनर्गठन, विकासशील देशों मे मानव अधिकार, पर्यावरण संरक्षण और आतंकवाद मे वृद्धि इत्यादि मुद्दो पर भी चर्चा की गयी।
12.डरबन (दक्षिण अफ्रीका)	1998	115	यह शिखर सम्मेलन अपने समय और जारी किए गए प्रस्तावों की महत्ता से इसके अत्यंत उल्लेखनीय है। उत्तर-शीत-युद्ध युग के नये चुनौतियों का सामना करने के लिए रणनीतियों का निर्माण किस प्रकार हो, यह प्रमुख मुद्दा था। इसके लिए आंदोलन के सदस्य-राज्यों ने नई सहस्राब्दी में आंदोलन का दृष्टिकोण, पहचान, भूमिका और नीति विस्तृत करने के लिए अवसरो के तलाश पर ज़ोर दिया।
13.कुआलालंपुर (मलेशिया)	2003	116	शिखर सम्मेलन मे कई मुद्दो पर सदस्य देशों के बीच मतभेदों को देखा गया। जिनमें से शीर्ष पर इराक, दक्षिण कोरिया और तथाकथित आतंकवाद के मुद्दे थे। । वास्तव में शिखर सम्मेलन ने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्तर पर अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रमो को समझने तथा उनके निदान की बात की गई ,इसमे अमेरिका द्वारा इराक मामले में हस्तक्षेप सबसे आगे आया।
14. हवाना (क्यूबा)	2006	118	सम्मेलन अच्छा या बुरा के रूप में राज्यों के वर्गीकरण की निंदा किया गया | सावधानी के पहले हमला करने का सिद्धांत जिसमेपरमाणु हथियारों से हमले भी शामिल थे की भी आलोचना हुई |निरस्त्रीकरण के मुद्दे पर, परमाणु अप्रसार के लिए प्रयासों को, परमाणु निरस्त्रीकरण के समान होना चाहिए माना गया | इस संबंध में, शिखर सम्मेलन मे परमाणु निरस्त्रीकरण के लिए एक चरणबद्ध कार्यक्रम पर सहमती के लिए एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन को आयोजित करने का आह्वान किया गया
15. शर्म अल शेख (मिस्र)	2009	118	गुटनिरपेक्ष आंदोलन के नेताओं ने उनके निरंतर परमाणु हथियारों के उन्मूलन, परमाणु हथियार मुक्त क्षेत्र के लिए सरकार का समर्थन करने के लिए, विशेष रूप से मध्य पूर्व में, प्रतिबद्धता को दोहराई, और शांतिपूर्ण परमाणु ऊर्जा के उपयोग की घोषणा भी की |
१६ .तेहरान (ईरान)	2012	120	शिखर सम्मेलन का शिर्षक "संयुक्त वैश्विक शासन के माध्यम से स्थायी शांति" था | शिखर सम्मेलन का मुख्य दस्तावेज मे शांति पर जोर दिया गया | प्रतिभागीयों ने दुनिया में वैश्विक शासन में मौलिक परिवर्तन और शांति स्थापित करने की पूर्व शर्त के रूप में दुनिया के सामूहिक प्रबंधन और दुनिया को संघर्ष से बचने का आह्वान दिया |

14.8 गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता

गुट निरपेक्ष आन्दोलन का 16वाँ सम्मेलन इरान के तेहरान में 30-31 अगस्त 2012 को सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। यह सम्मेलन पिछले पाँच दशकों में सबसे बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन था कि जैसा कि इसमें 120 देशों के राज्याध्यक्षो ने भाग लिया और 17 देशों के प्रतिनिधियों ने समीक्षक के रूप में सम्मेलन में भाग लिया।

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन संयुक्त राष्ट्र संघ जैसा अनिवार्य सदस्यता वाला संगठन नही है। यह एक एच्छिक सदस्यता वाला संगठन है, फिर भी बेलग्रेद (1961) के पहले सम्मेलन के 25 सदस्य संख्या वाला यह संगठन आज 120 सदस्यों वाले बड़े आन्दोलन में परिवर्तित हो चुका है, जिसमें विभिन्न इतिहास संस्कृति और राजनीतिक व्यवस्था वाले देश एकजुट होकर वैशविक मुद्दों पर सामुहिक शांतिपूर्ण समाधान पर पँहुचने का प्रयास करते है। आखिर ऐसा क्या था कि इतनी में संख्या में विभिन्न देशों ने इसकी सदस्यता ली, जबकि इस संगठन के पास अपने निर्णयो को मनवाने के लिए कोई बाध्यकारी शक्ति नही है। सदस्य देशों का ऐसे संगठन में शामिल होने का क्या फायदा है? ऐसा कहा जा सकता है कि 1950 के दशक में साझा औपनिवेशीक सघर्षों के अनुभवों वाले कुछ देशों ने अपनी सापेक्षिक स्वायत्ता और मार्मिक राष्ट्रीय हित की महाशक्तियों के हस्तक्षेप से रक्षा हेतु गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जैसे मंच की स्थापना किया। यह एक तरह से वैश्विक मामलों में स्वतत्रं रूप से निर्णय लेने की इच्छा थी जिसने की भारत, इण्डोनेशिया, इजिप्ट युगोस्लावियां (भूतपूर्व), चीन इत्यादि देशों को एक मंच पर ला कर खड़ा कर दिया तथा इन्ही कारणें से या आन्दोलन लगातार बढ़ता रहा। शीतयुद्ध काल में इसने दों विपक्षी महाशक्तियों के दबाव को सफलतापूर्वक झेला। जब शीत युद्ध खत्म हो गया तो आलोचको नें कहना शुरू किया कि गुटनिरपेक्षता का अब समय पूरा हो चुका है, क्योंकि शीत युद्ध काल के द्विधुरवीय विश्व के स्थान पर अब बहुधुरविय व्यवस्था आ गई है। परतुं आज जो नये प्रकार के आर्थिक, राजनीतिक और सैनिक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का उद्भव हो रहा है, उसमें गुटनिरपेक्षता की नीति की भूमिका और अधिक बढ़ गई है। वास्तव में आज के सन्दर्भ में विश्व, अमेरिका के एकलवादी नीतियों के वर्चस्व में है तथा सारे देशों को इन नीतियों का समना करना पड़ रहा है। अगर हम पिछले पाँच दशको के गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के इतिहास पर जाये तो हम पायेंगे कि अमेरिका ने सदैव गुटनिरपेक्षता का विरोध किया है। अमेरिका ने हमेशा गुटनिरपेक्ष देशों द्वारा नव उपनिवेशवाद और नव साम्राज्यवाद के विरोध को दबाने का प्रयास किया है। जब भी गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने एशिया, अफ्रिका या लैटिन अमेरिका के नव स्वतंत्र राष्ट्रों के आर्थिक और राजनीति स्वतंत्रता का समर्थन किया तो वह अमेरिका की सहायता से बुरी तरह से दबा दिया गया। अमेरिका का गुटनिरपेक्षता के सन्दर्भ में यह मानना था कि जो हमारे साथ नहीं है वह हमारे विरूद्ध है। अमेरिका के नेतृत्व में नाटों द्वारा विश्व के कई देशों में शासन परिर्वतित कर, उसके नव उपनिवेशवाद नीतियों के समर्थन वाली कठपुतली सरकार स्थापित करना उत्तर शीत युद्ध काल में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के प्रासंगिकता को पुरी तरह से न्यायोचित ठहराता है। अमेरिका द्वारा युगोस्लाविया, अफगानिस्तान, इराक, लीबिया में जो एक तरफा सैन्य कार्यवाहीयाँ की गई वह अपने आप में वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की कमजोरी को दर्शाती है। अतः इस तरह के अव्यवस्था के विरोध के लिए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जैसे बडे मंच की आवश्यकता और बढ़ जाती है। वर्तमान विश्व पूनः उन पुराने उपनिवेशवादी शक्तियों द्वारा नवउपनिवेशवादी नीतियों के प्रसार के खतरे से ग्रस्त है। अतः इन नवउपनिवेशवादी शक्तियों का प्रतिरोध गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जैसे मंच से ही संभव है। जैसा कि हम देख सकते है कि अभी हाल में ही तेहरान में हुए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सम्मेलन का अमेरिका ने विरोध किया था। स्पष्ट है कि एक महाशक्ति के टुटने से वैश्विक समस्याओं का अंत नही हो जाता। आज के नये भू-राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में जहाँ विश्व, आतंकवाद, प्रजातिवाद, अविकास शस्त्र होड़, खाद्यान संकट, जलवायु परिवर्तन, विभिन्न महामहारियाँ के प्रसार इत्यादि समस्याओं से जुझ रहा है, वहाँ गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जैसे साकारात्मक उदेश्य वाले

अन्तर्राष्ट्रीय मंच की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। अतः गुटनिरपेक्षता की नीति इस एक ध्रुवीय विश्व में प्रांसगिक और भविष्य में आने वाले बहुध्रुवीय विश्व में भी प्रासगिक रहेगा।
गुटनिरपेक्ष का आधारभूत सिद्धान्त- निःशस्त्रीकरण, दुसरे देशों के आन्तरिक मामलो में अहस्तक्षेप, समान आर्थिक और राजनितिक व्यवस्था की मागँ तथा संयुक्त राष्ट्र संघ व्यवस्था को मजबुत बनाना इत्यादि पूरे विश्व के लोगों के जीवन को सुधारने के लिए पर्याप्त है। संयुक्त राष्ट्र के सुरक्षा परिषद में सुधार की माँग गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का मुख्य उदे्श्य रहा है। आन्दोलन द्वारा सुरक्षा परिषद के विस्तार की माँग एक तरह से सयुक्त राष्ट्र को बहुपक्षीय बनाने का प्रयास है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के 15वें सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के प्रति विश्वास को दोहराया गया। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अनेको वैश्विक सुधारों की माँग और समर्थन करता रहा है। जैसे नव अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (1974), पृथ्वी सम्मेलन एजेण्डा - 21 (1992) तथा रियो घोषणा पत्र। 15वें सम्मेलन में सर्वसमती से सभी सदस्यो ने अमिर और गरीब देशों के मध्य असमानता को कम करने की प्रतिबद्वता को दोहराया। अमेरिका के विरोध के बावजुद तेहरान में सम्पन्न हुआ गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का 16वाँ सम्मेलन इसके प्रांसगिकता के औचित्य को सही ठहराता है। इस सम्मेलन में भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने सुरक्षा परिषद्, विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं वैश्विक व्यापार, क्ति और निवेश में सुधार का आह्वाहन किया। उन्होंनें वैश्विक शासन व्यवस्था में सुधार की माँग किया। सिरीया में चल रहे गृह युद्ध को इंगित करते हुए उन्होंने ने यह माँग कि, यह समस्या सिरिया के लोगों द्वारा सुलझाया जाना चाहिए। सिरिया में लोकतंत्र का समर्थन, उस पर सैन्य कार्यवाही के माध्य से नहीं होनी चाहिए। शुरू से ही गुटनिरपेक्षता की नीति देशों के स्वतंत्र विदेश नीति की माँग करती रही है और कोई भी देश महाशक्तियों के हाथ में कठपुतली न बने इसका प्रयास करती रही है। आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों के सन्दर्भ में तीन प्रमुख माँग रहे है। - स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार, सामाज्यवाद एवं नव उपनिवेशवाद का विरोध तथा सभी महाशक्तियों के साथ मित्रवत संबधं। यह आज भी उतना ही प्रासंगिक है। इसके अलाँवा आज के सन्दर्भ में इसका मुख्य उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का पुनर्गठन करना हो गया। है।

14.9 भारत की भूमिका

भारत के विदेश नीति के आधार के रूप में गुटनिरपेक्षता की नीति इस एक धुरवीय विश्व में कहाँ तक प्रासंगिक है, प्रश्न भारतीय विदेश नीति के सन्दर्भ में 1990 के बाद सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। आलोचको का मनना है यदि भारत केवल गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन करता रहता तो शायद अपने राष्ट्रीय हितो का सफलता पूर्वक वहन न कर पाता तथा शायद आज की तरह उभरती हुई शक्ति के रूप मे न पहचाना जाता। भारत गुटनिरपेक्षता का संस्थापक देश था। इसने 1983 में गुटनिरपेक्षता के सम्मेलन की मेजबानी की और इसी ने सर्वप्रथम गुटनिरपेक्षता नियमों से सबसे ज्यादा दुरी भी बनाया। आलोचकों के अनुसार 1998 में भारत द्वारा परमाणु परीक्षण करने के बाद तथा उसके पश्चात भारत-अमेरिका परमाणु समझौता जैसे कदमों ने अनेंको गुटनिरपेक्ष देशों को यह सोचने पर मजबुर कर दिया कि भारत गुटनिरपेक्षता के आधारभूत सिद्वान्त से भटक गया है। और भारतीय विदेश नीति में इसकी कोई प्रासंगिक नही रही है। भारत-अमेरिका परमाणु समझौता का विशेषकर इरान ने विरोध किया और भारत पर आरोप लगाया कि वह अपने परम्परागत गुटनिरपेक्षता के मार्ग से भटक गया है। परन्तु ये सारे निर्णय कही से गुटनिरपेक्षता के नीति से भटकाव नहीं है। गुटनिरपेक्षता का सिद्वान्त किसी देश को उसके राष्ट्रीय हित का सवर्द्धन और इस उद्देश्य के लिए महाशक्तियों से मित्रवत सम्बन्ध बनाये रखने पर प्रतिबंध नही लगाती। भारत का परमाणु परीक्षण भी शांतिवाद उदे्श्य तथा प्रथम बार प्रयोग न करने के सिद्धान्त पर आधारित है। भारतीय राष्ट्रीय हित के सुरक्षा के सन्दर्भ में परमाणु परीक्षण आवश्यक था। अपनी विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता के मूल्यों के प्रति भारत का प्रबल समर्थन इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि भारत ने कभी भी अमेरिका का पिछलग्गु बनना स्वीकार

नही किया। जब अमेरिका के तात्कालीन विदेश मंत्री ने 2007 में भारत को गुटनिरपेक्षता की नीति को छोड़ने का सलाह दिया तो भारत में इसका कड़ा विरोध हुआ। बाद में भारत में तात्कालीन अमेरिकी राजदुत डेविड सी मलफोर्ड को यह कहना पड़ा कि भारत गुटनिरपेक्षता की नीति का महत्वपूर्ण रूप से पालन कर रहा है। 16 वें गुटनिरपेक्ष सम्मेलन का अमेरिका द्वारा किये जाने वाले विरोध के बावजूद भारत ने इसमें भाग लिया। भारत के इस सम्मेलन में भागीदारी ने भारत के गुटनिरपेक्षता के प्रति आस्था गहराई से प्रकट करता है। इस सम्मेलन में भारतीय प्रधानमंत्री के भाषण ने भारत की पश्चिम एशिया के प्रति नीति को स्पष्ट कर दिया जिसमें भारत ने अपनी पुरानी प्रतिबद्धता को दोहराते हुए इस बात पर बल दिया कि बाह्य राष्ट्रों को किसी भी देश के सम्प्रभुता का उल्लंघन नही करना चाहिए। भारत ने सिरिया और फिलिस्तीन मुद्दो के भी शांतिपूर्ण समाधान पर जोर दिया तथा यह विश्व से यह सुनिश्चित करने का आह्वान किया कि लंबे समय से कष्ट झेल रहे लोगों को राहत पहुँचना चाहिए। भारत लगातार गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को समसामायिक वैश्विक मुद्दों में सक्रिय भूमिका निभाने पर जोर दे रहा है - जैसे - वैश्विक आतंकवाद मानवाधिकार, विकास एवं नारी उन्मुक्ति,पर्यावरण संरक्षण इत्यादि।

14.10 गुटनिरपेक्ष नीति

बदलते हुए नये वैश्विक परिदृश्य के सन्दर्भ में गुटनिरपेक्ष की नीति को नया स्वरूप देना का प्रयास करते हुए कुछ विद्वान, विश्लेषको, पूर्व अधिकारियों द्वारा गुटनिरपेक्षता 2.0 नामक प्रपत्र तैयार किया गया है जो कि दिल्ली स्थित शोध संस्थान सेंटर फार पॉलिसी रिसर्च द्वारा प्रकाशित किया गया है। इसमें लेखकों ने स्टेªटजिक ऑटोनॉमी (रणनीतिक स्वायतत) शब्द का प्रयोग करके गुटनिरपेक्ष को और अधिक प्रभाही बनाने का प्रयास किया गया है। इसमें भारत को उभरती अर्थव्यवस्थाओं के साथ सबधं सुधारने का नीतिगत सुझाव दिया गया है। इसमें यह सुझाव दिया गया है कि भारत चीन से लगे अपने उत्तरी सीमाओं पर दृढ़ता का रूख अपनाये। इसमें देश के अन्दर शासन के कमियों की तरफ भी ध्यान दिलाया गया है। इस प्रपत्र में यह ध्यान दिलाया गया है कि विश्व आज जिन समस्याओं का सामना कर रहा है उससे निपटने के लिए भारत को अपनी नेतृत्व क्षमता दिखानी चाहिए। इस रिर्पोट का शिर्षक महत्वपूर्ण रूप से इस बात को इंगित कर रहा है कि गुटनिरपेक्षता भारतीय कुट नीति का एक गम्भीर एवं खास हिस्सा अभी भी है।

संक्षेप में हम यह कह सकते है कि भारत के विदेश नीति के आधार के रूप में गुटनिरपेक्षता की नीति अब भी प्रासंगिक है। भारत के सुरक्षा परिषद् के सदस्य बनने का लक्ष्य बिना गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जैसे बड़े मंच के सहायता के संभव नही हैं साथ ही भारत को पाँच महाशक्तियों के साथ भी सबधं अच्छे बनाकर रखने होगें। भारत का गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को और अधिक प्रभावी बनाने का प्रयास भी करना चाहिए। इसके लिए वह गुटनिरपेक्षता की नीति के लिए नया रोडमैप बना सकता है। साथ ही सदस्यों देशों के आन्तरिक मतभेदों को दुर करने के प्रयास भी कर सकता है। भारत को सदस्यों देशों का वैश्विक शासन से जुडे हुए मुद्दों तथा मतभेदों को दुर करने का प्रयास करना चाहिए। साथ ही भारत को गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के गरीबी उन्मुलन, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आपदा प्रबंधन जैसे प्रोजेक्टों को आर्थिक मद्द भी मुहैया करानी चाहिए। भारत इतना सशक्त है कि वह गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को और अधिक प्रभावी बना सके। यह भारत के राष्ट्रीय हित के अभिवृद्धि में सहायक भी होगा।

16.9. अभ्यास प्रश्न

(1) भारतीय विदेश नीति मे गुटनिरपेक्षता नीति का तात्पर्य –

A. राष्ट्रों के बीच एक मध्यस्थ के रूप में कार्य करना **B**. महशक्तियों के गुट राजनीति में गैर-भागीदारी

C. पड़ोसी देशो के साथ सहयोग **D**. सारे देशो का पक्ष लेना

(2) पंचशील समझौता किन देशो के बीच हुआ था

A. भारत और म्यांमार **B**. भारत और पाकिस्तान **C**. भारत और चीन **D**. भारत और नेपाल

(3) पहला गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन किस शहर में आयोजित किया गया था-

A.हवाना **B**.जकार्ता **C**.बेलग्रेड **D**.नई दिल्ली

(4) पहला गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन कब आयोजित किया गया था

A.1961 **B**.1964 **C**.1970 **D**.1973

14.11 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हम लोगो ने गुटनिरपेक्षता की नीति की अवधारणाए इसके एक आंदोलन के रूप मे जन्म के कारण तथा इसके विकास के विभिन्न चरणो का अध्यन किया स साथ ही हमने भारत के विदेश नीति के एक आवश्यक पहलू के रूप मे इस अवधारणा का विश्लेषण भी किया स गुटनिरपेक्ष आंदोलन दो वैश्विक घटनाक्रम के संदर्भ में उभरा था. पहला तीसरी दुनिया के देशो का उपनिवेशवादी शासन से मुक्त होना और विश्व के दो माहाशक्तियों के अमेरिका और सोवियत संघ के बीच शीत युद्ध का होना स इसी संदर्भ मे गुटनिरपेक्षता का अर्थ एवं उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है क्योकि गुटनिरपेक्षता की नीति शीत युद्ध और उससे उपजे गुटो की राजनीति से दूर रहते हुए अपनी विदेश नीति का स्वतन्त्र रूप से पालन करने के नजरिए को दर्शाता है। दूसरे शब्दो मे गुटनिरपेक्षता का जन्म विशिष्ट राजनीतिकए आर्थिक सामरिक तथा स्थानीय प्रस्थित्यों के संदर्भ मे हुआ था। गुटनिरपेक्षता की नीति ने अपने शुरवाती दौर मे अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाईएविशेषकर संयुक्त राष्ट्र संघ मे। आगे चलकर शीतयुद्ध के समाप्ति और एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था के कारण आलोचको ने इसे अप्रासंगिक बताना शुरू कर दिया स परंतु यह विचार उचित नहीं है क्योकि निःसन्देह शीतयुद्ध का संदर्भ परिवर्तित हो गया है लेकिन आज भी विश्व गरीब और अमीर दो भागो मे विभाजित है स ऐसे अनेकों कारण आज भी विद्यमान है जिनके लिए गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन अपरिहार्य है। उदाहरणस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ का लोकतांत्रिकरणए वैश्विक आतंकवादएमानवाधिकारएविकास एवंम नारी उन्मुक्तिए पर्यावरण संरक्षण इत्यादि स और इसी कारण भारत आज भी इस आंदोलन का प्रबल समर्थन कर रहा है स आवश्यकता इस बात की है इस आंदोलन को बदलते वैश्विक संदर्भ पुनः परिभाषित की जाय ताकि वैश्विक न्याय के इसके लक्ष्य को साकार किया जा सके |

14.12 शब्दावली

प्रस्तावना- परिचय,भूमिका इत्यादि

सामरिक- युद्ध.नीति.विषयकए रणनीति.संबंधी

उपनिवेशवाद- इसका अभिप्राय उस स्थिति से हैंए जिसमें कोई राष्ट्र अपनी राजनीतिक एवं सैनिक शक्ति का विस्तार अन्य राष्ट्रों पर कर नियंत्रण स्थापित कर वहां के संसाधनों का अपने हित में शोषण करता है स

तटस्थ- उदासीन

14.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.B, 2.C, 3.C 4.A

14.14 संदर्भ ग्रन्थ

1. Arun Mohanty (2012), "Nam's Relevance in the Emerging Multipolar World and India", *Mainstream*, 50(37).

2.J.Bandyopadhyaya (2003), *The Making of India's Foreign Policy-Determinants, Institutions, Processes and Personalities*, New Delhi: Allied Publishers Pvt. Limited.

3.Muhammad Badiul Alam (Fall 1977),"The Concept of Non - Alignment: A Critical Analysis", *World Affairs*, 140(2): 166-185

4.Palmer and Parkins (2005), *International Relations-The World Community in Transition*, New Delhi: A.I.T.B.S. Publishers and Distributers.

5. Rao, P.V. Narasimha (2009), "Nehru and Non-alignment", *Mainstream*, 47(24).

14.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.Dixit, J. N.(200),*India's Foreign Policy*, New Delhi: Picus Books

2.Rajan, M.S.(1990), *Non-alignment and Non-aligned Movement: Retrospect and Prospect*, New Delhi : Vikas Publishing House Pvt Ltd.

3.Appadorai, A., M.S. Rajan (1985), *India's Foreign Policy and Relations*, New Delhi: South Asian Publishers.

14.16 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति का आलोचनात्मक समीक्षा करें।

2.शीत युद्ध के पश्चात भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति की प्रासंगिकता का परीक्षण करें।

इकाई -15 : भारत की दक्षेश नीति,आशियान एवं पूर्व की ओर देखो नीति

इकाई की संरचना

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 सार्क तथा भारत
15.4 सार्क देश और भारत
15.4.1 सार्क की विभिन्न विकास परियोजनाओं में भारत की भूमिका
15.4.2 सार्क में भारत की भूमिका
15.4.3 सार्क में भारत की चुनौतियां
15.5 पूर्व की ओर देखों नीति तथा भारत
15.5.1 पूर्व की ओर देखो नीति में भारत के तीन सूत्री कार्यक्रम
15.5.2 पूर्व की ओर देखो नीति में भारत की चुनौतियां
15.6 आसियान तथा भारत
15.6.1 आसियान में भारत की भूमिका
15.6.2 आसियान देशों के साथ भारत व्यापार संबंध
15.6.3 आसियान में भारत की चुनौतियां
15.7 सारांश
15.8 शब्दावाली
15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.10 संदर्भ ग्रंथ
15.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.12 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

क्षेत्रीय सहयोग संगठन की स्थापना क्षेत्रीय एकीकरण की आवधारणा पर आधारित होती है। अनेक सामान्य निर्धारकर तत्व, जो प्रायः क्षेत्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देते है, वे हैः भूगोल, जाति, भाषा, धर्म, सभ्यता, ऐतिहासिक-राजनीतिक अथवा सामाजिक-आर्थिक समानताएं। सामाजिक तथा राजनीतिक दोनों ही स्तरों पर मानव संबंध प्रायः संघर्ष-पूर्व रहे है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में संघर्ष का बाहुल्य रहता है। समय-समय पर राज्यों के मध्य किसी प्रश्न विशेष पर विवाद उत्पन्न होते रहते है। अतः जरूरी है कि विभिन्न देशों में जितना अधिक पारस्परिक मेल-जोल और आदान-प्रदान होगा, सामूहिक प्रयासों की सफलता की संभावनाएं उतनी ही अधिक होगी। उपरोक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए सार्क, आसियान, जैसे क्षेत्रीय सहयोग संगठन की स्थापना की गई तथा अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा और राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए भारत पूर्व की ओर देखने की नीति पर अग्रसर है। क्षेत्रीय संगठनों की स्थापना तथा इस दिशा मे प्रयास के लिए संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 52 में प्रावधन है।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत हम –

- क्षेत्रीय संगठनों जैसे सार्क तथा आसियान के संगठन के बारे में जान सकेंगे |
- इन संगठनों के उद्देश्यों को समझ सकेंगे |
- इन क्षेत्रीय सहयोग संगठनों के भारत के साथ सम्बन्ध और इनमें भारत की भूमिका को जान सकेंगे |
- भारत किस प्रकार इन क्षेत्रीय संगठनों में महत्व रखता है इसको भी जान पायेंगे।

15.3 सार्क तथा भारत

सार्क को लगभग 29 वर्ष यानी 1985 से आस्तित्व में आए हो गया है, ये विश्व की लगभग 25 प्रतिशत आबादी का प्रतिनिधित्व करने वाला बेहिसाब प्राकृतिक संसाधनों वाला क्षेत्रीय सहयोग संगठन है। प्रधान सार्क क्षेत्र वास्तव में दक्षिण एशिया, मध्य एशिया तथा पश्चिम एशिया के बीच सेतु का काम कर सकता है, बशर्ते दक्षिण एशिया के देशों को न केवल अपनी आर्थिक क्षमता की पहचान हो बल्कि वे आपस में तालमेल तथा समन्वय और पारस्पारिक सद्भाव तथा मैत्री संबंध स्थापित करे, इस दिशा में कदम उठाने के लिए भारत ने समय-समय पर कई महत्त्वपूर्ण प्रयास किए।

भारत सार्क देशों का मेरूदण्ड है। वास्तव में भारतीय उपमहाद्वीप के इन देशों को भारत से न केवल मार्ग दर्शन होता है बल्कि देशभारत पर अनेक बातों पर निर्भर भी रकते है। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े ये भारत की मजबूत आर्थिक स्थिति के कारण अपनी उन्नति के आशवस्त है। पारस्पारिक आर्थिक सहयोग ने इन देशों में विश्वास पैदा किया है। सामरिक महत्व के इस क्षेत्र के देशों पर महाशक्तियां अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए निरंतर प्रयत्न करती रही है। भारत की सैनिक शक्ति की परोक्ष छात्रछाया में ये देश अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाए रखने में समर्थ है। भारत सार्क देशों का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है जो निम्नलिखित हैः

15.4 सार्क देश और भारत

भारत और पाकिस्तान के बीच यदि व्यापार पैटर्न को देखे तो पाकिस्तान को भारत का निर्यात 1.8 अरब डॉलर है।

भारत और बंग्लादेश दोनों देशों के बीच 1.6 अरब डॉलर का व्यापार होता है। जिसमें बंग्लादेश का भारत को निर्यात मात्र 25 करोड़ डॉलर है।

भारतीय कंपनियों ने नेपाल के बाजार में 14 अरब डॉलर का निवेश किया। विदेश व्यापार के लिहाज से नेपाल का लगभग दो तिहाई व्यापार भारत से होता है।

भारत ने भूटान की पंचवर्षीय योजनाओं तथा ढांचागत विकास हेतु 10,000 करोड़ रूपए कर्ज बतौर दिए है जिसका उपयोग सड़क तथा रेल पटरी बिछाने हेतु किया गया।

भारत और श्रीलंका के बीच मुक्त व्यापार व्यवस्था दोनों देशों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों का एक उल्लेखनीय उदाहरण है।

मालद्वीप की अर्थव्यवस्था पर्यटन तथा मत्स्यिकी पर निर्भर है। वहां लगभग 60 हजार से अधिक श्रमिक में 50 प्रतिशत भारतीय है।

भारत अफगानिस्तान को सहायता देने वाला चौथा बड़ा देश है। भारत अफगानिस्तान में पिछड़े 6-7 साल से उसके पुनः निर्माण में सहायता देता रहा है।

15.4.1 सार्क की विभिन्न विकास परियोजनाओं में भारत की भूमिका

सार्क को वैश्विक व्यवस्था बनाने का भारत का सुझाव ताकि बढ़ती तेल और खाद्य पदार्थो की कीमतों से तेल उपभोक्ता देशों के हितों की रक्षा की जा सके।

भारत खाद्य संकट के समाधान में कोष की स्थापना के माध्यम से अन्य सार्क देशों की मदद करते हुए प्रतिबद्ध है।

सार्क विकास कोष जिसके तहत भारत ने सामाजिक और ढांचागत विकास सहित विभिन्न क्षेत्रों विशेषकर कम विकसित देशों की परियोजना हेतु सहायता उपलब्ध करने की वचनबद्धता।4.3.5.4 सार्क विश्वविद्यालय जिसके तहत 2010 तक 5000 छात्र विद्या अध्ययन के लिए एवं विश्व स्तर के वैज्ञानिक, तकनीकी विद् और चिंतक शामिल होंगे।

15.4.2 सार्क में भारत की भूमिका

सार्क विकास कोष (एस.बी.एफ) भी चालू हो गया है। इसे सार्क सचिवालय के अस्थायी प्रकोष्ठ में चलाया जा रहा है। भारत ने अपने वायदे के अनुसार 18.99 करोड़ अमरीकी डॉलर का पूरा योगदान एसडीएफ को हस्तांतरित कर दिया है उसने सार्क सदस्य देशों को बायो मास कूकिंग स्टोव तथा सोलर लालटेन प्रदान करने के बारे में तीसरी परियोजना प्रस्तावित की है।

भारत टेलीमेडिसिन (भूटान और अफगानिस्तान), दालों की शटल ब्रीडिंग (भूटान), बीज परीक्षण प्रयोगशाला की स्थापना (भूटान), वर्षा जल संरक्षण (भूटान और श्री लंका) और ग्रामीण सौर ऊर्जा विद्युतीकरण परियोजना (श्रीलंका) के क्षेत्रों में भी परियोजनाएं लागू कर रहा है। ये परियोजनाएं हब एंड स्पोक मैकेनिज्म के अंतर्गत लागू की जा रही है, जिनका केंद्र भारत है। दक्षिण ऐशिया मुक्त व्यापार समझौता (साफ्टा) पूरी तरह लागू किया जा रहा है।

सार्क के सदस्य देशों के बीच लोगों के स्तर पर गतिविधियों और यात्राओं के आदान-प्रदान में महत्वपूर्ण बढ़ोत्तरी हुई है। इसका श्रेय प्रशिक्षण कार्यक्रमों, कार्यशालाओं में हिस्सा लेने के अवसरों और सांस्कृतिक गतिविधियों के आयोजन को जाता है जैसे प्रगति मैदान, आईटीपीओ, सूरजकुंड मेले में सार्क के, सदस्य देशों की हथकरघा और हस्तशिल्प प्रदशर्निया इत्यादि की जाती है।

सार्क की प्रक्रियाओं में भारत ने जो गतिशीलता पैदा की है, उसका पता, असंख्य प्रशिक्षण कार्यक्रमों से भी चलता है, जिनकी मेजबानी भारत द्वारा सदस्य देशों के लिए की जाती है जैसे महिला अधिकारिता सुरक्षा, ऊर्जा इत्यादि।

भारत सार्क के प्रति इस बात के लिए गतिशील रूप से प्रतिबंद्ध है कि वह स्वास्थ्य, शिक्षा और बुनियादी ढांचा जैसे मूलभूत विकासात्मक पहलुओं के बारे में पड़ोसी देशों को शामिल करेगा।

भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 18वें सार्क सम्मेलन में सार्क क्षेत्र के लिए स्वास्थ्य, विज्ञान, वीजा नीति, मूलभूत संरचना मे सुधार के मुद्दों को उठाया और काठमाडू से दिल्ली की बस का उद्घाटन किया।

सार्क व्यापार में तेजी से बढ़ोत्तरी के लिए भारत द्वारा साफ्टा (एसएएफटीए) तथा साप्टा (एसएपीटीए) के लागू करने पर बल देना क्योंकि साफ्टा के बिना सार्क अधूरा है।

15.4.3 सार्क में भारत की चुनौतियां

1.दक्षिण एशिया में कई द्विपक्षीय समस्याएं है। साफ्टा को लागू करने या सार्क देशों के आपसी व्यापार के विस्तार हेतु भारत और पाकिस्तान के बीच संबंधों में यथोचित सुधार पहली शर्त है।

2.जीरो ट्रेरिफ की व्यवस्था होने के बावजूद सार्क देशों का विश्व अर्थव्यवस्था में व्यापार लगभग 6 प्रतिशत है जबकि नाफ्टा के संबंध में यह 49 प्रतिशत और आसियान के लिए 30 प्रतिशत है।

3.सार्क की तुलना अक्सर अन्य क्षेत्रीय संघो, विशेषकर आसियान से की जाती है। परंतु पाकिस्तान या कभी-कभी दूसरे सार्क देशों में पारस्पारिक विश्वास की कमी के कारण सार्क इस तुलना में खरा नहीं उतरता।

4.सार्क क्षेत्र में में अंताकवाद भारत के लिए बहुत बड़ी चुनौती है, कई सार्क शिखर सम्मेलनों में भारत ने यह मुद्दा उठाया है। नवम्बर, 2014 18वें शिखर सम्मेलन के दौरान आतंकवाद को अहम मुद्दा बताया।

5.सार्क देशों के बीच अविश्वास अधिक और विश्वास कम रहा है। भारत के पड़ौसी देशों को इस बात का डर था कि सार्क के दाये में रहकर आर्थिक सहयोग करने से अधिक शाक्तिशाली देश यानी भारत के पूंजीपतियों की स्थिति मजबूत होगी और ऐसा पड़ोसी देशों की कीमत पर होंगा।

6.अतः उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत सार्क देशों के लिए बड़े भाई (Big Brother) की भूमिका निभा रहा है। विभिन्न चुनौतियों के बावजूद भारत ही सार्क का नेतृत्व कर सकता है। इसीलिए सबसे बड़ा देश होने के नाते भारत को सामरिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। नीचे भारत एकमात्र देश है

जिसकी सब से साथ सीमाएं है या सबका निकटतम पड़ोसी है। हमें उदारवादी दृष्टिकोण से एकतरफा वाणिजय सुविधाएं देनी होगी, जिससे इन देशों की जनता और सरकार दोनों ही भारत से अच्छे संबंधों का महत्त्व समझे और भारत विरोधी तत्व कमजोर हो।

15.5 पूर्व की ओर देखो नीति तथा भारत

भारत के पूर्वोत्तर सीमांत से जुड़े म्यांमार से शुरू होकर जो भाग प्रशांत महासागर की तरफ अपनी पीठ कर फिलिपीन्स द्वीप समूह तक फैला है। आज दक्षिण-पूर्वी एशियां के नाम से जाना जाता है। चीन के दक्षिण में और आस्ट्रेलिया के उत्तर में स्थित यह सारा इलाका हजारों वर्षों से भारतीय उपमहाद्वीप के साथ घनिष्ठ एवं आत्मीय संबंध तथा संपर्क बने रहे है। किंतु जब आसियान का गठन हुआ तो भारत का मानना था कि यह क्षेत्रीय एकीकरण का रचनात्मक प्रयास नहीं वरन् साम्यवाद निरोधक मोर्चा बंदी का इंतजाम था। इसीलिए उसके साथ सहकार में खास रूचि सोवियत संघ के साथ विशेष मैत्री संधि संपन्न करने के बाद इंदिरा गांधी ने नहीं दर्शाई। बाद के वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य तेजी से बदला और भारत को अपनी अदूरदर्शिता पर पछतावा होने लगा। इंडोनेशिया, मलेशिया तेल संपदा के कारण खुशहाली में भारत को पछाड़ कर कही आगे निकल गए है। नन्हा सा सिंगापुर भी भारत भी भारत को अपनी बेहतरी के लिए नसीहत देने लगा है। ब्रूनेई की रत्ती जैसी सल्तनत भी तेल के कारण सामरिक महत्व की बन चुकी है। इन्हीं सभी कारणों से नरसिंह राव के कार्याकाल में 'पूरब की ओर देखो' का नारा बुलंद किया गया। यह भारत की विदेशनीति को 'नयी' दिशा देने और गतिशील बनाने का तर्कसंगत प्रयोग था। पर राव के अस्ताचलगाकी होने के साथ-साथ यह पहल भी चुक गई। सन् 2001 के आरंभ में भारत की नई ''पूर्व की ओर देखो'' नीति के क्रियान्वयन हेतु प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने प्रथम चरण में वियतनाम तथा इंडोनेशिया की अत्यंत सफल यात्राएं की। इंडोनेशिया की यात्रा के बाद/पश्चात् प्रधानमंत्री ने कहा कि ''यह पूर्व की ओर देखो नहीं, पूर्व को ओर पुनः देखो की प्रक्रिया है। साथ ही मनमोहन सरकार ने भी इसे अपने कार्यकाल में लागू किया था। दुनिया में मुसलमानों की सबसे बड़ी आबादी इंडोनेशिया में बसी है। भारत की सोच है कि सऊदी अरब के आक्रमक उग्र बहाबी इस्लाम की तुलना में सहिष्णु उदारवादी इंडोनेशियाई इस्लाम के साथ दक्षिण एशियाई इस्लाम का नाता विश्व के लिए कहीं अधिक कल्याणकारी हो सकता है। यह बात पूरब की ओर देखने की प्रमुख प्रेरणा है।

15.5.1 पूर्व की ओर देखो नीति में भारत के तीन सूत्री कार्यक्रम

1.आसियान के सदस्यों से रणनीतिक संबंधों का नवीनीकरण करना।

2.दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों से आर्थिक संपर्क बढ़ाना जैसे व्यापार, निवेश, पर्यटन, विज्ञान और तकनीक आदि।

3.राजनीति समझ बढ़ाने के लिए इस क्षेत्र के अनेक देशों से मजबूत रक्षा संबंधों की स्थापना करना।

भारत ने दक्षिण पूर्व एशिया और प्रशांत क्षेत्र के कुछ देशों के साथ आपसी संबंधों का विस्तार सामरिक संबंधों तक किया, जबकि अन्य देशों के साथ भी संबंधों में विविधता लाने और उन्हें अधिक सुदृढ़ बनाने के प्रयास किए गए। द्विपक्षीय स्तर पर उच्च स्तरीय नेताओं ने एक-दूसरे के यहां यात्राएं की ओर क्षेत्रीय तथा बहुराष्ट्रीय मंचों पर भी परस्पर वार्तालाप के अवसर मिले, जिनमें इस क्षेत्र के नेताओं के बीच घनिष्ठता बढ़ी और इन देशों के साथ भारत के संबंधों में नई गतिशीलता विकसित करने में मदद मिली।

दक्षिण पूर्व एशिया और प्रशांत क्षेत्र के सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए, भारत ने कंबोडिया-लाओस, वियतनाम और फिलीपीन्स के अनुदानों, आसान ऋणों और क्रेडिट लाइनों के रूप में सहायता देना जारी रखा तथा आईटीईसी कार्यक्रम के अंतर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रमों के जरिए इन देशों की मदद की। प्रशांत आइलैंड फोरम (पीआईएफ) देशों के वार्ता भागीदार के रूप में, भारत क्षमता निर्माण और सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति तथा

स्थायी विकास में क्षेत्रीय सहायता प्रदान करते हुए प्रशांत द्वीप देशों के साथ जुड़ा रहा है। इसके बदले में भारत अपने हित के मुद्दों जैसे संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सदस्यता के लिए भारत की उम्मीदवारी, राष्ट्रमंडल, असैनिक परमाणु सहयोग आदि के बारे में इन देशों में अधिकांश का समर्थन हासिल करने में कामयाब है।

भारत के बढ़ते प्रभाव ने दक्षिण पूर्वी एशिया और प्रशांत क्षेत्र में क्षेत्रीय और बहुराष्ट्रीय मंचों जैसे आसियान, ईएएस, बिमस्टेक, एमजीएफ और एआरएफ देशों को घनिष्ठ सहयोग के लिए आकर्षित किया है।

भारत दुनिया की सबसे तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था है और इसका भारत और आसियान दोनों में राजनयिक रिश्तों पर भी इसका अच्छा असर पड़ेगा। आसियान देशों में भारत का सबसे बड़ा व्यापरिक भागीदार सिंगापुर है जिसके साथ सन् 2004 में 17.411 करोड़ रूपए का व्यापार हुआ, अकेले-सिंगापुर के साथ भारत का व्यापार आसियान के साथ कुल व्यापार का 43 प्रतिशत है। दूसरे स्थान पर इंडोनेशिया है जिसके साथ पिछडले साल 7.480 करोड़ रूपए का व्यापार हुआ।

आसियान के साथ व्यापारिक घुसपैठ बढ़ाने के लिए म्यांमार भारत के लिए प्रवेश द्वारा साबित हो रहा है। म्यांमार के साथ भी भारत का व्यापार बढ़कर 1.265 करोड़ रूपए हो गया है। यह व्यापारिक साझेदारी भारत और पूर्वी क्षेत्र दोनों के लिए फायदेमंद है।

अतः उपरोक्त विवरण को ध्यान में रखकर स्वीकार किया जा सकता है कि कई करणों से 'पूर्व की ओर देखों' नीति से भारत को लाभ हुआ है और वह इस नीति के द्वारा अपने संबंध इन पूर्वी देशों से मजबूत करने में सफल रहा है। जिस तरह भारत ''पूर्व की ओर देखो'' नीति अपनाएं हुए है। उसी तरह थाइलैंड ''पश्चिम की ओर देखो'' की नीति अपनाए हुए है। और ये दोनों नीतियां ही बिंदु पर मिलती है। भारत ने चीन को भी बार-बार यह समझाने की कोशिश की है कि यह भारत की ''पूर्व की ओर देखो'' नीति चीन के कंटेनमेट के लिए नहीं है जैसा कि चीन इसे मानता है।

15.5.2 पूर्व की ओर देखो नीति में भारत की चुनौतियां

भारत की 'पूर्व की ओर देखो' नीति के सामने कई चुनौतियां है जो दक्षिण पूर्व क्षेत्र में भारत के बढ़ते कदम में रूकावट बन सकती है, भारत के व्यापारिक साझी दारी को प्रभावित कर सकती है, ये चुनौतियां निम्नलिखित है-

1.दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों का खासकर भारत के साथ जिस तरह कदम द कदम बढ़े है। भारत के साथ ये आसियान देश भी भारत जैसी सामाजिक, आर्थक राजनीतिक समस्याओं व चुनौतियों का मुकाबला कर रहे है। आज जो चुनौतियां है-उनमें प्रमुख है आतंकवाद की समस्या, आतंकवाद की समस्या एक विकराल रूप धारण कर चुकी है जिसकी लपेट में न सिर्फ भारत, अमेरिका, आसियान व अन्य देश है, बल्कि इसका कर्त्ताधर्त्ता पाकिस्तान भी इसका गंभीर परिणाम झेल रहा है। पिछले वर्ष 2014 में पेशावर धमाका इसका ताजा उदाहरण है।

2.मलेशिया में हिड्राफ (हिन्दू राइट्स एक्शन फोर्स) के खिलाफ सरकार द्वारा देश-द्रोह के आरोप में उठाया गया कदम सामाजिक धर्मनिरपेक्षता पर लगाया गया प्रश्न है जिसमें अनेक हिड्राफ नेता देश-द्रोह के आरोप में जेल भेद दिए गए हे। इसका नकारात्मक प्रभाव भारत की धर्मनिरपेक्षता तथा व्यापार पर पड़ सकता है।

3.तेल उत्पादक खाड़ी देशों द्वारा कच्चे तेल की कीमतों में वृद्धि के कारण आर्थिक मंदी भी दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों के लिए एक चुनौती है, जिसका समय रहते निदान अर्थात् ऊर्जा के अन्य स्रोतों का उपयोग करना समय की अवश्यकता हो गई है। इसका निदान का फायदा भारत को भी पहुंचेगा।

4.अमेरिका का प्रशांत-महासागर की ओर बढ़ता कदम भी दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों के लिए एक गंभीर चुनौती है जो इन देशों की एकता व अखण्डता के लिए गंभीर चुनौती है जो इन देशों के बीच वैमनस्यता का भी कारण बन सकता है, भारत के व्यापार पर इसका प्रभाव अछूता नहीं हर सकता।

इन उपरोक्त चुनौतियों के बावजूद ''पूर्व की ओर देखा नीति'' से भारत पूर्व एशिया क्षेत्र के देशों के साथ उच्च स्तरीय संबंध स्थापित करना चाहता है, और कर रहा है। वियतनाम तथा इंडोनेशिया दोनों ही पूर्व एशिया के देश है साथ ही आसियान के सदस्य भी है। आसियान के अन्य सदस्य देशों के साथ भारत ने कई सफल यात्राएं की है, और इन देशों के शासनाध्यक्षों ने भी भारत का दौरा किया है। इन यात्राओं के दौरान विभिन्न समझौतों पर हस्ताक्षर किए है, जो भारत के और दक्षिण पूर्व क्षेत्र के विकास के संबंध में महत्वपूर्ण योगदान निभा रहे है।

15.6 आसियान तथा भारत

''पूर्व की ओर देखो'' भारत की नीति के परिणामस्वरूप ही भारत आसियान की आरे कदम बढ़ाया है। यह कदम भारतीय आर्थिक सुधारों और भूमण्डलीयकरण के विस्तार का पणिाम माना जाता है। पूर्व की ओर देखों नीति में दक्षिण पूर्वी एशिया और पूर्वी एशिया विशेषतः इनके क्षेत्रीय संगठनों पर ध्यान दिया गया है।

आज अक्सर क्षेत्रीय सहयोग के सफल प्रयोजको में आसियान का जिक्र होता है। सौभाग्यवंश इंडोनेशिया खनिज तेल के निर्यात से जल्द ही मालामाल हो गया और ब्रनेई की दशा भी पलक झपकते बदल गई। मलेशिया में डॉ. महादेव और सिंगापुर में ली कुआन यू की जनहितकारी तानाशाही ने इन दो देशों की आर्थिक प्रगति की गति तेज की। खुशहाली बढ़ने के साथ इन देशों में सामाजिक, राजनैतिक तनाव घटे और सहयोग की बात सोची जाने लगी। यह बात भी भुलाई नहीं जा सकती कि वियतनाम युद्ध के अंत के बाद आसियान के लिए नई भूमिका ढूंढना जरूरी हुआ, जिसमें साम्यवाद विरोध की जगह नहीं बची थी। इस प्रकार 11 वर्षों के अंतराल के बाद आसियान के प्रधान छः देशों का विस्तार हुआ और वियतनाम आसियान का 7वां सदसय बना पर यह आसियान का पहला साम्यवादी सदस्य था।

अतः निकट संबंधों के लिए आर्थिक महत्व को पहचानते हुए भारत और आसियान ने व्यापारिक व निवेश संबंधों को गहरा करने के लिए अवसरों की पहचान की तथा आसायान भारत मुक्त व्यापार क्षेत्र की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करने के लिए संचनात्मक समझौते पर हस्ताक्षरण पर सहमति व्यक्त की है।

भारत 1991 में (दक्षिण पूर्व एशियन राष्ट्रों के संगठन) आसियान का ''प्रभागीय वार्ता भागीदार' (Sectoral Dialogue Partner) बन गया था। इसके परिणामस्वरूप, जैसा कि भूतपूर्व विदेश सचिव जे.एन. दीक्षित ने कहा, इस महत्वपूर्ण क्षेत्रीय समूह के साथ ''सहकारी संबंधो'' की प्रक्रिया आरंभ हो गई। इस व्यवस्था का अर्थ है कि भारत को उन क्षेत्रों में सीमित भागीदारी प्राप्त होगी जिनकी आसियान अनुमति देगा। वे क्षेत्र थेः संस्कृति, पर्यटन और कुछ वस्तुओं में व्यापार। सन् 1994 में इस सूची में विज्ञान और प्रौद्योगिकी को भी शामिल कर दिया गया। परंतु, 1995 में आसियान के पांचवे शिखर सम्मेलन में भार को ''पूर्व वार्ता भागीदारी'' (थ्नसस क्पंसवहनम चंतजदमत) का स्थान दे दिया गया। इसका अर्थ हुआ कि भारत अब दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के साथ बहुमुखी और व्यापाक सहयोग कर सकेगा।

15.6.1 आसियान में भारत की भूमिका

भारत-आसियान के बीच सन् 2007 तक (13वां शिखर सम्मेलन) तक 30 अरब डॉलर के व्यापार के लक्ष्य को समय से पहले हासिल कर लिया गया और 2010 तक इस व्यापार को 50 अरब डॉलर तक बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया।

भारत व आसियान देशों के मध्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास संबंधी शोध को बढ़ावा देने के लिए 10 लाख डॉलर की प्रारंभिक राशि से भारत आसियान विज्ञान एवं तकनीकी कोष की स्थापना की घोषणा भारत ने की है।

इंडिया आसियान नेटवर्क ऑन क्लाइमेट चेज की स्थापना का आह्वान करते हुए इसकी पायलट परियोजनाओं के लिए 50 लाख डॉलर की प्रारंभिक राशि वाले एक इंडिया आसियान फंड की पेशकश भी की है।

भारत ने स्वासथ्य के क्षेत्र में भारत आसियान संयुक्त कार्यदल के गठन का प्रस्ताव रखा है। भारत ने आशा व्यक्त की है कि आसियान के साथ मुक्त व्यापार क्षेत्र जल्द ही संपन्न होगा।

15.6.2 आसियान देशों के साथ भारत व्यापार संबंध

भारत फिलिपीन्स के साथ फिक्की के अनुसार 2010 तक लगभग 2 मिलियन अमेरिकी डॉलर तक व्यापार को बढ़ाया है।

भारत थाइलैंड के साथ द्विपक्षीय व्यापार वर्ष 2006-07 में 3189.96 मिलियन डॉलर का हो गया।

वर्ष 2007 से वियतनाम के साथ द्विपक्षीय संबंधों के लिहाज से एक महत्वपर्णू वर्ष रहा, इसमें महत्वपूर्ण घटना थी वियतनाम के प्रधानमंत्री न्यूयेन तान हुंड की भारत यात्रा और दोनों देशों ने आपसी व्यापारिक संबंध स्थापित किए है।

आसियान क्षेत्र के देशों के साथ हमारा सालाना व्यापार 80 अरब अमेरिका डॉलर की सामा पार कर चुका है।

इंडोनेशिया के साथ उभयपक्षीय लाभप्रद व्यापार तक तकनीकी सहकार की अपरिमित संभावनाएं मौजूद है।

यात्राएं दो देशों के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंधों को ओर संवर्धित करती है। भारत के 2007 मे ंविदेश मंत्री का सिंगापुर दौरे से नई पहल कदमियां की गई, जिसके फलस्वरूप 2005-06 से 2006-07 तक भारत सिंगापुर व्यापार 30 प्रतिशत बढ़ा है।

15.6.3 आसियान में भारत की चुनौतियां

आसियान क्षेत्र में भारत की अधिकतर वही चुनौतियां है जो ''पूर्व की ओर देखा'' नीति में बतायी गई है, क्योंकि आसियान भारत की पूर्व दिशा में स्थित ही क्षेत्रीय सहयोग संगठन है जो पूर्व क्षेत्र के देश है वह आसियान के सदस्य देशों के रूप में अधिकतर जाने जाते है। फर्क मात्र दक्षिण क्षेत्र का है, इसी को ध्यान में रखते हुए हम आसियान में भारत की व्यापारिक चुनौतियों (जो बाकी रह जाती या छुट गई है) को देखते है।

1. हाल ही में आसियान देशों के संदर्भ में भारत की 'नरम ताकत'-सांस्कृतिक-आर्थिक संसाधनों का उल्लेख जोशो-खरोश के साथ किया जाने लगा है। इस सिलसिले में यह बात भुलना नादानी ही होगा कि भारत के साथ सहयोग में अभी तक खास उत्साह आसियान देशों की सरकार या निजी उद्यमियों ने नहीं दर्शाया है।

2. जब बड़ी महत्वाकांक्षी परियोजना का जिक्र होता है जैसे गंगा मी कौंग परियोजना या बिम्सटैक तक जरूर कुछ समय तक बहुपक्षीय सहकार, खुशहाली की साझेदारी जैसे मुहावरे सुर्खियों में रहते है, फिर बात आई गई हो जाती है।

3. आसियान की असली सामरिक राजनयिक संवेदनशीलता चीन के संदर्भ में है। म्यांमार से जुड़ा हिंद महासागर के उत्तर में स्थित यह वह भौगोलिक क्षेत्र है, जहां भारत तथा चीन के पारंपारिक प्रभाव क्षेत्र टकराते है।

फिर भी आसियान भारत की ही तरह चीन के लिए भी संलग्न मर्मस्थल है। यह देखने लायक होगा कि आसियान में भारत की सक्रियता के बारे में चीन की क्या प्रतिक्रिया दिखलाई है। क्षेत्रीय संगठन सदस्य देशों के साथ राजनयिक यात्रा आयोजित होती है तो यह यात्राएं महत्वपूर्ण बतलाई जाती है भारत तथा आसियान देशों के साथ कई राजनयिक यात्राएं हो रही है जैसे 2012 में प्रधानमंत्री का कंबोडिया दौरा।

15.7 सारांश

सार्क में यू तो भारत की विशिष्ट भूमिका है, परंतु सार्क देशों को आपस में पारस्पारिक विश्वास और सहयोग को बढ़ाना होगा। सार्क देशों की 1.6 अरब जनता विश्व का पांचवां हिस्सा है। भूगोल, इतिहास और संस्कृति ने हमें साथ जोड़ा है, हमारा भविष्य और समृद्धि एक दूसरे से जुड़ी हुई है। इसी के साथ सभी का भविष्य उज्ज्वल होगा।

हमें याद रखना होगा कि आसियान वाले पूरब का रास्ता म्यांमार तथा बांग्लादेश से होकर ही गुजरता है। छह देशों से गुजरने वाला प्रस्तावित एशियाई राजमार्ग हो अथवा समुद्रीपथ से व्यापार का प्रोत्साहन भार का प्रयास आसियान के बहाने अपने पड़ोस को चीन की दैत्याकार छाया से बाहर रखने का है।

15.8 शब्दावाली

सार्क - सार्क (दक्षेस) का पूरा नाम 'साउथ एशियन ऐसोसिएशन फॉर रीजनल कॉआपरेशनन' है। वर्ष 1985 को ढाका में दक्षिण एशिया के 7 देशों के राष्ट्राध्यक्षों का सम्मेलन हुआ तथा सार्क की स्थापना हुई। सार्क का 8वां देश अफगानिस्तान है।

आसियान - आसियान (एसियान) का पूरा नाम 'दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्र संघ' है। 1967 में दक्षिण पूर्वी एशिया के पांच देशों ने क्षेत्रीय सहयोग के उद्देश्य से 'आसियान' नामक संगठन का निर्माण किया। आसियान में अब 10 देश शामिल है।

आतंकवाद - आतंकवाद एक प्रकार का धर्म युद्ध या जिहाद है। आतंकवादी हिंसा का प्रयोग द्वारा सरकार पर दबाव बनाकर अपनी मांगे मनवाना चाहते है तथा लोगों के मन में आतंक बैठाना चाहते है।

कन्टेनमेंट - राजनीति में किसी देश य विचारधारा के प्रभाव को फैलाने से रोकने को कन्टेनमेंट कहते है।

खाड़ी देश - खाड़ी देश वह देश है, जो कच्चे तेल के उत्पादक है और सन् 1959 में खाड़ी देशों नें बगदाद में ओपेक की स्थापना की।

15.10 संदर्भ ग्रंथ

चौधरी, बी.बी.2003-04.राजनीति विज्ञानःसिद्धांत एवं अवधारणाएं, दिल्लीःश्रीमहावीर बुक डिपो (पब्लिशर्स).

खना,वी.एन और अरोडा, एल.2006.भारत की विदेश नीति, नई दिल्लीः विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि.

पंत, 2012.'पूरब की ओर देखने की पहल' दैनिक भास्कर, 20 नवबंर,पृ.13

शर्मा, जे.सी. 2011. 'सार्क सम्मेलन से उम्मीदे'.दैनिक भास्कर, 10 नवंबर, पृ.7.

15.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- <http://navbharattimes.indiatimes.com/articleshow/1330887.cm>
- <http://money.bhaskar.com/news/DYK-EA-what-is-look-east-policy-4608394-NOR.html>
- <https://books.google.co.in/books?isbn=8125924051>
- <http://www.dw.de/ भारत -और-पूर्व-की-और-देखो-नीति /a-16864564>
- <https://books.google.co.in/books?isbn=0230327877>
- <https://books.google.co.in/books?id=2G7p1ih8UKoC>

15.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. सार्क में भारत की भूमिका पर निबंध लिखिए।
2. भारत में 'पूर्वी क्षेत्र' को लेकर अपनी विदेश नीति में परिवर्तन किया?
3. आसियान में भारत के क्या हित है, वह आसियान की ओर क्यों आकर्शोंमुख है?

इकाई 16 : भारत व अमेरिका

ईकाई की संरचना

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 भारत- अमेरिका
16.3.1 आर्थिक संबंध
16.3.2 रक्षा सहयोग
16.3.4 परमाणु ऊर्जा सहयोग
16.3.5 विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी
16.3.6 सांस्कृतिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग
16.3.7 आतंकवाद
16.3.8 पाकिस्तान और चीन के मुद्दों पर भारत के प्रति अमेरिका के दृष्टिकोण
16.4 समस्याएं एवं संभावनाएं
16.5 सारांश
16.6 शब्दावली
16.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
16.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.10 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् वैश्विक परिदृश्य में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन स्पष्ट तौर पर दिखाई दे रहे थे। एक तरफ जहां अनेक स्वतंत्र राज्यों का उद्भव हो रहा था तथा वैश्विक मानचित्र में नये देश उभरकर सामने आ रहे थे वहीं दूसरी तरफ विश्व का ध्रुवीकरण भी हो रहा था। विश्व दो खेमों पूंजीवादी और साम्यवादी खेमों में बंट रहा था। एक खेमे का नेतृत्व जहां अमेरिका कर रहा था वहीं दूसरी खेमें का नेतृत्व रूस कर रहा था। इस प्रकार संपूर्ण विश्व दो महाशक्तियों में विभाजित हो रहा था। इन दोनों महाशक्तियों में जिस समय शीत युद्ध जोर पकड़ रहा था उसी समय भारत भी ब्रिटिश औपनिवेशिक शक्ति से मुक्त हुआ। जिस समय भारत स्वतंत्र हुआ उस समय उसके समक्ष सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि क्या भारत दो महाशक्तियों में से किसी भी एक महाशक्ति का पिछलग्गू राष्ट्र बनकर रह जाएगा अथवा वह स्वतंत्र विदेशनीति का पालन करेगा। भारत के समक्ष यह एक बहुत ही दुविधा का प्रश्न था। लेकिन भारत एक नवोदित राष्ट्र होते हुए भी अपने साहस और स्वतंत्र आत्म निर्णय का परिचय देते हुए स्वतंत्र विदेशनीति को अपनाने का रास्ता चुना। इसी साहस, स्वतंत्र आत्म निर्णय तथा स्वतंत्र विदेशनीति की सोच की पृष्ठभूमि में गुटनिरपेक्षता नामक नीति का बीज प्रष्फूटित हुआ। इस गुटनिरपेक्षता रूपी विषय की सोच को प्रदर्शित करने में नेहरू के साथ नसिर और टिटो भी महत्वपूर्ण रूप से भागीदार थे। 1946 में गठित अंतरिम सरकार के मुखिया के रूप में भाषण देते हुए नेहरू ने कहथा 'जहां तक संभव होगा हमारा प्रयत्न ऐसे गुटों में शामिल होने से बचने की होगी जिनके कारण अतीत में युद्ध हो चुके हैं अथवा जिनके कारण भविष्य में युद्ध होने की संभावना है। नेहरू का व्यक्तिगत तौर पर ऐसा मानना था कि किसी भी ऐसी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संगठन में शामिल होने से भारत की स्वाधीनता संकुचित हो सकती है जिसका नेतृत्व विचारधारा विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाली कोई महाशक्ति कर रही है। नेहरू की इस सोच का स्वागत अफ्रिकी और एशियाई देशों ने किया। इसी क्रम से मिस्र के नासिर, युगोस्लाविया के मार्शल टीटो और इंडोनेशिया के सुकार्णो ने नेहरू का भरपूर सहयोग किया। देखते ही देखते गुटनिरपेक्ष आंदोलन की सदस्यता नवोदित राष्ट्रों के स्वाधीनता की कसौटी का पर्याय बन गयी। हालांकि प्रारंभ में दोनों महाशक्तियों ने गुटनिरपेक्ष की कसौटी का पर्याय बन गयी। हालांकि प्रारंभ में दोनों महाशक्तियों ने गुटनिरपेक्ष को शंका की दृष्टि से देखा तथा इसे मौका परस्ती और अवसरवादिता का नाम दिया। नेहरू ने इन सभी आलोचनाओं का निराकरण करते हुए कहा कि यह अवसरवादिता अथवा तटस्थता की हठधर्मिता नहीं है अपितु इस नीति का अर्थ सभी देशों के साथ मित्रता का संबंध स्थापित करना, गठबंधन अथवा राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक सन्धियों में किसी विशेष विचारधारा के साथ शामिल नहीं होना। उनका मानना था कि भारत का अपने घरेलू और वैदेशिक नीतियों के विवेकपूर्ण, तर्कसंगत तथा बेहतर विकल्प चुनने के लिए गुटनिरपेक्षता आंदोलन ही एक यर्थाथवादी मंच साबित हो सकता है।

भारत के स्वतंत्रता के पश्चात् जहां तक इसके साथ अमेरिका के संबंध का प्रश्न है, इनके संबंध हमेशा उतार चढ़ाव तथा माधुर्यता एवं तनाव के रहे हैं। भारत और अमेरिका विश्व के दो विशाल लोकतंत्र होने के नाते इनके संबंधों में मित्रवत व्यवहार की आशा की जाती है, लेकिन इनके संबंधों में कटुता भी बरबस स्वतंत्रता से लेकर अबतक देखने को मिला है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है कि भारत स्वतंत्र होने के बाद गुटनिरपेक्षता की नीति पर चलने पर अडिग रहा। किसी भी गठबंध अथवा सैनिक संधियों से दूर रहने की नीति अपनाई। जिसके कारण दोनों महाशक्तियों भारत को शंका की दृष्टि से देखते थे। अमेरिकी नेतृत्व में गठित उत्तर अटलांटिक संधि संगठन , दक्षिण पूर्व एशिया संधि संगठन , मध्य एशिया संधि संगठन (ब्म्छज्व्) थे। अमेरिका को ऐसी आशा थी कि भारत इन संगठनों की सदस्यता अवश्य स्वीकार करेगा परंतु ऐसा संभव न हुआ जिससे अमेरिका और भारत के संबंधों में

कटुता के बीज यहीं से पनपने लगे। नेहरू का मानना था कि प्रादेशिक संगठनों की सदस्यता स्वीकार करना संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों के विरूद्ध है। भारत अमेरिका संबंधों में उस समय तनाव तब और अधिक आया जब अमेरिका ने 1954 में पाकिस्तान से सैन्य संबंध स्थापित किया, 1959 में भारत अमेरिका संबंधों को और कटु बना दिया। भारत द्वारा पाकिस्तान और अमेरिका की इन समझौतों तथा अमेरिका द्वार पाकिस्तान को दिये जने वाले सहायता का विरोध किये जाने पर, भारत को यह आश्वासन दिया गया कि इन शास्त्रास्त्रों का प्रयोग भारत के विरूद्ध नहीं किया जाएगा। लेकिन यर्थाथ में 1965 और 1971 के युद्ध में पाकिस्तान के द्वारा इन शस्त्रास्त्रों का प्रयोग भारत के विरूद्ध खुलकर किया गया। यहां यह ध्यान दिलाना जरूरी है कि 1947 में कश्मीर के मुद्दे पर भी संयुक्त राष्ट्र संघ में अमेरिका ने भारत के विरूद्ध पाकिस्तान का समर्थन किया था। अमरीका ने कश्मीर समस्या की तुलना जूनागढ़ से कर इसे हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष कहकर और उलझन में डाल दिया। हिन्द चीन के प्रश्न पर भी दोनों देशों में संबंध तनावपूर्ण रहे। फ्रांस के इस उपनिवेश को साम्यवादी प्रसार से बचाने के लिए अमेरिका ने फ्रांस की मांग पर तत्काल सैनिक सहायता उलब्ध कराया जबकि भारत इसके पक्ष में न था। यह हिन्द चीन की समस्या को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने के पक्ष में था। 1974, और 1998 के भारत के परमाणु परीक्षणों के विरूद्ध अमरीका की तीव्र प्रतिक्रिया रही साथ ही उसने कुछ आर्थिक प्रतिबंध भी लगाए। अभी हाल में आई एफ एस देवयानी खेबरागडे की अमेरिका में अपमान के कारण दोनों देशों के बीच स्थिति तनावपूर्ण हो गई थी।

उपरोक्त घटनाएं जहां भारत-अमेरिका में खट्टास उत्पन्न की वहीं दूसरी तरफ दोनों देश अनेक मुद्दों पर साथ-साथ चल रहे हैं। आर्थिक, सांस्कृतिक, शिक्षा, वैज्ञानिक, तकनीक और आतंकवाद के मुद्दों पर भारत और अमेरिका के आपसी साझा प्रयास जारी है। 1950 के दशक में खाद्य सामग्री की कमी की समस्या का सामना करने के लिए अमरीका ने भारत को खाद्य सामग्री की आपूर्ति की। 1950 के तकनीकी सहयोग समझौते के अनुसार अमेरिका भारत को महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करता रहा। 1951 से 1954 तक भारत अमेरिका संबंध मधुर रहे। उसक बाद 80 के दशक में राजीव गांधी की अमेरिका यात्रा को नेहरू की खोजयात्रा से जोड़ा। भारत-अमेरिका संबंधों में एक नया मोड़ 21 मार्च 2000 से मानी गई जो 22 वर्षों के बाद किसी अमेरिकी राष्ट्रपति की यात्रा थी। इस यात्रा के दौरान दृष्टिकोण पत्र 2000 पर हस्ताक्षर किया गया, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों (व्यापार, निवेश, विज्ञान प्रौद्योगिकी, सूचना आधारित उद्योग) के बीच आने वाली अड़चनों को हटाने के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की गई। सितंबर 2013 में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की यात्रा के दौरान ऊर्जा सुरक्षा, आर्थिक संबंध, आतंकवाद सामरिक भागीदारी के साथ-साथ क्षेत्रीय और वैश्विक मुद्दों पर बात की। प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी की सितंबर 2014 की अमेरिका यात्रा तथा 26 जनवरी 2015 की गणतंत्र दिवस के समारोह में अमरीकी राष्ट्रपति ओबामा को भारत यात्रा का न्योता दोनों देशों को राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी और सूचना क्षेत्रों के संबंधों से आगे चलकर एक भावनात्मक संबंध विकसित करने का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

16.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अंतर्गत भारत-रूस की ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, रक्षा तथा परमाणु ऊर्जा संबंधों का विस्तृत वर्णन करेंगे ।इस ईकाई में भारत की स्वतंत्रता से लेकर अब तक के समय समय पर आये सम्बन्धो में उतार-चढ़ाव भरे संबंधों पर विस्तारपूर्वक विवेचन करेंगे। इसके अतिरिक्त भारत के परमाणु परीक्षण के समय सम्बन्धों में आये तनावए पाकिस्तान तथा चीन से युद्ध के समय अमेरिकी दृष्टिकोण तथा भारत अमेरिका असैन्य परमाणु सहयोग समझौता आदि घटनाओं पर विस्तृते दृष्टिपात करेंगे। इस ईकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः-

- भारत अमेरिका सम्बन्धों के ऐतिहासिक महत्व को समझ सकेंगे।
- भारत अमेरिका के शीतकालीन समय के संबंधों के उतार-चढ़ाव को समझ सकेंगे।
- भारत अमेरिका के निकट संबंधों का विस्तृत वर्णन कर सकेंगे।
- परमाणु असैन्य सहयोग समझौता होने के पश्चात दोनों देशों के सम्बन्धों में आये मूलभूत सकारात्मक बदलाओं को समझ सकेंगे।

16.3 भारत अमेरिका -

भारत अमेरिका विश्व के दो बड़े लोकतांत्रिक राष्ट्र हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् दोनों से ऐसी आशा की जा रही थी कि इन दोनों प्रजातांत्रिक देशों का आपस में मधुर संबंध होना स्वाभाविक है लेकिन यर्थाथ में ऐसा न दिखा। भारत एक ओर जहां समाजवादी विचारों से प्रभावित था वहीं अमेरिका पूंजीवादी विचार का नेतृत्व कर रहा था। यही कारण रहा कि दोनों देश लोकतांत्रिक होते हुए भी एक-दूसरे के उतने करीब नहीं आ सके जितना दो लोकतांत्रिक देशों को होना चाहिए। भारत की स्वतंत्रता के तुरंत पश्चात् पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। उस समय भारत ने कश्मीर मुद्दा संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया जहां पर अमरीका ने भारतीय दृष्टिकोण का समर्थन नहीं किया तथा पाकिस्तान को आक्रमणकारी राष्ट्र नहीं माना। जिससे दोनों देशों के संबंध कमजोर हुए। 1949 में भारत ने जब कम्यूनिस्ट चीन को मान्यता प्रदान की तो अमेरिका को यह नागवार गुजरा। 1950 के कोरिया युद्ध के समय भारत इसका शांतिपूर्ण समाधान चाहता था किंतु अमेरिका युद्ध में भी भारत को शामिल करना चाहता था, किंतु भारत ने इसमें भाग नहीं लिया। 1956 के हंगरी संकट के समय साम्यवादी सरकार का तख्ता पलट कर दिया गया तब हंगरी ने सोवियत संघ से सहायता मांगी। जिसका अमेरिका ने विरोध किया यहां भारत का दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं था, जिससे अमेरिका ने नाराजगी जाहिर की। 1956 में स्वेज संकट के समय भारत-अमेरिका नजदीक आते हुए प्रतीत हुए किंतु 1961 के गोवा संकट के समय, गोवा का भारत में विलय का अमेरिका ने विरोध किया। 60 के दशक में उत्तरी वियतनाम पर अमेरिका द्वारा भारी बम वर्षा द्वारा तीव्र आलोचना का परिणाम यह निकला कि अमरीकी राष्ट्रपति जानसन द्वारा मई 1965 की शास्त्री की अमरीकी यात्रा का निमंत्रण वापस ले लिया गया। भारतीय प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी ने अमरीका यात्रा की जिससे यह अपेक्षा की गई कि दोनों देशों के संबंधों में सुधार होगा लेकिन इस तरह की कोई शुरूआत नहीं हुआ। बांग्लादेश संकट के समय भी इंदिरा गांधी भारत का पक्ष रखने के लिए अमरीका की यात्रा पर गई लेकिन कोई साकारात्मक परिणाम न निकला। अगस्त 1971 में भारत-सोवियत संघ के बीच मैत्री संधि को मूर्त रूप दिया गया जिसके कारण अमेरिकी विदेश नीति को गहरा धक्का लगा। 1977 में जनता पार्टी अस्तित्व में आई। राष्ट्रपति कार्टर ने मोरारजी को बधाई संदेश भेजा। ऐसा माना जा रहा था कि अमरीका-भारत संबंधों में अपूर्व वृद्धि होगी। कार्टर ने भारत की यात्रा की तथा अपनी मां के भारत प्रवास को याद करते हुए इस देश के साथ भावनात्मक लगाव के प्रकट किया। परमाणु क्षेत्र से संबंधित वार्ता सफल नहीं रही लेकिन तीन क्षेत्रों आर्थिक एवं व्यापारिक, विज्ञान एवं तकनीकी तथा शिक्षा और संस्कृति में सहयोग बढ़ाने का निर्णय लिया गया। उद्योग कृषि तथा शिक्षा के क्षेत्र में भी नई योजनाएं शुरू करने का आश्वासन अमेरिका द्वारा भारत को दिया गया। भारतीय प्रधान मंत्री देसाई और विदेश मंत्री बाजपेयी ने अमेरिका की यात्रा की जिसके द्वारा अमेरिका में इन दोनों नेताओं ने स्पष्ट रूप से संदेश दिया कि भारत गुटनिरपेक्षता की नीति का शुरू से ही समर्थक रहा है और रहेगा। भारत ने अफगानिस्तान में हुई क्रांति पर अमेरिकी नीति का समर्थन करने के बजाय अपने स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति का परिचय देते हुए इसे अफगानिस्तान का आंतरिक मामला बताया। उत्तर दक्षिण संवाद, नई विश्व अर्थव्यवस्था के प्रश्न पर श्री देसाई ने समृद्ध राष्ट्रों के उपभोक्तावाद तथा लालची रवैये की कड़ी आलोचना

की। अतः इन सभी घटनाओं के विश्लेषण के आधार पर जनता सरकार को विदेश नीति को अमरीकी पिछलगू की नीति नहीं कहा जा सकता है। 80 के दशक में राजीव गांधी ने अमरीका की यात्रा की। अमरीका द्वारा आर्थिक एवं तकनीकि सहायता मिली। दूसरी तरफ अमेरिकी सिनेट ने एक प्रस्ताव पारित कर आणिवक मामले में भारत और पाकिस्तान को एक ही श्रेणी में लाकर रख दिया। अमरीकी समर्थित बहुउद्देश्यीय एवं प्रद्योगिकी सहायता बंद कर दिया गया जहां भारत ने इसका कड़ा विरोध किया। भारत और अमेरिका के संबंधों में कटुता आई। राष्ट्रपति क्लिंटन की 2000 में भारत यात्रा भारत-अमरिका संबंधों के एक नये अध्याय की शुरूआत मानी जा सकती है। इसके बाद प्रधानमंत्री की बाजपेयी की अमरीका यात्रा हुई जिसके अंतर्गत उन्होंने कांग्रेस के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को संबोधित किया। इन्होंने आतंकवाद तथा परमाणु अप्रसार का मुद्दा उठाया। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की अमरीकी यात्राओं के शिखर वार्ताओं में अमरीका ने भारत को विश्व मंच पर आर्थिक, सामरिक, बौद्धिक सम्पदा के क्षेत्र में एक उभरती शक्ति के रूप में मान्यता दी। विशेषकर बदलते हुए वैश्विक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए व्यापार, निवेश, ऊर्जा सुरक्षा, रक्षा, सूचना, विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा परमाणु सहयोग पर विशेष जोर दिया गया है। राष्ट्रपति बराक ओबामा नवंबर 2010 की भारत यात्रा पर रहे, यात्रा के दौरान हुए वार्ताओं में दोनों देशों के कई कंपनियों के बीच समझौते हुए जिसमें अधक से अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध होने की संभावना व्यक्त की गई। राष्ट्रपति ओबामा ने 'रक्षा अनुसंधान संगठन' एवं, भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन एवं 'भारत डानेमिक्स लि0 पर से प्रतिबंध हटाने की घोषणा की। दोनों देशों ने मादक पदार्थों की तस्करी, आतंकवाद, समुद्री डकैती से रक्षा तथा समुद्री सुरक्षा, मानवीय सहायता, तथा आपदा राहत से संबंधित विषयों पर आदान-प्रदान तथा भागीदारी पर सहमति व्यक्त की। दोनों देशों ने साइबर सुरक्षा सहयोग तथा व्यापार एवं पूंजी निवेश पर आपसी सहमति व्यक्त की। सितंबर 2014 में भारतीय प्रधानमंत्री शिखर वार्ता के लिए अमरीका पहुंचे जहां उन्होंने 'मेक इन इंडिया' की जानकारी दी। उन्होंने भारत के पास उपलब्ध तीन शक्तियों लोकतंत्र, जनसांख्यिकी लाभांश और मांग के विशिष्ट संयोजन का भी उल्लेख किया। मंगल ग्रह मिशन की सफलता की ओर ध्यान दिलाते हुए मोदी ने भारतीय युवा को संकेतित करते हुए कौशल विकास पर भी बल दिया। संयुक्त राष्ट्र महासभा के 69वें अधिवेशन में हिंदी में संबोधन किया। इन्होंने सभा का ध्यान कई वैश्विक चुनौतियों जैसे कमजोर वैश्विक अर्थव्यवस्था, विश्व के कई भागों में अशांति एवं तनाव, अग्रवादी हिंसा, तस्करी, अफ्रीका में इबोला संकट, जलवायु परिवर्तन, कार्बन उत्सर्जन से संबंधित समस्या, पर्यावरण संकट तथा वैश्विक गरीबी की तरफ आकर्षित किया।

इस प्रकार भारत अमेरिका के आरंभ में अब तक के संबंध तनाव से सामंजस्य तथा नकारात्मकता से सकारात्मकता की तरफ दिखाई पड़ रहे हैं। दोनों देशों के संबंध सहयोगात्मकता और उद्देश्यपूर्णता की ओर बढ़ रहे हैं।

16.3.1 आर्थिक संबंध

जिस समय भारत स्वतंत्र हुआ उस समय अमेरिका यह अपेक्षा कर रहा था कि भारत अपनी चरमरायी हुई अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए या तो पूंजीवादी गुट और अमेरिकी नेतृत्व वाली गठबंधनों की सदस्यता अवश्य स्वीकार करना चाहेगा। लेकिन भारत ने ऐसा नहीं किया, क्योंकि नेहरू को इस बात की अच्छी तरह समझ थी कि भारत के आर्थिक विकास के लिए किसी गुट में शामिल होने से अच्छा है दक्षिण एशिया में शांति स्थापित करने का प्रयास किया जाए। भारत ने स्वयं को शक्ति संघर्ष से अलग रखने की नीति अपनाई। 1951 से 1954 तक अमरीका ने भारत को आर्थिक सहायता दी तथा भारत के प्रथम पंचवर्षीय योजना की कुशलता की कामना किया। 1950 के दशक में इस प्रकार खाद्य समस्या का सामना करने के लिए खाद्य पदार्थों की आपूर्ति की गई। इसके अतिरिक्त कई नीजी संस्थाओं फोर्ड फाउण्डेशन तथा रॉकफेलर फाउन्डेशन से भी भारत को महत्वपूर्ण सहायता

प्रदान की जा रही थी। 1960 के दशक में चार वर्ष की अवधि के लिए पीएल 480 नामक एक समझौता हुआ, जिसके द्वारा अमरिका ने पर्याप्त मात्रा में खाद्यान् भेजने का आश्वासन दिया। 1967 में अमरीकी दबाव के कारण रूपए का अवमूल्यन करना पड़ा। भारत-पाक युद्ध के बाद अमरीका ने भारत को बंद की गई आर्थिक सहायता पुनः प्रारंभ की गई लेकिन यह सहायता नगण्य थी जिसके कारण भारत की योजनाओं पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। 1990 के दशक में भारत द्वारा उदारीकरण की नीति को अपनाया गया। भारत के इस आर्थिक सुधार तथा व्यापार व पूंजी निवेश की खूली नीति का अमरीका द्वारा स्वागत किया। भारत द्वारा उठाये गये इस साहसपूर्ण कदम को अमरीका ने उत्साहित किया। ऋण उपलब्धि के भारत के अनुरोध को अमरीका ने समर्थन प्रदान किया। प्रधान मंत्री पी0वी0 नरसिम्हा राव की अमरीका यात्रा ने भारत-अमरीका संबंधों को एक नई दिशा प्रदान की। 1990 का दशक, भारत अमरीका आर्थिक क्रियाकलापों एवं वाणिज्य विकास के दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण रहा। जनवरी 1995 में अमरीका के तत्कालीन वाणिज्य मंत्री रोनाल्ड ब्राउन के नेतृत्व में आए एक शिष्ट मंडल ने ऊर्जा उत्पादन, परिवहन, पेट्रोरसायन, वित्तीय सेवाओं, दूरसंचार तथा स्वास्थ्य रक्षा परियोजनाओं के लिए सात अरब से भी अधिक अमरीकी डॉलर के आर्थिक समझौते पर हस्ताक्षर हुए। दूसरी तरफ अमरीका की अंतर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी उन कार्यक्रमों पर बल दे रही थी जो भारतीय अर्थव्यवस्था के अवसंरचनाओं तथा संस्थाओं में परिवर्तन एवं उनके नजीकरण में सहायक होंगे। इस प्रकार जो आर्थिक उदारीकण ने गुणात्मक परिवर्तन का आधारशिला रख दिया। भारत को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से आर्थिक सहायता प्राप्त हुई तथा आर्थिक उदारीकरण अपनाने से भारत दुनिया के 10 विशाल बाजारों में सम्मिलित हो गया। वित्तीय क्षेत्र में आर्थिक उदारीकरण के पश्चात् अमरीका की विभिन्न कंपनियों भारत में निवेश कर रही है। वर्ष 2012-13 में अमरीका, भारत का बड़ा व्यापारिक साझीदार व निर्यात गन्तव्यों में से एक था। वर्ष 1990 के भारत-अमरीका का कुल साझा व्यापार जहां 5.6 अरब डॉलर था वहीं 2013 में इन दोनों देशों का कुल साझा बाजार 63.704 डॉलर तक पहुंच गया था जो इन 23 वर्षो में 1037.5 प्रतिशत की व्यापक वृद्धि को दर्शाता है। अमेरीका भारत के साथ व्यापार करने वाला दूसरा सबसे बड़ा देश है वहीं चीन प्रथम स्थान रखता है। अगर हम तुलनात्मक विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि जहां वर्ष 2013 में भारत चीन का द्विपक्षीय व्यापार 68 अरब डालर है वहीं भारत-अमेरिका का द्विपक्षीय व्यापार 63.7 अरब डालर है। अमेरीका को निर्यात की जाने वाली सर्वाधिक भारतीय वस्तुओं में टेक्सटाइल की भागीदारी 17.1 प्रतिशत की रही है। दूसरी तरफ अमेरिका से भारत को आयातीत होने वाली सर्वाधिक वस्तुओं में बहुमूल्य पत्थर व धातु की 24 प्रतिशत की हिस्सेदारी है। भारत अमेरिका द्विपक्षीय संबंध का एक सकारात्मक पक्ष यह है कि व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में झुका हुआ तथा द्विपक्षीय व्यापार में अमेरिका का वस्तु व्यापार घाटा 20 अरब डॉलर का है तथा व्यापार घाटा 6.6 अरब डॉलर का है।

भारत-अमेरिका आर्थिक संबंधों को मजबूती प्रदान करने के उद्देश्य से 'भारत-अमेरिका वाणिज्यिक वार्ता' आरंभ करने का समझौता 23 मार्च 2000 को हुआ। जिसका उद्देश्य व्यापार को सुविधाजनक बनाना तथा अर्थव्यवस्था क्षेत्रों, जिसमें आई टी, आधारित संरचना, जैव प्रौद्योगिकी एवं सेवा भी शामिल है। नवंबर 2011 में इस वार्ता के तहत 'व्यवसाय से व्यवसाय' संपर्क का आयोजन किया गया था। इसके अतिरिक्त बाद के वर्षों में भारत-अमेरिका व्यापार को सरल बनाने हेतु तथा एक-दूसरे की आवश्यकता को पूरा करने हेतु समय-समय पर अनेक व्यापारिक मंचों, समूहों तथा संगठनों का गठन किया गया। इनमें प्रमुख रूप से भारत-अमेरिकी व्यापार नीति मंच (2005), भारत-अमेरिका कृषि ज्ञान पहल (2005), भारत-अमेरिका सी ईओ फोरम (2006), निजी क्षेत्रक सलाहकार समूह 2007) भारत-अमेरिका कृषि संवाद ,मानसून पूर्वानुमान करार, संयुक्त मानसून डेस्क, द्विपक्षीय उड्डयन सुरक्षा समझौता (2011) है। इन सबके अतिरिक्त जुलाई 2014 ई0 में भारत तथा अमेरिक, अपने-अपने नागरिकों द्वारा

विदेशों में जमा किये जा रहे बेहिसाब धन को रोकने के लिए तथा अपने नागरिकों द्वारा प्रत्येक देश में धारित वित्तीय खातों के बारे में जानकारी साझा करने पर सहमत हुए। यहॉं स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि अमेरिका 1 जुलाई 2014 को अस्तित्व में आने वाले अपने 'विदेश खाता कर अनुपालन अधिनियम (एफ ए टी सी ए) के तहत भारत सहित 50 देशांे से अपने नागरिकों के बारे में वित्तीय जानकारी प्राप्त करना चाहता है।

16.3.2 रक्षा सहयोग

भारत-अमेरिका रक्षा सहयोग शित युद्ध काल में यदि विश्लेषण किया जाय तो शैथिल्यता के रूप में ही प्रतीत होता है। भारत द्वारा अमेरिका नेतृत्व वाली सैनिक गुटों की सदस्यता को अस्वीकार करना तथा अपने स्वतंत्र विदेश नीति निर्माण के मार्ग को प्रशस्त करने का निर्णय कहीं न कहीं भारत-अमेरिका रक्षा संबंधों को तीव्रता प्रदान नहीं कर सका। 1965 में अमेरिका द्वारा भारत और पाकिस्तान को समान स्तर पर परखने की नीति के अधीन दोनों देशों को दी जाने वाली आर्थिक एवं सैनिक सहायता को बंद कर दी गई, चूंकि उस समय भारत में खाद्यान समस्या मुंह बाये खड़ी थी। अतः यह अमेरिका के द्वारा भारत के प्रति कठोरता की नीति थी। शीतयुद्धोत्तर काल में पी0वी0 नरसिम्हा राव ने अमरीका यात्रा की जिसमें राष्ट्रपति बुश के मुलाकात के परिणाम स्वरूप दोनों में रक्षा संबंधी समझौते पर हस्ताक्षर हुए। हिन्द महासागर में भारत-अमेरिकी नौसेना के संयुक्त अभ्यास की इजाजत दी गई। भारत और अमेरिका ने 10 से 15 मई 1995 तक एक संयुक्त नौसेना अभ्यास मालाबार II भी किया। दोनों देशों द्वारा रक्षा संबंधों की गत्यात्मकता प्रदान करते हुए जून 2005 में 'भारत-अमेरिका रक्षा संबंधों की नई रूप रेखा' पर हस्ताक्षर किया गया। जिसके अंर्तगत रक्षा अभ्यास, रक्षा व्यापार तथा प्रौद्योगिकी हस्तांतरण एवं सहयोग के माध्यम से पारस्परिक लाभ के रक्षा सहयोग का अनुपालन करने पर सहमत हुए हैं। दोनों देशों के बीच रक्षा सहयोग को आगे बढ़ाने में रक्षा नीति समूह (क्ळच्), रक्षा संयुक्त कार्य समूह ,रक्षा खरीद एवं उत्पादन समूह ,वरिष्ठ प्रौद्योगिकी सुरक्षा समूह संयुक्त तकनीकी समूह , सैन्य सहयोग समूह, तथा सर्विस टू सर्विस एक्सक्यूटिव स्टीयरिंग ग्रुप महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। रक्षा सहयोग को बढ़ावा देने में 'मलाबार' संयुक्त नौसैनिक अभ्यास का महत्वपूर्ण योगदान है। सितंबर 2014 में प्रधान मंत्री मोदी की अमेरिकी यात्रा के परिणाम स्वरूप दोनों देशों के बीच रक्षा सहयोग को 10 साल और बढ़ाने पर सहमति बनी। प्रधान मंत्री मोदी ने अमरीकी कम्पनियों को भारतीय रक्षा उत्पादन क्षेत्र में भागीदारी करने का निमंत्रण दिया। भारतीय सरकार ने भी रक्षा सहयोग को और अधिक सकारात्मक बनाने के प्रयास में रक्षा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को बढ़ाकर 26 प्रतिशत से 49 प्रतिशत कर दिया है। इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि आरंभ के वर्षों में रक्षा के क्षेत्र में बहुत ज्यादा चढ़ाव नहीं था, परंतु बाद के दिनों में दोनों देशों के सहयोग ने रक्षा संबंधों को एक नई दिशा दी है।

16.3.4 परमाणु ऊर्जा सहयोग

भारत की स्वतंत्रता के समय से ही भारत-अमेरिका संबंध परमणु क्षेत्र में गैर बराबरी का रहा है। अमेरिका पांच परमाणु सम्पन्न राष्ट्रों के अतिरिक्त किसी अन्य राष्ट्र को परमाणु सम्पन्न राष्ट्र के रूप में स्वीकार करने से इन्कार करता रहा है। इसीलिए अमेरिका ने भारत के 1974 तथा 1998 के परमाणु विस्फोट का जोरदार ढंग से विरोध किया। इसके अतिरिक्त तमाम तरह के भारत पर आर्थिक और सैन्य प्रतिबंध लगा दिये। किंतु समय के साथ अमेरिकी दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया तथा अमेरिका-भारत के बीच 18 जुलाई 2005 में असैन्य परमाणु सहयोग समझौते पर सहमति बनी तथा 2 मार्च 2006 को जार्ज डब्ल्यू बुश तथा मनमोहन सिंह ने हस्ताक्षर किये। इस समझौते को 123 समझौता भी कहते हैं। इस समझौते पर हस्ताक्षर तत्कालिन विदेश मंत्रियों श्री प्रणव मुखर्जी तथा कोण्डालिजा राइस द्वारा 10 अक्तूबर, 2008 को वाशिंगटन में किया गया था। नवंबर 2010 में राष्ट्रपति ओबामा की भारत यात्रा के दौरान दोनों देशों ने नागरिक परमाणु समझौते के क्रियान्वयन की शुरूआत के लिए

सभी चरणों के पूरे होने की घोषणा की गई थी। इसके साथ ही भारत और अमेरिका की कम्पनियाँ इस क्षेत्र में सहयोग शुरू करने को लेकर प्रयासरत हैं। इस पहल को भारत- यूएस नागरिक ऊर्जा कार्यदल की नियमित बैठकों द्वारा ऊर्जा प्रदान की गई। इस समझौते को 25 जनवरी 2015 को अंतिम रूप दिया गया। धातव्य है कि मनमोहन सिंह की पिछली सरकार तथा अमेरिका की बुश सरकार के समय भारत अमेरिकी असैन्य परमाणु समझौता हुआ था, किंतु जवाबदेही कानूनों से जुड़े मुद्दों के समुचित समाधान न होने के कारण समझाते को मूर्त रूप नहीं दिया गया जा सका। यहां यह उल्लेखनीय है कि इस कानून के अंतर्गत किसी परमाणु बिजली घर में दुर्घटना की स्थिति में उसकी जिम्मेदारी यंत्र आपूर्ति करने वाली कंपनी पर डाली गई है जिसमें आपूर्ति कंपनी के प्रबंधकों की गिरफ्तारी से लेकर वित्तीय हर्जाना जैसी कार्रवाई की व्यवस्था है। भारत-अमेरिका असैन्य परमाणु समझौते का 'सिविल लाइबिलिटी फॉर न्यूक्लियर डायमेज ऐट 2010' एक विशिष्ट भाग है। इसके तहत भारत ने अमेरिका से यह वायदा किया था कि वह वियन घोषणा पत्र के अनुरूप कान्वेंशन ऑन सप्लीमेंटरी कम्पेनसेशन अर्थात् परमाणु छति के लिए पूरक मुआवजे का पालन करने हेतु सभी आवश्यक कदम उठायेगा। भारत और अमेरिका के 100 अरब डॉलर के एक दशक की परियोजनाओं का भविष्य टिका हुआ है। ध्यातव्य है कि अमेरिकी कम्पनियॉ जनरल इलेक्ट्रिक तथा वेस्टिंग हाउस को आंध्र प्रदेश तथा गुजरात में 6.6 परमाणु बिजली घर लगाने की सैद्धांतिक तौर पर सहमति मिल चुकी है किंतु उक्त कानून के लागू न होने के कारण बिजली घरों के स्थापना पर कार्य अभी प्रारंभ नहीं किया जा सका है। इसके अतिरिक्त अमेरिका को यह भी चिंता है कि उसकी परमाणु कम्पनियों को भारत में व्यापार का समुचित अवसर नहीं मिला। यह विदित है कि अमेरिकी प्रयास से ही भारत को परमाणु क्लब में शामिल किया गया किंतु इसका फायदा अमेरिका को नहीं मिला। यहां यह उल्लेखनीय है कि 2008 में भारत-अमेरिका असैन्य परमाणु करार के पश्चात ही इस करार को आधार बनाकर भारत ने फ्रांस से परमाणु बिजली घर लगाने का करार किया तथा रूस को भी नए रियेक्टर लगाने का सौदा मिला किंतु इस होड़ में अमेरिकी कंपनियॉ पीछे रह गई।

समझौते के मुख्य बिन्दु

(1) भारत अपने 22 नाभिकीय संयंत्रों में से 14 अंतर्राष्ट्रीय निगरानी हेतु खोलेगा।

(2) सैन्य परमाणु रियेक्टरों तथा फास्ट ब्रिडर रियेक्टरों को अंतर्राष्ट्रीय निगरानी में नहीं रखा जाएगा।

(3) भारत अपने सैन्य तथा असैन्य परमाणु संयंत्रों को 2014 तक अलग करने की बात संधि में की गई थी।

समझौते से भारत को लाभ

(1) भारत को संवर्द्धित यूरेनियम के अतिरिक्त अन्य परमाणु ईंधन तथा प्रौद्योगिकी मिल सकेगी।

(2) भारत परमाणु ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में तेजी से आगे बढ़ सकेगा तथा पेट्रोलियम पदार्थों पर निर्भरता कम होगी ।

(3) इस समझौते से भारत को स्वतः मान्यता मिल जाएग।

(4) परमाणु संबंध के क्षेत्र में भारत एक जिम्मेदार तथा गंभीर राष्ट्र के रूप में स्थापित होगा।

(5) सुरक्षा परिषद में भारत की दावेदारी और मजबूत होगी।

(6) भारत द्वारा परमाणु परीक्षण के पश्चात् लगाये गये तमाम अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबंध स्वतः समाप्त हो जाऐंगे तथा संभावनाओं के नये द्वार खुलेंगे।

समझौते से अमेरिका को लाभ

(1) अमेरिका ने भारत के साथ असैय परमाणु समझौता की तमाम बाधाओं को दूर कर अपनी वैश्विक महाशक्ति की छवि बरकरार रखी।

(2) परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम में वह भारतीय परमाणु वैज्ञानिकों के विशेषज्ञता का लाभ उठा सकेगा।

(3) अमेरिका इसके द्वारा चीन पर नियंत्रण रख सकेगा ।

(4) भारत अमेरिका के लिए एक बड़ा बाजार है जिसका वह लाभ उठा सकेगा ।

(5) भारत के परमाणु कार्यक्रम की जानकारी प्राप्त करने में अमेरिका को कूटनीतिक कामयाबी मिली है।

(6) संपूर्ण एशिया में अमेरिका का वर्चस्व बढ़ेगा तथा इस कार्य में भारत जैसे शक्तिशाली राष्ट्र सहयोगी की भूमिका निभायेगा।

भारत के लिए जोखिम

(1) भारत की परमाणु कार्यक्रम की गोपनीयता पूरी तरह समाप्त हो जाएगी।

(2) अंतर्राष्ट्रीय निगरानी से मुक्त भारत की सैन्य परमाणु संयंत्रों के बारे में जानकारी प्राप्त करना अमेरिका के लिए अब कठिन नहीं रहा ।

(3) भारत को प्राप्त ईंधन तथा तकनीकी चोरी-छिपे दूसरे देश न जाय यह जिम्मेदारी भारत की होगी। (4) सैन्य तथा असैन्य परमाणु संयंत्रों को अलग करना कठिन तथा व्ययसाध्य है।

16.3.5 विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी

भारत तथा अमेरिका विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निम्नलिखित मंचों के माध्यम से आपसी सहयोग को बढ़ावा दे रहे हैं

(1) 'भारत-यूएसए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी समझौता' जिस पर हस्ताक्षर अक्तूबर 2005 में किया गया ।

(2) 'भारत-अमेरिका विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संयुक्त मिशन' के माध्यम से सहयोग के लिए '2012-2014' एक्शन प्लान बनाया गया।

(3) 'भारत-अमेरिकी विज्ञान एवं प्रद्योगिकी विन्यास कोस' की स्थापना वाणिज्यिकरण को बढ़ावा देने के लए 2009 में की गई थी।

(4) 'भारत-यूएसए' विज्ञान एवं प्रद्योगिकी मंच की स्थापना 2000 में की गई थी।

(5) 'मलेनियम अलायंस' यू एस एड तथा फिक्की का संयुक्त प्रयास है जो भारत में विकासात्मक चुनौतियों के समाधान करने का प्रयास करता है।

(6) 'मानसून डेस्क' मानसून पूर्वानुमान को विस्तार देने हेतु अमेरिकी राष्ट्रीय पर्यावरण पूर्वानुमान केन्द्र में एक मानसून पटल की स्थापना नवंबर 2010 में की गई थी।

(7) 'ज्वाइइसरिशोल्यूसन प्रोग्राम' के माध्यम से अरब की खाड़ी तथा हिन्द महासागर में गहरे समुद्री धरातल में नमून ड्रिलिंग की जाती है तथा साथ ही साथ वैश्विक जलवायु परिवर्तन पर अनुसंधान की जाती है।

भारत और अमेरिका के मध्य अंतरिक्ष क्षेत्र में सहयोग का एक लम्बा अनुभव रहा है। दोनों देशों ने अंतरिक्ष में सहयोग पर एक द्विपक्षीय संयुक्त कार्यदल की स्थापना एक मंच के रूप में किये हैं। इस कार्यदल की चौथी बैठक का आयोजन वाशिंगटन में 21-22 मार्च 2013 को हुई थी। दोनों राष्ट्रों के मध्य अंतरिक्ष में सहयोग के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं

(1) वैज्ञानिकों के आदान-प्रदान

(2) ओसीएम 2 एवं इन्सैट ३ डी में सहयोग

(3) मंगल मिशन में सहयोग

(4) कार्बन/पारिस्थतिकी प्रणाली निगरानी एवं मानकीकरण्

(5) रेडियो आकुल्टेशन में सहयोग

(6) भू-विज्ञान सहयोग

(7) अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष केंद्र
(8) वैश्विक नौवाहन उपग्रह प्रणाली
(9) अंतरिक्ष खोज सहयोग
(10) अंतरिक्ष कचरा।

16.3.6 सांस्कृतिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग

भारत-अमेरिका के सांस्कृतिक संबंध निरंतर प्रगाढ़ हो रहे हैं। अमेरिकी लोगों में भारतीय संगीत नृत्य कला तथा साहित्य में बहुत रूचि रखते हैं। कैनेडी केन्द्र भारतीय संस्कृति संबंध परिषद तथा राजदूतावास के सहयोग से मार्च 2011 में तीन सप्ताह तक चलने वाले एक विशाल पर्व 'मैक्सिमम इंडिया' का आयोजन किया गया था जिसमें सुप्रसिद्ध भारतीय कलाकारों की रचनाओं तथा प्रतिभाओं का प्रदर्शन किया गया था। दोनों देशों के दूतावास भी समय-समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करते रहते हैं।

अमेरिका में भारतीय लोगों की संख्या बढ़कर 2010 ई0 में 30 लाख हो गई है। जो अमेरिकी आबादी का एक प्रतिशत है। जिससे जन-जन के बीच संबंध और प्रगाढ़ हुए हैं। भारतीय अमेरिकी समुदाय के शिक्षाविद् उद्यमी तथा व्यवसायिक लोगों की विशाल संख्या है जो अमेरिका में अपना प्रभाव छोड़ रहे हैं। ये लोग अमेरिका के उच्चस्तरीय प्रशासनिक तथा संवैधानिक पदों पर विराजमान हैं।

भारत- अमेरिका संबंध शिक्षा के क्षेत्र में भी निरंतर गतिशील है। 2009 में 'सिंह-ओबामा ज्ञान पहल' शुरू किया गया जिसके अंतर्गत विश्वविद्यालयों की सम्बद्धता तथा यू-एस एवं भारतीय विश्व विद्यालयों के बीच कनिष्ठ संकाय विकास आदान-प्रदान को बढ़ावा देने हेतु पांच मिलियन अमेरिकी डॉलर की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त भारत तथा अमेरिका ने एक नये द्विपक्षीय फूलब्राइट समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं जो अमेरिका से प्राप्त वित्तीय पोषण के साथ 1950 से संचालित फूल-ब्राइट समझौते का स्थान लेगा। जिसमें भारत तथा अमेरिका की सरकारें संपूर्ण भागीदार के रूप में छात्रवृत्ति कार्यक्रम का क्रियान्वयन करेंगी। प्रथम भारत-यूएस शिक्षा शिखर सम्मेलन का आयोजन 13 अक्तूबर 2011 को वाशिंगटन डीसी में किया गया था। इस सम्मेलन के समापन पर एक संयुक्त विज्ञाप्ति जारी किया गया था जिसमें दोनों देश निम्न बिन्दुओं पर सहमति जताये थे। उच्च शिक्षा को प्राथमिकता, शोध एवं विकास में विस्तार, व्यावसायिक शिक्षा तथा कौशल विकास के क्षेत्र में भागीदारी, शैक्षणिक कार्यक्रमों को सशक्त बनाना तथा दोनों देशों में ऐसे सहयोग को गहनता और समर्थन प्रदान करने में निजी क्षेत्रों की संलिप्तता का स्वागत करना आदि शामिल है।

दूसरी शिक्षा वार्ता 2012 में वाशिंगटन में हुई, जिसमें भारतीय शिक्षा जगत में क्रांति लाने वाले निर्णय लिये गये। यहां पर कम्यूनिटी कॉलेज की तर्ज पर कौसल विकास संस्था खोलने की बात की गई। ध्यातव्य है कि अमेरिकी कम्यूनिटी कॉलेज, वोकेशनल प्रशिक्षण प्रदान करने वाले उच्च शिक्षण संस्थान है। ये कॉलेज 1901 में खाले गये तथा 1929 की आर्थिक मंदी के दौरान जब बेरोजगारी बढ़ी तब इन कॉलेजों ने दो वर्षीय कोर्स द्वारा हजारों अर्द्ध पेशेवर श्रम का निर्माण की। जबकि भारत में वोकेशनल कोर्सों का चलन बहुत कम है, जिससे स्नातक तो ज्यादा लोग होते हैं किंतु कुशल श्रमिक बहुत कम होते हैं। ऐसा एक अनुमान के मुताबिक 2022 तक भारत को 500 मिलियन श्रम तक की जरूरत होगी किंतु हमारे वर्तमान ढॉचे में केवल तीन मिलियन लोगों को ही वोकेशनल प्रशिक्षण दिया जा सकता है। जबकि हमारी आवश्यकता इससे तीन गुनी अधिक है। अतः इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए कम्यूनिटी कॉलेज की स्थापना पर बल दिया जा रहा है। इसी कड़ी में जून 2013 में मैसिव ओपन ऑनलाईन कोर्सेज में सहयोग हेतु आईआईटी मुंबई एवं एडएक्स के बीच समझौता हुआ।

16.3.7 आतंकवाद

भारत और अमेरिका दोनों आतंकवाद से पीड़ित राष्ट्र हैं। भारत जहां पिछले चार दशक से आतंकवाद को झेल रहा है वहीं अमेरिका डेढ़ दशक से आतंकवाद के प्रति गंभीर हुआ है। आज भी आतंकवाद पर अमेरिका का दृष्टिकोण दोहरा चरित्र वाला है, और भारत के आतंकवाद की समस्या के प्रति उपेक्षित दृष्टिकोण अपनाता है। इस संबंध में भारत के प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी ने काउन्सिल ऑन फॉरेन रिलेशन्स के अपने संबोधन में ठीक ही कहा कि आतंकवाद का मुकाबला करने में हमें गुणा-भाग यानि लाभ-हानि की प्रवृत्ति छोड़ देनी चाहिए। उन्होंने कहा कि भारत में जो आतंकवाद है वह घरेलू नहीं बल्कि निर्यातीत आतंकवाद है। साथ ही साथ उन्होंने आतंकवाद के अच्छे और बुरे रूप में वर्गीकरण करने को अनुचित बताया। तथा जाति, धर्म सीमओं से परे आतंकवाद को प्रश्रय देने वाले राष्ट्र के प्रति कठोर रूख अपनाने का आह्वान किया। अमेरिका में जब अलकायदा ने 11 सितंबर 2001 को बर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमला किया तब अमेरिका का रूख आतंकवाद के प्रति कड़ा हो गया। भारत उस समय अमेरिका के साथ खड़ा था और आतंकी हमले का निंदा किया। इसके बाद अमेरिका ने 2001 में तालीबानी आतंकवाद को समाप्त करने के लिए अफगानिस्तान पर आक्रमण किया तथा 2003 में रासायनिक हथियारों के संदेह होने पर इराक पर आक्रमण किया। किंतु इन दोनों राष्ट्रों से अमेरिकी सैनिकों की वापसी होने लगी तो वहाँ आतंकवाद और अराजकता और बढ़ गई। अफगानिस्तान में तालिबान जहाँ मजबूत हो रहा है वहीं इराक और सिरिया में इस्लामिक स्टेट का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। भारत की चिंता विशेषतः अफगानिस्तान से नाटो सैनिकों की वापसी को लेकर है क्यों कि भारत की चिंता जायज है कि अमेरिकी सैनिकों की वापसी से अफगानिस्तान में सुरक्षा तथा स्थायत्वि पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। जिसका प्रभाव भारत पर भी पड़ेगा। इसलिए भारत, अफगानिस्तान से धीरे-धीरे सैनिकों की वापसी चाहता है ताकि इराक जैसी हालत अफगानिस्तान की न हो। भारत-अमेरिकी ने उन नागरिकों के बारे में सूचना के आदान-प्रदान का निर्णय लिया जो सिरिया इराक अथवा अन्य किसी आतंकवादी सैनिक संगठनों से जुड़े हों। धातव्य है कि अमेरिका के सैकड़ों नागरिक इराक में इस्लामिक स्टेट से मिल गये हैं। भारत के भी कुछ नागरिक आईएस से जुड़ गये हैं। यद्यपि भारत पश्चिम एशिया में कुख्यात आईएस या आईएसआईएस संगठन के खिलाफ जारी संघर्ष में किसी गठबंधन का हिस्सा नहीं है तथापि उस क्षेत्र में आतंकी हमलों के लिए जाने वाले लोगों से जुड़े अहम विषयों से निपटने में अमेरिका के साथ मिलकर काम करने पर सहमति जताई। आईएस जैसे संगठनों को हम अंतर्राष्ट्रीय गठजोड़ के द्वारा समाप्त किया जा सकता है। अमेरिका और भारत ने लश्कर-ए-तोएबा जैश-ए-मोहम्मद, डी कंपनी, अलकायदा तथा हक्कानी नेटवर्क जैसे संगठनों के आतंकियों तथा अपराधिक नेटवर्कों के सुरक्षित ठिकानों को समाप्त करने हेतु संयुक्त रूप से सहमति जतायी है। ओबामा प्रशासन ने भारत को आतंकवाद पर साझा सहयोग प्रदान करते हुए दाऊद इब्राहिम, हाफिज सईद जैसे आतंकियों को भारत को सौंपे जाने के वास्ते, पाकिस्तान पर दबाव बनाने की पहल कर रहा है। इसके अतिरिक्त अमेरिका ने भारत को अपने प्रसिद्ध माइन-ऐसिस्टेंट अम्बुस प्रोटेक्टेट विमानों को बेचने का भी निर्णय लिया है जिनसे समय रहते आईईडी का पता चल जाएगा।

16.3.8 पाकिस्तान और चीन के मुद्दों पर भारत के प्रति अमेरिका के दृष्टिकोण

जिस समय भारत स्वतंत्र हुआ उस समय अंतर्राष्ट्रीय जगत में विश्व दो गुटों में बंट चुका था, यह शीत युद्ध का समय था। अमेरिका इस बात की आशा कर रहा था कि भारत अपनी सैनिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अमेरिकी (पूंजीवादी) खेमें में शामिल होगा। लेकिन भारत ने अपनी स्वतंत्र विदेश नीति को अपनाते हुए तथा सम्प्रभुता का अनोखा परिचय देते हुए किसी भी गुट अथवा सैनिक संधि में सम्मिलित होने से मना कर दिया। भारत का यह रूख अमेरिका को नागवार गुजरा तथा उसने इसी क्रम में 1954 में पाकिस्तान को NATO का सदस्य बना लिया। अमेरिका ने पाकिस्तान से सैनिक संधि करके उसे बड़े स्तर पर सैनिक सामग्री भी उपलब्ध कराया। जहां

तक अमेरिका का पाकिस्तान के साथ संबंध स्थापित करने का प्रश्न था इसके दो उद्देश्य पूरे हो रहे थे पहला, वह भारत द्वारा सैनिक गुट में शामिल न होने पर दण्ड देना तथा दूसरा, पाकिस्तान के शत्रु भारत की शक्ति को सिमित कर पाकिस्तान को प्रसन्न करना। आगे चलकर अमेरिका-पाकिस्तान द्विपक्षीय रक्षा समझौते भारत अमेरिका संबंधों को और कटू बना दिया क्योंकि इसके जरिए अमेरिका पाकिस्तान को अस्त्र-शस्त्र एवं हथियार उपलब्ध कराता रहा। पाकिस्तान को दी जाने वाली अमरीकी सहायता का भारत लगातार विरोध किया जिसे अमेरिका द्वारा यह कह कर टाल दिया जाता कि यह सहायता केवल साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए दिया जा रहा है बाकि अन्य किसी प्रयोजन के लिए नहीं जबकि पाकिस्तान ने इन शस्त्रों का प्रयोग 1965 और 1971 के युद्ध में खुल कर किया। इन सबके अतिरिक्त पाकिस्तान को अपने गुट में शामिल कर अमेरिका दक्षिण-एशिया में अपनी पहुंच स्थापित करना चाहता था।

राष्ट्रपति कार्टर के समय में जब अमेरिका को जब यह पता चला क पाकिस्तान गोपनीय रूप से परमाणु अस्त्रों का निर्माण करने वाला है तो उसने अपनी ओर दी जाने वाली आर्थिक और सैनिक सहायता पर रोक लगा दी गई। लेकिन 1979 के अंत में अफगानिस्तान में सोवियत हस्ताक्षेप के कारण अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को पुनः सैन्य एवं आर्थिक सहायता प्रदान कर दी गई। रिगन प्रशासन में यह सहायता और अधिक कर दी गई। आगे चलकर 1980 के दशक में सीनेटर प्रेसलर द्वारा प्रस्तावित एक संशोधन पारित हो किया गया। इसके अनुसार पाकिस्तान को कोई भी सहायता देने से पूर्व राष्ट्रपति को यह प्रमाणित करना आवश्यक था कि पाकिस्तान के पास कोई परमाणु शस्त्र नहीं थे। इसके तहत सभी स्थितियों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रपति बुश ने 1990 के शुरूआती दशक में पाकिस्तान को दी जाने वाली आर्थिक सैनिक सहायता बंद कर दी। परंतु, 1995 में अमेरिकी सीनेट द्वारा हैक ब्राऊन ने एक संशोधन किया जिसके तहत प्रेसलर संशोधन में एक छूट देने की व्यवस्था कर दी। जिसका साफ मतलब यह था किसी न किसी बहाने अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को सहायता प्रदान करना।

शीतयुद्ध के समाप्त होने के बाद भारत-अमेरिकी संबंधों में सुधार हुए हैं। 09/11 की दुर्घटना के बाद अमेरिका ने अपनी विदेशनीति में परिवर्तन करते हुए आतंकवाद तथा कश्मीर के प्रश्न पर भारत के पक्ष में होता दिखाई दे रहा है। अमेरिका वैश्विक परिदृश्य में साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए प्रतिबद्ध था, अतः इस कारण से वह चीन का विरोधी था। 1962 में चीन का भारत पर आक्रमण ने भारत-अमेरिकी संबंधों को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। 1961 में जब नेहरू अमेरिकी यात्रा पर गये तो कैनेडी प्रशासन सह अस्तित्व के प्रश्न को अस्वीकार करते हुए यह माना कि कोई राष्ट्र लोकतंत्र और साम्यवाद के प्रश्न पर तटस्थ भी रह सकता है। भारत-अमेरिका के संबंधों में मधुरता आती दिखाई दी। अतः जब चीन ने 1962 में भारत पर आक्रमण किया तो भारत के अनुरोध पर अमेरिका बिना शर्त के सहायता देने के लिए तैयार हो गया।

16.4 समस्याएं एवं संभावनाएं

प्रारंभ से ही भारत-अमेरिका संबंधों में कभी कड़वाहट तो कभी मधुरता का समन्वय देखा गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जब भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई तो अमेरिका ने भारत पर दोहरा चरित्र का आरोप लगाया। लेकिन, जब भारत ने 1950 के सुरक्षा परिषद के उस प्रस्ताव को स्वीकार किया जिसमें उत्तरी कोरिया को दक्षिणी कोरिया के विरूद्ध आक्रामक घोषित किया गया था तब अमेरिका ने भारत के निर्णय का समर्थन किया। 1965 के भारत-पाक युद्ध तथा 1971 के बांग्लादेश के संकट के समय अमेरिका का दृष्टिकोण पाकिस्तान समर्थक रहा। जहां तक कश्मिर का प्रश्न है अमेरिका जान-बूझ कर भारत के संवैधानिक दृष्टिकोण की अनदेखी करता है। 1971 से 1991 की अवधि में भारत-सोवियत मैत्री अमेरिका में तनाव उत्पन्न करती है। इजराइल के प्रश्न पर, भारत-अमेरिका नीतियॉ परस्पर विरोधी रही है। एनपीटी तथा सीटीबीटी पर भारत के रवैये को अमेरिका ने कभी पसंद

नहीं किया। लेकिन वह भारत के कठोर रवैये को समाप्त करने में सफल नहीं रहा। अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप को लेकर भारत और अमेरिका के विचारांे में हमेशा भिन्नता बनी रहती है। वर्तमान में मनमोहन-बुश प्रशासन में असैन्य-परमाणु सहयोग समझौते से जुड़े जवाबदेही कानूनों के मुद्दें पर समुचित समाधान न होने के कारण तथा अमेरिकी कम्पनियों को भारतीय बाजार में समुचित अवसर न मिलने पर तनाव की स्थिति उत्पन्न होती रहती है।

भारत-अमेरिका संबंधों में कई बिन्दुओं पर तनाव देखे गये हैं परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन दोनों देशों में कभी सहयोगात्मक संबंध नहीं रहे हैं अथवा इनमें सहयोग की संभावनाएं नहीं हैं। कैनेडी प्रशासन में भारत और अमेरिका के बीच चार वर्षों की अवधि के लिए पीएल 480 नामक एक समझौता हुआ, जिसके अंतर्गत अमेरिका ने भारत को पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध करवाए। 1962 के भारत-चीन युद्ध में अमेरिका ने भारत का समर्थन किया। 1964 में भारत के अनेक भागों में भारत-अमेरिका ब्रिटेन तथा आस्ट्रेलिया के वायु सैनिकों का संयुक्त अभ्यास हुआ। इसके अतिरिक्त अमेरिका ने भारत को तारापुर में परमाणु शक्ति संयंत्र स्थापित करने के लिए सहयोग दिया। इसी प्रकार समय-समय पर दोनों देशों में सहयोगात्मक संबंध भी विकसित हुए । शीत युद्ध समाप्त होने के पश्चात् तथा भारत में आर्थिक उदारीकरण बहाल करने की प्रक्रिया ने दोनों देशों के संबंधों को एक नई गति प्रदान की है। हाल ही में भारत ने रक्षा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को 49 फीसदी कर अमेरिकी कंपनियों को भारत में निवेश के लिए निमंत्रण दिया है। दोनों देश सामरिक साझेदारी की दूरदर्शिता को प्रकट करते हुए हाल ही में यह संयुक्त बयान जारी किया है कि सामरिक साझेदारी हमारी समृद्धि और शांति के लिए प्रयास है। ताकि दोनों देशों की प्रछन्न क्षमता का उपयोग किया जा सके जिससे दोनों देशों के नागरिकों, अर्थव्यवस्थाओं एवं कारोबारियों के बीच संबंधों में वृद्धि हो सके। प्रधान मंत्री मोदी की अमेरिकी यात्रा में दोनों देशों ने इस बात पर सहमति जताई कि हम साथ मिलकर विश्वसनीय एवं स्थायी मैत्री स्थापित करने का प्रयास करेंगे जो देशों के सुरक्षा एवं स्थायित्व को बढ़ावा दे सके। इसके अतिरिक्त जलवायु परिवर्तन, स्वच्छता, शिक्षा, विज्ञान, पर्यावरण, अनियंत्रित प्रदूषण तथा आतंकवाद से निपटने के साझा सहयोग पर बल दिया। दोनों देशों ने कहा कि हमारा विजन है कि संयुक्त राज्य एवं भारत के बीच 21वीं शताब्दी में भरोसेमंद साझेदार के रूप में एक परिवर्तनकारी संबंध स्थापित होगा।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत कब स्वतंत्र हुआ थाघ्

A. 1946 B 1947 C. 1948 D 1949

2. भारत ने अपना पहला परमाणु परिक्षण कब कियाघ्

A. 1972 B. 1973 C. 1974 D. 1975

3. भारत ने दूसरी बार परमाणु परिक्षण कब कियाघ्

A. 1996 B. 1997 C. 1998 D. 1999

4. अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर आतँकवादी हमला कब हुआघ्

A. 2000 B. 2001 C. 2002 D. 2003

5. भारत तथा अमेरिका के बीच असैन्य परमाणु सहयोग समझौते पर पहली बार सहमति कब बनीघ्

A. 2003 B. 2004 C. 2005 D. 2006

6. अभी हाल ही में अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा किस समारोह के मुख्य अतिथि थेघ्

A. स्वतंत्रता दिवस B. गणतंत्र दिवस C. शहीद दिवस D. प्रवासी भारतीय दिवस

16.5 सारांश

वर्तमान समय में भारत-अमेरिका संबंध प्रत्येक क्षेत्र में निरंतर गतिशील हैं। चाहे वो सामाजिक क्षेत्र हो, चाहे वो राजनीतिक क्षेत्र हो, चाहे वह आर्थिक क्षेत्र हो या ऊर्जा क्षेत्र है या सामरिक क्षेत्र हो। पहले जहां भारत अमेरिका संबंध शीतयुद्ध काल में तनावपूर्ण थे वहीं सोवियत संघ के विखंडन के पश्चात् तथा भारत में 1990 के दशक में आर्थिक उदारीकण के शुरूआत होने से दोनों देशों के संबंध मधुर होने शुरू हो गये। विशेषतः आर्थिक उदारीकरण भारत-अमेरिका संबंधों को बहुत घनिष्ठ बना दिया। इस संबंध का अनुमान हम इस बात से लगा सकते हैं कि अमेरिका भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक सहयोगी लंबे समय से रहा है। आज भी अमेरिका के साथ व्यापारिक सहयोग चीन के बाद सबसे ज्यादा है। भारत ने जब अपना द्वितीय परमाणु परीक्षण 1998 में किया तब दोनों देशों का संबंध एक बार पुनः शिथिल अवस्था में आ गई थी, किंतु कुछ वर्ष पश्चात् ही अमेरिका की बुश सरकार ने जब भारत के साथ परमाणु असैन्य सहयोग समझौते पर सहमति जताई तो दोनों देशों के संबंध पुनः मधुर होने लगे। अमेरिका ने भारत को परमाणु ऊर्जा प्रदान करने के लिए संयुक्त राष्ट्र तथा एनएसजी द्वारा भारत को परमाणु करार में आने वाली बाधाओं को दूर करने हेतु कई प्रकार के तकनीकी सुविधाओं को प्रदान करवाया। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी सितंबर, 2014 में अमेरिकी यात्रा की तो दोनों देशों के संबंध और प्रगाढ़ हुए, साथ ही साथ प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा को भारत के गणतंत्र दिवस के मुख्य अतिथि के तौर पर आने का न्योता दिया तो अमेरिकी राष्ट्रपति ने सहर्ष स्वीकार किया तथा 26 जनवरी 2015 को 66वें भारतीय गणतंत्र दिवस के साक्षी बने।

16.6 शब्दावली

लोकतंत्र . जनता के मूल्यों आदर्शो को प्रतिफलित करने वाली व्यवस्था
एनपीटी . परमाणु अप्रसार संधि
सीटीबीटी .व्यापक परमाणु परीक्षण संधि
एनएसजी . न्यूक्लियर सप्लायर ग्रुप
नाटो . नार्थ अटलांटिक ट्रीटी आर्गेनाईजेशन
अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति दृ विश्व के विभिन्न देशों के बीच होने वाली क्रियाविधि
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध . एक ऐसा अनुशासन जो दो या दो से अधिक राज्यों के सम्बन्धो का अध्ययन करता है।
कूटनीति . विदेश नीति के संचालन का तरीका
संयुक्त राष्ट्र संघ . एक अंतराष्ट्रीय संगठन
सोवियत संघ . भूतपूर्व रूस
गुटनिरपेक्षता . तृतीय विश्व के देशो का एक तटस्थ संगठन
लश्कर-ए-तोएबा . एक आतंकवादी संगठन
जैश-ए-मोहम्मद . एक आतंकवादी संगठन
अलकायदा . एक आतंकवादी संगठन
हक्कानी नेटवर्क . एक आतंकवादी संगठन
आईएस . इस्लामिक स्टेट

16.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.B, 2.C, 3.C, 4. B, 5. C, 6.B

16.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.खन्ना, वी. एन. एवं अरोड़ा, लिपाक्षी (2006) ''भारत की विदेश नीति'' विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., नई दिल्ली।

2.दीक्षित जे. एन. (2004) ''भारतीय विदेश नीति'', प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली।

3.घई, यू. आर. एवं घई के. के. (2005) ''अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति'', न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर।

4.घई, यू. आर. एवं घई. वी. (2004) ''भारतीय विदेश नीति'', न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर।

5.वरमानी, आर. सी. (2007) ''समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध'', गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

6.फड़िआ, बी. एल. (2014) ''अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति'', साहित्यिक भवन पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

7.बीस्वाल, तपन (2010), ''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध'', मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लि., नई दिल्ली।

16.9 **सहायकउपयोगी पाठ्य सामग्री /**

1.भारतीय विदेश मंत्रालय की आधिकारिक वेबसाइट

2.द हिन्दू समाचार पत्र

3.जनसत्ता समाचार पत्र

16.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.भारत- अमेरिका सम्बन्धो की ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान मे रखते हुए, आर्थिक तथा परमाणु ऊर्जा सम्बन्धो पर प्रकाश डालिये।

2.भारत- अमेरिका के बीच सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक्, सांस्कृतिक तथा ऊर्जा सहयोग सम्बन्धी सम्बन्धों का विस्तृत वर्णन कीजिये।

ईकाई 17 : भारत व रूस

ईकाई की संरचना

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 भारत-रूस
17.3.1 आर्थिक तथा व्यापारिक सहयोग
17.3.2 रक्षा तथा रणनीतिक क्षेत्र में सहयोग
17.3.4 ऊर्जा सहयोग
17.3.5 अंतरिक्ष सहयोग
17.3.6 विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी
17.3.7 सांस्कृतिक संबंध
17.4 आतंकवाद पर साझा दृष्टिकोण
17.5 भारत-रूस-चीन त्रिकोण
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
17.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
17.11 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय जगत में द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् एक महत्वपूर्ण परिवर्तन सामने आया, जिसके अंतर्गत विश्व दो गुटों में विभाजित था। जहाँ एक खेमा का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरिका कर रहा था, वहीं दूसरे खेमें का नेतृत्व सोवियत संघ कर रहा था। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति से लेकर 1991 तक, दोनों गुटों के बीच शीत युद्ध चलता रहा। यह विशेषतः अस्त्र-शस्त्रों की जगह वैचारिक और मानसिक तौर पर लड़ा जाने वाला युद्ध था। किन्तु 1991 में एक महाशक्ति सोवियत संघ का विघटन हो गया, जिससे वैश्विक मानचित्र पर पन्द्रह नये राज्यों का उदय हुआ। सोवियत संघ के विघटन के कारण विश्व द्विध्रुवीय की जगह एक धुरवीय हो गया और विश्व में केवल एक मात्र महाशक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका रह गया।

भारत रूस की मित्रता, भारत के स्वतंत्र (1947) होने के पश्चात् से ही प्रगाढ़ता की ओर बढ़ रहा था। चूंकि भारत एक पूंजीवादी शक्ति के अधिपत्य के कड़े अनुभवों से मुक्त हुआ था, अतः वह रूस की समाजवादी व्यवस्था से प्रभावित था, जिसमें गरीबों और मजदूरों के कल्याण की बात की जाती थी। भारत तथा रूस राजनीतिक, आर्थिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक विचारधारात्मक दृष्टि से भिन्न होते हुए भी लम्बे समय से अच्छे मित्र रहे हैं। भारत की स्वतंत्रता के बाद के आरंभिक वर्षों में भारत और रूस के संबंध घनिष्ठ नहीं थे, किन्तु 1954 में स्टालिन की मृत्यु के बाद रूस की राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में ऐसे बदलाव आये जिससे दोनों एक-दूसरे के काफी निकट आ गये। भारत की स्वतंत्रता के तत्काल पश्चात्, पाकिस्तान द्वारा कबिलाई आक्रमण के तहत कश्मीर को हड़पने का प्रयास किया गया। जिससे यह मुद्दा अंतर्राष्ट्रीय मंच पर पहुंचने के बाद रूस ने इस पर भारत के पक्ष में खुला समर्थन किया। अतः इससे दोनों देशों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों का सूत्रपात हुआ। जिसका चरमोत्कर्ष बंग्लादेश के स्वतंत्रता युद्ध के पूर्व अगस्त 1971 में सम्पन्न भारत-सोवियत मैत्री सहयोग संधि के रूप में देखने को मिला।

1954 में ख्रुश्चेव के द्वारा सत्ता सांभालते ही भारत-सोवियत मैत्री का सही आरंभ हुआ। ख्रुश्चेव ने शांतिपूर्ण सह अस्तित्व वाले राजनय का प्रतिपादन किया, जिसके अंतर्गत गैर समाजवादी देशों के साथ भी विशेष मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित करने का प्रत्यन किया गया। पश्चिमी देशों के साथ भारत का मोह भंग हो चुका था, क्योंकि भारत द्वारा राष्ट्रमंडल की सदस्यता लेने के बावजूद भी नेहरू सरकार ब्रिटेन से अपेक्षित सहायता जुटा पाने में असमर्थ रहे। जबकि सोवियत संघ ने भारत को प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग देने को तैयार था। दूसरी तरफ दोनों देशों के नेताओं की यात्राओं ने इनके संबंधों को मजबूती प्रदान की। जून 1955 में नेहरू का सोवियत द्वारा और इसके बाद नवंबर-दिसंबर 1955 में प्रधान मंत्री एवं महासचिव निकिताख्रुश्चेव का भारतीय दौरा दोनों देशों को एक-दूसरे के नजदीक लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। नेहरू सरकार के समय तक भारत रूस संबंध निरंतर प्रगाढ़ता की ओर बढ़े किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् अर्थात् जब श्री लाल बहादुर शास्त्री ने सत्ता संभाली तथा सोवियत संघ और अमेरिका के बीच तनाव शैथिल्य ;देतान्त हो जाने के कारण भारत और सोवियत संघ के संबंधों में थोड़ी शिथिलता आई। जिसका अनुभव 1965 के भारत पाक युद्ध के पश्चात् सोवियत संघ द्वारा मध्यस्था के समय पाकिस्तान और अमेरिका के पक्ष में झुकाव के रूप में देखा जा सकता है। इंदिरा गांधी के समय में बैंकों का राष्ट्रीयकरण, प्रीवीपर्स की समाप्ति और गरीबी हटाओं का नारा आदि नीतियों में सोवियत समाजवाद की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। जिससे एक बार पुनः भारत-रूस संबंध निकट होने लगे। इस निकटता के परिणामस्वरूप दोनों देशों ने 9 अगस्त 1971 को भारत सोवियत सहयोग संधि पर हस्ताक्षर किया। इस संधि में उल्लेख किया गया था कि संकट काल में सूचना का आदान-प्रदान करना तथा पारस्परिक सलाह के बाद कोई कदम उठाना। यह संधि सैनिक संधि न होकर मनोवैज्ञानिक लाभ उठाने की संधि थी। इंदिरा गांधी की सरकार के बाद, जनता पार्टी सरकार के कार्यकाल में भी

भारत और रूस की आपसकी निकटता बनी रही जिससे ये बात स्पष्ट होती है कि भारत और रूस संबंध केवल दलगत आधार पर नहीं, अपितु हितों के आपसी सामंजस्य पर आधारित थे। ये संबंध निरंतर राजीव गांधी, वीपी सिंह, चन्द्रशेखर, पी0वी0 नरसिम्हा राव, अटल बिहारी वाजपेयी, मनमोहन सिंह और वर्तमान में नरेन्द्र मोदी के समय में भी सौहार्द्रपूर्ण ढंग से गतिशील है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद द्विध्रुवीय विश्व व्यवस्था जो वैश्विक परिदृश्य में आयी थी उसका 1991 में सोवियत संघ के विखंडन के पश्चात् पतन हो गया था और विश्व एक ध्रुवीय हो गया। जिसमें एकमात्र महाशक्ति अमेरिका बचा। सोवियत संघ का उत्तराधिकारी रूस अस्तित्व में आया। सोवियत संघ के उत्तराधिकारी रूस को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में पुराने सोवियत संघ का स्थान प्रदान किया गया। रूस ने अमेरिका तथा पश्चिमी देशों के साथ अपनी आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए निकटता बढ़ाई। किंतु उसे अपेक्षित सहयोग नहीं मिला। जिससे उसे शीघ्र ही आभास हो गया कि उसके साथ अमेरिका और पश्चिम देश दोयम दर्जे का व्यवहार कर रहे हैं। इसी बीच भारत भी अमेरिक और पश्चिमी देशों के साथ संबंध सुधारने में अपेक्षित सफलता प्राप्त की तथा एक आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा। दूसरी तरफ रूस भी पुनः एक महाशक्ति के रूप में उभर रहा है। सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् कुछ वर्षो तक भारत-रूस संबंध शिथिल रहे किंतु बाद में पुनः साकारात्मक गतिशिलता की ओर बढ़ रहे हैं।

17.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अंतर्गत भारत-रूस की ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, रक्षा तथा ऊर्जा संबंधों का विस्तारपूर्वक विवेचन करेंगे। इस ईकाई में सोवियत संघ के साथ संबंध तथा उसके विखंडन के बाद रूस के साथ उतार-चढ़ाव भरे संबंधों पर दृष्टिपात करेंगे। साथ ही साथ भारत-रूस-चीन त्रिकोण तथ इस त्रिकोण द्वारा एक धुरवीय व्यवस्था को किस प्रकार संतुलित किया जाने का प्रयास किया जा रहा है उसका विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे। इस ईकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः-

- भारत-रूस संबंध के ऐतिहासिक महत्व को समझ सकेंगे।
- भारत-रूस के सोवियतकालीन समय के संबंधों के उतार-चढ़ाव को समझ सकेंगे,
- भारत-रूस द्वारा एक दूसरे के निकट संबंधों का विस्तृत वर्णन कर सकेंगे।
- सोवियत संघ के विखंडन के बाद भारत रूस संबंधों सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सामरिक क्षेत्र में आए बदलावों का विस्तृत वर्णन कर सकेंगे।

17.3 भारत-रूस

विदेश मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट से यह स्वतः स्पष्ट पता चलता है कि भारत और रूस के संबंध निरंतरता, विश्वास, गतिशीलता और पारस्परिक सूझ-बूझ पर आधारित रहा है। दोनों देशों ने अपनी विदेश नीति निर्माण में एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ और मैत्रीपूर्ण संबंध कायम करने को अपनी प्राथमिकता माना है। सहयोग के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक दृष्टिकोणों से भारत-रूस संबंध तो प्रगति से विकसित हो रहे हैं। सोवियत संघ के अप्रत्याशित उथल-पुथल और विघटन के कारण भारत और रूस के आपसी संबंधों में कुछ दूरियॉ बढ़ी लेकिन विघटन के पश्चात् भी भारत-रूस संबंधों को सौहार्दपूर्ण बनाये जाने की कोशित की गई।

गोर्बाच्योव ने अपने कार्यकाल में दिल्ली यात्रा के दौरान भारत को आर्थिक, रक्षा, परमाणु और ऊर्जा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सहायता देने की पेशकश की थी लेकिन अपनी आंतरिक कमजोरियों के कारण सोवियत व्यवस्था चरमराने लगी और भारत को दिये गये अश्वासन पूरे नहीं किए जा सके।

सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् रूस के राष्ट्रपति येल्तसिन बने। उनके सामने प्रमुख चुनौती रूसी विदेश नीति का नये स्थिति के अनुसार निर्धारण करना था। सोवियत संघ के विखंडन के संबंध में महान विद्वान फ्रांसिस फुकुयामा ने कहा है कि ''साम्यवादी रूस पर पश्चिम की जीत ने पश्चिमी उदारवादी प्रजातांत्रिक संस्थाओं की सार्वभौमिक वैधता को प्रमाणित कर दिया है।'' वहीं विदेश मंत्री आन्द्रेई कोजीरेव साम्यवादी व्यवस्था की असफलता और साम्यवादी विचारधारा पर आधारित विदेश नीति को सोवियत संघ के विघटन के लिए जिम्मेदार माना। रूस के राष्ट्रपति येल्तसिन तथा विदेश मंत्री आन्द्रेई कोजी रेव ने रूस को संकट से निकालने के लिए पश्चिम की ओर देखना शुरू किया।

रूसी अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के लिए राष्ट्रपति येल्तसिन तथा विदेश मंत्री कोजीरेव ने पश्चिमी देशों, विशेषतः अमेरिका से बहुत अधिक सहायता की उम्मीद की थी, इस हेतु वो रूस के पुराने रवैये को छोड़ने के लिए भी तैयार थे। जो अन्य देशों हेतु रूस अपनी राजनीतिक और आर्थिक सहायता प्रदान करता था। भारत के संदर्भ में अतित ने तीन महत्वपूर्ण समस्याओं को हल करने के लिए छोड़ा था- रूबल के लगातार अवमूल्यन के कारण भारत पर रूस की सोवियत देन-दारी का निस्तारण, भारत-सोवियत संधि का भविष्य तथा क्रायोजेनिक रॉकेट इंजन एवं राकेट टैक्नोलॉजी की बिक्री के लिए हुए समझौते को पूरा करना। जहां तक रूबल के लगातार अवमूल्यन के कारण भारत पर रूस की सोवियत देनदारी के निस्तारण का प्रश्न है इस संबंध में यह पहले से ही ज्ञात है कि मास्को तथा नई दिल्ली 1978 में रूबल-रूपया के विनिमय को सुनिश्चित करते हुए एक समझौता किया। समय बितने के साथ ही भारत पर रूस की देनदारी बढ़कर 36000 करोड़ रूपए हो गई थी। रूबल की तेजी से गिरती कीमत के मद्देनजर 1978 की दर पर देनदारी चुकाने से भारत को बहुत नुकसान होता। अतः फरवरी 1993 में येल्ससिन की भारत यात्रा के समय रूस आपसी सहमति से दो निश्चित दरों पर देनदारी के निस्तारण के लिए राजी हो गया। जिसके अंतर्गत पहले 12 वर्ष तक 19.9 प्रति रूबल की दर से तथा शेष देनदारी को अगले 20 वर्ष तक 39 रू0 प्रति रूबल की दर से निश्चित किया गया। ये दरें उस समय निश्चित की गई थी जब रूबल की विनिमय दर एक-चौथाई रूपए के आस-पास थी। भारत को देनदारी देश के प्रतिष्ठित राष्ट्रीयकृत बैंकों में रूस के खातों में रूपये में जमा करनी थी। रूस को इस रकम का इस्तेमाल भारतीय वाणिज्यिक वस्तुओं की खरीददारी में करना था। इस प्रकार भारत-रूस के बीच वस्तु विनिमय की व्यवस्था हमेशा के लिए खत्म हो गई। इसके बाद दोनों देश अपना कारोबार परिवर्तनीय मुद्राओं में करने लगे।

जहां तक भारत-सोवियत संधि 1971 के भविष्य का प्रश्न था इस संदर्भ में पुरानी भारत-सोवियत संध के नवीनीकरण में कुछ समस्याएं आयीं। क्योंकि यह संधि भारत के लिए केवल सांकेतिक महत्व की रह गई थी। 1971 में भारत-पाक युद्ध में चीनी हस्तक्षेप की संभावना को खत्म करने में इस संधि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। किंतु जब 1993 के प्रारंभ में येल्तसिन की भारत दौरा के समय एक नई मैत्री संधि करने पर राजी हुए, जिसमें 1971 के संधि के समान सुरक्षा की कोई ठोस प्रतिबद्धता नहीं थी इसमें केवल मित्रता, सहयोग और नियमित रूप से आपसी विचार विमर्श करने की बात की गई थी।

जहां तक उपरोक्त दोनों समस्याएं बिना किसी विवाद के सम्पन्न हो गया, वहीं क्रायोजेनिक इंजन तथा रॉकेट टेक्नॉलाजी की बिक्री का प्रश्न गंभीर मुद्दा बन गया। येल्तसिन ने अमेरिका के दबाव में क्रायोजेनिक टेक्नोलॉजी बेचने का समझौता रद्द कर दिया जिससे भारत को बहुत आघात लगा तथा संबंधों में एक नया मोड़ आया। दिसंबर 1998 में रूस के प्रधान मंत्री प्रिमाकोव ने भारत की राजकीय यात्रा की। इस यात्रा के दौरान दोनों देशों ने अपने संबंध क्षेत्रों में मित्रता एवं सहयोग को बढ़ाने के लिए कई समझौतों पर हस्ताक्षर किये। पी-5 देशों में से रूसी प्रधान मंत्री ही वह पहले नेता थे जिन्होंने पोखरण-।। परमाणु परीक्षण तथा उस पर तीव्र वैश्विक प्रतिक्रिया के बाद

वातावरण में उभर रही अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में आर्थिक और राजनीतिक संबंधों में स्थिरता लाने की पहल की। रूस-भारत ने यह घोषणा की कि अगली शिखर वार्ता में एक सामरिक भागीदारी की घोषणा करेंगे। जो भारत रूस भागीदारी को निर्देशित करेगी तथा संबंधों में प्रगाढ़ता लाएगी। रूस ने भारत की संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता की दावेदारी का समर्थन किया। 29 अक्तूबर, 1999 को भारत तथा रूस ने इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर तथा सूचना टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में आपसी सहयोग पर एक आचरण पर हस्ताक्षर किया गया। अप्रैल 1999 में रूस ने भारत को 30 लड़ाकू हवाई जहाज की दूसरी खेप भेजी। कारगिल मसले पर रूस ने पाकिस्तान को स्पष्ट रूप से चेतावनी देते हुए कहा कि वास्तविक नियंत्रण रेखा बदलने के उसके गहरे परिणाम हो सकते हैं तथा पाक घुसपैठियों को निंदा करते हुए भारत की सैनिक कार्यवाही को आवश्यक माना।

जनवरी 2000 में येल्तसिन ने अपना उत्तराधिकारी पुतिन को घोषित किया। अप्रैल 2000 में हुए चुनावों में श्री पुतिन विधिवत रूप से रूस के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए तथा भारत-रूस संबंधों को एक नया आयाम देने की कोशिश की। पुतिन ने भारत-रूस संबंध को व्यापक रूप से विकसित करने तथा दोनों देशों में परम्परागत मित्रता तथा सहयोग को पुनः एक नये दृष्टिकोण से स्थापित करने का प्रयास किया।

17.3.1 आर्थिक तथा व्यापारिक सहयोग

भारत अपनी स्वतंत्रता के पश्चात् रूस के साथ सभी क्षेत्रों में अपने संबंधों को घनिष्ठता के साथ बढ़ाने का प्रयास करता रहा है। भारत तथा रूस दोनों देश आर्थिक तथा व्यापारिक सहयोग बढ़ाने पर बल देते रहे हैं। भारत 1991 तक अपने कुल निर्यातों का 18 प्रतिशत भाग सोवियत संघ तथा उसके सहयोगी राष्ट्रों को भेजता था। किंतु सोवियत संघ के विखंडन के पश्चात् भारत-रूस संबंधों में शिथिलता आ गई। लेकिन हाल ही के वर्षों में द्विपक्षीय आर्थिक संबंधों में गति देखने के मिली है। जहां सन् 2000 में कुल द्विपक्षीय व्यापार 1.6 अरब डॉलर था, जो बढ़कर वर्ष 2011 में 8.8 अरब डॉलर व तथा 2013 में 10.1 अरब डॉलर हो गया जो पिछले वर्ष के मुकाबले 1 अरब डॉलर कम रहा है। किंतु पुतिन के 15वीं शिखर सम्मेलन दिसंबर, 2014 में दो दिवसीय भारत यात्रा के दौरान आर्थिक एवं व्यापारिक संबंधों को मजबूत करने के साकारात्मक प्रयास किये गये। 2013 के 10.1 अरब डॉलर के व्यापार में जहां रूस को भारत का निर्यात 3.1 अरब डॉलर था वहीं भारत में रूसी आयात 7 अरब डॉलर था। इस तरह हम देख सकते हैं कि व्यापार संतुलन रूस के पक्ष में झुका हुआ है। सन् 2000 में दोनों राष्ट्रों ने 2015 तक द्विपक्षीय व्यापार को 20 अरब डॉलर तक पहुंचाने का लक्ष्य रखा। दोनों देशों के नेताओं ने 2013 में पुनर्गठित मुख्य कार्यपाल अधिकारी परिषद की दो बैठकों का भी स्वागत किया। जिसने बेहतर कारोबारी सहयोग हेतु नये क्षेत्रों और अवसरों की पहचान करता है। दोनों पक्षों ने तेल और गैस, फार्मास्यूटिकल्स और मेडिकल उद्योग, आधारभूत अवसंरचना, खनन, ऑटोमोबाइल, उर्वरक, नागर विमानन तथा देशों में स्थित औद्योगिक सुविधाओं के आधुनिकीकरण में सहयोग के लिए मौजूदा गुंजाइश को भी रेखांकित किया। आर्थिक तथा निवेश क्षेत्रों में द्विपक्षीय बात-चीत को बढ़ावा देने के लिए मुख्य तौर के बतौर व्यापार, आर्थिक सहयोग पर भारत-रूस अंतरसरकारी आयोग की महत्ता को भी उजागर किया गया। मास्कों में 4 अक्तूबर, 2013 को आयोजित अंतर सरकारी आयोग के 19वें सत्र के सकारात्म्क परिणामों का भी स्वागत किया गया। दोनों पक्ष भारत तथा बेलारूस कस्टम यूनियम, कजाखस्तान तथा रूसी फेडरेशन के मध्य व्यापक आर्थिक सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर करने की सम्भाव्यता के अध्ययन हेतु संयुक्त अध्ययन समूह के सृजन की दिशा में कार्य करने के लिए सहमत हुए। दोनों देश ''व्यापक आर्थिक सहयोग समझौता'' के माध्यम से वस्तुओं, सेवाओं के मुक्त व्यापार पर बल दिया है। साथ ही निवेश को बढ़ावा दिया जा रहा है तथा दोनों देशों में श्रमिकों के आवाजाही को सरल बनाया जा रहा है। स्मरणीय है कि अभी यह मामला यूरेशियन इकोनॉमिक कमिशन (म्म्ब्) के विचारार्थ लंबित है।

निवेश के क्षेत्र में रूस में भारतीय निवेश 7 अरब डॉलर का है तथा यह विशेषतः ऊर्जा क्षेत्र में है, वहीं भारत में रूसी निवेश 3 अरब डॉलर का है तथा यह मुख्यतः दूर संचार क्षेत्र में है। भारत रूस आर्थिक संबंधों को प्रगाढ़ करने में निम्नलिखित मंचों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है- भारत-रूस आर्थिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक सहयोग आयोग , भारत-रूस व्यापार व निवेश मंचः तथा भारत-रूस सीईओ परिषद। इस प्रकार दोनों पक्षों के आर्थिक संबंधों में भी मजबूती लाने के लिए कई साकारात्मक प्रयास किये जा रहे हैं।

17.3.2 रक्षा तथा रणनीतिक क्षेत्र में सहयोग

प्रांरभ से ही भारत और रूस के आपसी सहयोग क्षेत्र में रक्षा संबंधी सहयोग को प्राथमिकता दी गई है। भारत-रूस रक्षा सहयोग क्रेता-विक्रेता से भी आगे बढ़कर प्रगाढ़ और मौलिक हो गया है और इस संरचना में अनेक व्यापक सहयोग तथा भविष्य के लिए सामरिक दृष्टिकोण के लिए एक नई दिशा मिल सकती है। इस तरह के बदलाव से दोनों देशों के संबंधों में असिमित नये अवसर खुलेंगे। भारत और रूस सामरिक संबंधों में तमाम उतार-चढ़ाव आये लेकिन दोनों की सहभागिता हमेशा बरकरार रही है। रक्षा, एवं सन्य उपकरणों के उत्पादन और विपणन में भी दोनों देशों की उत्साहबर्द्धक सहभागिता रही है। ‘ब्रम्होस’ प्रेक्षेपास्त्र प्रणाली इस प्रकार के संयुक्त उद्यम का अच्छा उदाहरण है।

आजादी के बाद भारत में सोवियत संघ तथा पश्चिमी देशों से काफी मात्रा में उपकरणों को आयात किया। विशेषतः 60 और 70 के दशक में भारत ने सोवियत संघ से अपने अधिकतर हथियारों की पूर्ति किया। पाकिस्तान की नियत के देखते हुए भारत ने अपनी खुद की सुरक्षा के लिए फ्रांस से मिराज 2000, सोवियत संघ से मिग-29 प्राप्त किया। शीत युद्ध के दौरान भारत ओर सोवियत संघ के मध्य बहुत ही गहरा रक्षा सहयोग था। 1991 में भारत के सेना आयुद्ध का 70 प्रतिशत वायु सना के हथियारों का 80 प्रतिशत और नौ सेना आयुद्ध का 85 प्रतिशत सोवियत संघ मेंबने थे। भारत ने लगभग 75 प्रतिशत हथियार 1993 से 2002 के बीच रूस से लिए थे। डीजाइन, विकास और वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में भारत तथा रूस के संबंध अब खरीददार विक्रेता से सहनिर्माता के स्तर पर पहुंच गया है। ऐसे संयुक्त परियोजनाओं में भारतीय नौसेना हेतु विक्रमादित्य विमानवाहक पोत का आधुनिकीकरण भारत में टी-90 टैंकों के लाइसेंस प्राप्त निर्माण के लिए प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण, ब्रम्होस मिसाइल के उत्पादन शामिल है। इसके अतिरिक्त, पांचवी पीढ़ी की लड़ाकू विमान ;थ्ळथ्।द्ध भारत की रक्षा क्षेत्र हेतु एक महत्वपूर्ण रूसी परियोजना है। ब्रह्मोस सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल के डिजाइन विकास, उत्पादन तथा बाजार-विक्रय की जिम्मेदारी रूस की संघीय राज्य विश्वविद्यालय एंटरप्राइज एनपीओ माशिनोस्टोयेनिया और भारत के रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन ;क्त्क्वद्ध के बीच एक महत्वपूर्ण संयुक्त उद्यम है। दोनों देशों के संयुक्त उद्यम में रूसी कम्पनियों द्वारा 72 मिलियन डालर निवेश किया गया है। ब्रह्मोस अनिवार्य रूप से एक एंटीशिप मिसाइल है, जिसे जहाज, पनडुब्बी तथा जमीन से दागा जा सकता है।

नई सदी के साथ ही रूस व अन्य देश अमेरिकी एक-ध्रुवीय व्यवस्था को बहुध्रुवीय व्यवस्था में बदलने हेतु प्रयासरत होने लगे। वर्ष 2009 में भारत व रूस के संबंधों में रक्षा तथा तकनीकी क्षेत्र में एक नये मुकाम की ओर अग्रसर हुए, जो शीतयुद्ध के दौर में गलतफहमियॉं तथा भाव शून्यता उत्पन्न हो गया था। यहां यह महत्वपूर्ण है कि विश्व में महामंदी के बावजूद भारत तथा रूस के बीच व्यापार में 8 प्रतिशत की बढ़ोरी हुई, जो दोनों के संबंधों में एक शुभ संकेत है, क्योंकि महामंदी ने ब्रिक अर्थव्यवस्था में रूस को सबसे ज्यादा प्रभावित किया। फलतः रूस को एशिया में विशेषतः भारत में आर्थिक गठबंधन के लिए मजबूर किया। दूसरी तरफ अमेरिका भी भारत को अरबों डालर का हथियार बेचने का प्रयास किया किंतु भारत ने मास्को को वरीयता दी।

सन् 2000 में राष्ट्रपति पुतिन की भारत यात्रा के दौरान भारत तथा रूस ने कई अन्य दस्तावेजों के साथ सामरिक भागीदारी की घोषणा पर हस्ताक्षर किए। जैसे भारी विमान वाहक ढउमिरल गोर्श्कोव टी-90 टैंकों आदि पर भारत के लिए आपूर्ति के एक प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किए गए। इसी क्रम में आगे वर्ष 2013 में आईएनएस सिंधुरक्षक भारतीय नौसेना की डीजल इलेक्ट्रिक पनडुब्बी है जिसका रूस के सवारोहिस्क स्थित ज्वेज्दोच्का शिपयार्ड पर अंतरिम मरम्मत और आधुनिकीकरण किया गया। आईएनएस सिन्धु रक्षक 877 ई के एम परियोजना की पांचवी पीढ़ी की पनडुब्बी है जो रूस में निर्मित आधुनिकीकृत हुई है। आईएनएस सिंधुरक्षक भारतीय नौसेना के लिए संत पीट्सबर्ग एडमिरल तेइस्की वेर्फी शिपयार्ड द्वारा 1997 में बना एक डीजल इलेक्ट्रिक पनडुब्बी है। उसी डिजाईन पर बने आईएनएस सिंधुवीर की सेवेरोद्विन्सक में मध्यस्तरीय मरम्मत की गई। आईएनएस सिन्धुरत्न, आईएनएस सिंधुघोष, आईएनएस सिंधु विजय तीन से चार वर्ष के अंतराल पर आए। ये पनडुब्बियॉ दुश्मन की पनडुब्बियों एवं सतह पर चलने वाले पोतों का मुकाबला करने, तटीय एवं समुद्री संचार, गुप्तचरी एवं पेट्रोलिंग जैसे काम करने के लिए बनाई गई है। 14वीं शिखर सम्मेलन, अक्तूबर 2013 में दोनों पक्षों ने भारत को रूस में निर्मित पोत त्रिकंड की सुपुदर्गी के साथ एसयू-30 डज्ञप् विमान तथा टी-90 एस के लाइसेंसयुक्त निर्माण का स्वागत किया। साथ ही विक्रमादित्य की जांच सफलतापूर्वक पूर्ण होने पर खुशी जाहिर की। रूस में एडमिरल गोर्शकोव के नाम से मशहूर विमानवाहक पोत को भारत की नौसैनिक क्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से आईएनएस विक्रमादित्य के नाम से सुपुर्द किया गया। दोनों देश की संयुक्त सैन्य सहयोग को बढ़ावा देने के लिए ‘इन्द्र संयुक्त सैन्य अभ्यास किया गया। 15वीं शिखर सम्मेलन दिसंबर, 2014 में दोनों देशों ने पांचवी पीढ़ी की रूस के लड़ाकू हेलीकॉप्टर और उसके द्वारा निर्यात किये जाने वाले साजो समान अब भारत में बनाये जाने पर समझौता की ओर बढ़े।

हाल ही भारत ने इजरायली फालकन एयरबोर्न वार्निंग एंड कंट्रोल सिस्टम विमान (अवाक्स) के लिए मंच के रूप में इस्तेमाल किया जा सकने के लिए 230 एस यू 30 एम के आई बहुआयामी लड़ाकू विमान, आईएल-78 वायु-मध्य टैंकर विमान, आईएल-76 विमान के रूप में रूस से विभिन्न हथियार प्रणाली अनुबंधित की। एमआई-17 चतुर्थ सैन्य परिवहन हेलीकॉप्टरों, आर-77 हवा से हवा में मार करने वाली मिसाइल, किलो वर्ग। प्रकार 877 ई पनडुब्बियों, फ्रिगेट, के ए-31 हेलिक्स हवाई पूर्व चेतावनी हेलीकॉप्टर विमान वाहक एडमिरल गोर्शकोव, मिग-29 के वाहक विमान और केए-31 हेलीकॉप्टरों, अन्य मिश्रित सैन्य प्रणालियों और उपकरणों के अलावा टी-90 टैंको, अग्नि नियंत्रण रडार, हवा और समुद्र निगरानी रडार, लड़ाकू रडारों, विमान रडार, एंटी और शिपरोधी मिसाइलों आदि।

17.3.4 ऊर्जा सहयोग

भारत और रूस संबंध सामरिक साझेदार से आगे बढ़कर ऊर्जा सुरक्षा आदि क्षेत्रों को भी सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता रहा है। जहां रूस एक ओर ऊर्जा सम्पन्न राष्ट्र है वहीं भारत में ऊर्जा का अभाव देखा जाता है। इसलिए भारत को अपना आर्थिक विकास और ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए रूस के साथ तेल-गैस तथा परमाणु ऊर्जा सहयोग को बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी के अनुसार ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि अमेरिका तथा चीन के बाद भारत सन् 2025 तक दुनिया में तीसरा सबसे बड़ा ऊर्जा उपभोक्ता राष्ट्र होगा। इसलिए भारत तथा रूस ऊर्जा सहयोग को भविष्य में अधिक बढ़ावा मिलने की उम्मीद है। मास्को ने कई जल विद्युत स्टेशनों के निर्माण भारत के कोयला उद्योग के विकास तथा तेल खोजने के माध्यम से भारत के ऊर्जा क्षेत्र के निर्माण में महती भूमिका निभाई है। चूंकि रूस में ऊर्जा की अधिकता तथा भारत में ऊर्जा की न्यूनता है जिससे दोनों एक-दूसरे के करीब आते दिख रहे हैं क्योंकि इससे एक ओर जहां रूस को भारत से आर्थिक मुनाफा होगी वहीं भारत को अपनी ऊर्जा जरूरत को पूरी करने में सहूलियत होगी। यद्यपि दोनों देशों के बीच भौगोलिक

निकटता तो नहीं है तथापि दोनों देशों के बीच ऊर्जा क्षेत्र में सहयोग के लिए कोई बाधा नहीं है क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय तेल तथा गैस व्यापार निकटता पर आधारित नहीं है। भारत द्वारा रूस के हाईड्रोकार्बन दृष्टिकोण पर सावधानी से ध्यान दिया जा रहा है क्योंकि अब भारत रूस के व्यापक ऊर्जा के क्षेत्र में एक मजबूत उपस्थिति चाहता है। जिससे ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित हो सके।

भारत की तेल उत्पादक कम्पनी ओएनजीसी ने अपना सबसे बड़ा निवेश सखालिन I, II, III में किया है। भारत तथा रूस हाइड्रोकार्बन क्षेत्र में मध्य एशिया में एक साझा योजना के तहत सहयोग पर बल दे रहे हैं। रूस ने 2005 भारत में तेल संकट के समय एक बार फिर सहायता किया तथा बाजार भाव से कम किमत पर भारत को तेल उपलब्ध कराया। रूस के सहयोग को देखते हुए भूतपूर्व पेट्रोलियम मंत्री मणी शंकर अय्यर ने अक्तूबर, 2004 में कहा था कि भारतीय स्वतंत्रता के आधी सदी तक रूस ने भारत की क्षेत्रीय एकता को गारंटी प्रदान किया और अब दूसरे आधी सदी में भारत की ऊर्जा सुरक्षा को गारंटी प्रदान कर रहा है। ऊर्जा सहयोग क्षेत्र में रूसी सरकार तथा भारत सरकार के बीच 21 दिसंबर, 2010 को तेल तथा गैस क्षेत्र में सहयोग को बढ़ावा देने के लिए बचनद्धता दर्शायी। दोनों देशों ने यह ध्यान रखा कि रूस से भारत को हाइड्रोकार्बन की दीर्घकालिक आपूर्ति की व्यवस्था सुनिश्चित की जाए। दोनों देश स्थल मार्ग के जरिए रूस से भारत को हाइड्रोकार्बन के प्रत्यक्ष परिवहन की संभावनाओं हेतु एक संयुक्त अध्ययन दल की स्थापना करने पर सहमति जताई। दोनों राष्ट्रों ने एक एफ एस बी ओ रूस ऊर्जा एजेंसी तथा भारत के ऊर्जा क्षमता ब्यूरों के बीच ऊर्जा क्षमता पर समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर होने का भी स्वागत किया।

नई दिल्ली तथा मास्को को परमाणु सहयोग समझौता पर भी आगे बढ़े हैं। भारत रूस समझौता अमेरिकी समझौते से ज्यादा अनुकूल है क्योंकि रूस के साथ किये गये समझौते में भारत को प्रणाली पर खर्च किये जाने वाले ईंधन के प्रसंस्करण का अधिकार दिया गया है। अतः इसमें ईंधन के पुनर्संसाधन के बजाय उसके संवर्द्धन की प्रौद्योगिकी हासिल होगी। यह समझौता अमेरिकी समझौते 123 के विपरित है क्योंकि इसमें स्पष्टतः कहा गया है कि यदि रूस यह समझौता भंग भी कर दे तब भी संबंधित परियोजनाएं तथा ईंधन आपूर्ति बाधित नहीं होगी। जबकि अमेरिका समझौते से पीछे हटता है तो भारत को ईंधन और उपकरण दोनों ही लौटाने पड़ेंगे। परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग पर भारत-रूस का अंतर्सरकारी समझौता 1988 के उस समझौते की जगह लेगा, जिसके तहत कुडनकुलम न्यूक्लीयर प्लांट तमिलनाडु में स्थापित हुआ था। कुडनकुलम परमाणु संयंत्र के लिए प्राथमिकता सामग्री तथा उपकरणों की आपूर्ति के लिए 12 अक्तूबर 2002 में एटॉमस्ट्रोएसपोर्ट और न्यूक्लियर पावर कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (एनपीसीआईएल) के बीच समझौता पर हस्ताक्षर किये गये। 15वें शिखर सम्मेलन दिसम्बर 2014 में भारत यात्रा के दौरान रूस के राष्ट्रपति पुतिन 2035 तक भारत में न्यूनतम 12 परमाणु रियेक्टर लगाने पर सहमति जताई। परमाणु क्षेत्र में सहयोग का जिक्र करते हुए भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि दोनों पक्षों ने परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में सहयोग का महत्वाकांक्षी दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास किया है तथा इसमें कम से कम दस और परमाणु रियेक्टरों का निर्माण किया जाएगा। इन रियेक्टरों में सुरक्षा के विश्वस्तरीय उच्चतम मानक अपनाये जाएंगे इसमें उपकरणों और कल पूर्जों का भारत में निर्माण भी शामिल होगा। परमाणु सहयोग पर रणनीतिक दृष्टिकोण के दस्तावेज में कहा गया है कि दोनों पक्षों ने उन परमाणु बिजली घरों के तेजी से क्रियान्वयन का निर्णय किया है, जिन पर सहयोग की सहमति बनी है। दोनों पक्षों ने कुल बीस समझौते पर हस्ताक्षर किये, जिसमें परमाणु ऊर्जा, तेल व गैस स्वास्थ्य, निवेश, खनन मिडिया व पवन ऊर्जा समेत विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग की बात कही गई है। साथ ही प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि दोनों देश तेल व प्राकृतिक गैस के क्षेत्र में सहयोग के लिए

महत्वाकांक्षी एजेंडा तय करेंगे। भारत की एस्सार और रूस की रोजनेफट ने भी कच्चे तेल की दीर्घकालीन आपूर्ति के लिए समझौते किये। समझौते के तहत भारत 10 साल तक तेल खरीदेगा।

रूस के साथ परमाणु समझौते में भारत को परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर से इनकार करने के बावजूद असैन्य परमाणु प्रौद्योगिकी की अनुमति दी। रूस यह जानता है कि इस समय भारत को ऊर्जा की शख्त जरूरत है तथा यह परमाणु प्रौद्योगिकी वह रियेक्टर सौदे हेतु विश्व का बड़ा बाजार साबित हो सकता है, इससे दोनों देशों में अन्योन्याश्रय संबंध स्थापित होगा।

17.3.5 अंतरिक्ष सहयोग

ऐतिहासिक रूप से भारत और रूस अंतरिक्ष क्षेत्र में सहयोग प्रदान करते रहे हैं जैसा कि आर्यभट्ट जो भारत का प्रथम सेटेलाइट था इसको सोवितय यूनियन के द्वारा 19 अप्रैल 1975 को एक लॉच वेहिकल से छोड़ा गया। जब रूसी राष्ट्रपति पुतिन दिसंबर, 2004 में आए थे तब दो अंतरिक्ष से संबंधित द्विपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर किये गये थे- ' इंटर गवर्मेण्टल अम्ब्रेला एग्रीमेंट ऑन कोऑपरेशन इन द आउटर स्पेश फॉर पीसफुल परपज़ेज' तथा 'द इंटर स्पेश एजेंसी एग्रीमेंट ऑन कोऑपरेशन इन द एशियन सेटेलाइट नेविगेशन सिस्टम' से संबंधित बहुत सारे समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। 2010 में उपग्रह नवहन रीसवर्स तथा भूतल समर्थक उपकरण आदि के संयुक्त उत्पादन के लिए इसके और संघीय अंतरीक्ष अभिकरण के बीच एक संयुक्त विज्ञाप्ति पर हस्ताक्षर हुआ है।

इसके अतिरिक्त भारत और रूस चन्द्रयान-2 जैसी परियोजनाओं पर सहयोग कर रहे हैं, जो एक भारतीय रोवस्काफ्ट तथा एक रूसी लैंडर-मोड्यूल, मानव अंतरिक्ष विमान परियोजना और यूथसैट परियोजना को चन्द्रमा पर स्थापित करेगा। 2011 में भारतीय तथा रूसी छात्रों द्वारा संयुक्त रूप से विकसित किया गया उपग्रह युथसैट को भारत द्वारा एक रॉकेट से सफलतापूर्वक प्रक्षेपित किया गया था। चंद्रयान-2 इंडियन स्पेश रिसर्च आर्गनाइजेशन तथा रसियन फेडरल स्पेश एजेंसी ; के द्वारा प्रस्तावित एक संयुक्त चंद्र अन्वेषण मिशन है। इस मिशन में प्रस्तावित किया गया है कि इसे जियो सिन्क्रोनस सेटेलाइट लॉच वेहिकल के द्वारा 2017 में प्रक्षेपित किया जाएगा।

17.3.6 विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी

भारत और रूस के द्वारा विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में 'द इंटीग्रेटेड लॉग-टर्म प्रोग्राम ;प्स्ज्च्द्ध के तहत किया गया सहयोग, अब तक का सबसे बड़ा सहयोग रहा है। आईएलटीपी पर भारत की तरफ से 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग' तथा रूस की तरफ से 'रसियन एकेडमी ऑफ साइंसेज एंड रसियन मिनिस्टरी ऑफ इण्डसट्री एवं साइंस एंड टेक्नोलॉजी' द्वारा समन्वय स्थापित किया जा रहा है। आईएलटीपी के तहत सारस , डूएट एयरक्राफ्ट के विकास, सेमीकण्डक्टर प्रोडक्ट्स सुपर कम्प्यूटर, पॉली वैक्सीन्स, लेजन साइंसेज और प्रौद्योगिकी, सिस्मोलॉजी, हाई प्योरिटी मैटैरियल्स, सॉफ्टवेयर, आईटी और आयुर्वेद के क्षेत्र में सहयोग को प्राथमिकता दी गई है। आईएलटीपी को वर्ष 2009 के आगे अग्रणी अभिनव प्रौद्योगिकी की विकास के नये आदेश के साथ 10 वर्षों के लिए एक अन्य स्तर प्रदान किया गया है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर गणित कार्यदल के माध्यम से ; द्विपक्षीय सहयोग को समर्थन प्रदान करता है। साथ ही द्विपक्षीय वैज्ञानिक सहयोग की समीक्षा भी करता है।

17.3.7 सांस्कृतिक संबंध

रूसी लेखक पीसारेव कहते हैं ''भारतीय संस्कृति सोवियत जमाने से ही हमारे नजदीक एवं परिचित रही है। हमने भारतीय संगीत और भारतीय कला को स्वीकारा है क्योंकि भारतीय संस्कृति हमेशा से ही ग्राह्य है, किसी ने उसे हम पर थोपा नहीं है। हमारे बीच बहुत बड़ा धार्मिक अंतर भी नहीं है, क्योंकि हिन्दुत्व एक ऐसी आस्था है जो सभी को स्वीकारती है। भारतीयों को ईसाइयत से कोई समस्या नहीं है। रूस और भारत का इतिहास रूचिकर रहा है।''

''कैथरीन द ग्रेट'' की राजाज्ञा से ''भगवद्गीता'' की प्रथम रसियन अनुवाद का 1788 में प्रकाशन हुआ। रसियन मार्गदर्शक जिसमें गरासीम लेबदेव का नाम महत्वपूर्ण है, ने भारत यात्रा कर भारतीय संस्कृति तथा प्राचीन भारतीय भाषाओं का अध्ययन किया। बाद में निकोलस रिओरिक ने भारतीय दर्शन का अध्ययन किया। रिओरिक रामकृष्ण और विवेकानन्द के दर्शन और रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविताओं से प्रभावित थे। अक्तूबर 2004 में निकोलस रियोरिक की 130वीं जन्म तिथि तथा स्वेतस्लाव रिथोरिक की 100वीं जन्मतिथि को भारत में धूम-धाम से मनाया गया।

जाने माने रसियन इण्डियोलॉजिस्ट जैसे यूरी क्नोरोजोव, एलेक्जेंडर कोन्द्रातोव, निकिता गुरोव, वानमीनायेव ने अपने शोध में सिंधु लिपि, संस्कृत और भारतीय साहित्य को समझने में अपना ध्यान केंद्रित किया है। इसके अतिरिक्त रूस में भारतीय अध्ययन की एक सशक्त परम्परा विद्यमान है। राज-दूतावास का जवाहर लाल नेहरू सांस्कृतिक केन्द्र 6 रूसी संस्थाओं के साथ समीपता से जुड़ा हुआ है जिसमें दर्शनशास्त्र संस्थान, मास्को, जिसमें भारतीय दर्शन पर एक महात्मा गांधी केंद्र स्थापित पूर्वी अध्ययन संस्थान मॉस्को, मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय आदि सम्मिलित है। भारतीय संस्कृत संबंध परिषद रूस के अग्रणी विश्वविद्यालयों एवं स्थानों में आधुनिक भारतीय समकालीन अध्ययन केन्द्रों की स्थापना कर रही है। अग्रणी विश्वविद्यालय तथा विद्यालयों सहित लगभग 20 रूसी संस्थान पन्द्रह सौ से अधिक छात्र (रूसी) हिन्दी की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। रूस के लोगों की भारतीय नृत्य संगीत तथा योग में रूचि देखी जाती है।

भारत तथा रूस के बीच जन-जन के सम्पर्कों को बढ़ावा देने के लिए अनेकों अन्य सांस्कृतिक पहल किये गये हैं। सन् 2008 को भारत में रूस वर्ष के रूप में मनाया गया था तथा 2011 में एक छोटे भारतीय सांस्कृतिक पर्व का आयोजन रूस में किया गया था। इसके अतिरिक्त रविन्द्रनाथ टैगोर के 125वीं जयंती के अवसर पर आयोजित समारोह के एक हिस्से के रूप में अनेकों सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक सम्मेलनों का आयोजन किया गया था।

परम्परागत रूप से भारत तथा रूस के बीच सिनेमा क्षेत्र में भी मजबूत सहयोग रहा है। भारत और रूस के अनेक पीढ़ी एक-दूसरे देश की फिल्म देखकर ही बड़े हुए हैं। जैसे प्रमुख भारतीय फिल्म अवारा, बॉबी, बारूद और ममता रूस में प्रसिद्ध रहे हैं तथा रूसी कहानी पर आधारित फिल्म 'लकी नो टाइम फॉर लव' को रूस में बहुत किया गया। वर्तमान में केबल और सेटेलाइट चैनल के कारण रूसी लोग भारतीय फिल्म को प्रत्यक्ष देख पा रहे हैं। भूतपूर्व रसियन राष्ट्रपति दैमित्री मेदवेदव अपनी भारत यात्रा के दौरान यशराज स्टूडियो को भी देखा तथा वहां प्रमुख बॉलीवुड के अभिनेता और अभिनेत्रियों जैसे शाहरूख खान, यश चौपड़ा तथा करीना कपूर आदि से मिले। 15वीं शिखर सम्मेलन दिसंबर, 2014 में प्रैस ट्रस्ट ऑफ इंडिया और रूसी न्यूज एजेंसी तास ने भी एक समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसके तहत खबरों के आदान-प्रदान में सहयोग किया जाएगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारंभ से लेकर अब तक भारत-रूस सांस्कृतिक सहयोग बहुत ही मजबूत रहे हैं।

17.4 आतंकवाद पर साझा दृष्टिकोण

भारत और रूस अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर साथ लड़ने के लिए वचनबद्ध है, चाहे आतंकवादी कहीं भी अस्तित्व में हो। रूस ने भारत के उस प्रारूप का समर्थन किया है जो अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर व्यापक सम्मेलन ;ब्ब्प्ज्.ब्वउचतमीमदेपअम ब्वदअमदजपवद वद प्दजमतदंजपवदंस ज्मततवतपेउद्ध संयुक्त राष्ट्र में हुआ था। दोनों राष्ट्रों ने दिसंबर, 2002 में आतंकवाद से लड़ने के लिए एमओयू पर हस्ताक्षर किये। अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद संयुक्त कार्यदल का समय-समय पर बैठक होती रहती है। इसकी चौथी बैठक नई दिल्ली में 24 अक्तूबर, 2006 को हुई थी। रूस और भारत दोनों आतंकवाद से ग्रस्त हैं जहां भारत कश्मीर में वहीं रूस चेचन्या में अतः दोनों देश एक-दूसरे को आतंकवाद के मुद्दे पर समर्थन देते रहते हैं।

1999 में कारगिल घुसपैठ पर भारत की कार्यवाही पर रूस ने समर्थन दिया साथ ही विश्व के अन्य राष्ट्रों ने भी भारतीय दृष्टिकोण का समर्थन किया। इस घटना से पाकिस्तान विश्व में आतंकवाद का पोषक राष्ट्र के रूप में उजागर हुआ। अक्तूबर, 2000 में राष्ट्रपति पुतिन ने भारत यात्रा के दौरान कहा कि रूस भारत के साथ संबंधों को अधिक वरीयता देता है और देता रहेगा तथा दोनों देश आपसी सहयोग तथा उच्चस्तरीय संयुक्त प्रयासों के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, पार सीमा आतंकवाद तथा नसीली वस्तुओं की तश्करी पर आधारित आतंकवाद जिसकी जड़ अफगानिस्तान पाकिस्तान क्षेत्र में थी पर भारतीय दृष्टिकोण का समर्थन किया। इसके अतिरिक्त सितंबर 2001 में अमरीका पर तथा 13 दिसंबर, 2001 में भारतीय संसद के विरूद्ध हुए आतंकवादी हमलों से उत्पन्न हुए परिस्थितियों पर विचार-विमर्श करने के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय के मुख्य सलाहकार तथा राष्ट्रीय सुरक्षा समिति के अध्यक्ष श्री ब्रजेश मिश्र तथा बाद में विदेश तथा रक्षा मंत्री श्री यशवंत सिंह ने रूस की यात्रा की तथा रूसी नेताओं से उच्च स्तरीय वार्तालाप की। दोनों देशों ने अंतर्राष्ट्रीय नीति तथा प्रोग्राम के अधीन अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद को नष्ट करने पर बल दिया। दोनों देश यह स्वीकार करते हैं कि अफगानिस्तान में विद्यमान तालीबान शासन आतंकवाद का संरक्षक तथा पोषक रहा है।

दिसंबर, 2002 में पुतिन ने दिल्ली घोषणापत्र में आतंकवाद की समाप्ति पर जोर देते हुए श्री बाजपेयी के साथ एक साझा बयान में कहा कि पाकिस्तान को सीमापार आतंकवाद तथा वास्तविक नियंत्रण रेखा से घुसपैठ रोकना चाहिए। इसके अतिरिक्त जब 2008 में पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवादियों द्वारा जब मुंबई में हमला किया गया था तब रूस ने पाकिस्तान की निंदा की तथा भारत को हरसंभव मदद देने की पेशकश की। हाल ही में संपन्न 15वीं शिखर सम्मेलन में भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के साथ संयुक्त बयान में जम्मू-कश्मीर तथा चेचन्या में आतंकवादी हमलों में मारे गये लोगों के प्रति सम्वेदना प्रकट की और उम्मीद जताई की बिना किसी देरी के आतंकवादियों के लिए सभी सुरक्षित पनाहगाह और शरणस्थलों को समाप्त किया जाएगा।

अफगानिस्तान में नाटो सैनिकों की वापसी के बाद की स्थिति को लेकर अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद को लेकर दोनों देशों की चिंताए समान हैं। अफगानिस्तान में 2014 में नाटो सैनिकों की वापसी के पश्चात् वहां की सुरक्षा तथा स्थायित्व को सबसे बड़ा खतरा आतंकवाद का है। साथ ही भारत-रूस में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद द्वारा तालिबान के द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों को आगे जारी रखने के प्रयास को आवश्यक माना है। अंतर्राष्ट्रीय मंचों के माध्यम से भी दोनों देश आतंकवाद को समाप्त करने का साझा प्रयास करते दिख रहे हैं।

17.5 भारत-रूस-चीन त्रिकोण

बदलते अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में विश्व में शक्ति संतुलन स्थापित करते हुए अर्थात् सोवियत संघ के विखण्डन के बाद विश्व एक ध्रुवीय हो गया था उसको बहुध्रुवीय की ओर ले जाने के लिए 1998 में रूस के प्रधान मंत्री येवगेनी प्रिमाकोव भारत-रूस-चीन त्रिकोण का विचार दिया। प्रिमाकोव एक बहुत बड़े एकेमेडीसियन थे। उन्हें यह भली-भांति समझ आ गया था कि अमेरिकी दादागिरी को रोकने के लिए एक वैकल्पिक शक्ति की जरूरत है। कहीं न कहीं भारत तथा चीन भी अमेरिकी आधिपत्य से परेशान थे। अतः इन्हें भी प्रिमाकोव का यह विचार उतम लगा। भारत जहां 1998 में परमाणु परीक्षण के बाद विश्व परिदृश्य में अलग-थलग पड़ गया था तथा रूस भी चेचन्या में मानवाधिकार का उल्लंघन तथा प्रजातांत्रिक प्रणाली को स्थापित करने के मुद्दे पर पश्चिमी देशों के दबाव में था। वहीं दूसरी तरफ चीन मार्क्सवाद के प्रति अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के लिए पहले से ही अमेरिका तथा पश्चिम के निशाने पर रहा है तथा थियानमेन नरसंहार की घटना ने चीन को अंतर्राष्ट्रीय जगत में अस्पृश्य बना दिया था। साथ ही साथ ताइवान तथा तिब्बत के मसले पर भी अमेरिका तथा पश्चिम की हुड़की झेलनी पड़ी। अतः इस प्रकार की

परिस्थितियों में भारत-रूस-चीन त्रिकोण बनाने में मदद किया ताकि वो अमेरिका तथा पश्चिमी देशों से मुकाबला कर सके।

भारत ने जब 1998 में दूसरी बार परमाणु परीक्षण किया था तो अमेरिका तथा पश्चिमी देशों ने भारत पर तरह-तरह के आर्थिक प्रतिबंध आरोपित किये। किंतु भारत का मित्र रूस ने किसी भी प्रकार का आर्थिक प्रतिबंध लगाने से इंकार कर दिया। उसी वर्ष रूसी प्रधानमंत्री येवगेनी प्रिमाकोव ने दिसंबर 1998 में भारत यात्रा कर गहरे सामरिक सहयोग की परिकल्पना के साथ ही साथ रूस-भारत-चीन के त्रिकोण का प्रस्ताव दिया। उन्होंने यह भी कहा कि यह त्रिकोण बनने में सफल रहता है तो बहुत अच्छा होगा जिससे न केवल स्थानीय स्तर पर बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी स्थिरता लाया जा सकेगा। इस त्रिकोण संकल्पना पर जहां चीन का विचार सकारात्मक था वहीं भारत का विचार बेहद संतुलित था क्योंकि भारत पश्चिमी देशों को भी यह संकेत नहीं देना चाहता था कि वह किसी गुट का हिस्सा बनने जा रहा है। भारत ने इस त्रिकोण के विचार के संबंध में कहा कि रूस तो हमेशा से भारत का दोस्त रहा है जबकि चीन के साथ रिश्ते सामान्य बनाने के लिए अनवरत प्रयास किया जा रहा है। भारत की तरफ से ठंडी प्रतिक्रिया को देखते हुए प्रिमाकोव ने मिडिया से कहा कि वो ये कहना चाहते हैं कि इस तरह की साझेदारी क्षेत्र तथा विश्व में सही मायने में स्थायित्व ला सकती है। भारत जहां पाक प्रायोजित आतंवाद, रूस चेचन्या आतंकवाद से तथा चीन जिंगजियांग इस्लामिक कट्टरपंथियों के अलगववाद का सामने कर रहे हैं। अतः तीनों देश इस बात पर साम्यता रखते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद से लड़ने का ठेका केवल अमेरिका का नहीं है बल्कि हम जैसे राष्ट्र भी इसका भार उठा सकता है। क्योंकि रूस-चीन-भारत इस बात पर सहमत है कि विश्व को बहुध्रुवीय होना चाहिए।

सन् 1998 से लेकर 2001 तक भारत-रूस-चीन त्रिकोण को महत्वपूर्ण बनाने हेतु ठोस प्रगति नहीं हुई। लेकिन अमेरिकी दादागिरी के बढ़ने से 2002 में तीनों राष्ट्रों ने इस त्रिकोण को ठोस रूप देने का प्रयास किया। संयुक्त राष्ट्र महासभा की बैठक के दौरान पहलीबार तीनों देशों के प्रधान मंत्रियों की मुलाकात हुई। जिसमें मीडिया को कोई ब्रिफिंग नहीं दी गई थी, किंतु 2003 की दूसरी बैठक में तीनों विदेश मंत्री प्रेस को ये बताने के लिए राजी थे कि ईराक के मसले पर वो एक साझा नतीजों पर पहुंचे हैं। उन्होंने कहा कि इराक में तत्काल राजनीतिक प्रक्रिया को प्रारंभ की जानी चाहिए तथा इराक की सम्प्रभुता इराकी लोगों को सौंप देनी चाहिए। इससे ये जाहिर होता है कि अमेरिका को यह एक कड़ा संदेश दिया गया था। 2004 में विदेश मंत्रियों की तीसरी बैठक कॉफिडेंस बिल्डिंग मेज इन एशिया के तहत अल्माटी में 16 देशों के सम्मेलन के दौरान प्रेस ब्रिफिंग ने तीनों राष्ट्रों ने अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर सामुहिक रूप की एकता को आगे बढ़ाया। 2005 में रू के ब्लाडिवोस्टक में तीनों देशों के विदेशमंत्रियों की बैठक में बड़ी तादाद में पश्चिमी देशों के पत्रकारों की मौजुदगी ने यह साबित कर दिया कि इनका प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ रहा है जिससे यह त्रिकोण अपने उदय के साथ एक नये दौर में चली गई जो अंतर्राष्ट्रीय जगत में अपने विचारों को मजबूती के साथ रख सकते हैं।

भारत-रूस-चीन के 11वें चरण की बैठक 13 अप्रैल 2012 को मास्को में हुई, जिसमें प्रमुख एजेंडा एक पक्षीय ध्रुवीकरण का विरोध तथा अंतर्राष्ट्रीय जगत में लोकतांत्रिक बहुलवाद को बढ़ावा देना था। साथ ही तीनों राष्ट्रों ने कहा कि सभी खतरे केवल सैनिक शक्ति के जरिए नहीं हटाये जा सकते बल्कि इन्हें राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक नजरिये से भी देखने की आवश्यकता है। वर्तमान में भारत-रूस-चीन त्रिकोण को तीनों राष्ट्रों द्वारा और मजबूत बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

निसंदेह वैश्विक परिदृश्य में रूस भारत तथा चीन एक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय मंच की भूमिका निभा रहा है। सभी वैश्विक मुद्दों पर सहयोग और समान दृष्टिकोण अपनाने के लिए तथा विश्व शांति, संतुलन एवं स्थायित्व बनाये रखने

के लिए रूस-भारत और चीन के समूह को मजबूत बनाना समय की मांग है। इस त्रिकोण को और व्यापक बनाते हुए ब्रिक (ब्राजील, रूस,भारत और चीन) तथा उसी का विस्तृत रूप ब्रिक्स (ब्राजील,रूस,भारत,चीन, दक्षिण अफ्रीका) का निर्माण किया गया। ब्रिक राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों की प्रथम शिखर बैठक 16 जून, 2009 को रूस के येकातेरिनबर्ग में सम्पन्न हुई, जिसमें वैश्विक खाद्य सुरक्षा पर बल दिया गया। दूसरी शिखर बैठक 15 अप्रैल 2010 को ब्राजील की राजधानी ब्राजीलिया में सम्पन्न हुआ, जिसमें विकास बैंकों के मध्य एक सहयोग ज्ञापन पर हस्ताक्षर हुए तथा ब्रिक सांख्यिकी प्रकाशन के प्रथम संस्करण का विमोचन किया गया। सितंबर, 2010 में दक्षिण अफ्रिका को सम्मिलित करने पर सहमति हुई जिसमें ब्रिक, ब्रिक्स बन गया। ब्रिक्स की तीसरी शिखर बैठक चीन के सान्या शहर में सम्पन्न हुई। वस्तुतः यह ब्रिक्स के रूप में प्रथम शिखर बैठक थी जिसमें संयुक्त घोषणा पत्र जारी किया गया तथा ब्रिक्स राष्ट्रों के केंद्रिय बैंकों द्वारा ''वित्तीय सहयोग पर रूप रेखा समझौते' पर हस्ताक्षर किए गए। चौथी शिखर बैठक 29 मार्च, 2012 को भारत की राजधानी नई दिल्ली में सम्पन्न हुई, जिसके दौरान 'दिल्ली घोषणा पत्र' जारी किया गया, जिसके अंतिम भाग में एक कार्ययोजना को भी रेखांकित किया गया था। ब्रिक्स सदस्य राष्ट्रों के विकास बैंकों के बीच पारस्परिक सहयोग तथा अंतक्षेत्रीय व्यापार को प्रोत्साहन देने वाले दो समझौतों पर भी हस्ताक्षर किये गए। ब्रिक्स की पांचवी शिखर बैठक दक्षिण अफ्रिका के शहर डरबन में 26-27 मार्च, 2013 को सम्पन्न हुआ जिसमें 'ई-थेक्विनी घोषणा पत्र' जारी किय गया, जिसके अंत में 18 सूत्री कार्ययोजना भी रेखांकित की गई। ब्रिक्स की छठवीं शिखर बैठक ब्राजील के फोर्टलेजा और ब्राजीलिया में 14-16 जुलाई, 2014 के मध्य सम्पन्न हुई। इस बैठक की मेजबानी ब्राजील की राष्ट्रपति डिल्मा रोसेफ ने की। छठवीं शिखर बैठक की थीम थी- 'समावेशी विकासः संपोषणीय समाधान'। इस बैठक में मेजबान राष्ट्र ब्राजील की राष्ट्रपति डिल्मा रोसेफ, रूसी राष्ट्रपति ब्लादिमिर पुतिन, भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी चीनी राष्ट्रपति सीजिंगपिग तथा दक्षिण अफ्रीका के उपराष्ट्रपति जैकब जुमां ने प्रतिभाग किया। इस बैठक के अंत में घोषणा पत्र एवं कार्य योजना जारी की गई तथा एक नये विकास बैंक तथा आकस्मिक रिजर्व निधि पर समझौता हुआ। ब्रिक्स आकस्मिक आरक्षित व्यवस्थापन (ब्वदजपदहमदज त्मेमतअम ।ततंदहमउमदजरू ब्त्।) में 100 बिलियन अमेरिकी डॉलर की हिस्सेदारी इस प्रकार है- चीन 41 बिलियन डॉलर, ब्राजील रूस तथा भारत 18-18 बिलियन डॉलर तथा दक्षिण अफ्रीका 5 बिलियन डॉलर है।

इसके अतिरिक्त 'संघाई सहयोग संगठन' में रूस और चीन की स्थाई सदस्यता है, जबकि वहीं भारत एक पर्यवेक्षक की स्थिति में है। 'संघाई सहयोग संगठन' एक यूरेशियन क्षेत्रीय संगठन है। अतः रूस यूरेशियन क्षेत्र में भी संतुलन कायम करना चाहता है तथा विश्व को एक ध्रुवीयता के आधिपत्य से निकालना चाहता है। संघाई सहयोग संगठन को एक मजबूत अंतर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में खड़ा करना चाहता है। अतः इस क्षेत्रीय संगठन में वह भारत की स्थाई सदस्यता का पूर्ण रूप से समर्थन करना चाहता है। अन्य संगठनों जैसे एशिया-प्रशान्त आर्थिक सहयोग मंच) की भूमिका को एशिया प्रशांत क्षेत्र में आर्थिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण मंत्र बताते हुए रूस इस संगठन में भी भारत की सदस्यता को समर्थन कर रह है जिससे क्षेत्रीय तथा वैश्विक व्यापार के मुद्दे पर वार्तालाप का मार्ग प्रशस्त होगा। दोनों ने आसियान क्षेत्रीय मंच की ओर मजबूती हेतु अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की क्योंकि यह एशिया-प्रशांत क्षेत्र में शान्ति और स्थायित्व को बनाए रखने में व्यावहारिक तौर पर सहयोग का एक मुख्य साधन है। इससे आतंकवाद तथा अंतर्राष्ट्रीय अपराधों का सामना करने के प्रयासों में वैश्विक प्रयासों को बढ़ाने में मदद मिलती है। दूसरी तरफ रूस संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भारत की स्थाई सदस्यता का बार-बार समर्थन करता है। चूंकि भारत एक आर्थिक शक्ति के रूप में वैश्विक परिदृश्य में उभर रहा है। अतः रूस अपनी मित्रता के प्रति बचनबद्ध होते हुए इस बात का प्रयास करता है कि भारत जिस चीज का हकदार है, वो उसे मिलना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1 सोवियत संघ विघटित कब हुआ था?

A. 1990 B. 1991 C. 1993 D. 1994

2. सोवियत संघ के विघटन से कितने स्वतंत्र राष्ट्र बनेघ्

A. 13 B. 14 C. 1 D. 16

3. भारत रुस सामरिक सहयोग संधि कब हुआ था?

A. 1970 B. 1971 C. 1972 D. 1973

4. भारत ने रुस के युद्धपोत गोर्शकोव को किस नाम से अपने बेड़े में शामिल किया?

A. विक्रामादित्य B. आदित्य C. आकाश D. विकाश

5. हाल ही मे पुतिन ने अपने भारत दौरे के समय कितने और परमाणु रिएक्टर लगाने की बात कीघ्

A. 9 B. 10 C. 11 D. 12

6. भारत.रुस आर्थिक व्यापार सहयोग 2015 तक कितने बिलियन पहुचने की सम्भावना हैघ्

A. 10 B. 15 C. 20 D. 25

17.6 सारांश

भारत रूस संबंध सोवियत संघ के समय से ही बहुत मजबूत रहा है। यद्यपि समय-समय पर दोनों राष्ट्रों के राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय हित के अनुसार संबंधों में उतार-चढ़ाव आते रहे हैं तथापि अधिकांश समय तक दोनों राष्ट्र मित्रतापूर्ण तथा सौहार्दपूर्ण संबंधों के साथ रहे हैं। वर्तमान में भारत तथा रूस एक-दूसरे को अच्छी तरह समझने लगे हैं। दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधों में रक्षा क्षेत्र का स्थान वरीयता में रहा है तथा व्यापार आदि के मुद्दे दूसरे पायदान पर रहे हैं। क्योंकि दोनों का आपसी व्यापार कमजोर रहा है। 2011 में रूस द्वारा विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बनने से भारत तथा रूस के बीच व्यापार बढ़ने की संभावना है। दोनों देश सैनिक तथा तकनीकी सहयोग तथा परमाणु ऊर्जा सहयोग के क्षेत्र में बहुत प्रगति किए हैं। इसके अतिरिक्त हाईड्रोकार्बन तथा ऊर्जा क्षेत्र में उनके बीच बहुत संभावनाएं हैं। भारत-रूस आतंकवाद के उन्मूलन शांतिपूर्ण तथा स्थिर मध्य एशिया, संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सुधार, ईरान के परमाणु मुद्दे और सिरिया मुद्दा आदि पर समान विचार रखते हैं। दोनों देशों के बीच सहयोग न केवल इनके बीच शांति सुरक्षा को मजबूत करता है अपितु संपूर्ण विश्व की सुरक्षा को भी सुनिश्चित करने का प्रयास करता है। इसी कड़ी में भारत-रूस-चीन त्रिकोण अपना महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करा रहा है। तथा विश्व में शक्ति संतुलन हेतु एक ध्रुवीय व्यवस्था को बहुधुरवीय बनाने का प्रयास किया जा रहा है जिससे अमेरिकी वर्चस्व को रोका जा सके। अमेरिका, भारत रूस के बढ़ते संबंधों से चिंतित है। अमेरिका ने ही रूस को भारत हेतु क्रायोजेनिक इंजन सप्लाई न करने का दबाव डाला था तथा रूस उस समय अमेरिकी दबाव में आकर भारत को क्रायोजेनिक इंजन न दे सका। इसी प्रकार का दबाव अमेरिका ने रूस द्वारा भारत को दो परमाणु रियेक्टर देने का विरोध किया था किंतु रूस इस बार दबाव में नहीं आया तथा भारत को इस क्षेत्र में सहयोग दिया। इससे यह पता चलता है कि भारत-रूस संबंध अब अंतर्राष्ट्रीय दबाव से आगे बढ़कर पुरानी मित्रता तथा सहयोग के विचार पर आगे बढ़ रहा है।

17.7 शब्दावली

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति - विश्व के विभिन्न देशों के बीच होने वाली क्रियाविधि

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध - एक ऐसा अनुशासन जो दो या दो से अधिक राज्यों के सम्बन्धो का अध्ययन करता है।

पारस्परिक सम्बन्ध- एक दूसरे के साथ आपसी सम्बन्ध

कूटनीति - विदेश नीति के संचालन का तरीका

संयुक्त राष्ट्र संघ - एक अंतराष्ट्रीय संगठन

सोवियत संघ -भूतपूर्व रूस

एकध्रुवीय - विश्व में एक महाशक्ति का होना

द्विध्रुवी - विश्व में दो महाशक्ति का होना

बहुध्रुवीय . विश्व में दो से अधिक शक्तियों का होना

साम्यवाद . सोवियत संघ की विचारधारा

पूंजीवाद- अमेरिका की विचारधारा

17.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1.B, 2.C, 3.B, `4.A, 5.D, 6.C

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.खन्ना, वी. एन. एवं अरोड़ा, लिपाक्षी (2006) “भारत की विदेश नीति” विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., नई दिल्ली।

2.दीक्षित जे. एन. (2004) “भारतीय विदेश नीति”, प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली।

3.घई, यू. आर. एवं घई के. के. (2005) “अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति”, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर।

4.घई, यू. आर. एवं घई. वी. (2004) “भारतीय विदेश नीति”, न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर।

5.वरमानी, आर. सी. (2007) “समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध”, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

6.फड़िआ, बी. एल. (2013) “अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति”, साहित्यिक भवन पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

7.बीस्वाल, तपन (2010), “अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध”, मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लि., नई दिल्ली।

17.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.भारतीय विदेश मंत्रालय की आधिकारिक वेबसाइट

2.द हिन्दू समाचार पत्र

3.जनसत्ता समाचार पत्र

17.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.भारत रुस सम्बन्धो की ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान मे रखते हुएए सामरिक तथा रणनीतिक सम्बन्धो पर प्रकाश डालिये।

2.भारत.रुस के बीच सामाजिकए आर्थिकए राजनीतिक्ए सांस्कृतिक तथा ऊर्जा सहयोग सम्बन्धी सम्बन्धों का विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई 18 : भारत व चीन

इकाई की संरचना

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 भारत और चीन संबंध

18.3.1 भारत – चीन संबंध का प्रमोद काल (1949-1958)

18.3.2 भारत- चीन संबंध का शीत काल (1958-1970)

18.3.3 भारत –चीन सम्बन्धों का तनाव शैथिल्य काल (1970- 2001)

18.3.4 भारत – चीन संबंधो का पुनरुथान (2001- वर्तमान)

18.3.5 आर्थिक संबंध

18.4 सारांश

18.5 शब्दावली

18.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

18.7 संदर्भ ग्रंथ

18.8 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामाग्री

18.9 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

चीन व भारत विश्व के दो बड़े विकासशील देश हैं। दोनों ने विश्व की शांति व विकास के लिए अनेक काम किये हैं। भारत और उसके सब से बड़े पड़ोसी देश चीन के बीच लंबी सीमा रेखा है। लम्बे अरसे से भारत सरकार चीन के साथ अपने संबंधों का विकास करने को बड़ा महत्व देती रही है। भारत व चीन बहुध्रुवीय दुनिया की स्थापना करने का पक्ष लेते हैं, प्रभुत्ववादी व बल की राजनीति का विरोध करते हैं और किसी एक शक्तिशाली देश के विश्व की पुलिस बनने का विरोध करते हैं। इस समय चीन व भारत अपने-अपने शांतिपूर्ण विकास में लगे हैं। अंतरराष्ट्रीय मामलों में दोनों में व्यापक सहमति है। आंकड़े बताते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ में विभिन्न सवालों पर हुए मतदान में अधिकांश समय, भारत और चीन का पक्ष समान रहा। अब दोनों देशों के सामने आर्थिक विकास और जनता के जीवन स्तर को सुधारने का समान लक्ष्य है। इसलिए, दोनों को आपसी सहयोग की आवश्यकता है।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम भारत –चीन के सम्बन्धों का अध्ययन करेंगे। जिसके अंतर्गत भारत –चीन के बीच राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्धों के बारे मे जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई को भलीभाँति पढ़ने और समझने के बाद आप :-

- भारत –चीन के बीच प्रमुख मुद्दे को समझ जाएंगे
- भारत-चीन के बीच आर्थिक संबंधो को अध्ययन कर सकेंगे
- वैश्वीकरण के दौर मे भारत-चीन के सम्बन्धों का महत्व को समझ जाएँगे
- चीन का दक्षिण एशिया मे भूमिका को समझ सकेंगे

18.3 भारत और चीन संबंध

भारत और चीन के सम्बन्धों को चार काल मे बाटा जा सकता हैं।

18.3.1 भारत – चीन संबंध का प्रमोद काल (1949-1958)

7 दिसम्बर 1946 मे जवाहरलाल नेहरू ने अपने नई दिल्ली से रेडियो प्रसारण मे कहा कि "चीन अपने महान इतिहास के साथ एक शक्तिशाली देश हैं। वह हमारा पड़ोसी हैं। वह युगों से हमारा मित्र रहा हैं और यह मित्रता बनी रहेगी और बढ़ेगी और फूलेगी"। चीन की पीपुल्स गणराज्य के साथ राजनयिक संबंधों की स्थापना करनेवाला पहला गैर- समाजवादी देश भारत बना। के॰ एम॰ पनिक्कर चीन को भारत के पहले राजदूत नियुक्त किए गए । 1950 के दशक में चीन व भारत के संबंध इतिहास के सब से अच्छे काल में थे। दोनों देशों के शीर्ष नेताओं ने एक-दूसरे के यहां की अनेक यात्राएं कीं और उनकी जनता के बीच भी खासी आवाजाही रही। शुरुआती दशक मे भारत और चीन के संबंध कोरिया मुद्दे और तिब्बत समस्या को लेकर तनावपूर्ण रहे। जनवरी 1951 मे भारत और चीन के बीच चावल-पटसन विनिमय समझौता हुआ। लेकिन भारत और चीन के सम्बन्धों की परिपक्वता 1954 मे चीन के प्रधानमंत्री चाउ-एन-लाई के भारत की यात्रा के बाद आई। पंचशील सिद्धांत चीन और भारत द्वारा प्रवर्तित किये गये। पंचशील की मुख्य विषयवस्तु है-

(1) एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना

(2) एक दूसरे के विरुद्ध आक्रामक काररवाई न करना

(3) एक दूसरे के आंतरिक विषयों में हस्तक्षेप न करना

(4) समानता और परस्पर लाभ की नीति का पालन करना तथा

(5) शांतिपूर्ण सह- अस्तित्व की नीति में विश्वास रखना।

इस यात्रा के बाद दोनों देशों ने पंचशील सिंद्धतों मे विश्वास व्यक्त किया। पंचशील चीन व भारत द्वारा दुनिया की शांति व सुरक्षा में किया गया एक महत्वपूर्ण योगदान है, और आज तक दोनों देशों की जनता की जबान पर है।
भारत के प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने अक्टूबर 1954 मे चीन की यात्रा की। अक्टूबर 1954 दोनों देश आपस मे 8 वर्षीय व्यापार एवं परस्पर संपर्क संधि पर हस्ताक्षर किए। 1954 मे "हिन्दी चीनी भाई भाई" का नारा लगा। इससे दोनों देशों के बीच और नजदीकियां बढ़ी। अप्रैल 1955 मे भारतीय प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू और चीन के प्रधानमंत्री चाउ-एन-लाई बांडुंग, इंडोनेशिया में एफ्रो-एशियाई सम्मेलन के दौरान मिले । नवम्बर –दिसंबर 1956 मे चीन के प्रधानमंत्री चाउ-एन-लाई दूसरी बार यात्रा किया। जिसके परिणामस्वरूप सयुंक्त राष्ट्र मे चीन के स्थायी सदस्यता पर भारत का समर्थन, ताइवान समस्या पर भारत का समर्थन, गोवा मामले पर चीन का भारत का समर्थन मिला। यह काल भारत और चीन के सम्बन्धों का स्वर्णकाल रहा

18.3.2 भारत- चीन संबंध का शीत काल (1958-1970)

1960 के दशक में चीन व भारत के संबंध शीत काल में प्रवेश कर गये। 1957-58 मे भारत और चीन के सम्बन्धों मे तनाव आ गए और भारत-चीन के बीच सीमा विवाद उत्पन्न हो गया। जैसा की 23 जनवरी 1959 मे चाउ-एन-लाई ने कहा "भारत-चीन सीमा कभी भी औपचारिक रूप से सीमाकिन्त नहीं की गयी है"। इसके पहले चीन के एक के एक मासिक पत्रिका 'चाईना पिकटोरियल' मे कुछ मानचित्र प्रकाशित किया जिसमे भारत के बड़े भाग को चीन के भाग के रूप मे दिखाया गया। भारत सरकार के विरोध करने पर चीन उसे पुराना नक्शा बताकर बात को टाल दिया । 1958 मे चीन ने भारत के खुरनाक किले पर अधिकार कर लिया। इसी बीच तिब्बत समस्या पर भारत सरकार ने दलाई लामा को समर्थन दिया। 9 मार्च 1959 को तिब्बत मे चीन सरकार के विरुद्ध विद्रोह हुआ। तिब्बत की मंत्रिपरिषद ने तिब्बत को स्वतंत्र घोषित कर दिया। लेकिन चीन की सेना ने इस विद्रोह को दमन कर

दिया। विद्रोह के दमन होने के साथ ही तिब्बत के नेता दलाई लामा ने अपने अनुयायियों के साथ भारत मे शरण लिया। भारत सरकार ने दलाई लामा को राजनीतिक शरण दिया। इस कदम से चीन काफी नाराज हुआ। चीन सरकार की तीव्र प्रतिक्रिया हुई तथा भारत पर पंचशील सिद्धांत तोड़ने का आरोप भी लगाया। इधर चीन के सैनिक भी बार - बार सीमा अतिक्रमण कर रहे थे। सन 1959 के अंत तक भारत और चीन के बीच एक पूर्ण सीमा विवाद पनप चुका था। भारत के प्रधानमंत्री ने स्वीकार किया कि "भारत अपने आप को एक खतरनाक स्थिति मे पाता है, जिसमे युद्ध की संभावना दिखाई देती हैं"। भारत का हर संभव प्रयास था कि सीमा विवाद शांतिपूर्ण तरीकों से हल किया जाए इसीलिए चीन के शुरुआती कार्यवाही को नजरंदाज किया। 7 अगस्त, 1959 को चीन की गश्ती टुकड़ी ने खीजमैन के स्थान पर भारतीय प्रदेश मे प्रवेश किया और 25 अगस्त 1959 को एक बड़ी चीनी टुकड़ी ने नेफ़ा के सावन मण्डल मे प्रवेश किया और लौंगजू की भारतीय सीमा चौकी पर कब्जा कर लिया। इसके बाद सीमा घटनाओं की एक श्रृंखला चालू हो गई। नेहरू ने सीमा विवाद की समस्या की नजाकत को देखते हुए चाउ-एन-लाई को भारत अमात्रित किया जिससे शांतिपूर्ण से समाधान हो जाए। अप्रैल 1960 में दिल्ली की औपचारिक यात्रा करते हुए चीन के प्रधानमंत्री चाउ एन-लाई ने भारत के सामने प्रस्ताव रखा कि चीन मैकमोहन रेखा को स्वीकार कर लेगा यदि भारत अक्साई चिन पर चीन के कब्ज़े को स्वीकार कर ले और उसे चीन की भूमि मान ले। भारत की सरकार ने चीन के इस प्रस्ताव को मानने से इंकार कर दिया। इसके बाद सीमा पर टकराव पहले की तरह जारी रहे।
1962 की गर्मियों में और शरदकाल में सीमा पर रक्तपात और मुठभेड़ें बहुत ज़्यादा बढ़ गई। फिर 20 अक्तूबर को चीनी सैनिकों ने भारी संख्या में भारत के उत्तरी इलाकों में और उत्तर-पूर्वी इलाकों में घुसपैठ शुरू कर दी। दो देशों के बीच युद्ध भड़क उठा। 20 से 25 अक्तूबर के बीच सिर्फ़ पाँच दिन के भीतर भारत के ढाई हज़ार सैनिक शहीद हो गए। चीन ने अपने हताहतों की संख्या की घोषणा नहीं की। लेकिन विशेषज्ञों का कहना है कि चीन के भी सैकड़ों सैनिक मारे गए थे। इस लड़ाई के फलस्वरूप चीन ने भारत के 14 हज़ार वर्ग किलोमीटर के इलाके पर कब्ज़ा कर लिया। मुख्य तौर पर यह अक्साई चिन का इलाका था, जिसे भारत अपना इलाका मानता था।
1962 की लड़ाई में चीन ने भारत की 14 हज़ार वर्ग किलोमीटर भूमि पर कब्ज़ा कर लिया। लेकिन अमरीका, ब्रिटेन और सोवियत संघ द्वारा जब चीन की कार्रवाइयों की आलोचना की गई तो पेइचिंग को भारत के साथ एकतरफ़ा ढंग से युद्ध बंद करने की घोषणा करनी पड़ी। भारत और चीन के बीच उभरे पारस्परिक मतभेदों को दूर करने के लिए दिसम्बर 1962 में कोलम्बो में छह गुटनिरपेक्ष देशों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में यह प्रस्ताव रखा गया कि चीनी सेना को वहाँ से 20 किलोमीटर पीछे हटना होगा, जहाँ पर वह उपस्थित है और 20 किलोमीटर के इस इलाके को 'नो मैन्स लैण्ड' या असैनिक-क्षेत्र घोषित कर दिया जाएगा। भारत इस प्रस्ताव पर तुरन्त राजी हो गया और चीन ने भी कुछ शर्तों के साथ इसे स्वीकार कर लिया। लेकिन आगे इस बारे में जो बातचीत हुई, उससे पता लगा कि दोनों देशों का नज़रिया एक-दूसरे के पूरी तरह से विपरीत है। इसलिए इस बारे में कुछ नहीं किया जा सका और पूरी योजना ही विफल हो गई। इस तरह 1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद चीन के पास भारत की 36 हज़ार किलोमीटर वह भूमि रह गई, जो इस युद्ध से पहले भारत के अधिकार में थी।
इस के बावजूद दोनों के मैत्रीपूर्ण संबंध कई हजार वर्ष पुराने हैं। इसलिए, यह शीतकाल एक ऐतिहासिक लम्बी नदी में एक छोटी लहर की तरह ही था। 70 के दशक के मध्य तक वे शीत काल से निकल कर फिर एक बार घनिष्ठ हुए। चीन-भारत संबंधों में शैथिल्य आया, तो दोनों देशों की सरकारों के उभय प्रयासों से दोनों के बीच फिर एक बार राजदूत स्तर के राजनयिक संबंधों की बहाली हुई।

18.3.3 भारत –चीन सम्बन्धों का तनाव शैथिल्य काल (1970- 2001)

परस्पर डर, शत्रुता और अविश्वास के माहौल मे रहने के पश्चात धीरे – धीरे दोनों देश को लगा की अब फिर से एक साथ आना चाहिए । भारत भी धीरे धीरे अपने शक्ति बढ़ाने लगा था। भारत द्वारा 1965 और 1971 के युद्ध मे पाकिस्तान को हराने के बाद भारत की स्थिति विश्व की नजर मे दक्षिण एशिया मे एक शक्ति रूप मे होने लगी। इस स्थिति को चीन भी समझ चुका था। चीन के तरफ से संबंध को सुधारने के लिए प्रयास जारी हो चुका था। इसका सबसे बड़ा संकेत तब मिला जब 1970 मे बींजिग मे मई दिवस स्वागत समारोह के अवसर पर माओ-त्से-तुंग ने भारतीत प्रभारी राजदूत का स्वागत समारोह कराते हुए कहा था कि "भारत एक महान देश हैं तथा भारत और चीन बहुत पहले अच्छे मित्र थे, उन्हे फिर मित्र बनना चाहिए।" इस घटना को 'माओ मुस्कराहट' बोला जाता हैं। चीन ने कश्मीर समस्या पर भी भारत और पाकिस्तान को शांतिपूर्ण प्रयासों पर पहल करने की बात करने लगा। हालकि वह पाकिस्तान को कश्मीर समस्या पर समर्थन करता रहा।

1972 मे मध्य चीनी और भारतीय अधिकारियों के बीच गैर – सरकारी तथा अप्रत्यक्ष स्तर पर संबंध बनाए और बढ़े। तत्कालीन भारत के विदेश मंत्री स्वर्ण सिंह ने भी जनवरी 15, 1972 को राज्यसभा मे कहा कि "भारत बीती बातों को भुलाने और चीन के साथ नए पारी की शुरुआत करने को तैयार हैं।" इस वक्तव्य से स्पष्ट हो गया था कि 1972 तक भारत चीन के प्रति अपने रिश्ते सुधारने को तैयार था। 1974 मे भारत ने शांतिपूर्ण परमाणु परीक्षण किया और 1975 मे सिक्किम का भारत मे विलय हुआ। इन दोनों ही मुद्धे पर चीन ने भारत सरकार की आलोचना की। जिसके परिणाम स्वरूप भारत और चीन के बीच सम्बन्धों को गति नहीं मिल पाई।

इन दोनों देशों के साथ सबसे बड़ा समस्या सीमा विवाद था। भारत और चीन यह समझने लगे थे कि युद्ध करके सीमा सम्बन्धी विवादों को हल नहीं किया जा सकता है। इसलिए 15 अप्रैल 1976 में दिल्ली और पेइचिंग ने 1962 की लड़ाई के बाद टूट चुके आपसी कूटनीतिक सम्बन्धों को फिर से क़ायम कर लिया। के. आर. नारायण को पीकिंग मे भारत का राजदूत नियुक्त किया गया और भारत-चीन के सम्बन्धों को मजबूत करने का एक सार्थक और सफल प्रयास था। इसके जवाब मे चीन ने 5 महीने के बाद भारत मे अपना राजदूत नियुक्त किया। अप्रैल 1977 मे भारत और चीन ने 13.2 करोड़ रु. मूल्य की एक व्यापार संधि की। फरवरी 1978 मे चीन का एक 16 सदस्यीय व्यापार प्रतिनिधि मण्डल भारत आया और व्यापार बढ़ाने के लिए बातचीत हुई।

1978 मे संयुक्त राष्ट्र के मुख्यालय मे भारत के तत्कालीन विदेश मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और चीन के तत्कालीन विदेश मंत्री हुआ के साथ लगभग 50 मिनट बात हुई। जिसमे चीन के विदेश मंत्री ने वाजपेयी को बताया कि "चीन के लोग उनकी यात्रा को बड़ी बेसब्री से इंतजार कर रहे हैं।" फरवरी 1979 मे वाजपेयी चीन की यात्रा पर गए। उन्होने चीन के नेताओं दे प्रत्यक्ष बात की। 20 साल बाद कोई भारतीय उच्च अधिकारी चीन के यात्रा की। लेकिन इस यात्रा का आगाज जितना अच्छा था उतना अंजाम अच्छा नहीं हुआ। वियतनाम पर चीन के आक्रमण के फैसले का विरोध दिखाने के लिए वाजपेयी ने बीच मे ही यात्रा समाप्त कर भारत लौटने का निर्णय कर लिया। लेकिन इस यात्रा के समय दोनों देश ने यह महसूस किया कि सभी मुद्दो का हल बातचीत से ही किया जा सकता हैं। 1979 में चीन और भारत के विदेश मंत्रालयों के सीमा-विवाद सम्बन्धी कार्यकारी-दल एक-दूसरे के देशों की यात्रा करने लगे। भावना की जगह बुद्धि को महत्त्व दिया जाने लगा। भारत इस बात पर सहमत हो गया कि वह अब इस तरह की कोई शर्त नहीं लगाएगा कि चीन पहले 1962 की लड़ाई में कब्ज़े में ली गई भारतीय ज़मीन को खाली करे, उसके बाद ही भारत उससे कोई बातचीत करेगा।

1980 मे भारत मे सत्ता परिवर्तन हुआ और इन्दिरा गांधी एक बार फिर प्रधानमंत्री बनी। दो देश आर्थिक, साँस्कृतिक और खेल क्षेत्रों में फिर से सहयोग करने लगे। इसके बाद चीन में बड़े राजनीतिक बदलाव सामने आए, जिनकी वज़ह से भारत और चीन के आपसी रिश्ते और बेहतर होने लगे। पिछली शताब्दी के आठवें दशक के अंत

में देंग स्याओ पिंग के नेतृत्त्व में सुधारवादी और व्यवहारवादी गुट सत्ता में आ गया, जिसने 1982 में यह प्रस्ताव रखा कि भारत और चीन के बीच जारी सीमा-विवाद को अनिश्चितकाल के लिए एक किनारे रख दिया जाए और आपसी सम्बन्धों का विकास किया जाए। दोनों देश एक-दूसरे से बातचीत करने के लिए तैयार हो गए थे, लेकिन 1986-87 में भारत और चीन ने फिर से एक-दूसरे पर यह आरोप लगाने शुरू कर दिए कि उन्होंने अरुणाचल प्रदेश के इलाके में एक-दूसरे के इलाकों पर कब्ज़ा कर लिया है। यही नहीं दोनों देशों ने फिर से अपनी सेनाओं को सतर्क कर दिया और कुछ सैन्य-गतिविधियाँ भी दिखाई देनी लगीं। तब भारत और चीन के बीच लड़ाई होते-होते रह गई। इन घटनाओं ने यह भी दिखाया कि राजनीतिक बातचीत का कोई विकल्प नहीं है। हालाँकि इन वार्ताओं से भी दो देशों के बीच चले आ रहे सीमा-विवाद हल नहीं हुए, लेकिन इनसे यह बात तो साफ़ हो गई कि पुरानी मानसिकता छोड़नी होगी और सभी विवादग्रस्त मुद्दों पर खुले दिमाग से बातचीत करनी होगी। इसके बाद 1988 में दो देशों के नेताओं और उच्चाधिकारियों ने एक-दूसरे के देशों की यात्राएँ करनी शुरू कर दीं। इन यात्राओं और मेल-मुलाक़ातों के बाद ही 1993 और 1996 में दो देशों ने शान्ति को बनाए रखने और सैन्य-क्षेत्र में पारस्परिक विश्वास को बढ़ाने के लिए क़दम उठाने के बारे में महत्त्वपूर्ण दुपक्षीय समझौतों पर हस्ताक्षर किए। फिर 1998 में भारत में गठजोड़ सरकार सत्ता में आई। भारत के तत्कालीन रक्षामंत्री जार्ज फ़र्नान्डीज ने चीन पर आरोप लगाया कि उसने पाकिस्तान को परमाणविक तक्नोलौजी दे दी है और तिब्बत में परमाणविक रॉकेट तैनात कर दिए हैं। इसके बाद 1998 में भारत ने परमाणविक परीक्षण किया। इससे भारत-चीन सम्बन्धों में फिर एक बार गरमा-गरमी दिखाई देने लगी। लेकिन सीमा-विवाद पर बातचीत जारी रही। वर्ष 1998 में दोनों देशों के संबंधों में भारत द्वारा पांच मिसाइलें छोड़ने से फिर एक बार ठंडापन आया। पर यह तुरंत दोनों सरकारों की कोशिश से वर्ष 1999 में भारतीय विदेशमंत्री की चीन यात्रा के बाद समाप्त हो गया।

18.3.4 भारत – चीन संबंधो का पुनरुथान (2001- वर्तमान)

वर्ष 2001 में पूर्व चीनी नेता ली फंग ने भारत की यात्रा की। वर्ष 2002 में पूर्व चीनी प्रधानमंत्री जू रोंग जी ने भारत की यात्रा की। इस के बाद, वर्ष 2003 में भारतीय प्रधानमंत्री वाजपेई ने चीन की यात्रा की। उन्होंने चीनी प्रधानमंत्री वन चा पाओ के साथ चीन-भारत संबंधों के सिद्धांत और चतुर्मुखी सहयोग के घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किये। घोषणापत्र में भारत ने औपचारिक रूप से कहा कि भारत तिब्बत को चीन का एक भाग मानता है। इस तरह भारत सरकार ने प्रथम बार खुले रूप से किसी औपचारिक दस्तावेज के माध्यम से तिब्बत की समस्या पर अपने रुख पर प्रकाश डाला, जिसे चीन सरकार की प्रशंसा प्राप्त हुई। इस घोषणापत्र ने जाहिर किया कि चीन व भारत के द्विपक्षीय संबंध अपेक्षाकृत परिपक्व काल में प्रवेश कर चुके हैं। इस घोषणापत्र ने अनेक महत्वपूर्ण द्विपक्षीय समस्याओं व क्षेत्रीय समस्याओं पर दोनों के समान रुख भी स्पष्ट किये। इसे भावी द्विपक्षीय संबंधों के विकास का निर्देशन करने वाला मील के पत्थर की हैसियत वाला दस्तावेज भी माना गया। चीन व भारत के संबंध पुरानी नींव पर और उन्नत हो रहे हैं। वर्ष 2004 में चीन और भारत ने सीमा समस्या पर यह विशेष प्रतिनिधि वार्ता व्यवस्था स्थापित की। भारत स्थित पूर्व चीनी राजदूत च्यो कांग ने कहा, इतिहास से छूटी समस्या की ओर हमें भविष्योन्मुख रुख से प्रस्थान करना चाहिए।

6 जुलाई 2006 को चीन और भारत प्राचीन व्यापार मार्ग फिर से खोला दिया गया जो नाथूला, सिल्क रोड का हिस्सा था। नाथूला हिमालय के माध्यम से एक पास है और 44 साल पहले 1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद बंद कर दिया गया था। यह 2006 में तोड़ दिया गया। जनवरी 2008 में, प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने चीन का दौरा किया और राष्ट्रपति हू जिंताओ और प्रधानमंत्री वेन जियाबाओ के साथ मुलाकात की और व्यापार, वाणिज्य, रक्षा, सैन्य, और विभिन्न अन्य मुद्दों से संबंधित द्विपक्षीय विचार-विमर्श किया।

15 से 17 दिसंबर 2010 को प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के निमंत्रण पर प्रधानमंत्री वेन भारत की सरकारी यात्रा पर आए। इस यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री वेन, प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के साथ वार्ता आयोजित किया। प्रधानमंत्री वेन चीन-भारत के कूटनीतिक संबंधों के 60 साल का मूल्यांकन किया। प्रधानमंत्री वेन ने चीन-भारत व्यापार सहयोग शिखर सम्मेलन के उद्घाटन समारोह को संबोधित कर चीनी और भारतीय सांस्कृतिक समुदायों के प्रतिनिधियों के साथ मुलाकात की। 2012 मे आयोजित नई दिल्ली में ब्रिक्स शिखर सम्मेलन चीन के राष्ट्रपति हू जिंताओ ने बोलते हुए कहा कि "चीन भारत-चीन दोस्ती का विकास रणनीतिक सहयोग को गहरा और आम विकास चाहते हैं और यह चीन के अडिग नीति है। भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा "भारत चीन-भारत संबंधों को शांतिपूर्ण, समृद्ध और लगातार विकसित और अधिक गतिशील के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध है।" अन्य विषयों सीमा विवाद समस्याओं और एक एकीकृत ब्रिक्स केंद्रीय बैंक सहित चर्चा की गई।

चीन के प्रधानमंत्री ली 18 मई 2013 को भारत ने अपनी पहली विदेश यात्रा की। जिसमे सीमा विवाद को सुलझाने के लिए और आर्थिक संबंधों को प्रोत्साहित करने के शांतिपूर्ण प्रयासों का समर्थन किया। श्री ली अपनी यात्रा के दौरान तीन मुख्य विषयों पर ध्यान केन्द्रित किया। सबसे पहले कूटनीतिक सहयोग को बढ़ाने के लिए, दूसरा व्यापार और अन्य क्षेत्रों में संबंधों को सीमेंट के लिए और अंत में आम समृद्ध भविष्य के लिए रणनीति तैयार करने के लिए।

चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने सितम्बर 2014 मे भारत की यात्रा की। शी जिनपिंग ने भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के साथ शिखर बैठक की। समिति और प्रतिनिधिमंडल स्तरीय, दोनों वार्ताएं मिलाकर लगभग तीन घंटे तक चलीं। इसमें निर्णय हुआ कि चीन अगले पांच साल में भारत में 20 अरब डॉलर का निवेश करेगा। वहीं, दोनों नेताओं ने सीमा विवाद तथा वीजा मुद्दे सहित दोनों देशों के बीच संबंधों के सभी पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की। मोदी व चीन के राष्ट्रपति के बीच यहां हुई विस्तृत बैठक के बाद समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए। इनमें भारत में चीनी औद्योगिक पार्कों की स्थापना और भारतीय रेलवे में निवेश शामिल है। एक अन्य सहमति पत्र (एमओयू) पर विदेश मंत्री सुषमा स्वराज तथा चीन के विदेश मंत्री वांग यी ने हस्ताक्षर किए। इससे भारतीय तीर्थयात्री नाथुला दर्रे (सिक्किम) से भी कैलाश मानसरोवर की यात्रा पर जा सकेंगे। फिलहाल यह यात्रा लिपुलेख दर्रे (उत्तराखंड) से होती है। नाथुला के जरिए यात्रा शुरू होने से तीर्थयात्रियों के लिए यात्रा का समय व संकट कम होगा। अब और अधिक विशेष बुजुर्ग तीर्थयात्री यह यात्रा कर सकेंगे।

इसके साथ ही चीन ने भारत के रेलवे नेटवर्क को मजबूत बनाने पर सहमति जताई है। रेलगाड़ियों की गति बढाने, हाइस्पीड रेलवे में सहयोग की व्यावहार्यता का अध्ययन करने तथा रेलवे स्टेशनों के पुनर्विकास के लिए दो समझौते हुए हैं। रेलवे में सहयोग को बढ़ावा देने के लिए रेल मंत्रालय तथा चीन राष्ट्रीय रेलवे प्रशासन मिलकर कार्ययोजना तैयार करेंगे। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने चीन के प्रेस, प्रकाशन प्रशासन के साथ आडियो वीडियो सह निर्माण समझौता किया है। चीन के साथ सीमा मुद्दे पर वार्ता और कूटनीतिक विचार-विमर्श के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार श्री अजीत डोभाल, भारत के विशेष प्रतिनिधि नियुक्त किये गए। यह व्यवस्था राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार के कुल दायित्व का हिस्सा होगी।

चीन के राष्ट्र पति जिनपिंग ने कहा कि भारत आना मेरे लिए खुशी की बात है। भारत के प्रधानमंत्री के साथ सभी मसलों पर सकारात्मक बातचीत हुई। चीनी राष्ट्रपति ने कहा कि हमारे बीच सार्थक बातचीत हुई जिसमें परस्पर हित से जुड़े हुए सभी मुद्दे शामिल थे। शी ने मोदी को अगले साल के शुरू में चीन की यात्रा का न्यौता दिया। उन्होंने यह भी कहा कि भारत चीन की एकता को दुनिया देखेगी। दोनों देशों को सक्रिय होकर विवाद हल करना चाहिए। दुनिया में भारत और चीन की अहम भूमिका है।

18.3.5 आर्थिक संबंध

बीते एक दशक में भारत और चीन के बीच व्यापार तेजी से बढ़ा है। दोनों देश आर्थिक भागीदारी के नए सोपान चढ़ रहे हैं। नई दिल्ली और बीजिंग के बीच व्यापार जिस रफ्तार से आगे बढ़ रहा है उससे चीन शीघ्र ही भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार बन जाएगा जबकि भारत चीन के 10 व्यापारिक भागीदार देशों में शुमार है। उम्मीद है कि वर्ष 2015 तक दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार बढ़कर 100 अरब डॉलर तक पहुंच जाएगा।

करीब पांच लाख भारतीय प्रतिवर्ष चीन की यात्रा कर रहे हैं जबकि भारत आने वाले चीनी नागरिकों का आंकड़ा करीब एक लाख है। भारत की रिलायंस इंडस्ट्रीज, महिंद्रा एंड महिंद्रा, एनआईआईटी, इंफोसिस, टीसीएस और विप्रो जैसे दिग्गज कम्पनियां चीन में अपने प्रतिष्ठान खोल चुकी हैं जबकि चीन की साइनोस्टील एवं शूगैंग इंटरनेशनल कम्पनियां भारत में कारोबार कर रही हैं। दोनों देशों के बीच व्यापारिक संबंध एक बेहतर भविष्य का खाका खींचते हैं।

भारत और चीन के बीच द्विपक्षीय व्यापार 2011-12 में 754,574.2 लाख डॉलर था, जबकि 2010-11 के दौरान यह 590,003.6 लाख डॉलर था। शर्मा ने कहा कि चीनी कम्पनियों को राष्ट्रीय विनिर्माण एवं निवेश जोन में आमंत्रित किया गया है, जिस पर अच्छी प्रतिक्रिया मिली है। वैश्विक आर्थिक मंदी के खास संदर्भ में भारत-चीन के आर्थिक रिश्ते को रेखांकित करते हुए चेन ने निवेश बढ़ाने की चल रहीं पहल पर बात की, ताकि चीनी कम्पनियां भारत में सेज और विनिर्माण जोन स्थापित कर सकें। भारत में लगभग 58 करोड़ डॉलर का चीनी निवेश है, जिसमें वृद्धि की काफी सम्भावना है। चेन ने कहा कि व्यापारिक प्रतिनिधिमंडल में बिजली, पेट्रोरसायन ओर मशीनरी सेक्टरों के प्रमुख प्रतिनिधि शामिल हैं। आर्थिक सम्बंध, व्यापार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (जेईजी) पर संयुक्त समूह का गठन 1988 में उस समय हुआ था, जब तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी बीजिंग गए हुए थे। भारत-चीन संयुक्त आर्थिक समूह की 9वीं बैठक के बाद मीडियाकर्मियों से बातचीत में शर्मा ने कहा कि चीन ने दोनों देशों के बीच व्यापार असंतुलन के मुद्दे पर सहयोग देने तथा भारतीय आईटी, आईटी सम्बंधित सेवाओं व फार्मास्युटिकल्स सेक्टर को चीनी बाजार सुलभ कराने का भारत को भरोसा दिया है। फिलहाल व्यापार का पलड़ा चीन के पक्ष में झुका हुआ है, और 2011-12 में यह 396514.6 लाख डॉलर था।

चीन के राष्ट्र पति जिनपिंग ने कहा कि भारत आना मेरे लिए खुशी की बात है। चीन के लोगों की तरफ से भारत की जनता को शुभकामनाएं देता हूं। चीनी राष्ट्रपति ने कहा कि हमारे बीच सार्थक बातचीत हुई जिसमें परस्पर हित से जुड़े हुए सभी मुद्दे शामिल थे। शी ने मोदी को अगले साल के शुरू में चीन की यात्रा का न्यौता दिया। उन्होंने कहा कि भारत ने विकास के नए मुकाम हासिल किए हैं। शी ने कहा कि भारत और चीन एक दूसरे के महत्व पूर्ण पड़ोसी हैं। उन्होंने यह भी कहा कि भारत चीन की एकता को दुनिया देखेगी। दोनों देशों को सक्रिय होकर विवाद हल करना चाहिए। दुनिया में भारत और चीन की अहम भूमिका है।

7 .अभ्यास प्रश्न

I. पहला कौन गैर साम्यवादी देश हैं जो चीन के साथ राजनयिक संबंध स्थापित किया ?

A.पाकिस्तानB.भूटान C.भारतD.अमेरिका

II. पंचशील समझौता किन देशों के बीच हुआ ?

A .चीनपाकिस्तान- B.भारतचीन- C.भारतनेपाल- D.चीन अमेरिका-

III. 'चाईना पिकटोरियल' क्या है?

A.चीन की मासिक पत्रिका B.चीन की राजधानी C.चीन की नदी D.चीन का एक शहर का नाम

IV. भारत सरकार ने वर्तमान मे चीन के साथ सीमा मुद्दे पर वार्ता और कूटनीतिक विचार विमर्श के-लिए

किसे विशेष प्रतिनिधि नियुक्त किया है ?

A.सुषमा स्वराज B. एपीजे कलाम C.अजीत डोभाल D.अरुण जेटली

18.4 सारांश

21वीं शताब्दी के चीन व भारत मित्र भी हैं और प्रतिद्वंदी भी । अंतरराष्ट्रीय मामलों में दोनों में व्यापक सहमति है। अब दोनों देशों के सामने आर्थिक विकास और जनता के जीवन स्तर को सुधारने का समान लक्ष्य है। इसलिए, दोनों को आपसी सहयोग की आवश्यकता है। अनेक क्षेत्रों में दोनों देश एक-दूसरे से सीख सकते हैं।

चीन-भारत संबंधों के भविष्य समय गुजरने के साथ दोनों देशों के बीच मौजूद विभिन्न अनसुलझी समस्याओं व संदेहों को मिटाया जा सकेगा और चीन व भारत के राजनीतिक संबंध और घनिष्ठ होंगे। इस वर्ष सितम्बर में चीनी प्रधानमंत्री वन चा पाओ भारत की यात्रा पर गए । उनके भारत प्रवास के दौरान चीन व भारत दोनों देशों के नेता एक साथ बैठकर समान रुचि वाली द्विपक्षीय व क्षेत्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श किए। भविष्य में भारत- चीन संबंध और स्वस्थ होंगे और और अच्छे तरीके से आगे विकसित होंगे । आज हम देख सकते हैं कि भारत व चीन के संबंध लगतार विकसित हो रहे हैं। यह दोनों देशों की सरकारों की समान अभिलाषा भी है। दोनों पक्ष आपसी संबंधों को और गहन रूप से विकसित करने को तैयार हैं। चीन-भारत संबंध अवश्य ही और स्वस्थ व मैत्रीपूर्ण होंगे और एक रचनात्मक साझेदारी का रूप लेंगे। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति नारायण ने कहा, मेरा विचार है कि चीन और भारत को द्विपक्षीय मैत्रीपूर्ण संबंधों को और गहरा करना चाहिए। हमारे बीच सहयोग दुनिया के विकास को आगे बढ़ाने में अहम भूमिका अदा कर सकेंगे।

18.5 शब्दावली

प्रभुत्ववादी – सर्वोच्च

प्रमोद काल- खुशनुमा समय

अखंडता- एकता

घुसपैठ- अनधिकार प्रवेश

अभिलाषा- इच्छा

18.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

I. इ) भारत II. आ) भारत-चीन III. A. चीन की मासिक पत्रिका IV. C. अजीत डोभल

18.7 संदर्भ ग्रंथ

1.यू. आर. घई “भारतीय विदेश नीति” न्यू अकेडमी पब्लिशिंग कंपनी जालंधर

2.पुष्पेंत पंत “भारत की विदेश नीति” टाटा मैकग्राह हिल नई दिल्ली

3.तपन विस्वाल “ अंतर्राष्ट्रीय राजनीति” मैकमिलन पब्लिशिंग नई दिल्ली

4.जे एन दीक्षित “भारतीय विदेश नीति” प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली

5.हर्ष वर्धन पंत “भारतीय सुरक्षा एवं विदेश नीति” प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली

18.8 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामाग्री

1.वी एन खन्ना “भारत की विदेश नीति”

2.अरुण शौरी “चीन मित्रा या ?”

3.अरुण शौरी “भारत-चीन संबंध”

18.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारत-चीन के बीच हुए 1962 के युद्ध के कारणों की विवेचना करें?

इकाई 19 : भारत व पश्चिम एशिया

इकाई की संरचना

19.1 प्रस्तावना

19.2 उद्देश्य

19.3 भारत व पश्चिम एशिया के बीच सम्बन्ध के विभिन्न चरण

19.3.1 मित्रता का युग, 1947-1961

19.3.2 परस्पर परखने का कार्यकाल, 1962-1971

19.3.3 बदलाव व सौहार्द वापसी का काल, 1972-1978

19.3.4 नव-शीतयुद्ध व बदलते समीकरणों का युग, 1979-1991

19.3.5 नव परिवर्तनो के उपरान्त मित्रता जारी, 1992-अब तक

19.4 सारांश

19.5 शब्दावली

19.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

19.7 संदर्भ ग्रन्थ

19.8 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

19.9 निबंधात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

भारत और पश्चिम एशियाई भू-भाग के बीच संबंध हजारों वर्ष पुराने है। मोहनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त सामग्री के आधार पर अनेक विद्वान इस निष्कर्ष तक पहूँचे हैं कि आज के इराक से घनिष्ठ व्यापारिक संबंध इस सभ्यता के नागरिकों के थे। इसी तरह आज जो प्रदेश संयुक्त अरब अमीरात के नाम से जाना जाता है। वह भारत के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा रहा है। इस्लाम के आविर्माव के साथ अरब लोगों में शारीरिक उद्यम तथा वैज्ञानिक अविष्कारों की लालसा तेजी से बढ़ी। इस दौर में केरल, गुजरात व सिन्ध में आकर बसने वाले अरब उद्यमियों से भारत और पश्चिमी एशिया के बीच सांस्कृतिक तथा आर्थिक आदान प्रदान की प्रक्रिया को बल मिला। दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में इस्लाम के प्रसार के लिए बरास्ता भारत वहाँ पहूँचने वाले अरबों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। ज्योतिष, अंकगणित, जहाजरानी तथा चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में आदान-प्रदान से दोनो पक्षों को लाभ हुआ। बाद के वर्षो में भारत में सल्तनत युग के दौरान मुसलमान शासकों के उपर अरब धर्मिक तथा सांस्कृतिक प्रभाव स्पष्ट था। इनकी भाषा व शासन प्रणाली पर इस्लामी पश्चिम एशियाई छाप गहरी देखी जा सकती है। इस्लाम का जन्म भले ही पश्चिम एशिया में हुआ हो। परन्तु आज यह भारतीय धर्म बन चुका है। अभी कुछ वर्ष पहले तक पढ़े लिखे भारतीयों के लिए अरबी व फारसी भाषाएँ जानना-समझना उतना ही आवश्यक था जितना किसी पश्चिम एशियाई शिक्षित नागरिक के लिए। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सर्वेक्षण करने का प्रमुख उदेश्य यह है कि यह बात निविर्वाद रूप से उजागर की जा सके कि भारत और पश्चिम एशिया के संबंध पारस्परिक रूप से धनिष्ठ बहु-आयामी और कमोंवेश सौहार्दपूर्ण रहें है। यह स्वाभाविक था कि इसका सम-समयिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर निर्णायक प्रभाव पड़ा।

19.2 उद्देश्य

ऐतिहासिक, राजनीतिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारणों से पश्चिमी एशिया भारत की विदेश नीति में सदैव विशिष्ट महत्व का क्षेत्रा रहा हैं। निम्नलिखित प्रमुख कारणों से यह क्षेत्र भारत की विदेश नीति के निर्धरण में अहम् भूमिका वाला क्षेत्र बना हुआ हैं-

1.भौगोलिक समीपता के कारण यह क्षेत्र भारत की विदेश नीति के रक्षा संबंधित पहलुओं को प्रभावित करता हैं।

2. जातीय समानता के कारण भारतीय विदेश नीति पर इसका अद्पिप्लावन प्रभाव स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता हैं।,

3. अर्न्तराष्ट्रीय मुद्दों पर समानता के आधर पर भी भारत के इस क्षेत्र से निकटता के संबंध बने रहे हैं।

4. भारत इस क्षेत्र में घटित राजनीतिक घटनाक्रम से भी अनभिज्ञ नही रह सकता।

5. शीतयुद्धोत्तर काल में नये क्षेत्रीय आर्थिक संबंध के अंतर्गत भी इस क्षेत्र की भूमिका को नकारा नही जा सकता।

19.3 भारत व पश्चिम एशिया के बीच सम्बन्ध के विभिन्न चरण

भारत व इस क्षेत्र के बीच संबंध का स्पष्ट अध्ययन निम्न चरणों में आए बदलावों के आकलन के अंतर्गत किया जा सकता है-

1. मित्रता का युग 1947-1961
2. परस्पर परखने का कार्यकाल, 1962-1971
3. बदलाव व सौहार्द वापसी का काल, 1972-1978
4. नव-शीतयुद्वोत बदलते समीकरणों का युग,1979-1991
5. नव परिवर्तनो के उपरान्त मित्रता जारी, 1992-2011

19.3.1 मित्रता का युग, 1947-1961

भारत की स्वतंत्रता से चीन के साथ यु(प्रारम्भ होने से पूर्व दोनो के मध्य मित्रता के संबंध बने रहे। निम्नलिखित कारणों से दोनों के हितो में काफी एकरूपता देखने को मिली-

1. भारत जब स्वतंत्र हुआ तब अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य मे शीतयुद्ध चल रहा था जिसका भारत एवं पश्चिम एशिया दोनो पर प्रभाव पड़ा। भारत ने शीतयुद्ध के कुप्रभाव से बचने हेतु गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई जिसके अंतर्गत- रंगभेद का विरोध, उपनिवेशवाद का विरोध एवं नवोदित राष्ट्रों के राष्ट्रीय आन्दोलनों का समर्थन करना मुख्य उद्देशय था। दूसरी ओर भारत किसी भी प्रकार के सैनिक गठबन्धनों का विरोधि था। अतः भारत की इस नीति के कराण जहाँ एक ओर भारत व पश्चिम - एशिया के देश मिस्त्र, सीरिया, सऊदी अरब से संबंधें में सुधर हुआ तथा मित्रता बढ़ी, वहीं दूसरी ओर पाकिस्तान द्वारा सेन्टो एवं सियटो सैनिक गठबन्धनों से होने वाले लाभ को कम करने का प्रयास किया। भारत ने इन सैनिक गठबन्धनों के विरोध के बावजूद ईराक, ईरान तथा टर्की से अपने संबंध बनाए रखे तथा भारत-पाक संघर्ष में उनकी भागीदारी को सीमित रखा।

2. दोनो के मधुर संबंधों का कारण सर्व -अरब संगठन का मजबूत करना रहा है। भारत शुरू से ही सभी अरब राष्ट्रों की अखण्डता एवं एकता का पक्षधर रहा है। भारत का यह कदम उसकी फिलिस्तीन के संबंध में नीति से प्रकट होता हैं। 1948 में इजराइल राज्य की स्थापना से भारत का मानना था कि फिलिस्तीन के असली हकदार अरबवासी हैं। संयुक्त राष्ट्र की फिलिस्तीन संबंध विशेष समिति यू.एन.एस.सी.ओ.पी. में भी भारत ने बहुमत से इज़राइल की स्थापना संबंध योजना का विरोध किया तथा एकीकृत फिलिस्तीन के पक्ष में अपनी सहमति प्रकट की। भारत ने कुछ मूलभूत विषयों एवं सिद्धांतों - उपनिवेशवाद विरोध, साम्राज्यवाद विरोध,न्याय, आदि के आधर पर पश्चिम एशिया के राष्ट्रों के साथ विचारो मे समानता उत्पन्न की। गुटनिरपेक्ष आंदोलन की भाँति भारत ने उपरोक्त सिद्धांतों को न केवल राजनायिक स्तर पर बल्कि जनमत के स्तर पर भी लोकप्रिय बनाया। भारत के नेताओं ने व्यक्तिगत प्रभाव का प्रयोग करके भी सर्व-अरब एकता को बढाया। उदाहरणस्वरूप, नेहरू एवं नासिर की मित्रता इसका प्रमुख प्रमाण है।

3.भारत एवं पश्चिम एशिया के दोनो के मध्य घनिष्टता का कारण धर्मनिरपेक्षता भी रहा हैं। भारत एक इस्लामिक राष्ट्र नही हैं, लेकिन पाकिस्तान के भारत की विदेश नीति पर पड़ने वाले प्रभावों को समाप्त करने हेतु उसे इन राष्ट्रों की इस्लामिक राजनीति में पड़ना पड़ा। इस नीति के व्यापक एवं सुखद परिणाम भी भारत के पक्ष मे रहें हैं। हांलाकि इस्लाम को मानना तथा धर्मनिरपेक्षता बिल्कुल विपरीत किनारे हैं परंतु फिर भी भारत की नीतियों के अनुरूप भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश होते हुए भी मुसलमानों के विरूद्ध कोई नीति नही रखता, इसका भारत को बड़ा श्रेय मिला हैं। इसके अतिरिक्त भारत एवं इन देशो की नीतियों में समानता का कारण यह भी था कि कि पचास एवं साठ के दशकों मे पश्चिम एशिया के कई देश भी इस्लाम के पुनर्जागरण के विरूद्ध थे। मिस्त्र में नासिर एवं ईरान मे शाह इसके ज्वलन्त उदाहरण थे। सऊदी अरब भी अपनी विदेश नीति को इस तथ्य के कारण संकुचित बनाने का पक्षधर नही था। इन समान दृष्टिकोणों के कारण भारत की धर्मनिरपेक्ष नीतियों द्वारा अच्छे संबंधें की स्थापना हुई।

उपरोक्त कारणों के परिणामस्वरूप भारत ने पश्चिम एशिया में फिलिस्तीन, स्वेज नहर तथा अल्जीरिया के संदर्भ में आत्मनिर्णय के विषय में इन राष्ट्रों का साथ दिया। संयुक्त राष्ट्र के अन्दर एवं बाहर तथा द्विपक्षीय संबंधें मे भारत का दृष्टिकोण हमेंशा इन राष्ट्रों के दृष्टिकोण का पक्षधर रहा। दूसरी ओर इन राष्ट्रों द्वारा भी न केवल भारत की गुट- निरपेक्षता की नीति का बल्कि उसकी एशिया-अफ्रीका के संदर्भ में बातों का तथा भारत-पाक संघर्ष मे भारत के पक्ष का समर्थन किया। अतः भारत एवं इस क्षेत्र के राष्ट्रों के बीच विचारों की समानता के आधर पर एकता को बढ़ावा मिला तथा द्विपक्षीय संबंध अति मधुकर बने रहे।

19.3.2 परस्पर परखने का कार्यकाल, 1962-1971

भारत एवं पश्चिमी एशिया के संबंधें का द्वितीय चरण कई संदर्भो में भारत की पश्चिम एशिया संबंधी नीति के लिए लिटमस परीक्षण का काल भी कहा जा सकता हैं। इस युग की प्रमुख घटनाओं के क्रम में भारत के अपने पड़ोसी राष्ट्रों से तीन युद्ध 1962,1965 एवं 1971 हुए तो दूसरी ओर अरब- इज़राइल के मध्य 1967 का युद्ध हुआ। इन युद्धों के दौरान दोनो के आपसी दृष्टिकोण से आपसी सद्भाव को ठेस तो अवश्य पहुँची लेकिन दोनों के मध्य संबंधों पर अधिक प्रभाव नही पड़ा।

जहाँ तक भारत व चीन के मध्य हुए 1962 के युद्ध का प्रश्न है उस पर पश्चिमी एशिया के राष्ट्रों की प्रतिक्रिया मिली-जुली रही। पाश्चात्य देशों के प्रति झुकाव रखने वाले राष्ट्रों जैसे- ईरान, इज़राइल, सऊदी अरब एवं टर्की ने अपना पूर्ण समर्थन भारत के पक्ष मे जुटाया था। इसका प्रमुख कारण यह भी था कि अमेरिका भी इस युद्ध मे भारत के पक्ष का समर्थन किया था। इसके साथ-साथ दूसरी प्रवृति यह भी थी कि कुछ अरब गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों, विशेषकर मिस्त्र ने पूर्ण चुप्पी साध रखी। भारत इस बात से असमंजस में पड़ गया था। कुछ राष्ट्रों ने दोनो देशो के बीच मध्यस्थता कराने की बात की वह भी भारत के लिए अजीब सी बात थी। अतः कुछ राष्ट्रों को छोडकर, तथा वह भी अपने - अपने राष्ट्रीय हितों के संदर्भ में ज्यादातर अरब राज्यों का दृष्टिकोण भारतीय पक्ष का खुला समर्थन करने का नही था। दूसरी महत्वपूर्ण परीक्षण की घड़ी 1965 मे भारत-पाक युद्ध के समय आई। इस संदर्भ मे पश्चिमी एशिया के ज्यादतर राष्ट्रों ने मुस्लिम राष्ट्र पाकिस्तान का खुला समर्थन किया। इस बार पश्चिमी एशिया के किसी भी राष्ट्र ने दोनों देशों के मध्य मध्यस्थता का प्रस्ताव तक नही रखा। करीब-करीब यही स्थिति 1971 के भारत-पाक युद्ध के समय रही। अधिकतर राष्ट्रों ने न केवल पाकिस्तान को सहायता व समर्थन दिया, बल्कि भारत द्वारा प्रदत्त बांग्लादेश की सहायता की कड़ी आलोचना की। इस समय भारत व पश्चिमी एशिया के देशों के बीच संबंध अपने निम्नतम बिंदु को छू गए थे।

पश्चिमी एशिया के लिए भारत की मित्रता परखने का मौका 1967 के अरब-इज़राइल युद्ध के दौरान भारत की दोहरी भूमिका थी। उसने द्विपक्षीय स्तर पर इज़राइल का खुला विरोध किया तथा अरब राष्ट्रों का पक्ष लिया। शान्ति सेना के रूप मे अपनी कार्यवाही निभाते हुए भारत ने स्पष्ट किया कि उसका कार्य किसी का पक्ष न लेकर दोनो के बीच शान्ति बनाए रखने का हैं। इसके अतिरिक्त मुस्लिम समुदाय के प्रति अपना समर्थन व्यक्त करते हुए भारत ने इस संदर्भ में 12 सितम्बर,1969 में होने वाले इस्लामिक राज्यो के सम्मेलन मे भाग लेने की इच्छा व्यक्त की। लेकिन भारत को इस सम्मेलन मे सम्मिलित नही किया जा सका। अतः भारत को इस बात का भी सदमा पहुँचा तथा दोनो के संबंधों मे शिथिलता आ गई।

इस काल में दोनो के संबंधों मे उतार-चढ़ाव व मुख्यतया शिथिलता का वातावरण रहा। परंतु भारत व इस क्षेत्र के राष्ट्रों के बीच कभी भी तनाव, संघर्ष या टकराव की स्थिति नही आई। इस घटनाक्रम से एक बात स्पष्ट हो गई कि दोनों संबंध जारी रहें। दोनो के समान दृष्टिकोणात्मक सिद्धांत एवं नीतियों की वजह से भारत का अरब देशो को बिना शर्त समर्थन तथा अरब राष्ट्रों की भारत- पाक संघर्ष में तटस्थता की नीति जारी रही।

19.3.3 बदलाव व सौहार्द वापसी का काल, 1972-1978

इस काल में कई अभूतपूर्व परिवर्तनों के परिणामस्वरूप दोनो की ही नीतियों में परिवर्तन हुए। इस बदलाव के परिणामस्वरूप पूर्व की तरह दोनों के संबंधों में सौहार्द वापिस आ गया। इस प्रकार से आए परिवर्तन के निम्नलिखित कारण थे-

1. इसका मुख्य कारण अरब व इज़राइल के मध्य अक्टुबर, 1973 का युद्ध पश्चिमी एशिया तक ही सीमित नही रहा, बल्कि बाहा्र ताकतों के हस्तक्षेप के कारण यह युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का बन गया। इस संदर्भ में बने समीकरण में एक तरफ अरब तथा दूसरी ओर इज़राइल एवं अमेरिका संयुक्त रूप से सम्मिलित हो गए। अमेरिका

का इस समय हित केवल इज़राइल की मदद करना ही नही, अपितु तेल के क्षेत्रों पर कब्जा करना भी था। इस संदर्भ मे सभी अरब राष्ट्रों चाहे वे अमेरिका के सहयोगी थे या इस्लामिक, पाकिस्तान के समर्थन के बजाए एक वैकल्पिक राष्ट्र की खोज शुरू कर दी। इस दृष्टि से भारत ही एकमात्र विकल्प था। अतः दोनो के मध्य करीबी संबंध होना अनिवार्य बन गया।

2. इस युग से इन राष्ट्रों के लिए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की सार्थकता तथा भारत द्वारा इस नीति से लाभ उठाने के प्रयास किए गए। यद्यपि शीत युद्ध के प्रारंभिक काल में प्रचलित सैनिक गुटबिन्दयाँ अब शिथिल पड़ चुकी थी, परंतु बदली हुई परिस्थितियों मे इन राष्ट्रों के पास गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के अलावा कोई विकल्प उपलब्ध नहीं था। दूसरी ओर भारत इस नीति के माध्यम से प्रत्येक विषय को गुणों के आधर पर परखने के लिए स्वतंत्रा था। इसीलिए वह इस क्षेत्र के आपसी मुद्दों पर सशक्त रूप से अलग एवं स्वायत्त दृष्टिकोण अपनाने में स्वतंत्रा रहा। अतः भारत एवं पश्चिमी एशिया के देश दोनों ही गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के माध्यम से और अधिक नजदीक आए।

3. इस युग की एक विशेषता यह रही कि इन देशो ने अब तेल को एक राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। भारत भी इस प्रक्रिया से अति गम्भीर रूप से प्रभावित हुआ क्योंकि भारत इस क्षेत्र के तेल के आयात पर कापफी निर्भर था। तेल के आन्तरिक उत्पादन एवं विकास के बावजूद भी भारत तेल का आयात काफी मात्रा में करता था। इस प्रक्रिया से भारत पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव पड़े। सकारात्मक पहलू यह था कि जहाँ तक तेल के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाने का प्रश्न था भारत को मित्रा राष्ट्र की संज्ञा प्रदान करके उसे इन प्रतिबन्धें से मुक्त रखा। परंतु इसके बावजूद भी भारतीय अर्थव्यस्था पर पड़ने वाले नकारात्मक पहलू को रोकने में वह सफल नही हो सका। अतः तब से लेकर आज तक भारत इस आयात में वृद्धि से चिन्तित रहता है तथा यह विषय भारत की पश्चिमी एशिया नीति का केन्द्र बिंदु बन गया। इसीलिए भारत हमेशा इन राष्ट्रों के साथ द्विपक्षीय संबंधों को मधुर बनाने में प्रयासरत रहता है।

4. आर्थिक विषय से जुड़ा एक अन्य विषय है जिसके कारण दोनो के मध्य दूरगामी संबंध विकसित हुए। भारत द्वारा तेल आयात से पड़ने वाले आर्थिक कुप्रभाव को रोकने हेतु लम्बे समय के कार्यक्रम एवं नीतियाँ निर्धारित की गई। इसके अंतर्गत भारत द्वारा भुगतान संतुलन सही बनाए रखने हेतु द्विपक्षीय के साथ-साथ बहुपक्षीय स्तरों पर दक्षिण -दक्षिण सहयोग को बढाने का प्रयास किया गया। द्विपक्षीय स्तर पर 1964-1965 में शुरू किए गए मिस्त्र एवं ईरान के साथ अपने व्यापार का विभिन्नीकरण एवं परिवर्तन किया गया। अप्रैल, 1968 में किए गए त्रिपक्षीय 'भारत-मिस्त्र-यूगोस्लाविया' सहयोग को 1973 एवं 1978 में पुनः जारी रखने पर सहमति हुई। इस काल में भारत ने मिस्त्र एवं ईरान के अतिरिक्त पश्चिम एशिया के अन्य राष्ट्र जैसे- ईराक, कुवैत, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, लिबिया, आदि से भी अपने आर्थिक कार्यक्रमों जैसे- संयुक्त उद्यमों, सलाहाकारी सेवाओं, भुगतान, आसान ऋण, सेवाओं का निर्यात, आदि ने ग्रहण कर लिया। शीतयुद्ध के अंतर्गत उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, रंगभेद, आदि की तरह अब दक्षिण-दक्षिण सहयोग के स्वरूप में भारत व इन देशो के बीच आर्थिक संबंधों का विकास होने लगा।

इस प्रकार उपरोक्त कारणों ने दोनो ओर के संबंधों को नये आयाम तो प्रदान किए ही साथ-साथ इस बदले हुए अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में दोनों एक-दूसरे के पूरक बने रहे तथा इसके लिए भी अवसर प्रदान किए। भारत इस बदली हुई रणनीति के माध्यम से इन देशों के लिए अपने आपको औचित्य प्रदान करने मे सफल रहा। इस प्रकार नई परिस्थितियों से जुझने में भारत द्वारा खोज की गई नीतियाँ के आधर पर दोनों के संबंध अधिक मधुर व मजबूत हुए।

19.3.4 नव-शीतयुद्ध व बदलते समीकरणों का युग, 1979-1991

1979 में पूर्व सोवियत संघ के अफगानिस्तान में हस्तक्षेप से नव-शीतयुद्ध का प्रारम्भ हुआ जिससे न केवल अन्तर्राष्ट्रीय बल्कि क्षेत्रीय समीकरणों में भी परिवर्तन आए। इसी के साथ भारत एवं पश्चिमी एशिया के देशों के साथ संबधों में भी परिवर्तन आए, जिससे इनके संबंधों का चौथा चरण शुरू हुआ जिसे सोवियत संघ के विघटन तक जारी माना जा सकता है। अफगानिस्तान का इन दोनो क्षेत्रो के मध्य एवं पड़ोस मे स्थित होने के कारण भारत एवं पश्चिम एशिया के राष्ट्रो का इससे प्रभावित होना अनिवार्य था। इसके साथ-साथ ईरान में शाह के चले जाने से अस्थिरता आई। मुस्लिम कट्टरवाद को भी बढावा मिला। बाद में ईरान-ईराक युद्ध से भी यह क्षेत्र बुरी तरह प्रभावित हुआ। इन परिवर्तनों से निम्नलिखित घटनाक्रम का जन्म हुआ जिसका इन दोनो क्षेत्रो के संबंधो पर दूरगामी प्रभाव पड़े-

1. इस घटनाक्रम से अफगानिस्तान की सोवियत संघ एवं पाकिस्तान के मध्य में एक अन्तःस्थल राष्ट्र की भूमिका भी समाप्त हो गई। दूसरी ओर अमेरिका समर्थित शाह की खाड़ी में उसकी पुलिसमैन की भूमिका भी समाप्त हो गई। ईरान में धर्मनिरपेक्ष व आधुनिक कट्टरवाद को जन्म मिला। इसीलिए नव -शीतयुद्ध मे अमेरिका का मुख्य केंद्र बिंदु अब खाड़ी के राष्ट्र अथवा खाड़ी सहयोग परिषद् (जी.सी.सी. बन गए। अमेरिका की नई रणनीति के अतंर्गत सेन्टकॉम या आर.डी. एपफ. को गतिशील बनाकर खाड़ी क्षेत्र पर अपने प्रभाव को बढ़ाने का प्रयास किया। इसके साथ-साथ अमेरिका ने हिन्दमहासागर मे अपने सैनिक अड्डों - बसरा, ओमान एवं डिएगो गार्सिया पर अधिक सेना एवं युद्ध सामग्री बढ़ा दी। इस प्रकार नव -शीत युद्ध के परिणामस्वरूप भारत के पश्चिमी एशिया में केवल सीमित विकल्प ही रह गए थे।

2. इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप पाकिस्तान को पश्चिमी एशिया में एक नई भूमिका मिल गई जो भारत के लिए चिन्ता का विषय थी। नव शीतयुद्ध में अमेरिका की दक्षिण एशिया नीति के अंतर्गत पाकिस्तान को नया महत्व मिला। सर्वप्रथम, उत्तर क्षेत्र का जहाँ तक प्रश्न है वहाँ पाक-अफगान संघर्ष ही पाक-अमेरिका संबंधों का प्रमुख आधर बना। दूसरा, जहाँ तक दक्षिण क्षेत्र की बात है वहाँ पर ईरान के शाह के समय पाक व ईरान के बीच इस क्षेत्र में शान्ति रखने के संदर्भ मे समझौता था जो नए परिवर्तनों के परिणामस्वरूप शायद समाप्त हो गया था। पाकिस्तान की भूमिका का तीसरा पहलू पाक का आर.डी.एपफ. यानि तुरन्त सैन्य कार्यवाही मे सहायक की भूमिका के रूप में था पाकिस्तान की भूमिका के ये तीनों पहलू मुख्यता एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। इस प्रकार से एक ओर पाकिस्तान व जी.सी.सी. देशो के मध्य निकट राजनीतिक एवं सैनिक संबंध विकसित हो गए तो दूसरी ओर पाकिस्तान व पाश्चात्य राष्ट्र (विशेषकर अमेरिका के साथ इसी प्रकार के संबंध मजबूत हो गए, क्योंकि खाड़ी में शीघ्र सैन्य कार्यवाही में पाकिस्तान की केन्द्रीय भूमिका बन गई। पाकिस्तान को इस भूमिका के एवज में उन देशों से महत्वपूर्ण आर्थिक, सैनिक एवं राजनीतिक सहायता मिली। जैसा हमेशा से ही रहा है पाकिस्तान भारत की पश्चिम एशिया की नीति का अहम् बिंदु रहा है। अतः अब इस नई भूमिका में पाकिस्तान की केन्द्रीय भूमिका होने से भारत के इस क्षेत्र में विकल्प सीमित हो गए। अतः भारत को जहां एक तरफ राष्ट्रीय स्तर पर अपनी क्षमता बढ़ाने का कार्य करना पडा, वहीं दूसरी ओर पश्चिमी एशिया के राष्ट्रों के साथ अपने दूरगामी संबंध सुधरने हेतु विशेष राजनीतिक एवं आर्थिक राजनय का सहारा लेना पड़ा। इसके साथ-साथ भारत ने अमेरिका एवं पाकिस्तान से भी अपने संबंध सुधरने पर बल दिया।

3. कुछ महत्वपूर्ण प्रभाव भारत का इस क्षेत्र पर तेल तथा तेल से उत्पादित डॉलर के निवेश पर निर्भरता के कारण है। जहाँ तक तेल का संबंध है भारत काफी हद तक अपना कच्चा तेल उत्पादन करने के बावजूद आत्मनिर्भर नहीं है तथा निकट भविष्य में भी इस स्थिति में परिवर्तन आने की सम्भावना नहीं है। यद्यपि भारत पश्चिमी एशिया के तेल की राजनीति को किसी भी प्रकार से प्रभावित नही करता, तथापि उसका यह प्रयास अवश्य रहता है कि इस

क्षेत्र में स्थिरता एवं शान्ति बनी रहनी चाहिए, क्योंकि उसी पर तेल का सुचारू वितरण निर्भर करेगा। इसके साथ-साथ भारत यह भी जानता है कि इन देशो के पास बहुत सारा धन तेल बेचने से अर्जित किया हुआ है। इसका थोड़ा सा भी हिस्सा वह पूँजीनिवेश या ऋण के रूप मे आकर्षित कर सकता है तो उसके लिए स्थिति सुखद बन जाएगी। इन दोनो उद्देश्यों के कारण भी वह द्विपक्षीय स्तरो पर पश्चिमी एशिया के राष्ट्रो के साथ संबंध सुधरने हेतु प्रयासरत है।

4. भारत का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य इस क्षेत्र में बसने वाले लोगो के हितो की रक्षा करना भी है। भारतीय यहाँ इंजीनियर, सलाहकार, दस्तकार, व्यापारी, मजदूर वर्ग, आदि के रूप मे एक बड़ी संख्या मे कार्यरत है। कुछ चुने हुए देशों में एक अनुमान के अनुसार 1985 में भारतीयो की संख्या तालिका में दर्शाई गई है।

तालिका 1985 में पश्चिम एशिया के देशों मे कार्यरत भारतीयों की संख्या

क्रमांक	देश	संख्या
1	संयुक्त अरब अमीरात	1500000/
2	सउदी अरब	750000/
3	कुबैत	80000/
4	बहरीन	254000/
5	ईराक	30000/
6	ओमान	65000/

खाड़ी युद्ध में कापफी संख्या में भारतीयों की वापसी के बाद भी, विदेश मंत्रालय की 1994-1995 की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार यह संख्या 20 लाख है। पश्चिमी एशिया में कार्यरत भारतीय जहाँ एक ओर भारत सरकार एवं इन देशो की सरकारों के बीच संबंध सुधरने की कड़ी का काम करते है वहीं दूसरी ओर भारी मात्रा मे विदेशी मुद्रा भारत भेजते है। 1994-1995 के आंकड़ो के अनुसार यह विदेशी मुद्रा अनुमानतः 7,800 करोड़ थी। इस प्रकार भारत चाहे वहाँ की आन्तरिक स्थिति को प्रभावित भले ही न करता हो लेकिन पश्चिमी एशिया की अर्थव्यवस्था का हिस्सा जरूर बन गया है। इसलिए उसकी हर संभव कोशिश होती है कि अपनी कुछ सीमाओं के बावजूद भी इन देशो से अपने द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय संबंध बनाए रखे जाए।

नव-शीतयुद्ध के प्रारम्भ होने से कुछ परिवर्तन अवश्य आए जिनके माध्यम से पाकिस्तान की भूमिका इस क्षेत्र में अवश्य बढ़ी, लेकिन उसके साथ-साथ भारत का एक वैकल्पिक देश के रूप में महत्व भी बना रहा। भारत की अपनी विवशताओं के कारण भी इनके प्रति लापरवाही का रवैया नहीं अपनाया जा सकता था। अतः इन बदले हुए अन्तर्राष्ट्रीय समीकरणों के बावजूद भारत एवं पश्चिम एशिया के देशो के बीच संबंध मधुर बने रहे। परिणामस्वरूप दोनो देशों के द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय संबंधो का विकास जारी रहा।

19.3.5 नव परिवर्तनो के उपरान्त मित्रता जारी, 1992-अब तक

भारत एवं इस क्षेत्रा के देशो के साथ संबंधों का अंतिम चरण 1992 से प्रारंभ होकर आज भी जारी है। इस काल मे तीन प्रमुख घटनाएँ हुई जिसके कारण इस क्षेत्र के राष्ट्रो के साथ भारत के संबंधों पर भी प्रभाव पड़ा। ये घटनाएँ निम्नलिखित है-

1. दिसम्बर , 1991में अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना सोवियत संघ का विघटन था। इसके परिणास्वरूप केवल यूरेशिया के इस क्षेत्र में ही परिवर्तन नही आया बल्कि सारे विश्व की राजनीतिक प्रक्रिया को बदलकर रख दिया। इसका सबसे सकारात्मक परिणाम था- शीतयुद्ध का अन्त। शीतयुद्ध की समाप्ति ने महाशक्तियो के मध्य चल रहे संघर्ष को ही शान्त नही किया बल्कि कई क्षेत्रो के राजनीतिक समीकरणों को भी बदल दिया।

इसके परिणामस्वरूप तथा कुछ आन्तरिक राजनीतिक पहल की वजह से यह क्षेत्र शान्ति प्रक्रिया की ओर आगे बढ़ा। अन्ततः इज़राइल एवं फलिस्तीनी मुक्ति संगठन के बीच 13 सितम्बर, 1993 को वाशिंगटन में शान्ति समझौते पर हस्ताक्षर हुए जिसका उद्देश्य फिलिस्तीनी एवं इज़राइल के मध्य 13 दिसम्बर, 1998 तक पूर्ण व स्थायी शान्ति स्थापित करना था। येतजेंग रॉबिन की हत्या एवं छोटे-मोटे विरोधे के बावजूद दोनो राष्ट्र शान्ति प्रक्रिया की ओर आगे बढते रहे। यद्यपि भारत का इस घटनाक्रम को प्रभावित करने की कोई क्षमता नही है, परंतु फिर भी इस शान्ति प्रक्रिया से भारत को व्यापारिक एवं अन्य आर्थिक, राजनीतिक एवं सामरिक लाभ है। अतः भारत का इन देशो के साथ सुखद संबंधों का होना अनिवार्य था।

2. सोवियत विघटन से पूर्व एक नकरात्मक पहलू सामने आया। पूर्व-सोवियत संघ न रहने से एक 'नई विश्व व्यवस्था' की बात की जाने लगी, जिसका स्पष्ट रूप खाड़ी युद्ध 1919 में देखने को मिला। यद्यपि खड़ी युद्व प्रारम्भ होने के समय सोवियत संघ विद्यमान था। परंतु गोर्बाचोव की नीतियों के कारण इतना कमजोर हो गया था कि सुरक्षा परिषद में भी अमेरिका द्वारा पारित प्रस्तावों का समर्थन कर दिया। सिद्धांत रूप से तो खाड़ी युद्ध के समय की गई कार्यवाही संयुक्त राष्ट्र के संयुक्त कदम के रूप में हुई, लेकिन व्यावहारिक रूप से वह अमेरिका एवं नाटो सदस्यों की कार्यवाही थी। अमेरिका की इस कार्यवाही में इज़राइल के साथ -साथ अरब राष्ट्रों में से सउफदी अरब ने भी योगदान दिया। अमेरिका के हिन्दमहासागर स्थित डिएगो गार्सिया टापू ने भी पूर्ण सैनिक अड्डे की भूमिका निभाई। इस प्रक्रिया की अरब देशो मे मिश्रित प्रतिक्रिया हुई तथा उनके आन्तरिक द्वन्द्व की भी साफ झलक मिली। भारत भी विशेष भूमिका नही निभा पाया। यहाँ की अल्पमत सरकार ने जहाँ एक ओर बम्बई मे अमेरिका के लड़ाकू विमानो को तेल भरने की इजाजत दी ;जो बाद में आन्तरिक विरोध के कारण वापिस लेनी पड़ी, वहीं दूसरी ओर अनिच्छेदपूर्ण रूप से गुटनिरपेक्षता के नाम पर युद्ध समाप्ति का प्रयास किया। इस प्रकार कुल मिलाकर भारत की भूमिका इस प्रकरण मे नगण्य रही। इससे उसकी क्षेत्रीय क्षमता पर भी प्रश्न चिन्ह लग गया।

3. सोवियत संघ के विघटन से एक नये क्षेत्र को महत्व मिला, जिसका सीध प्रभाव अरब देशो की राजनीति पर पड़ा। यह क्षेत्र है मुस्लिम बाहुल्य आबादी वाले पाँच राष्ट्रों का समूह- मध्य एशिया के गणराज्य। इन राष्ट्रों के स्वतंत्र होने के साथ दो प्रक्रियाएँ शुरू हुई - (1) मुसलमान आबादी वाले राष्ट्र होने के कारण पश्चिमी एशिया के राष्ट्रों द्वारा इनके साथ संबंध बनने की प्रक्रिया की स्पर्धात्मक दौड़। 2 इस क्षेत्र सहित पूरे पश्चिमी एशिया में धर्मान्धता एवं धर्मनिरपेक्षता की होड़। इन सोवियत गणराज्यों की मुसलमान बाहुल्य आबादी होने के कारण पश्चिमी एशिया के सभी राष्ट्रो ने यहाँ पर अपना-अपना प्रभुत्व बनाने की कोशिश की। रातों रात आर्थिक सहायता देकर मदरसे खुलवाए गए। कुरान की पुस्तकें बड़ी मात्रा में इन राष्ट्रो को भेजी गई। बड़ी संख्या में मस्जिदो का निर्माण किया गया। इन्हे कई प्रकार के द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय गठबन्धनों मे बाँध गया। एक सशक्त आर्थिक 'गठबंधन' आर्थिक सहयोग संगठन' ई.सी.ओ.द्ध पाकिस्तान व की पहल पर बनाया गया। एक ओर ईरान व सऊदी अरब द्वारा धर्मिक कट्टरता तथा टर्की द्वारा धर्मनिरपेक्षता पर आधरित शासन ही स्थापना कराने का प्रयास किया गया। पाकिस्तान भारत क्रमशः इन दो धरणाओं के हिसाब से विरोधी राष्ट्रों का विरोध करने लगे। अतः इसका भी भारत व इस क्षेत्र के देशो के साथ संबंधों पर मिश्रित प्रभाव पड़ा।

4. इस अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम के साथ-साथ भारत में भी महत्वपूर्ण आन्तरिक परिवर्तन हुआ। सन् 1991 के बाद भारत ने अर्थव्यवस्था के क्षेत्र मे उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की खुलेपन की नीतियाँ अपनाई। इनके परिणामस्वरूप जहाँ एक ओर भारतीय आन्तरिक बाजार व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हुए वहीं दूसरी ओर विदेशों से भारत में पूंजीनिवेश को आकृष्ट करने के उपाय किए गए। इन उपायों में विकसित देशों के साथ-साथ पेट्रोडॉलर कमाने वाले पश्चिमी एशिया के देशो को आकृष्ट करने के भी भारत ने भरसक प्रयत्न किए। तेल के आयात के कारण इन देशो से

भारत का व्यापार-सन्तुलन भी विपरीत रहा है अतः भारत इन देशो को अधिक निर्यात करने का भी इच्छुक था। इस दृष्टि से व्यापारिक एवं पूँजीनिवेश दोनो कारणों से भारत इस क्षेत्र के देशो के साथ अधिक मित्रता बढ़ाना चाहता था। इस क्षेत्र मे रह रहे भारतीयों द्वारा पूँजी भेजने की वजह का पहले ही की तरह एक और कारण भी था। इसीलिए भारत का व्यापार इन देशों के साथ 1993-94 में 20,206 करोड़ रूपये तथा 1994-95 मे लगभग 25,000 करोड़ रूपये तक पहुँचने की सम्भावनाएँ व्यक्त की गई। अतः भारत ने इस काल में बहरीन, कतर, ईराक, कुवैत, ईरान, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात एवं यमन जैसे देशों के साथ आपसी व्यापार वृद्धि हेतु बहुत से द्विपक्षीय समझौते किए। सन् 2003 में ईराक पर अमेरिका, ब्रिटेन एवं उनके सहयोगी देशो द्वारा युद्ध किए जाने पर भारत कोई विशेष भूमिका नही निभा सका। भारत ने पहले ही संयुक्त राष्ट्र संघ के 8 नवम्बर,2002 के रेजोलुशन 1441 को स्वीकृति प्रदान कर दी थी जिसके अंतर्गत निरस्त्रीकरण तथा ईराक में हथियारों की खोज पर सर्वसम्मति बन गई थी। भारत का इस क्षेत्र में लगाव निरंतर बना हुआ है। भारत अपने आर्थिक हितों, राजनयिक कारणों एवं राजनीतिक स्थायित्व के कारण इस क्षेत्र को आज भी अपनी विदेश नीति में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है। इसीलिए भारत संयुक्त राष्ट्र द्वारा पारित सभी प्रस्तावों का समर्थन करता है। भारत वर्तमान संदर्भ में अरब देशो व इजराइल के बीच संबंध में समन्वय बनाए रखना चाहता है। अमेरिका से संबंधों मे सुधर के साथ-साथ भारत केवल शान्तिपूर्ण ढंग से विवादों के हल का पक्षधर है। यह किसी भी प्रकार की दण्डात्मक कार्यवाही के विरूद्ध रहा है। वर्तमान इराक के पुनर्निर्माण हेतु भारत ने 20 मिलियन डॉलर की आर्थिक सहायता भी प्रदान की है तथा 12 मार्च, 2003 में प्रधनमंत्री ने संसद में अपने वक्तव्य में केवल संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन ही किसी कार्यवाही में शामिल होन की बात कही है। भारत संयुक्त राष्ट्र की अवेहलना करते हुए कोई भी कार्यवाही करने के विरूद्ध है। इसी नीति के अन्तर्गत भारत ने अमेरिका के कहने पर ईराक में सेना भेजने से मना कर दिया। आन्तरिक एवं राष्ट्रीय प्रजातान्त्रिक गठबन्धन की मजबूरी के साथ -साथ ऐसा करना सरकार द्वारा भारत की पश्चिम एशिया नीति मे निरंतरता बनाए रखते हुए किया गया।

भारत 2/3 तेल का आयात प.एशिया से करता है। 2013 तक 110 अरब डॉलर का व्यापार भारत के साथ हुआ है। भारत के 60 लाख से ज्यादा लोंगो को यहां पर रोजगार मिला हैं। 35 अरब डॉलर का चालू खाते की पूर्ति मे उल्लेखनीय भूमिका निभाया है। इस इलाके में राजनीतिक अस्थिरता का माहौल कई वर्षा से बरकरार है यह भारत के लिए गम्भीर चुनौती पैदा कर रहा है, यह कई मामलों मे पूरे विश्व के लिए भी चिंता का कारण है।

कुछ वर्ष पहले **Arab Spring** की चर्चा हुयी थी इसमें पश्चिम एशिया और उतरी अफ्रीका के राजनीतिक महौल में व्यापक बदलाव किया था। कई देशों मे जनआंदोलन शुरू हुए थे। अनेक देशों में जनआंदोलन का उद्देश्य था- लोकतांत्रीकरण, तानाशाही सरकारों का विरोध, उदाहरण स्वरूप-यूरेशिया, मिश्र, बहरीन, यमन, लिबिया, सीरिया, इन सभी जगह व्यापक जन आंदोलन हुआ। इन आंदोलन के कारण काफी बदलाव हुआ-

नयी शक्तियां उभर कर आयी (पश्चिमी एशिया से संबंधित क्षेत्रों मे) अनेक देशों में इस्लामिक दल, जिनकी पहचान कुछ हद तक धर्म से जुड़ी है। पहले ऐसी शक्तियों को प.एशिया मे शासको द्वारा दबा के रखा गया था। साथ में कट्टरपंथी इस्लामिक तत्व भी उभरकर आये।

ईराक युद्व का परिणामः- ईरान का प्रभाव बड़ा है शिया समुदाय में कई देशो मे शिया समुदायो के बढने से ईरान की स्थिति का बढना। जैसे- लेबनान, गाजा, सीरिया। इन सभी जगह ईरान का प्रभाव बड़ा। ईरान ने नाभिकीय हथियारों को प्राप्त कने का प्रयास बढा दिया, कारण- पश्चिमी हस्तक्षेप उस इलाके में हो रहा है।

सउदी अरब और इरान के बीच तनाव बढ़ रहा है, और पूरे क्षेत्र में एक विभाजन हो गया है। कुछ क्षेत्र सउदी अरब में और कुछ ईरान के पास। इसके कई पैमाने हैः- दक्षिणी अरब सुन्नी क्षेत्र है, शिया क्षेत्र-ईरान है। धर्म से जुड़ा

राजनीतिक प्रभाव, आर्थिक, पश्चिमी देशों का सम्बंध सउदी अरब का निकट सम्बंध ईरान का प. देशों से तनावपूर्ण संबंध है।

भारत के दोनो दक्षिणी अरब और ईरान के साथ अच्छे संबंध है लेकिन इस विभाजन से कई देशों में - असुरक्षा की भावना बढ़ी हैं। वही हथियार आपूर्ति भी बढ रहा है।

पश्चिम एशिया की भूमिका कुछ कम हुई है इसके कई कारण है-

कई पश्चिमी देशों का उर्जा संसाधनो के मामले मे इस क्षेत्र पर निर्भरता कम हुई है। अन्य क्षेत्रों से उर्जा संसाधन मिलना। तकनीकी प्रगति जिससे उदाहरण स्वरूप- USA। में विदेशी तेल पर निर्भरता लगातार घट रही है। USA मे तीव्र विकास, जिसके कारण अब USA निर्यातक के रूप मे उभरकर सामने आ रहा है। अभी भी उर्जा के मामले मे प. एशिया एक प्रमुख क्षेत्र है। उभरती हुई बहुत सी शाक्तियां इस पर निर्भर है EX चीन और भारत। पिछले कुछ समय की घटनाओं से खतरा है कि प. एशिया पुनः आतंक के प्रमुख केन्द्र के तौर पर उभरकर सामने आ रहा है।

इस क्षेत्र मे अंतर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप बहुत बार हुआ है यह प्रवृति आगे भी बनी रहेगी। इसके राजनीतिक और आर्थिक कारण भी होते है।

मानवीय कारण भी होते है, इन सभी कारणों से नई चुनौतियां उभरकर सामने आ रही है जिससे नए हस्तक्षेप भी आ रहे है।

भारत का इस क्षेत्र से संबंध और बढाने की जरूरत है। ज्यादा सम्पर्क बढाने की आवश्यकता है उपयुक्त क्षमता का विकास करें, इस क्षेत्र मे सक्रिय भूमिका निभाने के लिए- व्यापार के संबंध में मानव संसाधन के क्षेत्र में।

भारत को Proactive सक्रीय भूमिका निभानी चाहिए। समस्याओं का इंतजार किए बिना पहले से ही तैयारी करना है भारत को भारत को इस्लामी राजनीतिक दलों के बीच और जेहादी दलों के बीच विभेद करना होगा। इस्लामिक राजनैतिक दल वहां की मुख्य धरा से जुड सकते है उनके पास भारत का सहयोग हो सकता है।

तुर्की की Justice and Development Party -ये सताधरी दल है जिसका राष्ट्रपति Recep Tayyip Erdogan है| ये इस्लामिक सिद्वांतो से प्रभावित है लेकिन बहुत Moderate है। इसने आर्थिक विकास को प्राथमिकता दे रही है और वैश्विक स्तर पर सहयोग कर ररहा है। इसके साथ भारत का संबंध अच्छा है, यह कोई खतरा नही है भारत के लिए। यह इस क्षेत्र में प्रभावी,/शक्तिशाली दल भी है। भारत ने नीति में इस तरह का विभेद किया है- Moderate के साथ सहयोग। उग्रवादी के साथ तटस्थता।

इराक में जब संकट बढा तो इराक, लिबीया, सीरिया इन सबमेजो भारतीय थे वो भी प्रभावित हुये, भारत को उनको छुडाने, वापस लाने आदि की व्यवस्था करनी पड़ी जिसमें कुछ सफलता मिली लेकिन भारत के लिए संकट भी था। इराक-ईरान क्षेत्र में भारतीय नागरिकों का फंस जाना। अभी तक भारत संकट आने पर सामाधन निकलता था। लेकिन बहुतो का मानना है कि भारत को अब दीर्घकालिक सामाधन भी करना चाहिए। गाजापट्टी को लेकर विवाद -हमास और इज़राइल मे तनाव हुआ। हमास के उग्रवादियों के द्वारा इज़राइल नागरिको पर हमला। इजराइल द्वारा गाजापट्टी के असैनिक लोगो पर कार्यवाही।

इन दोनों घटनाओं पर भारत ने चिंता व्यक्त की। एक संतुलन बनाने की कोशिश की गयी। संसद में इस मसले को रोकने के लिए बहस संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार से जो प्रस्ताव आया उसे भारत ने समर्थन दिया, इज़राइल की निदां गाजापट्टी पर अत्याधिक बल का प्रयोग करने के लिए की गयी।

अभ्यास प्रश्न

1.भारत और पश्चिम एशिया के मित्रता का युग क्या है ?
2. भारत और पश्चिम एशिया के परस्पर परखने का कार्यकाल, क्या है ?
3. भारत और पश्चिम एशिया के परस्पर बदलाव व सौहार्द वापसी का काल,किसे माना जाता है ?
4. नव-शीतयुद्वोत बदलते समीकरणों का युग,किसे कहा जाता है ?

19.4 सारांश

इस प्रकार उत्तर-शीतयुद्ध युग मे बदलते हुए नये अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश, क्षेत्रीय समीकरणो एवं आन्तरिक परिवर्तनो के परिणामस्वरूप भारत का पश्चिमी एशिया के देशों के साथ संबंध बढ गया है। जहाँ महाशक्तियों के बीच शीतयुद्ध के अन्त से एक लौह दीवार गिर चुकी है, उसी प्रकार अब भारत ने भी अरब एवं इज़राइल के साथ बराबरी पर संबंध स्थापित कर लिए है। इससे पूर्व भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत इज़राइल को मान्यता तो प्रदान कर दी थी परंतु राजनीतिक एवं व्यापारिक संबंध नहीं स्थापित किए थे। अब यह स्थिति समाप्त हो चुकी है इसके अतिरिक्त आपसी महत्व के कई सामरिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोणों मे समानता के कारण दोनों के बीच नजदीकी राजनीतिक संबंध परिवर्तनों के बाद भी जारी है। नई अन्तर्राष्ट्रीय विश्व व्यवस्था एवं भारतीय संदर्भ में आर्थिक तत्वों के बढते प्रभाव के कारण भी दोनो क्षेत्र एक-दूसरे के और निकट आ गए है।

इस प्रकार भारत व पश्चिमी एशिया के देशो मध्य 1947 से अब तक के संबंधो का अवलोकन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विभिन्न चरणो में विभिन्न कारणों से दोनों देशो के बीच स्थाई एवं मित्रातापूर्ण संबंध रहे है। यद्यपि 1962 से 1971 के बीच भारत और इन संबंधो में दूरियाँ बढी, परंतु आपसी परिपक्वता के कारण उसका बुरा प्रभाव नही पड़ा इसी प्रकार उत्तर-शीत युद्ध के चरण में भी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति मे मूलभूत परिवर्तनों के बावजूद भी दोनो के संबंध मधुर बने रहे। इनके संबंधे में निरंतरता का कारण शायद भारत के पाकिस्तान के साथ संबंध व तेल जैसी वस्तु पर भारत की पश्चिमी एशिया पर निर्भरता रही है। इसके अतिरिक्त, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में परिवर्तनों एवं विवशताओं को दोनो ही विकासशील देशों के दृष्टिकोणों एवं दक्षिण-दक्षिण सहयोग की संरचना के माध्यम से देखते हैं। पश्चिमी एशिया के देश भारत की अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका, उसका विकासशील देशों में स्थान, एक वैकल्पिक एवं स्थायित्व वाला राज्य, आदि की दृष्टि से पाकिस्तान की अपेक्षा भारत से संबंध बनाना अध्कि उपयुक्त मानते हैं। वर्तमान संदर्भ में भी, भारत का तकनीकी ज्ञान,सैन्य क्षमता, अपने क्षेत्र में स्थिति, विश्व के ज्वलंत मुद्दों पर विचार, आदि के कारण पश्चिमी एशिया के देश इससे अच्छे संबंध बनाए रखने के इच्छुक हैं। अतः दोनों के मध्य समान ऐतिहासिक, आर्थिक व राजनीतिक हितों के अतिरिक्त द्विपक्षीय, क्षेत्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप मधुर संबंध बने रहने की प्रबल सम्भावना दिखाई देती है।

19.5 शब्दावली

शीत युद्धः दो राज्यों के बीच गम्भीर तनाव की स्थिति जब युद्ध के सारे लक्षण मौजूद हो लेकिन वास्तव में युद्ध न हो रहा हो।

धर्म- निरपेक्ष राज्य: धर्म- निरपेक्ष राज्य में धर्म एक व्यक्गित मामला माना जाता है, और व्यक्ति के क्या धार्मिक विचार या विश्वास है, इस बारे में राज्य कोई हस्तक्षेप नहीं करता।

गुट- निरपेक्ष आंदोलन: गुट-निरपेक्ष आंदोलन शीत युद्ध एवं द्वि- ध्रुवीय विश्व प्रणाली के विरूद्ध नवस्वतन्त्र देशों का एक ऐसा अभियान था जिसमें अन्तर्राष्टीय शान्ति, सदभावना एवं आर्थिक विकास के साथ-साथ उनके राष्ट्रीय हितों एवं महत्वाकांक्षाओं की अदभुत सामंजस्य विधमान था।

संयुक्त राज्य संघः यह एक अन्तर्राष्टीय संगठन है जो दुनिया भर के देशों के लिए अन्तर्राष्टीय कानून, सुरक्षा, मानवाधिकार आर्थिक, सामाजिक प्रगति के लिए कार्य करना (मिलेनियम डवलेपमेंट गोल) जैसे कठिन कार्यो के आसान प्रवर्त्तन करानें के लिए बनाया गया।

19.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१.1947-1961 ,२.1962-1971 ३.1972-1978 ४.1979-1991

19.7 संदर्भ ग्रन्थ

1.ए अप्पारदोराय व एम.एस.राजन, इंडियाज फॉरेन पॉलिसी एण्ड रिलेशंज, नई दिल्ली, 1985, पृ.374।

2.के. आर. सिंह, 'इंडियन स्ट्रेटे-जिक एण्ड ईकोनोमिक इन्ट्रेस्टस इन वेस्ट एशिया', सतीश कुमार(सम्पादक), ईयरबुक ऑन इंडियाज फॉरेन पॉलिसी, 1983-84, नई दिल्ली, 1986, पृ.121

३. एन.एस. सिसोदिया एडं अशोक बहुरूया, वेस्ट एशिया इन टरमोइलः इमपेलिकेशन फोर ग्लोबल सेक्योरिटी, पब्लिशर -एकेडमिक फाउंडेशन 2007।

19.8 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

मीना सिंह रॉय, एमरजिंग ट्रेन्डस इन वेस्ट एशिया: रिजनल एंड ग्लोबल इमप्लीकेशन , पब्लिकेशन - पेनटागन प्रैस, 2014।

समीर प्रधान, इंडिया फोरमीडेबल स्टेक्स इन वेस्ट एशिया (इ.पी. डब्लू) नवम्बर-29-2014 वोल्यूम

19.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारत और पश्चिम एशिया के सम्बन्धो का आलोचनात्मक व्याख्या करे?

2. भारत की विदेश नीति के निर्धारण में पश्चिमी एशिया की भूमिका का वर्णन करे।